अलबेली आम्रपाली

॥ गुजराती लेखक : मोहनलाल चुन्नीलाल धामी ॥

॥ रूपान्तरकार : मुनि दुलहराज ॥

अलबेली आम्रपाली

लोकचेतना प्रकाशन

अलबेली आम्रपाली

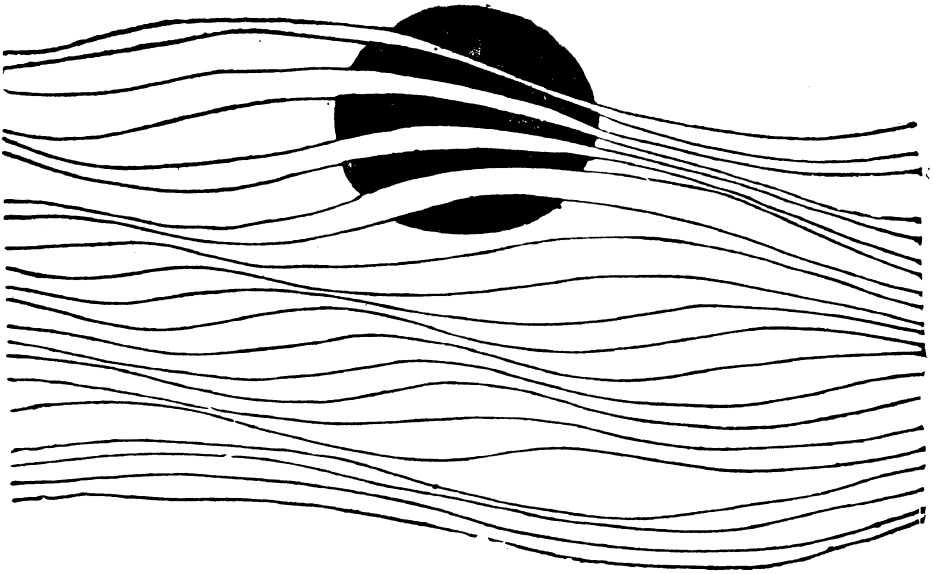

लेखक
मोहनलाल चुन्नीलाल धामी

रूपान्तरकार
मुनि दुलहराज

स्वर्गीया मातुश्री गोपीबाई मरलेचा की पुण्य स्मृति में
चम्पालाल पारसमल मरलेचा, खिड़की, पूना के सौजन्य से।

प्रकाशक : लोकचेतना प्रकाशन, ३/११४, कर्ण गली विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२ / मूल्य : पचास रुपये / संस्करण : १९९२ / मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

ALBELI AAMRAPALI by M. C. Dhami Rs. 50.00

अनुक्रम

१.	तेणं समएणं	१
२.	तेजस्विनी	८
३.	महानाम की मनोवेदना	१५
४.	प्रसेनजित की चिन्ता	२०
५.	त्रैलोक्यसुन्दरी	२५
६.	जनपदकल्याणी का अभिषेक	३०
७.	वीणा की साधना	३५
८.	आग लग गई	३८
९.	देश का त्याग	४३
१०.	शंबुक वन में	४६
११.	शंबुक	४९
१२.	महाघोष	५६
१३.	रहस्यमय खजाने की ओर	६१
१४.	अलंबुष का खजाना	६६
१५.	दीपक बुझ गया	६८
१६.	श्रावणी पूर्णिमा	७३
१७.	पागल हाथी	७९
१८.	मृगया के लिए प्रयाण	८२
१९.	भूतिया आवास	८५
२०.	रंग हिंडोल राग	९५
२१.	वैशाली की ओर	९९
२२.	कादंबिनी	१००
२३.	मधुयामिनी	१०६
२४.	आशा की एक किरण	१०९
२५.	अभिशप्त नारी	११२

२६. विचित्र स्वप्न और उसका फल ११७
२७. नर्तकी कादंबिनी १२३
२८. पहला शिकार १२६
२९. आशा का दीप बुझ गया १३१
३०. वह भी मरा १३७
३१. पहचान शेष थी १४२
३२. महान् धनुर्धर सुदाम १४६
३३. राजकुमारी रजनीगन्धा १५०
३४. वास्तविक परिचय १५५
३५. वैशाली में हलचल १६२
३६. शीलभद्र की ईर्ष्या १७०
३७. रागचन्द्र नंदिनी १७५
३८. आशा का दीप-१ १८०
३९. आशा का दीप-२ १८४
४०. अभिशाप का बोझ १८९
४१. मृत्यु का रहस्य १९५
४२. पलायन का षड्यन्त्र १९९
४३. नयी चिन्ता २०४
४४. वासना की चिनगारी २१०
४५. शंका का निवारण २१६
४६. वैशाली को छोड़ने के पश्चात् २२१
४७. श्यामा का मन २२६
४८. कौन होगी वह अनिंद्य सुंदरी २३३
४९. कामप्रभा के भवन में २३८
५०. मन की मन में रह गई २४३
५१. आकस्मिक योग २४८
५२. तेजंतुरी २५१
५३. स्वर्ण का सौदा २५७
५४. हर्ष भी वेदना भी २६३
५५. विषमुक्ति और पद्मसुंदरी का त्याग २६६
५६. प्रत्युत्तर २७२
५७. बसंत की बहार २७५
५८. राजगृही का निमन्त्रण २८१
५९. प्रेम और कर्त्तव्य २८६

६०. प्रश्नतीर २९२
६१. अभिमान की ज्योति २९८
६२. प्रिया की याद ३०३
६३. अधीर हृदय ३०८
६४. प्रिया और प्रियतम ३१४
६५. काल की क्रीड़ा ३२०
६६. निमन्त्रण ३२६
६७. तथागत बुद्ध ३३२
६८. आशा के मोती ३३९
६९. एक झटका ३४४
७०. बुद्धं शरणं गच्छामि ३५०
उपसंहार ३५६

१. तेणं समएणं

भारत के स्वर्ण युग का यह चित्रण है। यह कथा लगभग ढाई हजार वर्ष पहले की है।

उस समय भारत में दो प्रकार की राज्य-व्यवस्थाएं प्रचलित थीं। एक थी राजतंत्र की व्यवस्था और दूसरी थी गणतन्त्र की व्यवस्था। उस समय अनेक स्वतन्त्र राज्य थे। उनके अधिपति राजा कहलाते थे। धर्म, समाज-रचना और व्यक्तिगत हित में कहीं अवरोध न आए, इसकी चिन्ता राजा करता था और पूरी राज्य-व्यवस्था इन सबको सही संचालित करने के लिए कटिबद्ध थी। राज्य-व्यवस्था के अनेक विभाग थे और प्रत्येक विभाग को एक कुशल व्यक्ति, जो राजनीति में निपुण होता था, सम्भालता था। वे सब मन्त्री कहलाते थे। राजा के लिए कुछेक मर्यादाएं थीं और इन मर्यादाओं का पालन उसके लिए अनिवार्य होता था। पूरा राज्य और राज्य की पूरी सम्पदा राजा की मानी जाती थी।

उस समय भारतवर्ष में अनेक छोटे-बड़े गणतन्त्र भी थे। गणतन्त्र की लहर सर्वत्र स्थिर नहीं हो पायी थी, फिर भी यत्र-तत्र गणतन्त्रों का अस्तित्व था। वे गणतन्त्र अनेक कुलों द्वारा शासित होते थे और जिन-जिन कुल का गणतन्त्र होता, वे उन्हीं के प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होते थे। जनता की सर्व-सम्मति से ही कानून या मर्यादाओं का गठन होता था। जहां ये जन-प्रतिनिधि एकत्रित होते थे, उसे 'संथागार' कहा जाता था।

भारतवर्ष के बुद्धिशाली राजनयिकों ने यह तय कर रखा था कि ऐसी सभाओं के कामकाज को क्रियान्वित करने के लिए सर्व-सम्मति का होना अनिवार्य है। उनके मन में यह भय व्याप्त था कि कभी कहीं मूर्ख व्यक्तियों के बहुमत के निर्णय से जनता को कष्ट उठाना न पड़ जाए, इसलिए प्रत्येक संथागार में सर्व-सम्मति से निर्णय लिये जाते थे। जब तक सभी सदस्य एकमत नहीं होते तब तक विषय का विमर्श, चिन्तन चलता रहता। सर्वानुमत की यह प्रथा धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक विषयों में भी प्रचलित थी।

उस समय पूर्व भारत में दस-ग्यारह छोटे-बड़े गणतन्त्र थे। इन सभी

गणतन्त्रों में वैशाली का गणतन्त्र समृद्ध और सुखी था। यह सभी की आंखों में खटक रहा था।

उस समय मगध का स्वतन्त्र राज्य था। वहां का राजा प्रसेनजित था। वह अत्यन्त वृद्ध और अशक्त था। मगध की राजधानी कुशाग्रपुर थी। किन्तु महाराज प्रसेनजित राजगृह को राजधानी बना, सुखपूर्वक रह रहा था। उस समय राजगृह पूर्वभारत की समृद्ध और रमणीय नगरी थी। उसके चारों ओर कमनीय पर्वतमालाएं थीं। वे दुर्ग की भांति नगरी की रक्षा करती थीं। राजा प्रसेनजित ने अनेक विवाह किए थे और वह अनेक पुत्रों का पिता था। उसने अपने उत्तराधिकारी की परीक्षा करने के लिए अनेक प्रयत्न किए और श्रेणिक को सबसे योग्य पाया। किन्तु यहां उसके सामने एक समस्या उपस्थित हो गई। उसने अभी-अभी वृद्ध अवस्था में एक विवाह किया। पत्नी युवती थी। उसने इसी शर्त पर विवाह किया कि उससे उत्पन्न पुत्र मगध का राजा बनेगा, प्रसेनजित का उत्तराधिकारी होगा। उसे पुत्र की प्राप्ति हुई, पर उसमें बिम्बिसार श्रेणिक जैसा तेज नहीं था। मगध राज्य की सुरक्षा और समृद्धि को बनाए रखने का उसमें पराक्रम दृग्गोचर नहीं हो रहा था।

अंग देश की राजधानी चम्पा नगरी अत्यन्त समृद्ध थी। महाराज जितशत्रु दधिवाहन वहां का राजा था।

कौशल देश का अधिपति राजा प्रसेनजित था। उसकी राजधानी श्रावस्ती थी। उसके पास अपार सैन्यबल था। राजा प्रौढ़ था, किन्तु वह विलासप्रिय था। उसके योग से उसकी एक रूपवती दासी से एक पुत्र जन्मा। उसका नाम विडुडभ रखा। वह अत्यन्त बलवान और तेजस्वी था। वह स्वयं राजा के लिए सिरदर्द बना हुआ था।

चंडप्रद्योत मालव देश का अधिपति था। अवंती राजधानी थी। अवंती की समृद्धि प्रख्यात थी। मालवपति का पराक्रम बहुचर्चित था और वह सुलगती आग जैसा सब कुछ भस्मसात् करने में समर्थ गिना जाता था।

वत्स देश का राजा उदयन बहुत प्रतापी था।

शाक्य प्रदेश की राजधानी कपिलवस्तु थी। उसकी अवस्थिति हिमगिरि की तलहटी में थी। वह भी एक शक्तिशाली गणतन्त्र था। वहां की प्रजा कौशेय बनाने की कला में निपुण थी।

भारत के पूर्वीय कोने में कामरूप देश था। उसकी राजधानी थी मणिपुर। समग्र कामरूप की प्रजा कला, मंत्र-तंत्र और संगीत की उपासक प्रतीत होती थी। कामरूप की पूर्व दिशा में नागलोक स्थित था। वहां का राजा श्रेयांसपुत्र प्रतापी राजा था। कामरूप और नागलोक के राजाओं ने कभी भी अपने राज्यों का

विस्तार करने की बात नहीं सोची। इसलिए युद्ध से वे अपरिचित थे। प्रजा सुखी और आनंदित थी।

युद्ध आतंक है। युद्ध में विजयी होने वाला और पराजित होने वाला—दोनों को युद्ध का विध्वंस आंखों में किरकिरी बनकर जीवनभर खटकता रहता है। जीतने वाला भी दुःखी होता है और हारने वाला भी दुःखी होता है।

उत्तर दिशा के सुदूर में गांधार देश था। वह अपने विद्यापीठ तक्षशिला के कारण सम्पूर्ण भारत में चर्चित था। तक्षशिला में भारत के कोने-कोने से विद्यार्थी आते और विभिन्न विद्याओं का अभ्यास करते थे। वहां शस्त्रविद्या, राजनीति, आयुर्वेद, संगीत, नृत्य, तत्त्वज्ञान का तलस्पर्शी अध्ययन कराया जाता और हजारों-हजारों विद्यार्थी वहां पढ़ने आते।

विदेह देश की राजधानी मिथिला अनेक पण्डितों को जन्म देने के कारण प्रसिद्ध थी।

काशी का राज्य स्वर्ग का मानवीय रूप जैसा माना जाता था।

इनके अतिरिक्त बंग, गौड, आनर्त, गुर्जर, सिन्धु-सौवीर आदि अनेक छोटे-मोटे राज्य अस्तित्व में थे।

उस समय के बड़े राज्यों की एक महत्त्वाकांक्षा यह थी कि सम्पूर्ण भारत-वर्ष को एक बड़े राज्य के रूप में गठित किया जाए और इसकी परिणति के लिए यदाकदा छोटे-मोटे युद्ध होते रहते थे। किन्तु इन छोटी-मोटी लड़ाइयों से प्रजा का जीवन कभी अस्त-व्यस्त नहीं हुआ था। उनकी एकता में कभी संघर्ष नहीं हुआ था।

प्रत्येक राज्य के अपने-अपने स्वर्ण, रूप्यक और ताम्र के सिक्के थे। वे अपनी-टंकणशालाओं में निर्मित किए जाते थे। उनमें राज्य का चिह्न अंकित रहता था। पूरे देश में वे समान रूप से प्रचलित थे।

पूरे भारत में तोल-माप के लिए मगधमान और कलिंगमान—ये दो प्रकार प्रचलित थे। किन्तु···।

राष्ट्र की धर्म-सम्पदा और ज्ञान-सम्पदा की रक्षा के लिए हजारों वर्षों से अपनी सुख-सुविधाओं की परवाह न कर, प्राणपण से इस प्रवृत्ति में लगे रहने वाले ब्राह्मणों के मन में सम्पत्ति, भोग और लालसा की चिनगारियां उछलने लगी थीं।

पूर्व भारत की जनता समृद्ध और सुखी थी। सम्पदा की प्रचुरता ने लोगों में भोग-विलास, मद्य-मांस और नारी-सौन्दर्य के प्रति अपार आकर्षण पैदा कर दिया था और वे सब इनकी प्राप्ति में अपना पौरुष मानते थे।

हिंसामय यज्ञ, मांसाहार और दासप्रथा के विस्तार ने आर्यों के आदर्शों को छिन्न-भिन्न कर डाला था।

जनता लौकिक आकर्षण से अभिभूत थी। उस समय संत, ऋषि, वैज्ञानिक, तंत्र-मंत्र के ज्ञाता और ज्ञानी जन इधर-उधर विचरण करते थे। कुछेक लोग इन सम्पदाओं के प्रति आकृष्ट थे।

उस समय शाक्यपुत्र गौतम भगवान् पार्श्व की छिन्न-भिन्न परम्परा से भिन्न एक नये मार्ग का निरूपण करने लगे थे।

कुछ समय के लिए जैन धर्म का प्रकाश मन्द हो गया था। सर्वत्र हिंसा का घोर तांडव हो रहा था। वर्गभेद की दीवारें मजबूत हो चुकी थीं। उस समय श्री वर्धमान नाम के क्षत्रिय युवक ने सर्वत्याग के पथ पर चलने का निश्चय किया।

श्री वर्धमान की साधना चल रही थी। कैवल्य-प्राप्ति का समय दूर था। वे साधना में आकण्ठ मग्न थे।

फिर भी जनता ने इस युवक में अध्यात्म का तेज देखा और जन-जीवन को आलोक से भरने का सामर्थ्य पाया।

मगध देश के महाराज प्रसेनजित ने अपने कुलगुरु के पुत्र वर्षकार और दासपुत्र जीवक को तक्षशिला भेजा था।

वर्षकार तक्षशिला में राजनीति-शास्त्र का अध्ययन कर रहा था। वह मात्र बाईस वर्ष का था। अभी उसे तीन वर्ष और गम्भीर अध्ययन करने की आवश्यकता थी।

और जीवक तक्षशिला के महान् ज्ञानी आत्रेय का प्रधान शिष्य बन गया। आत्रेय ने जीवक में आयुर्वेद के नूतन अवतार की सम्भावना को साक्षात् देखा। जीवक की उम्र तेईस वर्ष की थी और उसे अभी दो वर्ष तक आयुर्वेद का अध्ययन करना था।

वृद्ध प्रसेनजित इन दोनों की प्रतीक्षा कर रहा था। इनके आने से पूर्व ही राजा प्रसेनजित इस चिन्ता से आक्रान्त हो गया था कि मगध के भावी सम्राट् के रूप में श्रेणिक बिम्बसार को कैसे सुरक्षित रखा जाए?

उस समय वैशाली का गणनायक सिंह सेनापति था।

दो वर्ष पूर्व वैशाली के युवकों में चंचलता उग्र बनी थी।

गणतन्त्र के एक सेनानायक 'महानाम' निवृत्त हो गए थे। उनकी पुत्री का नाम था आम्रपाली। वह अत्यन्त रूपवती थी। प्रत्येक लिच्छवी युवक की आंखों में वह रम रही थी। गणनायक सिंह ने यह सम्भावना कर ली थी कि कहीं आम्रपाली के कारण लिच्छवी युवावर्ग एकता को भूलकर परस्पर संघर्ष में न जुट जाएं, लिच्छवियों की तप्त तलवार की तीखी धार परस्पर विष रूप होकर एक-दूसरे के प्राण हरण न कर ले, लिच्छवियों की शौर्य-परम्परा आम्रपाली की रूप ज्वाला में भस्मसात् न हो जाए।

सिंह सेनापति का यह भय अस्थानीय नहीं था। उसने सभी गणों के साथ चर्चा कर एक निर्णय किया था कि आम्रपाली जब सोलहवें वर्ष में प्रवेश करे तब उसका पिता महानाम गणसभा के समक्ष इस तथ्य का उद्घाटन करे और सर्वानुमत से ऐसा निर्णय भी ले लिया गया कि वैशाली की कोई भी कन्या, जो अत्यन्त रूपवती हो, वह किसी एक की न बने। वह समग्र वैशाली जनपद की कल्याणी के गौरव से मण्डित हो।

गणसभा का यह निर्णय महानाम के प्राणों का विलोडन कर रहा था, क्योंकि आम्रपाली उसकी एकमात्र सन्तान थी।

महानाम जब युवावस्था में था, तब उसकी पत्नी का देहावसान हो चुका था, किन्तु महानाम का यौवन पद्मा नाम की एक सुन्दर नर्तकी के चरणों में न्योछावर हो गया था। अतः उसने दूसरा विवाह नहीं किया और अपनी सारी सम्पदा के साथ वह पद्मा के निवासस्थान पर ही रहने लगा था।

पद्मा भी महानाम को हृदय से चाहती थी। उसके पास अपार सम्पदा थी। वह अपनी नृत्य कला को अबाधित रखते हुए महानाम के साथ विवाह के बंधन में बंध गई। विवाह के कई वर्ष बीत गए। पर उसकी सन्तान की भूख नहीं मिटी।

महानाम की उम्र अड़तालीस की हो गई थी। पद्मा भी अड़तीस वर्ष की हो चुकी थी। दोनों के मन को संतान की अप्राप्ति की निराशा कचोट रही थी।

पद्मा का भवन अति विशाल और रमणीय था। भवन में शताधिक दास-दासी रहते थे। भवन के भांडागार में स्वर्ण और रत्नों के ढेर लगे थे। पद्मा के पास रथ, अश्व आदि प्रचुर सुख-सामग्री थी।

किन्तु एक सन्तान नहीं थी।

विवाहित जीवन को जीने वाली पद्मा संतान के बिना सूख रही थी। उसने संतान प्राप्ति के लिए अनेक मंत्र-तंत्र और औषधोपचार किए पर सब व्यर्थ ही हुए।

संतान की प्राप्ति का आधार होता है भाग्य। मंत्र-तंत्र या औषध भाग्य को बदल नहीं सकते, पर शारीरिक दोषों का शमन कर सकते हैं।

दोनों— पद्मा और महानाम—एक-दूसरे के प्रति वफादार, प्रेमार्द्र और सुखी थे। किन्तु बच्चे की किलकारियों के बिना वह भवन कांटों की चुभन पैदा कर रहा था।

यह परिस्थिति चौदह वर्ष पूर्व की थी।

और एक दिन सेनानायक महानाम प्रातः भ्रमण के लिए घर से निकला। वह एक वाटिका में गया। वहां एक सुन्दर आम्रकुंज था। महानाम घूमते-घूमते उस आम्रकुंज के निकट पहुंचा।

और उस समय किसी बालक के रुदन के शब्द उसके कानों से टकराए। वह शब्द की दिशा में गया। उसने देखा, एक आम्रवृक्ष के नीचे एक सुन्दर बालक पत्तों की गोद में सो रहा है।

महानाम बालक के निकट गया। उसका गुलाबी लावण्य और चन्द्रमा-सा मुखड़ा देखकर वह स्तब्ध रह गया।

उसने तत्काल बालक को उठा लिया। उसको लगा कि बालक मुश्किल से एकाध मास का है। बालक का शरीर एक कौशेय वस्त्र से ढका हुआ था। महानाम ने उस वस्त्र को ठीक किया और उसने जान लिया कि वह सुन्दरतम कन्यारत्न है। उस कन्या के मुख में आम्र का एक किसलय था। वह उसे चूस रही थी।

महानाम का मन विकल्पों से भर गया। उसने सोचा, ऐसी सुन्दर और तेजस्वी कन्या को किसने छोड़ा है? यह कन्यारत्न किसका है?

उसने आसपास में देखा। कोई नजर नहीं आया। महानाम ने वाटिका के माली से पूछताछ की, पर कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी।

महानाम के प्राण आशा से प्रदीप्त हो गए। उसने सोचा, विधाता ने वरदान स्वरूप इस कन्या को यहां भेजा है।

वह उस कन्या को हृदय से चिपकाकर दौड़ता-दौड़ता अपने भवन के पास आया।

पद्मा उस समय स्नानगृह से निकलकर वस्त्रगृह में गई थी।

महानाम सीधा पद्मा के पास गया और बोला—"देख! विधाता ने हमारे मनोरथ को पूरा कर दिया है।"

पद्मा ने स्वामी की ओर देखा। स्वामी के हाथ में टिके हुए रूप के पुंज को देखकर उसके मातृत्व की अभिलाषा नाच उठी।

पद्मा ने तत्काल कन्या को स्वामी के हाथ से ले अपने हृदय से चिपका लिया और उसके सिर को उसने बार-बार चूमा। वह चूमती ही रही। सब कुछ भूल-सी गई।

दोनों की आशा इस प्रकार पूरी हो गई।

आम्रवृक्ष के नीचे प्राप्त होने के कारण तथा आम्र किसलय को चूसने के कारण कन्यारत्न का नाम रखा 'आम्रपाली'।

चौदह वर्ष पूर्व की यह घटना थी। कन्यारत्न के भवन में पहुंचते ही सारा भवन प्रकाश से भर गया।

अब पद्मा की सारी भावनाएं कन्या को सुसंस्कारित बनाने में उद्यत हुईं।

आम्रपाली तीन वर्ष की हुई और पद्मा ने महानाम के समक्ष यह बात

प्रस्तुत की कि वह अपनी रूपशालिनी कन्या को महान् नर्तकी बनाना चाहती है।

महानाम ने अपनी प्रियतमा की इच्छा को स्वीकार किया।

पद्मा ने आम्रपाली को नर्तन-कला सिखानी प्रारम्भ की।

ज्यों-ज्यों आम्रपाली बड़ी होती गई, पद्मा ने संगीत, नृत्य-कला आदि में प्रवीण आचार्यों को अपने भवन में निवास स्थान देकर आम्रपाली को नयी-नयी तालीमें देने लगी।

दिन बीते। महीने बीते। वर्ष बीते। आम्रपाली बारह वर्ष की हो गई। इसके तेजस्वी नयन शुक्र तारा को भी लज्जित करते हैं, ऐसा सबको प्रतीत होने लगा। इसका अंग-प्रत्यंग नृत्यमय और संगीतमय बन चुका था।

आम्रपाली को शृंगार, नृत्य और संगीत की शिक्षा देने वाले सभी आचार्य अपने आपको धन्य मानने लगे।

शिष्य की प्रवीणता को देख, गुरु को अपनी कला मूर्त होती दीखती है। वे प्रसन्न होते हैं, यह देखकर कि उनकी कला रंग दिखा रही है और उनका प्रयत्न साकार हो रहा है।

किन्तु विधि की विडम्बना! पद्मा अपनी प्राणप्यारी पुत्री आम्रपाली का पूर्ण विकास नजरों से नहीं देख सकी। वह अचानक चल बसी। मात्र तीन दिन रोगाक्रान्त रहकर, वह उस भरे-पूरे भवन को छोड़कर चली गई।

आम्रपाली ने देखा, सुना। वह उस समय केवल बारह वर्ष की थी। वह मां के शव से लिपटकर रो पड़ी। उसके रुदन से सारा भवन प्रकम्पित हो गया। मानो कोई बड़ा भूचाल आया हो।

आम्रपाली मातृस्नेह से वंचित हो गई।

महानाम के हृदय पर वज्र का-सा आघात लगा।

अब महानाम को दो कर्त्तव्य निभाने पड़ रहे थे। एक पिता का कर्त्तव्य और एक मां का कर्त्तव्य।

जिसकी तलवार शत्रुओं के रक्त से अनेक बार स्नान कर चुकी थी, वही महानाम केवल कन्या के लिए अपने महान् दायित्व से निवृत्त हुआ था।

जब आम्रपाली चौदह वर्ष की हुई, तब महानाम को गणसभा का निर्णय याद आया और वह एक शल्य की तरह चुभने लगा। उसका हृदय टूक-टूक हो गया, शतखंड होकर बिखरने लगा। क्योंकि गणसभा के निर्णय को कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता था।

दो वर्ष और बीत गए।

आम्रपाली का यौवन शरीर से फूटकर बाहर निकल रहा था। प्रत्येक व्यक्ति उसके यौवन की लालिमा से हतप्रभ हुए बिना नहीं रहता था।

उसकी आंखों में वह विद्युत् की चमकती थी जो देखने वाले को पाताल में पहुंचा दे। उसके अधरों पर नाचने वाला हास्य तपस्वियों को भी तपोवन से खिसका देता था। उसमें वह आकर्षण था, जो विश्व के किसी भी आकर्षण को अपने में समेटने में सक्षम था।

और महानाम चिन्ता की ज्वाला से घिर रहा था।

कल ही आम्रपाली की सोलहवीं सालगिरह है। 'कल उसे काल-सा प्रतीत होने लगा था।

कल ही महानाम को गणनायक के समक्ष अपनी पुत्री को जनपद कल्याणी के रूप में प्रस्तुत करना था।

हां, कल ही।

२. तेजस्विनी

संध्या बीत चुकी थी। चैत्र शुक्ला चतुर्दशी की रात प्रसूत हो रही थी।

नीलपद्म प्रासाद में दीपक जल उठे थे। कलरव के मिष से संगीत का नाद करते हुए पक्षीगण अपने-अपने नीड़ों में जा चुके थे। प्रासाद में प्रतिदिन की भांति आज भी रात्रि का अभिनन्दन करने वाला संगीत संपन्न हो गया था।

रात्रि की दो घटिकाएं पूरी हो गई थीं।

उस नीलपद्म प्रासाद में एक विशाल स्नानगृह था। उस समय आम्रपाली निरावरण होकर वहां निर्मित कृत्रिम कुण्ड में स्नान कर रही थीं।

शरीर का सुगंधित उबटन गल-गलकर धुल गया था। वह अपने मुंह पर लगे उबटन को धो रही थी। उस समय उसकी अंगुलियों में सुशोभित वज्ररत्न की मुद्रिकाएं शुक्र के तारे की तरह झिलमिल-झिलमिल कर रही थीं।

मुंह पर लगे विलेपन के धुल जाने पर आम्रपाली के चन्द्रवदन का तेज और अधिक सौम्य और गुलाबी हो गया था। वह मृदु मंद स्वर में बोली—"माध्विका! कल···।"

बीच में ही माध्विका बोल उठी—"मुझे याद है देवी! शिशिरा आपको प्रातःकाल ही जगाएगी।"

स्नान से निवृत्त होकर जल सुन्दरी आम्रपाली उस कुण्ड से बाहर निकली। उसके अंग-अंग से त्रिभुवन को विमोहित करने वाला लावण्य टपक रहा था। परिचारिकाओं ने तत्काल उसके शरीर को पोंछा। दूसरी परिचारिकाओं ने उसके निरावरण शरीर को पीले रंग के कौशेय वस्त्र से ढंक दिया।

माध्विका आगे आई और उसने आम्रपाली के गले में पुष्पों की माला पहना दी।

भींत पर एक विशाल दर्पण लगा हुआ था। आम्रपाली उस ओर न देखती हुई स्नानगृह के द्वार की ओर मृदु चरणों से चल पड़ी।

माध्विका ने द्वार खोला।

बाहर शिशिरा और अन्य दो परिचारिकाएं खड़ी थीं। एक परिचारिका के स्वर्णपात्र में कौशेय की पादरक्षिकाएं थीं। ज्योंही आम्रपाली बाहर आई, उसने उन्हें सम्मुख रख दिया। आम्रपाली ने दोनों पैरों में कौशेय की पादरक्षिकाएं पहनकर शिशिरा से पूछा—"क्यों ?"

"देवी ! भोजन तैयार है।"

"क्या पिताजी भोजन कर चुके हैं ?"

"नहीं, वे संध्या समय से ही अपने कक्ष में गम्भीर मुद्रा में बैठे हैं"—शिशिरा ने कहा।

आम्रपाली ने माध्विका की ओर देखकर कहा—"मैं वस्त्र पहनकर भोजन-गृह में आ रही हूं। तू पिताजी को लेकर वहां आ जा।"

"जी", कहकर माध्विका चली गई।

आम्रपाली अपने वस्त्रगृह में गई। वहां दो परिचारिकाएं प्रतीक्षा मे खड़ी थीं। एक त्रिपदी पर स्वर्ण का थाल पड़ा था। उस थाल में आम्रपाली के धारण करने योग्य रात्रिकालीन कौशेय वस्त्र थे।

आम्रपाली एक परिचारिका की ओर उन्मुख होकर बोली—"रेणुका ! विलंब नहीं होना चाहिए।"

वस्त्रों को धारण कर आम्रपाली ने आदमकद दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा।

रेणुका ने अंजनशलाका तैयार की। इतने में ही माध्विका ने वस्त्रगृह में प्रविष्ट होकर कहा—"देवि···!"

"क्या पिताजी भोजनगृह में चले गए ?"

"नहीं···। वे कुछ चिन्ताग्रस्त-से लगते हैं। उन्होंने भोजन करने से इनकार किया है।"

"उनका स्वास्थ्य तो···मैं स्वयं वहां आ रही हूं"—कहकर आम्रपाली ने रेणुका की ओर देखा। रेणुका ने तत्काल उसकी आंखें उस अंजनशलाका से आंज दी।

अंजन करने के पश्चात् रेणुका ने स्वर्णथाल में पड़े अलंकारों को उठाया। तत्काल आम्रपाली बोली—"रहने दो···।"

दर्पण में अंजन का निरीक्षण कर आम्रपाली अपने कक्ष से बाहर निकली और आगे जाने के लिए अग्रसर हुई। माध्विका और शिशिरा दोनों आगे-आगे चलने लगीं।

महानाम अपने कक्ष में गंभीर विचारों में खोया हुआ बैठा था। प्रखंड में प्रज्वलित दीपमालाओं के प्रकाश में उसकी मुद्रा को सहज रूप में पढ़ा जा सकता था।

महानाम वृद्ध था, पराक्रमी था। उसका भव्य ललाट उसके वीरत्व की साक्षी दे रहा था। उसकी सबल भुजाएं उसके स्वास्थ्य की प्रतीति करा रही थीं। उस वय में भी उसके नयन-युगल तेजस्वी थे।

फिर भी आज उसका मन चिन्ता से ग्रस्त था। उसके मन में एक ही विचार अनेक प्रश्न उभार रहा था। कल प्रातः आम्रपाली सोलहवें वर्ष में प्रवेश करेगी और अष्टकुल के गणनायकों के समक्ष इसकी घोषणा करनी होगी।

फिर क्या होगा?

गणसभा में यह बात प्रस्तुत होगी और उसके नियमानुसार आम्रपाली को···।

आगे आने वाले विचारों से महानाम कांप उठता। वह बार-बार इतना ही सोचकर रुक जाता—उसके मन में आता···भाग्य ने वरदान स्वरूप एक पुत्री दी। इस प्रदत्त पुत्री को कितने लाड़-प्यार और आदर से पाला-पोसा···इसको बड़ा किया। पद्मा की इच्छा के अनुसार इसके अंग-अंग में नृत्य और संगीत के संस्कार भरे। पद्मा चाहती थी कि किसी सुन्दर युवक के साथ आम्रपाली का विवाह हो और वह कुलवधू के मंगलमय गौरव से मंडित हो।

किन्तु लिच्छवियों के नयन किसी रूपवती कन्या को सह नहीं सके। गणनायकों ने लिच्छवी युवकों की एकता को खतरे में डालना नहीं चाहा इसलिए···।

ओह!

महानाम का हृदय कांप उठता था। अपनी प्रिय पुत्री आम्रपाली वैशाली गणतन्त्र की आज्ञा के अनुसार जनपद कल्याणी बनेगी। हाय! क्या परिणाम होगा?

आज तक आम्रपाली से यह बात छुपाई थी। किन्तु कल उसके सोलहवें जन्म-दिन पर जब वह यह सुनेगी तो निश्चित है कि उसके कोमल हृदय पर आघात लगेगा···।

यह आघात कितना असह्य होगा?

ऐसे अनेक प्रश्नों में उलझा हुआ महानाम गंभीर चिन्ता के गर्त में उतर चुका था।

और तब अपनी प्रिय पुत्री का मंजुल स्वर उसके कानों से टकराया—"बापू!"

महानाम चौंका···उसने द्वार की ओर देखा···प्रिय पुत्री आ रही थी।

आम्रपाली ने देखा पिताजी के चेहरे पर ऐसी चिन्ता की रेखाएं उभर रही थीं, जिनको समझ पाना कठिन था। वह बोली—"क्यों पिताजी ! क्या अस्वस्थ हैं ?"

"नहीं, बेटी।"

"तो फिर भोजन लेने से इनकार क्यों किया ?" कहती हुए आम्रपाली पिताजी के नजदीक आई और उनके मस्तक पर हाथ रखकर निश्चय करना चाहा कि पिताजी ज्वरग्रस्त तो नहीं हैं।

महानाम ने पुत्री का हाथ पकड़ते हुए कहा—"पाली ! ज्वर जैसा कुछ भी नहीं।"

"तो फिर आपके चेहरे पर इतनी दर्दभरी रेखाएं कैसे उभर रही हैं ?"

"बेटी ! संसार का दूसरा नाम है चिन्ता···।"

"परन्तु ऐसी क्या चिन्ता है कि आप इतने उदास हो गए है ?" कहती हुई आम्रपाली एक आसान पर बैठ गई।

महानाम पुत्री की ओर देखने लगा। दो क्षण देखने के पश्चात् उसने अपनी दोनों हथेलियों से अपना मुंह ढक लिया और उस समय जो चिन्ता की रेखाएं चेहरे पर उभरीं आम्रपाली से वह छिपी नहीं रह सकीं।

शिशिरा और माध्विका द्वार के पास ही खड़ी थीं। आम्रपाली बोली—"पिताश्री···!"

"हूं···" कुछ रुदन की आवाज महानाम के मुंह से निकली।

"क्या हुआ ? क्या किसी ने आपका अपमान किया है ? क्या मेरी मां की स्मृति···"

"नहीं, बेटी ! नहीं। तू मुझे कुछ भी मत पूछ। तू जा और भोजन कर ले।"

"पिताश्री ! आपके मन की चिन्ता को ज्ञात किए बिना मैं भोजन नहीं करूंगी।" आम्रपाली ने स्नेह भरे स्वर में कहा।

महानाम ने पुत्री की ओर देखा। वह जानता था कि आम्रपाली का आग्रह अटूट होता है। वह बोला—"चल, पुत्री ! मैं भी तेरे साथ भोजनगृह में चलता हूं।"

"नहीं, पिताश्री···! पहले आप अपने मन की बात बताएं···मुझसे क्या कोई बात गुप्त···।"

महानाम दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए खड़ा हुआ और चिन्ताग्रस्त हृदय से इधर-उधर चहलकदमी करने लगा।

आम्रपाली ने द्वार पर खड़ी शिशिरा और माध्विका को जाने का इशारा किया। दोनों ने बाहर जाकर दरवाजा बन्द कर दिया।

महानाम का मन कल गणसभा में आने वाले प्रश्न की भयानकता से कांप रहा था। वह सोच रहा था कि आम्रपाली को उसकी अवगति कैसे दी जाए ?

पिताश्री को कमरे में चहलकदमी देखकर आम्रपाली बोली—"पिताश्री ! ऐसा क्यों होता है, जो···?"

बीच में ही महानाम ने पुत्री की ओर देखकर कहा—"तुझे याद है ? कल तेरा जन्म-दिन है···।"

"हां, इसके लिए मैंने सारी तैयारी कर रखी है। कल की रात्रि में मैं नृत्य की एक नयी विधि का भी प्रारम्भ करूंगी। किन्तु आपकी चिन्ता···।"

महानाम निकट आ चुका था। उसने पुत्री के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"मेरी चिन्ता सुलगती आग जैसी है, पाली ! स्नेह और कर्त्तव्य का संघर्ष मेरे मन का विलोडन कर रहा है।···मैं तुझे कैसे कहूं कि कल प्रातः मेरे स्वप्न का अन्त होने वाला है।"

"आपके स्वप्न का अन्त ! ऐसा क्या है पिताजी ?"

"पुत्री ! जिसका कोई उपाय नहीं है उस व्यथा को मैं तुझे कैसे बताऊं ? आज से दो वर्ष पूर्व गणसभा ने मुझे आज्ञा दी थी कि···" कहकर महानाम आम्रपाली के सामने वाले आसन पर बैठ गया।

"ऐसी क्या आज्ञा थी ? आपने कभी भी मुझे कुछ नहीं बताया ?"

"तेरे कोमल हृदय को आघात न लगे इसलिए गणसभा की आज्ञा तेरे कानों तक न पहुंचे, इसका मैंने ध्यान रखा था। किन्तु दो वर्ष का समय देखते-देखते बीत गया। कल मुझे···" कहते-कहते महानाम रुक गया।

"कल क्या है···पिताश्री ?"

"गणनायक के समक्ष मुझे यह कहना होगा कि मेरी पुत्री आम्रपाली आज सोलहवें वर्ष में प्रवेश करेगी।" महानाम ने गंभीर स्वर में कहा।

आम्रपाली ने हंसते हुए कहा—"इसमें चिन्ता जैसी क्या बात है ? यह तो आनन्द का विषय है। आपकी आज्ञा से मैं कल प्रातःकाल सवा लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान भी दूंगी।"

"बेटी ! तू नहीं जानती···इस बात के पीछे कितनी वेदना छिपी है ? वैशाली का गणतन्त्र महान् है, अजोड़ है और आसपास के राज्यों के लिए भय पैदा करने वाला भी है। इस गणतन्त्र की व्यवस्था और नियम गणसभा के द्वारा संचालित होते हैं।"

"यह तो मैं भी जानती हूं। परन्तु इसमें दुःख की क्या बात है ? पिताश्री, आप बात को टाल रहे हैं ? परन्तु मैं ऐसे ही मानने वाली नहीं हूं। आपको बात बतानी ही पड़ेगी। आपकी मनोव्यथा क्या है, यह जाने बिना मैं यहां से नहीं हटूंगी। पिताजी ! मैं आपकी मनोव्यथा को दूर करने का प्रयत्न करूंगी। मुझे

कितना ही बलिदान क्यों न करना पड़े, मैं अपने सर्वस्व को होम कर भी आपको प्रसन्न करूंगी। आप मुझे···।"

"पाली ! मैं तेरे से कुछ भी गुप्त रखना नहीं चाहता।···कभी मैंने कुछ भी नहीं छुपाया, केवल इस बात से मैंने तुझे अन्धकार में रखा। मैं तुझे भ्रम में डालने या यथार्थ को मोड़ने की बात नहीं कर रहा हूं। गणसभा का एक भयंकर नियम है।"

"भयंकर नियम ?"

"हां, वैशाली गणतन्त्र में कोई रूपवती···असामान्य रूपवती कन्या हो उसकी वैशाली गणतन्त्र की एकता की सुरक्षा के लिए जनपदकल्याणी होना जरूरी है।"

"क्या ?·· " प्रश्नभरी दृष्टि से आम्रपाली ने पिता की ओर देखा।

महानाम ने शान्त स्वर में कहा— 'तेरा रूप मात्र वैशाली के लिए नहीं, किन्तु समस्त भारत के लिए बेजोड़ है। वैशाली गणतन्त्र तुझे जनपदकल्याणी बनने का आदेश देता है।"

"जनपद कल्याणी ! दूसरे शब्दों में कहें तो नगर-नारी ! क्या यही तात्पर्य है"—आम्रपाली ने पूछा।

महानाम अपनी दोनों हथेलियों से मुंह ढककर बैठा रहा। कुछ नहीं बोला।

कुछ क्षणों तक पिता-पुत्री दोनों मौन रहे। फिर आम्रपाली बोली—"किन्तु मुझे नारी के मंगलमय आदर्श का त्याग क्यों करना चाहिए ? मुझे जो रूप प्राप्त है, वह वैशाली गणतन्त्र की सम्पदा नहीं है। उसका इस पर स्वामित्व नहीं है, यह तो प्रकृति का वरदान है। ईश्वर प्रदत्त वरदान का अपमान करने का गणतन्त्र को क्या अधिकार है ?"

"गणतन्त्र के कल्याण के लिए···।"

"कल्याण के लिए···। कल्याण के लिए ? पिताश्री ! एक निर्दोष कन्या अपने यौवन के देहलीज पर प्रथम चरण रखती है और वह अपने आदर्श के अनुसार जीवन यापन करना चाहे, इसमें गणतन्त्र के प्रासाद की कौन-सी ईंट खिसक पड़ती है ?"

"पुत्री ! अभी तुझे सत्य ज्ञात नहीं है। अपने इस महान् गणतन्त्र की एकता बनाए रखने के लिए अष्टकुल के नायकों ने इस नियम को गढ़ा है। आज समस्त पूर्व भारत में तेरे रूप की प्रशंसा सौम्य गंध के पुष्प की भांति प्रसरित हो चुकी है···वैशाली के अनेक लिच्छवी युवक तुझे पत्नी बनाने की तीव्र लालसा से तरंगित हो रहे हैं। पिछले दो वर्षों से अपने नीलपद्म प्रासाद के इर्द-गिर्द अनेक युवक चक्कर काटते रहे हैं। तू अपना पूरा मन नृत्य-संगीत की साधना में लगा रही है। इसलिए तुझे इस बात की खबर नहीं है। तुझे प्राप्त करने के लिए

लिच्छवी के अनेक युवक छह-सात पक्षों में बंट चुके हैं। इसमें सैकड़ों लिच्छवी युवक सम्मिलित हुए हैं। यदि किसी एक पक्ष के लिच्छवी युवक से तेरा पाणि-ग्रहण होता है तो दूसरे सारे पक्ष विरोध में खड़े हो जाएंगे। ऐसी परिस्थिति बन चुकी है। वैशाली गणतन्त्र की स्वतन्त्रता और सार्वभौम सत्ता को अखण्डित रखने के लिए यह आवश्यक है कि लिच्छवियों की एकता अखण्ड रहे, ऐसा गणनायक सोचते हैं। इसलिए तुझे जनपदकल्याणी के पद से विभूषित करना यही निरापद मार्ग है। ऐसा अपने कर्णधार सेनापति सिंह मानते हैं।"

"कर्णधार ? पिताजी ! मैं तो निरन्तर नृत्य और संगीत की साधना में संलग्न रहती हूं। इसीलिए बाहर की परिस्थितियों से अनजान हूं। फिर भी कुछेक बातें मुझे ज्ञात हैं। मेरे शिक्षा-गुरु मुझे सदाचार, शील और आर्य नारी का कर्त्तव्य-बोध देते रहते हैं। उन्होंने मुझे स्पष्ट बताया है कि आज वैशाली का युवावर्ग विलासिता की आंधी में फंसा पड़ा है। जिस नगरी में एक समय धर्म की उपासना के सैकड़ों धाम थे उसी नगरी में आज रूप की उपासना के हजारों स्थान हैं। वहां हजारों बहनें अपने कृत्रिम हास्य से वैशाली के विनाश के लिए मारण-मंत्र की आराधना कर रही हैं। पिताश्री ! आप तनिक भी चिन्ता न करें। कल आप गणसभा में यह घोषणा करें कि मेरी एकाकी कन्या आम्रपाली आज सोलहवें वर्ष में प्रवेश करेगी। गणसभा के अपने नियम हैं। उन नियमों का एक सन्नारी के अधिकार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।"

"किन्तु पुत्री ! यदि मैं यह बात कहूंगा तो निश्चित ही गणसभा के सदस्य एकत्रित होंगे और तुझे जनपद कल्याणी बनाने का अपना निर्णय देंगे"— महानाम ने कहा।

"गणतन्त्र को जो निर्णय करना है, वह करे। उस निर्णय को मानना या नहीं मानना, यह व्यक्ति की स्वाधीनता का प्रश्न है।"

"नहीं पुत्री ! मैं भी इस गणसभा का एक सदस्य हूं और गणसभा के निर्णय को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य का धर्म होता है।"

"अच्छा, मैं तो गणसभा की सदस्या नहीं हूं। कल मैं सोलहवें वर्ष में प्रवेश करूंगी और···" कहती-कहती आम्रपाली विचार में पड़ गई।

महानाम ने कहा—"क्या कहना चाहती थी पुत्री !"

"मेरी मां मुझे कहती थी कि स्त्री पन्द्रहवें वर्ष को पूरा करने के पश्चात् पूर्ण स्वाधीन हो जाती है।"

"तेरी मां ने कहा वह यथार्थ है। गणसभा का भी यही नियम है।"

"तो फिर आप चिन्ता न करें। चलें, आराम से भोजन करें। मेरे अधिकारों के विषय में सोचने का किसी भी गणतन्त्र को कोई अधिकार नहीं है।" कहती हुई आम्रपाली पिता का हाथ पकड़कर खड़ी हुई।

महानाम अपनी तेजस्वी कन्या के सामने देखता रह गया।

३. महानाम की मनोवेदना

वैशाली का गणतन्त्र आठ कुलों के आठ राज्यों के समूह से निर्मित हुआ था। विदेह, लिच्छवी, क्षात्रिक और वज्जी—ये चार कुल प्रधान थे। इनके राज्य विस्तृत थे। उग्र, भोज, इक्ष्वाकु और कौरव— ये चार कुल छोटे थे। इनके राज्य भी छोटे थे किन्तु अष्टकुल के नाम से इस गणतन्त्र की रचना की गई थी।

वैशाली मूलतः वज्जियों की राजधानी थी। इसलिए इस गणराज्य को लोग वज्जीसंघ के रूप में जानते थे। वैशाली गणतन्त्र अत्यन्त समृद्ध था। लिच्छवी और वज्जी पुरुष बहुत पराक्रमी थे। वे किसी भी संकट का सामना करने के लिए तैयार रहते थे। इसलिए अन्यान्य राज्य इनसे भय खाते थे। वैशाली गणतन्त्र में अनेक शूरवीर सेनानायक थे। उनके चार-छह धनुर्धर ऐसे थे जो अनायास ही अर्जुन की स्मृति करा देते थे। गदायुद्ध में ऐसे कुशल अनेक महाबली योद्धा थे। भल्ल निष्णात, अश्व निष्णात, रथ चालन में निपुण ऐसे सैकड़ों यौद्धा भी थे।

इस गणतन्त्र में ७७७७ प्रतिनिधि थे। इसको गण-सन्निपात और लोकसभा के विशाल मंडप को गणसभा-स्थल या 'संथागार' कहा जाता था। जन प्रतिनिधियों का संचालन करने के लिए एक गणनायक होता था। उसे गणपति भी कहते थे। इसके अतिरिक्त सचेतक, रक्षक, गणक आदि अनेक अधिकारी रहते थे।

वैशाली की समृद्धि का मूल कारण यह था कि उसकी सीमा में दो खानें उपलब्ध थीं। एक थी स्वर्ण की खान और दूसरी थी नीलम की खान। दोनों खानों में अटूट सम्पदा थी और वह सम्पदा वैशाली के भण्डार को भरा-पूरा रखती थी।

वैशाली नगरी कौशल देश की राजधानी श्रावस्ती और मगध की राजधानी राजगृह के मुख्य मार्ग पर अवस्थित थी। इस दृष्टि से वैशाली का राजनीतिक, सामाजिक और व्यापारिक महत्त्व था। साथ ही साथ वैशाली गणराज्य वत्स, मगध, कौशल और काशी जैसे समृद्ध और वैभवशाली राज्यों से घिरा हुआ था।

वैशाली की जनता सुखी थी। वहां के गणनायक में राज्य-विस्तार की भावना नहीं थी। वे अपनी सीमाओं की सुरक्षा के लिए सदा तत्पर रहते थे।

ऐसा था वैशाली गणतन्त्र! इसकी अति समृद्धि ने जनता में भोग-विलास की कामना को तीव्र बना डाला था।

नर्तकियों, नगर-नारियों और गणिकाओं का एक गुलाबी बसन्त बाजार था।

पूर्व भारत के अन्य राज्यों के मस्त युवक वहां आते, मौज-मजा करते और पुष्कल स्वर्ण बिखेर जाते।

व्यापार और उद्योग की प्रचुरता के कारण जनता में आर्थिक विपन्नता नहीं थी। किन्तु संपन्नता के साथ ही वैशाली का युवावर्ग रूप, नृत्य, संगीत और मदिरा का मस्त पुजारी बन गया था।

राजतन्त्र में भौतिक समृद्धि को प्रजाजीवन का मापदण्ड माना जाता है। साथ ही साथ उसमें विलासप्रियता अनिवार्य बन जाती है।

इसीलिए आम्रपाली के रूप पर पांच-पचास नहीं, हजारों नयन चंचल हो रहे थे। आम्रपाली जैसी रूपसी नारी किसी एक लिच्छवी के घर की वधूरानी बने, यह लिच्छवी युवकों के जीवन-मरण का प्रश्न बन गया था। इसलिए गण-नायक आम्रपाली को जनपदकल्याणी के गौरव से मंडित करना चाहते थे!

यदि यह निर्णय नहीं लिया जाता तो लिच्छवी युवकों के शौर्य के बन्धन पर आधारित एकता छिन्न-भिन्न हो जाती। यह भय वहां व्याप्त था।

यदि यह एकता टूट जाती तो वैशाली को चरण तले रौंदने के इच्छुक अनेक महाशक्तियों का मार्ग सुगम हो जाता।

यदि गणतन्त्र की सुरक्षा इष्ट है तो लिच्छवियों की एकता को बनाए रखना अनिवार्य हो गया था।

इसी कारण से आम्रपाली गणतन्त्र के नायकों के लिए शिरशूल बन गई थी।

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा! प्रभात की शुभ वेला! आम्रपाली का आज सोलहवां जन्म दिन था। वह साज-सज्जा करने के लिए स्नानगृह में गई।

पुत्री द्वारा आश्वस्त किए जाने पर भी महानाम रात भर नहीं सो सका। उसको एक भय सता रहा था। यदि आम्रपाली गणतन्त्र के निर्णय के प्रतिकूल कोई आवाज उठाएगी तो एक नयी परिस्थिति खड़ी हो जाएगी। आम्रपाली बाल्यकाल से ही स्वतन्त्र मिजाज वाली रही है। यह राजशाही लाड़-प्यार में पली-पुसी है और नृत्य-संगीत में निष्णात बनी है।

महानाम उसे यह भी नहीं कह सकता था कि तू गणतन्त्र के निर्णय को स्वीकार कर लेना। इसका कारण यह था कि ऐसा कहने का सीधा अर्थ होता पिता स्वयं अपनी पुत्री को नगर-नारी बनने का आदेश दे रहा है।

इस प्रकार महानाम दोनों ओर से मनोव्यथा का अनुभव कर रहा था।

सूर्योदय से पूर्व ही आम्रपाली स्नान आदि से निवृत्त होकर वस्त्रालंकारों को धारण कर पिताश्री के खंड में आई और विचारमग्न पिताश्री के चरणों में प्रणाम किया।

महानाम ने पुत्री के मस्तक पर हाथ रखा और आशीर्वाद देते हुए बोला—

"तेरी सभी मनोकामनाएं पूरी हों। तू शतायु बनकर कुल का गौरव बढ़ाती रह।"

आम्रपाली ने पिताजी के चरणों को दोनों हाथों से पकड़कर कहा—"बापू ! आज मैं आपके चरणों को पकड़कर यह प्रतिज्ञा करती हूं कि गणतन्त्र जो कुछ भी निर्णय करे, पर मैं···"

आम्रपाली अपना वाक्य पूरा नहीं कर सकी। महानाम ने तत्काल उसके दोनों हाथों को पकड़ते हुए कहा—"पुत्री ! प्रतिज्ञा करने में यह उतावलापन क्यों ? गणतन्त्र माता-पिता तुल्य होता है। गणतन्त्र से ही वैशाली की उज्ज्वलता है। तेरी बात सुनने के पश्चात् सम्भव है गणतन्त्र निर्णय न करे अथवा कोई दूसरा निर्णय दे।"

"पिताश्री ! गणतन्त्र के प्रति आपकी भक्ति का यदि यही पुरस्कार मिलता है तो मुझे प्रतिज्ञाबद्ध होने से क्यों रोकते हैं ? लिच्छवियों का गणतन्त्र यदि इस प्रकार एक नारी की वेदना और व्यथा पर अकड़ रहा है तो वह कब तक टिक पाएगा ?'

"पाली, मैं जानता हूं तेरे हृदय को। किन्तु मुझे एक बार सिंह सेनापति के पास जाने दे।"

आम्रपाली मौन हो गई।

आम्रपाली सवा लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान देने के लिए दानशाला में गई।

महानाम स्नान आदि से निवृत्त होकर दिन के प्रथम प्रहर में सिंह सेनापति से मिलने रवाना हुआ।

वह सिंह सेनापति से मिला और आत्यन्तिक स्नेह से अभिषिक्त पुत्री आम्रपाली के विषय में जो कुछ कहना था, वह एक ही सांस में कह गया। सिंह सेनापति ने धैर्य के साथ सुना और कहा—"महानाम ! मैं गणनायक हूं, पर गणतन्त्र में गणनायक से भी गणसभा अधिक शक्ति-सम्पन्न होती है। मैं तुम्हारे विचार सभा के समक्ष रखकर जो कुछ सुघटित होगा वैसा ही करने का प्रयत्न करूंगा।"

दूसरे दिन। गणसभा का आयोजन।

कुतूहल और विस्मय से भरे सदस्य एक-एक कर आने लगे। सभा मंडप सदस्यों से भर गया। सौ नहीं, आठ हजार सदस्य थे। सभी अपने-अपने निर्धारित स्थान पर बैठ गए। गणनायक के आने पर सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

महानाम भी उसी सभा का सदस्य था। उसने अपनी मनोव्यथा प्रस्तुत की। सभी ने गौर से मनोव्यथा सुनी। कुछेक सदस्यों के मन में महानाम की पुत्री आम्रपाली के प्रति सहानुभूति के भाव जागे और कुछेक सदस्य उसको नगर-नारी बनाने में आग्रही बने रहे।

कुछ समय तक पक्ष और विपक्ष में प्रश्नोत्तर चलते रहे। आम्रपाली भी सभा के समक्ष उपस्थित हुई। उसकी वाणी से भी अनेक सदस्य प्रभावित हुए पर गणसभा की परम्परा को अक्षुण्ण रखने की बात पर सबने बल दिया।

उस दिन की सभा विसर्जित हो गई।

चार दिन तक फिर सभा एकत्रित होती रही।

अन्त में···।

आम्रपाली ने पांचवें दिन सभा में उपस्थित होकर कहा—"सदस्यगण ! मैं गणतन्त्र का सम्मान करती हूं और उसे अपने पिता तुल्य समझती हूं। उसके निर्णय को मैं अमान्य कर उसकी अवहेलना करना नहीं चाहती। मैं जनपद-कल्याणी के पद को स्वीकार करती हूं। परन्तु मेरी तीन शर्तें हैं—

१. जिस दिन मुझे जनपदकल्याणी का पद गौरव प्राप्त हो उस दिन मेरा अभिषेक पवित्र पुष्करणी में हो।
२. जो यहां का सप्तभौम प्रासाद है, वह मेरे निवास के लिए मुझे मिले।
३. जनपदकल्याणी के भवन में कोई भी अतिथि आकर रहे, उसकी तलाशी न ली जाए। उसकी गुप्तचरी न की जाए। उस पर किसी प्रकार का स्वतन्त्र अधिकार न किया जाए।

इन शर्तों को सुनते ही सभासद स्तब्ध रह गए। मानो उन पर बिजली कड़क कर गिरी हो, ऐसा लगने लगा।

क्योंकि···।

एक सदस्य ने कहा—"आम्रपाली ने जो शर्तें प्रस्तुत की हैं वे अपनी परंपरा का अपमान करने वाली हैं। मंगल पुष्करणी एक असाधारण और पवित्र वस्तु है। इसमें केवल गणसभा के मान्य प्रतिनिधि का ही अभिषेक हो सकता है और आज तक अपनी परंपरा का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आज तक किसी भी कन्या या स्त्री का उसमें अभिषेक नहीं किया गया। इसलिए आम्रपाली की पहली शर्त मानने योग्य नहीं है।"

"दूसरी शर्त भी बहुत विचित्र है। सप्तभौम प्रासाद गणतन्त्र की निजी सम्पत्ति है। महाराज चेटक ने इसका निर्माण करवाया था। यह किसी को उपयोग के लिए नहीं दिया जा सकता।"

आम्रपाली ने सभा के समक्ष कहा—"अभिषेक के विषय में सभासद ने जो शंका व्यक्त की है, वह अस्थानीय है। जनपदकल्याणी का गौरव गणतन्त्र का गौरव है। अभिषेक से पुष्करणी का जलविषाक्त नहीं बनेगा। अभिषेक का अधिकार केवल पुरुषों को ही क्यों ? गणतन्त्र में स्त्री भी समान अधिकार रखती है। मेरी यह शर्त सीधी सादी है और इसमें व्यक्तिगत रूप से आम्रपाली का नहीं नगर-नारी का बड़प्पन है।"

"दूसरी शर्त के विषय में मुझे इतना ही कहना है कि आप जानते हैं कि जनपदकल्याणी का गौरव असामान्य नहीं है। क्योंकि इस पद पर आने वाली कन्या सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी होती है। वैशाली की महान् गणसभा जिस कन्या को वैशाली की अपूर्व शोभा बनाना चाहती है वह गणसभा क्या इतना नहीं सोच सकती कि शोभा और सुगन्ध उचित स्थान पर ही शोभित होते हैं। दूसरी दृष्टि यह है कि वैशाली में पहली बार जनपदकल्याणी की प्रतिष्ठा का प्रश्न आया है। यह बात जब भारत में प्रसृत होगी तब राष्ट्र के अनेक कलाकार, राजा, महाराजा, संगीतज्ञ आदि महान् हस्तियां वैशाली की शोभा को देखने के लिए यहां आएंगी। क्या वे व्यक्ति वैशाली की शोभा को वसंत बाजार में देखना चाहेंगे ?

"मैं स्पष्ट कहना चाहती हूं कि वैशाली की महानता ये निर्जीव प्रासाद नहीं, जीवित जनपदकल्याणी है। सप्तभौम प्रासाद के निर्माण में अठारह करोड़ सोनेयों का व्यय हुआ है या अठारह अब्ज का···। आज उसकी सुन्दर और सुशोभित दीवारों में कोई स्पन्दन नहीं है, कोई हास्य नहीं है, कोई गुलाबीपन नहीं है। वह आज निर्जीव शव की तरह शोभाहीन पड़ा है। मैं इस प्रासाद में गुलाबी और मनमोहक वायु मंडल का निर्माण करना चाहती हूं। इस प्रासाद में आकर लोग अपनी वेदना को भूल जाएं, लोगों को जीवन की मधुर प्रेरणा मिले, शून्य हृदय संगीत से झंकृत हो उठे, यह मेरी भावना है। वैशाली की जनपदकल्याणी को केवल रसवृत्ति पैदा करने वाली पुत्तलिका रखना हो तो फिर जनपदकल्याणी की प्रतिष्ठा करने की जरूरत ही क्या है ? रूप क्रीड़ा की वस्तु नहीं है, पूजा की वस्तु है और जो प्रजा रूप को क्रीड़ा योग्य वस्तु मात्र मानती है, वह रूप की जाज्वल्यमान लौ में जलकर भस्मसात् हो जाती है। यदि आप यह मानते हैं कि जनपदकल्याणी वैशाली की, पूर्व भारत की और इस गणतन्त्र की अपूर्व शोभा है, गौरव है तो फिर उसके उपभोग में आने वाली सारी सामग्री श्रेष्ठ और गौरवप्रद क्यों नहीं होनी चाहिए ?"

सभासदों ने जयनाद कर जनपदकल्याणी की बात का समर्थन किया। दोनों शर्तें मान्य हो गईं।

गणनायक सिंह सेनापति ने आम्रपाली से कहा—"अब तीसरी शर्त को भी हम स्वीकार करते हैं। परन्तु कुछ संशोधन के साथ।"

समग्र गणसभा ने आम्रपाली का जयनाद किया।

सिंह सेनापति ने आम्रपाली की अनुमति लेकर यह घोषणा की—"वैशाख शुक्ला तीज के दिन प्रथम प्रहर में देवी आम्रपाली पवित्र पुष्करणी में अभिषेक करेगी और फिर उसकी शोभायात्रा सप्तभौम प्रासाद में जाएगी। उस दिन

वैशाली नगरी का प्रत्येक बाजार सुसज्जित और शृंगारित होगा। उस दिन वैशाली की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी जनपदकल्याणी के पद पर प्रतिष्ठित होगी।"

सारी सभा ने जनपद कल्याणी का जयनाद किया।

सभा सम्पन्न हुई।

४. प्रसेनजित की चिन्ता

चैत्र मास के अन्तिम पन्द्रह दिनों से गर्मी का प्रकोप इतना असह्य हो गया था कि राजगृह की जनता त्रस्त हो गई थी।

कल वैशाख का प्रथम सूर्योदय होगा। परन्तु लोगों को यही प्रतीत हो रहा था कि वैशाख मास अत्यन्त ताप और उष्णता से भरापूरा बीतेगा।

राजगृह नगर में अनेक श्रीमंत निवास करते थे। प्रत्येक के भवन के सामने उपवन थे। वातानुकूलित गृह थे। परन्तु प्रकृति की उष्मा को रोकने में वे सब असमर्थ थे।

नगर का निर्माण विशिष्ट शिल्पियों ने किया था। वहां सारी अनुकूलताएं थीं। भयंकर दुष्काल में भी जनता को पानी की कमी न रहे, इसलिए नगर के चारों ओर जलकुंड बनाए गए थे। बारहमासी नदियां भी कभी सूख जाती हैं, पर ये जलकुंड पानी से कभी रिक्त नहीं होते थे।

नगरी रंगभरी बन चुकी थी। प्रवासी लोग राजगृह को देखकर कहते—"यह नगरी वैशाली की विस्मृति कराने वाली है।"

किन्तु आज···।

मगध की यह समृद्ध नगरी भी चैत्र की अमावस्या की मध्यरात्रि में भी अंगारे बरसा रही थी।

नगरी की कलाकुशल नर्तकियां भी अपना नृत्य बंद कर अपने भवन के वातानुकूलित गृह में विश्राम कर रही थीं।

किन्तु वैभारगिरि के उत्तर में राजधानी से लगभग तीन कोश की दूरी पर एक आश्रम था। वहां ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उष्मा नाम की कोई चिन्ता वहां व्याप्त नहीं थी।

आश्रम के चारों ओर बड़े-बड़े वृक्ष थे। हवा मंद थी। अंधकार गहरा गया था। वृक्ष पर पक्षी भी उष्मा के स्थान पर शीतल समीर की आशा लिये बैठे थे।

किन्तु आश्रम में रहने वाले पुरुष मानो प्रकृति को विस्मृत कर चुके हों, ऐसा लग रहा था।

मध्यरात्रि में अंधकार को चीरता हुआ एक रथ आश्रम में प्रविष्ट हुआ।

आश्रम के प्रांगण में एक तख्त पर एक सेवक सो रहा था। रथ की चरमर आवाज सुनकर वह उठा और सामने खड़े रथ की ओर देखा। देखकर वह

चौंका। सघन अंधकार के बीच भी वह मगधेश्वर के तेजस्वी अश्वों वाले स्वर्ण-रथ को पहचान चुका था।

और···।

यह रथ आया। एक घटिका के बीतते-बीतते सारे आश्रम में हलचल पैदा हो गई।

आश्रम की दक्षिण दिशा में अनेक कुटीर थे। वहां एक छोटा-सा उपवन था। उस उपवन के मध्य में एक भव्य मंदिर जैसा कुछ था। उस मंदिर के निकट एक मशाल जल रही थी। उस मंदिर में प्रवेश करने के पश्चात् मनुष्य अदृश्य-सा हो जाता था। क्योंकि वहां एक गुप्त द्वार था। और वह किसी को दिखता नहीं था। उस द्वार से भूगृह में जाया जा सकता था। और उस भूगृह में आचार्य अग्निपुत्र की महान् प्रयोगशाला थी।

आचार्य अग्निपुत्र मात्र बयालीस वर्ष के थे। परन्तु उनका शरीर सूखकर लकड़ी जैसा हो गया था। देखने वाले को लगता कि यह कोई श्वेत चर्म मंडित अस्थिपंजर मात्र है। आचार्य अग्निपुत्र मगध के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्य गोरक्षनाथ की शिष्य परंपरा के एक तेजस्वी वैज्ञानिक थे। इन्होंने पारद और अन्य विष-उपनिषदों के विषय में अनेक नये-नये अनुसंधान किए थे। ये सारे अनुसंधान जनता के स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए थे।

मगध के कुछ अन्यान्य वैज्ञानिक भी पारद की अपार शक्ति का अनुसंधान कर रहे थे और ये सभी वैज्ञानिक आचार्य अग्निपुत्र को रसेश्वराचार्य की उपाधि से उपमित करते थे। इतना ही नहीं, पूर्व भारत के वैज्ञानिकों में आचार्य अग्निपुत्र महान् माने जाते थे। इनके अनुसंधान रोग-निवारण और आरोग्य-वर्धन के लिए प्रसिद्ध थे। अग्निपुत्र तन्त्र-मन्त्र के विज्ञान में भी सिद्ध-हस्त थे।

अभी-अभी इन्होंने एक अमर दीपक का आविष्कार किया था, जो बिना बाती और तेल के प्रकाश फैलाता था। किन्तु अभी इस दीपक की चर्चा लोगों के कानों तक नहीं पहुंच पायी थी। आचार्य अभी इस दीपक की अनेक खामियों को निकालने में लगे थे।

भूगृह में स्थित प्रयोगशाला में अनेक प्रकार के छोटे-बड़े खण्ड थे। उसमें एक खण्ड आचार्य अग्निपुत्र के लिए विश्राम-स्थल था। उस खण्ड में अमुक-अमुक व्यक्तियों के अतिरिक्त सबका प्रवेश निषिद्ध था। देश-देशान्तर से आने वाले अतिथियों से अग्निपुत्र बाहर के खण्ड में ही मिलते-जुलते थे।

किन्तु आज मगधेश्वर प्रसेनजित स्वयं आए थे। और आचार्य अग्निपुत्र के पट्टधर आचार्य शिवकेशी ने उन्हें आदर-सत्कार सहित भूगृह के चिन्तन खण्ड में बिठाया था।

आचार्य अग्निपुत्र द्वारा आविष्कृत अमरदीपक चिन्तन-गृह के एक कोने में रखा हुआ था।

चिन्तन-गृह में प्रवेश करते ही उस खण्ड में व्याप्त बादली रंग की छाया वाले प्रकाश से महाराज चौंके और उनकी दृष्टि उस अमरदीपक पर जा पड़ी। दीपक का प्रकाश इतना तीव्र और मधुर था कि देखने वाले की आंखें घड़ी भर में ही चमकने लगती थीं।

एक आसन पर बैठकर मगधेश्वर ने आचार्य शिवकेशी से कहा—"क्या आचार्य देव को मेरे आने का पता लग गया?"

"हां, महाराज! वे अभी एक प्रयोग कर रहे हैं। उसे संपन्न कर यहां आएंगे"। शिवकेशी ने कहा।

प्रसेनजित इस आश्रम में पहले भी अनेक बार आ चुके थे। किन्तु उन्होंने कभी ऐसा दीपक नहीं देखा था। आचार्य की प्रतीक्षा में एक घटिका बीत गई। इस विचित्र दीपक को जानने के लिए उनके मन में अनेक प्रश्न उभरे। पर वे मौन ही बैठे रहे।

और तब अस्थिकंकाल के समान क्षीणकाय परंतु अत्यन्त तेजस्वी आंखों वाले आचार्य अग्निपुत्र चिन्तन-गृह में प्रविष्ट हुए। मगधेश्वर ने आसन से उठकर प्रणाम किया। अग्निपुत्र ने आशीर्वाद दिया और एक ओर आसन ग्रहण कर लिया। मृदु हास्य बिखेरते हुए आचार्य ने पूछा—"महाराज! आपके आकस्मिक आगमन से मन में आश्चर्य उभर रहा है।"

"आचार्य! आप जानते ही हैं कि मेरा चित्त जब अशान्त होता है तब आपके पास चला आता हूं। जब कभी समस्या आती है, तब आपका मार्गदर्शन ही मेरा मार्ग बनता है"। महाराज ने गंभीर स्वर में कहा।

आचार्य ने हंसते हुए पूछा—"देवी त्रैलोक्यसुंदरी तो स्वस्थ है न?"

"आप द्वारा निर्दिष्ट औषध-प्रयोग के पश्चात् यह चिन्ता मिट गई है। किन्तु मेरी अनिद्रा का कारण वही है"। प्रसेनजित ने कहा।

"महाराज! बुढ़ापे में नवयौवना पत्नी लाना, घर में बाल-विधवा का होना, पुत्र का विपथगामी होना और ऋणी बनना—ये सब अनिद्रा के कारण हैं। देवी त्रैलोक्यसुंदरी ने क्या कोई हठ किया है?"

"किन्तु हठ से भी एक भयंकर बात हुई है। आपको याद होगा। लगभग सात वर्ष पूर्व मैं अपने दस पुत्रों को साथ लेकर आया था। और उन दस पुत्रों में से गौरवर्ण वाले पुत्र श्रेणिक के मस्तक पर हाथ रखकर आपने कहा था कि यह भविष्य में मगध का अधिपति होगा।"

"हां, मुझे याद है। मेरा भविष्य-कथन कभी मिथ्या नहीं होगा। क्या राजकुमार को कुछ हुआ है?"

"हुआ नहीं, किन्तु होने की परिस्थिति पैदा हो गई है। एक वर्ष पूर्व आपने मुझे उपाय बताया था। उसके अनुसार मैंने अपने पुत्रों की परीक्षा ली। और श्रेणिक सभी में प्रभावी सिद्ध हुआ।"

"याद आया···आपने तो मुझे उस राजकुमार का नाम बिम्बिसार या कुछ ऐसा ही बताया था।"

"हां, आचार्य! श्रेणिक का ही अपर नाम है बिंबिसार। अन्तिम परीक्षा में उसने धन, रत्न, मुकुट, अलंकार, अश्व, हाथी आदि लेने से इनकार करते हुए केवल महाबिम्ब नाम की वीणा लेना ही पसन्द किया था। यह देखकर कुलगुरु ने उसका नाम बिंबिसार रखा था। अब वह इसी नाम से प्रसिद्ध है।"

"युवराज ने क्या पसन्द किया था?"

"नवयौवना नर्तकी।"

"ओह!" कहकर आचार्य अग्निपुत्र आंखें बंदकर विचारमग्न हो गये।

पूरे खण्ड में परम शान्ति व्याप्त थी। केवल अमरदीपक का तेजोमय प्रकाश मध्याह्न की भ्रान्ति करा रहा था।

कुछ समय तक विचारमग्न रहने के बाद आचार्य ने कहा—"महाराज! आप देवी त्रैलोक्यसुंदरी के विषय में कुछ कह रहे थे?"

"हां, मैं अब इसी बात पर आता हूं। आपको ज्ञात ही है। पचास वर्ष की ढलती अवस्था में मैंने पर्वतमालाओं में घूमती हुई इस क्षत्रिय कन्या पर मुग्ध होकर विवाह कर लिया था। और इस विवाह के समय मैंने उसके पिता को वचन दिया था कि त्रैलोक्यसुंदरी से उत्पन्न पुत्र मगध का अधिपति होगा। दो वर्ष पश्चात् इसने एक पुत्र को जन्म दिया। देवी के मन में प्रबल आशा जाग उठी। मैं उसे आश्वासन देता रहा, किन्तु अब परिस्थिति बहुत ही विचित्र हो गई है। मेरे दो ज्येष्ठ पुत्र मृत्यु की गोद में समा गए। अब युवेन्द्र युवराज है। और फिर श्रेणिक युवराज बन सकेगा।"

"त्रैलोक्यसुंदरी के पुत्र की बारी कब आएगी?"

"उससे तो दस भाई बड़े हैं।"

"ओह! संभव है कि सभी दस बड़े भाइयों को अकारण मृत्यु का भोग होना पड़े। त्रैलोक्यसुंदरी बुद्धिमान और निपुण हैं। वह अपने पुत्र के मार्ग को निष्कंटक रखना चाहती हैं, क्योंकि वह समझ चुकी हैं कि आप अपने वचन का पालन नहीं कर सकेंगे। यह बड़ी विचित्र परिस्थिति है। आपकी क्या इच्छा है?"

"मेरे सभी पुत्रों में बिम्बिसार तेजस्वी और योग्य है। वह किसी भी उपाय से सुरक्षित रहना चाहिए।"

"और देवी की गुप्त चाल भी नष्ट हो जानी चाहिए?"

"हां, गुरुदेव ! इसलिए मैं यहां आया हूं। आप किसी भी उपाय से मगध की सुरक्षा करें। महारानी त्रैलोक्यसुंदरी का पुत्र स्वभाव से अत्यन्त क्रूर है। वह भी अभी सोलह वर्ष का ही हुआ है, परन्तु वह सुरा और सुन्दरी के स्वप्न ही देखता रहता है। ऐसे नालायक के हाथों में मगध की जनता का भविष्य कैसे सौंपा जा सकता है ?"

आचार्य अग्निपुत्र मर्म भरे हास्य से बोले—"महाराज ! किसी को भी वचन देते समय पूरा विचार करना आवश्यक होता है। आप उत्तम हैं, वीर हैं। किन्तु कमनीय कान्ताओं के साथ व्यवहार करने में आप अपने गौरव को विस्मृत करते रहे हैं।"

'आपकी बात सही है। मेरे जीवन का यह बड़ा दोष है। इसी दोष के कारण मगध साम्राज्य का स्वप्न भी सिद्ध नहीं हुआ। वैशाली गणतंत्र को पैरों तले रौंदने और उसको धूल चटाने की शक्ति होते हुए भी, मैं कुछ नहीं कर सका। अब तो जीवन का उत्तरार्द्ध प्रारंभ हो गया है। मगध की जनता को सर्वश्रेष्ठ संचालक मिले, यही मेरी कामना है। मेरी इस कामना को केवल श्रेणिक ही सफल कर सकता है और उसके जीवन को किसी भी प्रकार की आंच न आये, इसी उपाय की खोज में मैं आपके पास आया हूं।"

"क्या बिंबिसार को वीणा अतिप्रिय है ?"

"हां, किन्तु वह बुद्धि, चातुर्य, शौर्य, प्रभाव, ज्ञान आदि में भी अजोड़ है। मेरे अन्य पुत्रों को सुरा और सुंदरी का नाज है। इसको केवल वीणा में ही आनंद आता है। इसके अतिरिक्त इसमें कोई व्यसन नहीं है।"

"महाराज ! मैंने जो भविष्यवाणी की है वह सही उतरेगी। सांप मरे और लाठी भी न टूटे, इस दृष्टि से आज मैं एक सुन्दर उपाय बताता हूं"। आचार्य ने कहा।

"आप हमेशा मेरे पर उपकार करते रहे हैं।"

"नहीं, महाराज ! आपकी छत्रछाया में मैं रहता हूं। मेरे प्रयोगों में आपने प्रचुर धनराशि दी है। उपकारी तो आप हैं। मैं तो केवल आपके कल्याण के लिए कार्य करता हूं"। आचार्य अग्निपुत्र ने भाव भरे स्वरों में कहा।

महाराज प्रसेनजित आचार्य की भावभरी आंखों को देखते रहे। आचार्य ने अपने शिष्य की ओर संकेत किया। शिवकेशी बाहर चला गया। फिर आचार्य बोले—"महाराज ! बिंबिसार के हित के लिए आपको कुछ कष्ट सहना होगा !"

"सह लूंगा।"

"तो आपकी इच्छा अवश्य ही पूरी होगी। आपको मात्र एक काम करना

है। बिंबिसार को किसी भी बहाने देश से निर्वासित कर दें। इस कार्य में किसी भी प्रकार की कृत्रिमता न दिखे।"

"क्या मतलब ?"

"रानी त्रैलोक्यसुंदरी को यह स्पष्ट प्रतीत होने लगे कि आपने यह कार्य अपने वचन को निभाने के लिए किया है और श्रेणिक को भी यह आभास नहीं होना चाहिए कि आपने कृत्रिम रोष किया है। सबको यह कदम यथार्थ लगना चाहिए।"

प्रसेनजित स्थिरदृष्टि से आचार्य की ओर देखते रहे। आचार्य ने योजना के परिणाम की भी जानकारी दी और प्रसेनजित की सारी चिन्ता एक भव्य आशा में परिणत हो गई।

५. त्रैलोक्यसुन्दरी

आचार्य अग्निपुत्र से मिलकर जब मगधेश्वर प्रसेनजित विशाल राजभवन में आए तब वाद्य-मंडली विविध वाद्यों से प्रभात का अभिनंदन कर रही थी।

महाराज प्रसेनजित जब राजभवन से रात्रि में बाहर निकले थे, तब यह ध्यान रखा गया था कि उनके गमन का किसी को भी भान न हो। किन्तु अर्ध घटिका के बीतने पर रानी त्रैलोक्यसुन्दरी ने जान लिया कि महाराज कहीं बाहर गए हैं। इस रात्रि वेला में वे कहां गए—यह प्रश्न रानी के मन में घूम रहा था। वह यह जानती थी कि अन्यान्य रानियों को बताएं या नहीं, मगधेश्वर अन्यत्र जाते समय उसे बताकर ही जाते हैं।

जैसे राज्य बड़ा होता है, अन्तःपुर विशाल, वैभव-प्रचुर और परिवार बड़ा होता है, वैसे ही प्रश्न भी अनन्त बन जाते हैं। रानी त्रैलोक्यसुन्दरी प्रौढ़ अवस्था में थी, किन्तु उसका शरीर सुगठित, आकर्षक और स्वस्थ ही नहीं था, पर वह चिरयौवना के समान तेजस्वी और सुन्दर भी थी। उसका मूल नाम 'तिलका' था। वह एक गरीब क्षत्रिय की पुत्री थी। उसे राजरानी का गौरव और सुख मिलेगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। किन्तु एक बार महाराज प्रसेनजित शिकार के लिए गए और जंगल में भटक गए। वहां तिलका का संयोग मिला। वह राजा के नयनों में और हृदय में बस गई। राजा ने तत्काल उसके साथ विवाह कर लिया। और उससे उत्पन्न पुत्र को राजगद्दी मिलेगी, ऐसा वचन देकर उसे राजभवन में ले आए। वहां उसका नाम त्रैलोक्यसुन्दरी रखा।

प्रसेनजित के और भी अनेक रानियां थीं। किन्तु उसका कामातुर मन केवल त्रैलोक्यसुन्दरी से ही संतुष्ट होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि राजभवन में त्रैलोक्यसुन्दरी का वर्चस्व बढ़ गया। उसके वचन को झेलने के लिए महाराज ही नहीं, मंत्री, दास-दासी तथा अन्य रानियां भी तत्पर रहती थीं।

राजा जब भवन में आया तब रानी त्रैलोक्यसुन्दरी प्रतीक्षा करते-करते थककर नीद्रालीन हो गयी थीं।

दास-दासी जाग गए थे। प्रहरी महाराज को देखते ही झुक-झुक कर प्रणाम करने लगे।

प्रसेनजित त्रैलोक्यसुन्दरी के आवास की ओर मुड़ा और सोपानपंक्ति चढ़ने लगा।

वहां महारानी की एक परिचारिका खड़ी थी। महाराज ने पूछा—"महादेवी जागती है ?"

"नहीं, महाराज ! आपके आकस्मिक गमन पर महादेवी अत्यन्त चिन्तातुर हो गयी थीं। अभी-अभी वे निद्राधीन हुई हैं।

प्रसेनजित बिना कुछ कहे आगे बढ़ा और त्रैलोक्यसुन्दरी के शयन-कक्ष में प्रवेश कर कपाट बन्द कर दिए।

दक्षिण दिशा के वातायन के निकट एक विशाल पर्यंक था। उस पर शुभ्र शय्या बिछी हुई थी। वह पर्यंक रत्नजटित और स्वर्ण-मंडित था।

उस शयनकक्ष में एक दीपक मंद-मंद जल रहा था। उस शुभ्र शैय्या पर त्रैलोक्यसुन्दरी सो रही थी, मानो कि मोगरे के फूलों का कोई ढेर हो।

प्रसेनजित धीरे-धीरे पर्यंक के पास गया। वर्षों से महाराज अपनी पिपासा इस सुन्दरी से छिपाते रहे हैं, फिर भी इसकी शरीर संगठना को देखकर वे सब कुछ भूल जाते थे। पिपासा जागृत होती और मन पुकार उठता—यह अतृप्ति ऐसी ही बनी रहे···कभी मिटे नहीं। प्रतीक्षा का आनंद तृप्ति में नहीं होता।

प्रसेनजित पर्यंक के पास जाकर मुग्ध नेत्रों से निद्रित रानी को देखता रहा। फिर उसने अतिसौम्यभाव से रानी के कपोल पर अपना हाथ रखा और धीमे से थपथपाया।

रानी चौंककर उठी और उसके मुंदे नेत्र खुल गए। स्वामी को देखते ही रानी पर्यंक से नीचे उतरी और स्वामी के चरणों में लुढक गयी।

प्रसेनजित ने उसको उठाते हुए कहा—"प्रतिदिन तेरा सौन्दर्य बढ़ता जा रहा है।"

"यह स्वामी की कृपादृष्टि का ही फल है", ऐसा कहकर वह अपना कंचुकी बंध ठीक करने लगी।

त्रैलोक्यसुन्दरी ने भगधेश्वर से कहा—"आप बिना सूचना दिए कल आकस्मिक ढंग से कहां गये थे ?"

"एक प्रश्न समाहित नहीं हो रहा था। नींद उड़ गयी थी। इसलिए प्रश्न का समाधान पाने आचार्य अग्निपुत्र के पास चला गया।"

"क्या औषधि पूरी हो गयी है ?"

"नहीं, औषधि तो छह माह तक चल सकती है। प्रश्न कोई दूसरा ही था।"

"क्या आप मुझसे प्रश्न छुपा रहे हैं"। रानी ने मधुर स्वरों में कहा।

जो पुरुष वज्र के आघात से भी आहत नहीं होते, वे पुरुष नारी की एक ही मधुर मुस्कान, एक मधुर प्रश्न और आंख की चंचलता से कांप उठते हैं।

त्रैलोक्यसुन्दरी एक आसन पर बैठ गयी। महाराज भी वहीं बैठ गये। महाराज बोले—"प्रिये ! याद है न कि मैंने तुझे एक वचन दिया था ?"

"हां,···किन्तु इसमें चिन्ता जैसा क्या है ?"

"देवी ! बाहर की बातें अन्तःपुर में प्रवेश नहीं पातीं। युवराज की मृत्यु के बारे में लोग क्या कहते हैं, तू नहीं जानती।"

रानी चौंकी, वह मौन रही।

राजा ने कहा—"लोग कहते हैं कि राज्य की खटपट के कारण ही राजा ने विष देकर युवराज को मारा है।"

"स्वामी ! लोग सदा अपनी बुद्धि से पंगु होते हैं"। रानी ने तत्काल कहा।

प्रसेनजित ने रानी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"प्रिये ! तेरी बात ठीक है। पर हमें लोकापवाद से दूर रहना चाहिए। यही निरापद है। यही ज्ञानीजन सीख देते हैं।"

"यह तो पुरानी बात है।"

"इसीलिए समाधान ढूंढ़ने मुझे जाना पड़ा। अपने प्रिय कुमार को मगधाधिपति बनाने में सभी भाई सहमत हैं। केवल एक भाई सहमत नहीं है।"

रानी चौंकी। उसने पूछा—"कौन ?"

"बिंबिसार···।"

"श्रेणिक ! यह तो बहुत ही विनीत, शान्त और सभी झंझटों से दूर रहने वाला है", रानी ने कहा।

"हां, सागर शान्त होता है। किन्तु पृथ्वी को जलमग्न करने में उसको समय नहीं लगता।"

"हां···आचार्य ने क्या समाधान दिया ?"

"आचार्य ने बहुत ही सुन्दर समाधान दिया है। वास्तव में वे मेरे परम हितैषी हैं। सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे···।"

"कैसे ?"

"बिंबिसार को किसी भी बहाने देश से निर्वासित कर देना चाहिए"। राजा ने विश्वास भरे स्वर में कहा।

रानी अत्यन्त ही हर्षित होकर राजा की गोद में सिर रखकर बोली—"महाराज ! बहुत ही उत्तम मार्ग है। लोग भी हम पर कोई दोषारोपण नहीं

करेंगे और हमारे कुमार के लिए भी मार्ग साफ हो जाएगा। आपके वचन का भी पालन हो जाएगा···।"

"और फिर मेरी प्रियतमा सदा ऐसी ही प्रसन्न रहेगी।"—महाराज ने कहा।

रानी ने दोनों हाथ फूलों की माला की भांति राजा के गले में डाल दिये।

जो पुरुष यौवन अवस्था को पूर्ण रूप से पचा नहीं पाते, अथवा शरीर-सुख को ही आत्यन्तिक सुख मान लेते हैं वे पुरुष उत्तरावस्था में और अधिक पागल और उन्मत्त हो जाते हैं। क्योंकि यौवन का अस्तकाल उनको चुभता रहता है। और वे पुरुष यौवन की मादकता को सुरक्षित रखने के लिए उत्तेजक और वाजिकरण औषधियों का आश्रय लेते हैं। जिस अवस्था में त्याग और संयम जीवन का अमृत होना चाहिए उस अवस्था में भोग की अग्नि और अधिक भभक उठती है।

राजा प्रसेनजित बलवान्, तेजस्वी और उदारचरित थे। उनके अन्तःपुर में शताधिक रानियां थीं और यौवनमद से मदमाती अनेक दासियां भी थीं। परन्तु···।

यथार्थ में यौवन अन्धा होता है। जो इस अंधेपन को नहीं समझता उसकी उत्तरावस्था अन्धकारमय बन जाती है।

उदित होते हुए सूर्य की बाल किरणें पूर्वी वातायन से प्रवेश कर रही थीं। और द्वार खटखटाने की ध्वनि सुनाई पड़ी।

रानी ने पूछा—"कौन है ?"

"महादेवी ! महाराज कुमार आपसे मिलने आए हैं। वे आपके विश्राम गृह में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"ठीक है···, तू जा। मैं और महाराज अभी वहां आ रहे हैं", रानी ने मुख्य परिचारिका से कहा।

फिर रानी ने महाराज की ओर देखकर कहा—"भावी मगधेश्वर को आशीर्वाद देने पधारें···आज वैशाख का प्रथम दिन है।"

"चलो", कहकर प्रसेनजित खड़े हुए।

त्रैलोक्यसुन्दरी ने अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रों को ठीक किया और फिर दोनों खंड से बाहर आए और रानी के विश्राम-गृह में गये।

रानी का एक ही पुत्र, अत्यन्त लाड़-प्यार में पला-पुसा पुत्र एक आसन पर बैठा था। वह कुछ दुर्बल-सा था। उसकी आंखें लाल थीं। देखने वाले को ऐसा प्रतीत होता था कि इस युवक राजकुमार ने सारी रात जागते बिताई है।

माता-पिता को खंड में प्रविष्ट होते देख, कुमार उठा और दोनों के चरणों में झुक गया। माता ने पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"वत्स, सौ वर्ष तक जीयो और समूचे भारत का राज्य वरण करो।"

मगधेश्वर ने मात्र इतना ही कहा—"पुत्र, सुखी रहो, बलवान और धृतिवान बनो।"

राजकुमार ने मां से कहा—"मां एक छोटी-सी शिकायत है।"

"बोलो, क्या हुआ ?"

"कल भांडागारिक ने मेरा अपमान कर डाला।"

"कैसे ? क्यों ?" महाराज ने पूछा।

"कल मैं भंडारगृह में एक हजार स्वर्ण मुद्राएं लेने गया था। भांडागारिक ने देने से इन्कार कर दिया।"

"मनाही क्यों की ?" रानी ने पूछा।

भांडागारिक ने कहा—"प्रतिमास आपको जो स्वर्ण मुद्राएं दी जानी थीं, वे आपको दी जा चुकी हैं। अब और अधिक मुद्राएं मैं नहीं दे सकता।"

महाराज ने तत्काल कहा—"वत्स ! यह अपमान नहीं, व्यवस्था है। भांडागारिक स्वतंत्र नहीं होता। वह नियमों का अतिक्रमण नहीं कर सकता। किन्तु तुझे इस प्रकार भांडागारिक से मांगने नहीं जाना चाहिए था। कोई ऐसी आवश्यकता आ जाए तो तू अपनी मां से मांग लिया कर।"

राजकुमार मौन रहा और मां की ओर देखने लगा। माता ने अपनी मुख्य परिचारिका से कहा—"हले ! तू कुमार के साथ जा और मेरे निजी भंडार से इसे एक हजार स्वर्ण मुद्राएं दिला दे।"

राजकुमार नमस्कार कर मुख्य परिचारिका के साथ चला गया।

महाराज ने कहा—"प्रिये ! राजकुमार को इस प्रकार मुद्राएं देने से पहले तुझे यह जान लेना चाहिए कि वह किस प्रयोजन से मुद्राएं मांग रहा है ?"

"स्वामिन् ! यह आप जैसा ही उदार है। विशेषतः यह दान देने में ही धन का उपयोग करता है।" मां ने पुत्र की तारीफ की।

किन्तु प्रसेनजित तो समझता ही था की राजकुमार तो यौवन के प्रारंभ से ही बुरे मित्रों की संगति में फंस गया था। शराब, सुंदरी और जुए में वह प्रतिमास हजारों मुद्राएं खर्च करता था। किन्तु रानी अपने पुत्र का यह भयंकर दोष जानती हुई भी नहीं जान रही थी।

जो माता-पिता अपनी संतान के प्रति उपेक्षावृत्ति रखते हैं और अति लाड-प्यार का विषपान कराते हैं, उन माता-पिताओं को भयंकर पश्चात्ताप करना पड़ता है। और उन्हें अपनी ही संतानों की यातनाओं को सहना होता है। और उस समय उनका हृदय विदीर्ण होकर खंड-खंड हो जाता है।

रानी ने कहा—"स्वामिन् ! आप अपने उपाय की क्रियान्विति कैसे करेंगे ?"

"कुछ तरकीब निकालनी होगी। मेरे सामने समस्या यह है कि इस प्रश्न को

मैं तेरे अतिरिक्त किसी को नहीं बता सकता। किसी से मार्गदर्शन भी नहीं ले सकता।" राजा ने गंभीर होकर कहा।

रानी को पूरा विश्वास हो गया था कि राजा ने यह उपाय पूरा सोच-समझ कर निर्णीत किया है। वह बोली—"आप निश्चित रहें। एक आध सप्ताह के बाद ही मैं आपकी यह चिन्ता दूर कर सकूंगी।"

"तेरे बुद्धि गौरव के प्रति मेरे मन में अटूट विश्वास है। किन्तु यह कार्य ऐसा है कि प्रासाद की दीवारों को भी इसकी गंध नहीं आनी चाहिए। और बिंबिसार अत्यन्त बुद्धिमान् है। इसको तो इसकी कल्पना भी नहीं आनी चाहिए।"

"इसीलिए तो मैंने एक सप्ताह का समय मांगा है। किन्तु इस प्रकार देशाटन के लिए भेजने में एक भय तो बना ही रहेगा।"

"कैसा भय?" राजा ने पूछा।

रानी बोली—"यदि देश से निर्वासित हो जाने के पश्चात् बिंबिसार अपने अधिकार के लिए प्रयत्न करे तो···?"

"वह प्रयत्न निष्फल होगा, क्योंकि जिसको निष्कासित किया जाता है उसके सारे अधिकार छिन जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं।"

"तब तो आपकी यह युक्ति सफल होगी।", कहकर रानी त्रैलोक्यसुन्दरी खड़ी हुई और बोली—"कृपावतार, आप सारी रात जागते रहे हैं। अब आप स्नान आदि से निवृत्त होकर कुछ विश्राम करें।"

"तू भी स्नानगृह में जा।" कहकर प्रसेनजित खड़ा हुआ।

६. जनपदकल्याणी का अभिषेक

कल वैसाख कृष्णा तीज का सूर्य उदित होगा और भारत की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी आम्रपाली जनपद कल्याणी के रूप में प्रतिष्ठित होगी। यह बात पूरे भारत में फैल चुकी थी।

लोगों में उत्सव और रूप को देखने की लालसा हजारों वर्षों से है। पीढ़ियां समाप्त हो जाती हैं, किन्तु उत्सव और रूप को निरखने की तमन्ना कभी समाप्त नहीं होती।

वैशाली गणतन्त्र के समस्त जनपद से हजारों-हजारों नर-नारी वैशाली में एकत्रित हो चुके थे। अन्यान्य जनपदों के नागरिक भी बड़ी संख्या में आ गए थे।

एक तो आम्रपाली के रूप-सौरभ के विषय में अनेक बातें प्रचलित हो चुकी थीं। उनमें भी, आम्रपाली ने गणसभा को स्तब्ध कर अपनी तीनों शर्तें मंजूर करा लीं, यह बात आसपास के जनपदों में विस्मय पैदा कर रही थी।

राजगृह, श्रावस्ती, कौशांबी आदि नगरों से हजारों लोग वहां आ गए थे।

वैशाली के दो उपनगर थे, क्षत्रिय कुंडग्राम और ब्राह्मण कुंडग्राम। वहां के लोग पूरी तैयारी के साथ उत्सव की प्रतीक्षा कर रहे थे।

लिच्छवी नवयुवकों के मन में एक आशा प्रकट हुई थी कि कल से देवी आम्रपाली जनपदकल्याणी के पद पर आएगी। इसका अर्थ है वह सबकी हो जाएगी। उसका नृत्य, संगीत और हास्य सबके लिए सुलभ होगा। उसके सप्तभौम प्रासाद में बिना किसी रुकावट के आया-जाया जा सकेगा। उसके कटाक्षों से आहत होकर जीवन का आनन्द लेने का अवसर मिलेगा।

क्षत्रिय कुंडग्राम के अधिपति सिद्धार्थ के बड़े पुत्र नन्दीवर्धन अपने अनेक साथियों के साथ चेटक के राजमहलों में आ पहुंचे थे। उनको इस उत्सव में भाग लेना अनिवार्य था।

आम्रपाली होने वाले उत्सव की पूरी तैयारी में लगी हुई थी। सबसे पहले उसने अपने प्रासाद में भारत की बेजोड़ और भव्य वाद्य मण्डली तैयार की थी।

पूर्व भारत के प्रख्यात वीणावादक आचार्य पद्मनाभ वहां थे, उनकी अवस्था पैंतालीस वर्ष की थी।

आचार्य इन्दुशेखर वीणावादक के रूप में नियुक्त थे। उनकी बांसुरी पूर्व भारत को मंत्र-मुग्ध कर चुकी थी। वे चालीस वर्ष के थे।

कलिंग के सुप्रसिद्ध मृदंगवादक, आचार्य इलावर्धन भी देवी आम्रपाली के निमन्त्रण पर वहां आ पहुंचे थे। वे पचास वर्ष के थे।

कांस्यवाद्यों में निष्णात आचार्य माधपुत्र और काष्ठवाद्यों के संयोजक आचार्य किरातार्जुन—ये भी वाद्य मण्डली के साथ जुड़ गये थे।

इनके अतिरिक्त अनेक सह वाद्यकार भी वहां नियुक्त थे।

नृत्य-भूमि के नियोजक आचार्य भद्रमुख के शिष्य आर्य हरिभद्र आ गए थे।

चम्पानगरी से भाष्करवरण नाम के रस कवि भी आ पहुंचे। इनके काव्य मनुष्य के प्राणों में रस भरने वाले और यौवन की उन्मत्तता पैदा करने वाले थे।

देवी आम्रपाली जानती थी कि उसके जनपदकल्याणी बनने के बाद अनेक युवक रूप और यौवन की प्यास बुझाने के लिए वहां आएंगे। किसी को रोका नहीं जा सकेगा। अनेक व्यक्ति केवल संगीत और नृत्य के शौकीन भी आएंगे। इसलिए आम्रपाली ने वैशाली की सर्वोत्तम नर्तकियों में से सात-आठ नर्तकियों को अपने भवन में रख लिया। वे सारी नर्तकियां सोलह से इक्कीस वर्ष की अवस्था वाली थीं।

रात का पहला प्रहर।

आम्रपाली शय्या पर लेट गयी। नींद नहीं आ रही थी। उसे गणतन्त्र का दृश्य याद हो आया। सोचा, मुझे जनपदकल्याणी नहीं बनना चाहिए। किसी भी उपाय से इससे छुटकारा मिल जाए तो अच्छा। पर···अब क्या हो? गणतन्त्र

मेरी कोई भी शर्त मान्य करे, यह स्थिति नहीं थी। फिर भी उसने शर्तें मान्य की हैं।

जिस मंगल पुष्करणी में स्नान करने का अधिकार किसी भी नारी को नहीं है, वहां मेरा अभिषेक होगा। एक राज्यसत्ता के समान सत्ता प्राप्त होगी। यह सब इसलिए कि वैशाली के युवक लड़ें नहीं। क्या वैशाली के कल्याण के लिए ऐसा किया गया है? नहीं···नहीं···इसका रहस्य कुछ और है।

रात घिरती जा रही थी। नींद नहीं आ रही थी। मध्य रात्रि के बाद वह निद्राधीन हुई और निद्रादेवी की गोद में अठखेलियां करने लगी।

दूसरे दिन।

उषा की स्वर्णिम आभा धरती पर फैले, उससे पूर्व ही आम्रपाली पिता को नमस्कार कर, मां के चित्र को वंदना कर प्रांगण में खड़े रथ के पास आ गई।

पिता महानाम पुत्री को विदा करने नीचे आया। उसके प्राण यह जानकर सूख गए कि उसकी प्रिय पुत्री आम्रपाली जनपदकल्याणी बन रही है। पुत्री किसी राजघराने में राजमहिषी होगी, ऐसी आशा उसके मन में थी। जब मनुष्य की आशा पर पानी फिर जाता है तब उसका हृदय टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

सजल नयन लिये आम्रपाली रथ में बैठी। उसका रथ गतिमान हुआ। साथ-ही-साथ पचीस और रथ वहां से चल पड़े जिनमें आम्रपाली की परिचारिकाएं और अन्य सामग्री थी।

वैशाली से पुष्करणी तक का सारा मार्ग लोगों से खचाखच भरा था। मकानों की छत पर हजारों नर-नारी और बच्चे जयनाद कर रहे थे। उस जयनाद के बीच आम्रपाली पुष्करणी के पास जा पहुंची।

सिंहनायक और अनेक राजपुरुष वहां थे।

सिंहनायक ने पुष्करणी में अभिषेक करने की सारी विधि उसे बता दी। सिंह ने पूछा—"बेटी! तुझे नमस्कार महामंत्र आता है?"

"हां···।"

"तो नमस्कार महामन्त्र का सात बार स्मरण कर तुझे पुष्करणी में अभिषेक करना है।"

आम्रपाली ने स्वीकारोक्ति में सिर हिलाया। पूर्ण विधि-विधान के अनुसार आम्रपाली ने पुष्करणी में स्नान किया। बाहर निकलकर उसने स्वच्छ वस्त्र धारण किए और एक विशाल वटवृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर एक आसन लगा लिया। वहां वह पूर्वाभिमुख बैठी और अपने इष्टदेव अर्हत् का स्मरण करने लगी। लगभग एक घड़ी तक स्मरण करने के पश्चात् वह उठी और बाहर आई।

आम्रपाली सप्तरंगी वस्त्रों और सुन्दर आभूषणों से सज्जित हो चुकी

थी। उसका रूप और लावण्य लाख गुना प्रकट हो रहा था। वह स्वर्ण रथ में बैठ गई। दो परिचारिकाएं दोनों ओर से चंवर डुलाने लगीं।

लोगों ने देखा। रूप और लावण्य से उनकी आंखें चुंधिया गयीं। उनका उत्साह सतगुणित हो गया।

वे पुकार उठे···

"जनपदकल्याणी की जय।"

"वैशाली की जय।"

"आम्रपाली की जय।"

आम्रपाली जनपदकल्याणी के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी। आज वैसाख महीने का तीसरा दिन था।

शोभायात्रा नियत स्थानों से गुजरती हुई सप्तभौम प्रासाद पर आ पहुंची।

आम्रपाली ने अपने निवास-स्थान में प्रवेश किया। उसे लगा कि यह सप्तभौम प्रासाद देवरमणीय और सुन्दरतम है।

कल रात तक आम्रपाली महानाम की पुत्री थी। वैशाली की वह लाडली कन्या थी। आज वह जनपदकल्याणी बन गई थी।

हजारों लोग वहां आने-जाने लगे।

कल रात तक आम्रपाली के हास्य को देखना अशोभन माना जाता था। आज उसके हास्य झेलने के लिए हजारों रंगीले पुरुष आ-जा रहे थे। आने वाले कुछ लोगों में कोई उसके हाथ से मदिरा पीने की याचना करेगा कोई नयन-कटाक्ष से घायल होना सौभाग्य मानेगा, कोई नृत्य के झंकार में डूब जाना चाहेगा, कोई एक गीत सुनने के लिए पागल होगा और कोई आम्रपाली के मदभरे यौवन से प्यास बुझाने के लिए आकुल-व्याकुल होगा। कैसी पंचरंगी दुनिया के बीच अब आम्रपाली को रहना होगा!

शिशिरा और माधविका—ये दो परिचारिकाएं आम्रपाली की विशेष कृपापात्र थीं।

रात का पहला प्रहर।

शिशिरा ने आकर देवी को सूचना दी—"देवि! महाबलाधिकृत के पुत्र महाराज कुमार श्री पद्मकेतु आए हैं···।"

"क्यों?" देवी ने पूछा।

"कोई महत्त्व की बात करना चाहते हैं।"

"अच्छा, क्या वे नवजवान हैं?"

"हां, देवि!···।"

"समझ गई। नवयुवकों के मन में क्या महत्त्व की बात होती है, तू नहीं जानती। अच्छा, तूजा उन्हें यहां ले आ। मैं भोजन से निवृत्त होकर आती हूं।"

लगभग एक-आध घटिका के पश्चात् भोजन कार्य से निवृत्त होकर आम्रपाली वहां विश्रामगृह में आई।

आम्रपाली को देखते ही पद्मकेतु खड़ा हो गया।

आम्रपाली ने आते ही पूछा—"आयुष्मन्। कुशल हैं?"

"हां, देवि ! आप?"

"मैं स्वस्थ हूं। आप किसी महत्त्व के कार्य के लिए···"

"जी हां···"

"क्या आज्ञा है", देवी ने कहा।

"ओह देवि ! आपको यह कल्पना भी नहीं होगी कि मैं आपका पुजारी हूं।"

आम्रपाली ने मुस्कराते हुए कहा—"वैशाली का पूरा युवावर्ग जनपदकल्याणी का पुजारी ही है।"

पद्मकेतु विचार में पड़ गया कि वह क्या कहे।

इतने में ही आम्रपाली बोल पड़ी—"क्या आप यही महत्त्व की बात करने आए थे?"

"देवि ! आपके दर्शनों से मैं धन्य हुआ। जनपदकल्याणी के नियमों के अनुसार···"

बीच में ही आम्रपाली बोली—"नृत्य-संगीत का कार्यक्रम तो एक सप्ताह के बाद प्रारम्भ होगा।"

"मैं इसलिए नहीं आया हूं। नियमों के अनुसार मैं एक हजार स्वर्ण मुद्राएं लेकर आया हूं। मेरा प्रयोजन है कि आज की रात को मैं आपके साथ आनन्दमय बनाऊं।"

आम्रपाली व्यंग्यपूर्ण हास्य बिखेरती हुई बोली—"क्षमा करें। मेरी रात बहुत मूल्यवान है। मैं उसकी सुरक्षा करना चाहती हूं।"

"एक हजार स्वर्ण मुद्राएं निर्धारित हैं।"

"मैं यह जानती हूं।"

"तो क्या मेरे से पहले भी कोई भाग्यशाली···?"

"मैं स्वयं ऐसे भाग्य से वंचित रहना चाहती हूं।" आम्रपाली ने कहा।

"क्यों?"

"जनपदकल्याणी रूपाजीवा नहीं होती।"

"आप सत्य कह रही हैं। जनपदकल्याणी तो वैशाली की माधुरी है।"

"माधुरी देखने के लिए होती है, लूटने के लिए नहीं।"

"मैं लूटने के लिए तो नहीं आया।"

"आप एक सहस्र मुद्राएं क्यों खर्च रहे हैं?"

"आपके सहवास से अमर बनने, धन्य बनने के लिए", भावावेश में पद्मकेतु बोल उठा।

"एक रात में अमर नहीं हुआ जा सकता, राजकुमार ! पुजारी का काम है वह निष्काम पूजा करे, उपभोग की लालसा न रखे।"

"तो फिर मेरी आशा ···।"

"मित्र ! ऐसी आशा की संपूर्ति वसंत बाजार में हो सकती है। वहां रूप, यौवन और मन सब बिकते हैं, लूटे जाते हैं।"

आम्रपाली उठी और पद्मकेतु की ओर देखकर बोली—"महाराजकुमार ! क्षमा करें।" वह अन्दर चली गयी। शिशिरा ने पद्मकेतु की ओर देखकर कहा—

"महाराजकुमार !"

"हूं।" कहकर पद्मकेतु खड़ा हो गया।

७. वीणा की साधना

एक सप्ताह बीत चुका था, किन्तु रानी त्रैलोक्यसुन्दरी बिंबिसार को देश से निर्वासित करने का कोई षड्यन्त्र नहीं कर सकी।

पूरा बैसाख बीत गया, परन्तु कोई उपाय हस्तगत नहीं हुआ।

राजपुत्र बिंबिसार राजगृह से चालीस कोस दूर जितारी सन्निवेश में वीणा की अन्तिम साधना पूरी करने गया था। वहां आचार्य कार्तिक रहते थे। वे उस समय के महान् वीणावादक माने जाते थे। उन्होंने आज तक अनेक शिष्यों को वीणावादन में निष्णात बना दिया था। किन्तु उनको अपनी विद्या की पूर्णता केवल दो शिष्यों में दीख रही थी। एक था वत्स देश का राजा उदयन और दूसरा था मगधेश्वर का प्रिय राजकुमार बिंबिसार।

महाराज उदयन और बिंबिसार—दोनों तीनों ग्रामों से वीणा-वादन कर सकते थे। वे इसमें सिद्धहस्त थे।

वत्सराज उदयन के वीणावादन से संतुष्ट होकर, मुग्ध होकर, गन्धर्वों ने उनको आकाशगामिनी विद्या दी थी।

एक दिन बिंबिसार अपने गुरु कार्तिक को साथ ले सन्निवेश से एक कोस की दूरी पर एक टेकरी पर गया। वहां एक सरस्वती का मन्दिर था। मन्दिर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। पर सरस्वती की प्रतिमा अत्यन्त सौम्य, मनोहर और अपूर्व थी।

मन्दिर में पहुंचने के बाद कार्तिक ने कहा—"वत्सवी ! भगवती देवी सरस्वती की कृपा से तू वीणावादन का गूढ़ रहस्य और दैवीज्ञान का सर्वश्रेष्ठ जानकार हुआ है। देवी को नमस्कार कर तू अपनी वीणा पर अपनी सिद्धि को

अभिव्यक्ति दे और तीनों ग्रामों पर वीणावादिनी देवी सरस्वती की आराधना कर।"

बिंबिसार ने अपनी महाबिंब वीणा को एक ओर रखा। गुरु को पहले नमस्कार कर, फिर देवी सरस्वती की प्रतिमा के समक्ष तीन बार भूमि पर सिर टिकाकर नमस्कार किया।

आचार्य कार्तिक एक ओर बैठ गये।

बिंबिसार ने अपनी वीणा हाथ में ली; मन में देवी सरस्वती का स्मरण कर सुहासिनी विग्रह की ओर देखा।

गोघृत का एक दीपक जल रहा था। फिर भी देवी की मूर्ति प्रकाशमय बन गई थी।

उन्नीस वर्ष का राजकुमार बिंबिसार कुछ ही समय में वीणा का स्वर-मिलान कर सरस्वती देवी की प्रिय राग 'वागेश्वरी' की आराधना करने लगा।

रात्रि का दूसरा प्रहर बीत गया।

मन्थर गति से वीणा के तारों पर नाचता हुआ वागेश्वरी राग सम्पूर्ण नीरव वन प्रदेश में फैल गया।

मृदंग पर ताल देने वाले वाद्य की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि महाबिंब वीणा से ताल स्वयं जागृत होकर बाहर आता था। सिद्ध वीणावादक ताल से बंधा हुआ नहीं होता, ताल उससे बंधा हुआ होता है।

बिंबिसार एक घटिका पर्यन्त एक ही ग्राम पर राग को मंथर गति से चलाता रहा।

मध्य रात्रि के समय उसने वीणा पर दो ग्राम प्रारम्भ किए। वातावरण आनन्द से तरंगित हो गया।

यह सरस्वती का रचा हुआ स्वतन्त्र राग था। जब यह राग मध्यम लय में आया तब समग्र वातावरण रस से तर-बतर हो गया।

आचार्य कार्तिक हर्ष-विभोर हो रहे थे। अपने शिष्य के कौशल पर वे सात्त्विक उल्लास से भर गये। उनके हृदय से अजस्र धन्यवाद की वर्षा होने लगी।

तीसरे प्रहर की दो घटिकाएं शेष थीं। रात्रि का उत्तरकाल प्रारम्भ हो चुका था और बिंबिसार की सिद्धि तीनों ग्रामों पर मूर्त हो गई।

बिंबिसार उस समय अपने आपको भूल गया था। जब तक सिद्ध साधक साधना में अपना अस्तित्व विस्मृत नहीं कर देता तब तक सिद्धि की सार्थकता नहीं होती।

वीणा पर दो ग्रामों को झंकृत करने वाले अल्प होते हैं, तब तीन ग्रामों को साधने वाले साधक की तो बात ही क्या?

वीणा पर एक ग्राम की द्रुतलय को बजाना भी कठिन होता है, वहां बिंबिसार तीनों ग्रामों पर द्रुत-अतिद्रुत लय बजा रहा था।

कार्तिक स्वामी ने कहा—"वत्स ! वीणा के तीनों ग्रामों की साधना तेरी दासी बन गई है। यह दैवी वादित्र तुझे सदा प्रेरणा और बल देता रहेगा। मेरा आशीर्वाद है कि तेरी कीर्ति सूर्य के समान चमकेगी।

शिष्य ने गुरु चरणों को पकड़ लिया।

रात्रि का चौथा प्रहर चल रहा था।

वे मन्दिर से बाहर आए और जब वे अपनी कुटीर में पहुंचे तब पक्षी कलरव करने लग गए थे।

प्रातः बिंबिसार गुरु का आशीर्वाद ले अपने अश्व पर बैठकर राजभवन की ओर चल पड़ा।

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी ने एक षड्यन्त्र ढूंढ़ लिया था। यह उपाय राजा को भी जंच गया था।

कुछ वर्ष पूर्व ही यह राजाज्ञा प्रचारित की गई थी कि जिसके भवन में आग लगेगी उसको मगध की सीमा से बाहर भेज दिया जाएगा।

जब मगध की राजधानी कुशाग्रपुर थी, तब यदा-कदा घरों में आग लग जाती थी। फलस्वरूप राजा को भारी हानि होती थी। आग लगने का कारण प्रत्यक्ष नहीं था। परन्तु यह माना गया था कि भवनों में रहने वाले नौकर-चाकर ही इसके लिए जिम्मेदार हैं। इस आज्ञा के प्रचारित होने के लगभग एक माह बाद यह उपद्रव शान्त हो गया था। देश-निष्कासन के भय से भवनवासी सतर्क हो गए थे।

किन्तु एक बार महाराज प्रसेनजित के राजमहल में आग लग गयी थी और तब उन्होंने कुशाग्रपुर से निकलकर राजगृह नगरी का निर्माण किया था।

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी की यह योजना राजा के मन को भा गई थी वह श्रेणिक के आगमन की बाट देखने लगी।

बिंबिसार की मां जैन मत की उपासिका थी। इसलिए दूसरे राजकुमारों की अपेक्षा श्रेणिक के संस्कार उत्तम थे। वह संस्कारी था। किन्तु उसे मां का ममत्व बहुत दिनों तक नहीं मिला और मां एक दिन अचानक चल बसी।

फिर भी मां के संस्कार उसमें उत्तरोत्तर बढ़ते गए।

त्रैलोक्यसुन्दरी का लाड़ला एकाकी पुत्र दुर्दम अभी किशोर अवस्था में था। पर वह मदिरा और द्यूत के व्यसन से ग्रस्त था। उसकी परिचर्या के लिए उसकी मां ने दस रूपवती दासियों को नियुक्त किया था। मां को यह कल्पना भी नहीं थी कि जहां रूप होता है वहां आग भी होती है और यदि यौवन का

प्रारम्भ उस आग को झेल नहीं सकता तो व्यक्ति का जीवन नष्ट हो जाता है।

अन्यान्य राजकुमार भी मैरेय के पुजारी थे। बिंबिसार माता के संस्कारों के कारण इन व्यसनों से बच गया था।

श्रेणिक गुरुचरणों से चलकर सीधा पिता के पास गया, चरणों में नमस्कार किया और अपनी साधना की बात बताई। प्रसेनजित पुत्र की सिद्धि पर प्रसन्न हुआ और बोला—"वत्स! गुरुदक्षिणा के रूप में दस सहस्र स्वर्णमुद्राएं, पोशाक और मुक्तामाला आचार्य को भेंट कर देना।"

बिंबिसार ने प्रसन्नदृष्टि से पिता की ओर देखा।

उस समय त्रैलोक्यसुन्दरी की एक विश्वस्त दासी वहां से दौड़ी और रानी के पास पहुंचकर कहा—"महादेवी! कुमार श्रेणिक आ गए हैं।"

उस समय रानी अपनी विश्वस्त सखी से बात कर रही थी। श्रेणिक के आगमन की सूचना पाकर रानी ने अपनी सखी से कहा—"अब तुझे जो करना है उसकी ओर ध्यान लगा।"

"आप निश्चिन्त रहें। आज रात को ही मैं···।"

"सावधान रहना। किसी को इस घटना के कारण की कल्पना भी नहीं होनी चाहिए।"

"महादेवि! मैं किसी कच्चे गुरु की शिष्या नहीं हूं।"

रानी प्रसन्नता से झूम उठी।

पर उसे यह ज्ञात नहीं था कि जो दूसरों का अनिष्ट करना चाहता है, वह सबसे पहले अपने अनिष्ट को न्यौता देता है।

गड्ढा खोदने वाला, सबसे पहले स्वयं उस गड्ढे में गिरता है।

८. आग लग गई

रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। मगधेश्वर भोजन आदि से निवृत्त होकर अपने मंत्रणागृह में अपने मन्त्रियों के साथ चर्चा-विचारणा कर रहे थे। चर्चा का मुख्य विषय था—मगध और वैशाली के मध्य गंगा के तट से दस कोश की दूरी पर एक वन-प्रदेश था। वह अत्यन्त सघन और छोटी-छोटी पहाड़ियों से समृद्ध था। विशेष बात यह थी कि उस वन-प्रदेश पर राक्षसराज शंबुक का आधिपत्य था। उस वन-प्रदेश को लोग शंबुक वन कहने लगे। वह शंबुक कुछेक राक्षस परिवारों के साथ मध्य में स्थित पर्वतीय क्षेत्र में रहता था। वह अत्यन्त पराक्रमी और शक्ति सम्पन्न था। शंबुक की आयु ५० वर्ष की थी। शंबुक की साधना भी भव्य थी। आसपास के राज्य वालों ने उसको पराजित करने के अनेक प्रयत्न किए, पर सब व्यर्थ, क्योंकि शंबुक के मायावी युद्ध के समक्ष कोई नहीं टिक पाता था। शंबुक अपनी सीमा से सन्तुष्ट था। वह सीमा को बढ़ाना

नहीं चाहता था और साथ-ही-साथ अपनी सीमा को घटाना भी नहीं चाहता था।

इस वन-प्रदेश में स्वर्ण, वज्र, नीलम और माणिक्य की खानें थीं। इसलिए सभी अन्यान्य राज्य इसको हस्तगत करना चाहते थे। क्योंकि इसकी प्राप्ति उनके राज्य की समृद्धि का कारण बन सकती थी।

इन दो हजार वर्षों में राक्षस जाति को नष्ट करने का बार-बार प्रयास होता रहा और राक्षस जाति लगभग नष्ट हो चुकी थी। कुछेक राक्षस राजा दक्षिण में चले गए।

पूर्व भारत में केवल शंबुक ही राक्षसराज के रूप में शासन कर रहा था। वह केवल अपनी जाति के बचे लोगों की रक्षा करने में रस लेता था। वह किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करता था। क्योंकि वह जानता था कि उसके पूर्वज लड़-लड़ कर ही विनष्ट हुए हैं।

शंबुक अपनी परम्परागत अनेक विद्याओं का धनी था। उसके पास देवी की सिद्धि थी और वह अपने छोटे से वन-प्रदेश में शान्ति से रह रहा था।

शंबुक वन में प्रवेश करने वाला कोई भी मनुष्य जीवित नहीं निकल पाता था। इस प्रकार हजारों व्यक्ति शंबुक वन में मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। कोई ही वहां से जीवित नहीं निकल पाता था।

राजा प्रसेनजित इस प्रदेश को प्राप्त कर लोगों को निर्भय बनाना चाहते थे। उन्होंने दो बार इस पर आक्रमण भी किया पर बुरी तरह पराजित होकर पलायन करना पड़ा।

इस शंबुक वन को कैसे प्राप्त किया जाए, इस विषय पर वे मंत्रणागृह में विचार करने बैठे थे।

जब मंत्रणागृह में यह चर्चा चल रही थी, ठीक उसी समय रानी त्रैलोक्य-सुन्दरी के भवन में रानी की सखी श्यामांगी आ पहुंची।

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी ने अपने विवाह के समय वन-विस्तार से अपनी सखी के रूप में श्यामा को साथ ले आई थी। वह सखी चालीस वर्ष की प्रौढ़ नारी थी और जैसा नाम वैसा ही गुण था उसमें। त्रैलोक्यसुन्दरी की यह प्रमुख परामर्शदात्री और किसी भी प्रकार का काम करने में निपुण थी। वह वहीं राजभवन में एक छोटे मकान में रहती थी।

श्यामा को देखते ही रानी चौंक कर बोली—"श्यामा! इतना विलम्ब कैसे?"

"विलम्ब नहीं हुआ है देवि! आपका काम कर दिया है। मेरा दास वह काम सरलता से कर देगा। किसी को कुछ पता भी नहीं लग सकेगा और वह श्रेणिक कुमार के भवन में आग लगा देगा।"

"कब होगा यह काम?"

"आज या कल ही।"

"क्या कल ही ?"

"हां, विलम्ब करना श्रेयस्कर नहीं होगा।"

"अच्छा, तू जैसा सोचती है वैसा ही करना। सावधानी बरतना।'

"हां, देवि ! पूरी सावधानी रहेगी। आप निश्चित रहें।"

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी तत्काल उठी और अपनी पेटिका में से स्वर्णमुद्राओं की दो थैलियां निकालकर श्यामा के हाथ में दे दीं।

श्यामा ने दोनों थैलियों को ग्रहण करते हुए कहा—"मेरा दास इनसे अत्यधिक सन्तुष्ट हो जाएगा।"

त्रैलोक्यसुन्दरी ने परिचारिका को बुलाने के लिए ताली बजाई। कुछ ही क्षणों में मुख्य परिचारिका उपस्थित हो गई। रानी ने मैरेय लाने की आज्ञा दी।

दासी प्रणाम कर चली गयी।

रात का दूसरा प्रहर चल रहा था।

उत्तम मैरेय के दो स्वर्ण पात्र लेकर परिचारिका तत्काल आ गयी। दोनों सखियों ने मैरेय का पान किया। श्यामा चली गयी। रानी अपने शयन-कक्ष में आ गयी।

उसी समय मगधेश्वर अपनी प्राणप्रिया के खंड में उपस्थित हुए। रानी जागती हुई पर्यंक पर सो रही थी। किन्तु वृद्ध पति के पदचाप सुनकर उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं। महाराज पर्यंक के पास आकर बोले—"प्रिये···।"

"ओह !" कहकर रानी हड़बड़ा कर उठी।

"आज इतनी शीघ्र कैसे सो गयी ?" प्रसेनजित ने पूछा।

"मैं तो आपकी ही प्रतीक्षा कर रही थी, इतने में नींद का एक झोंका आ आ गया।"

"अरे, वह औषध तो ला।"

रानी तत्काल पलंग से नीचे उतरी और एक पेटिका की ओर गयी।

महाराज प्रसेनजित ने अपने मुकुट को एक त्रिपदी पर और उत्तरीय को एक ओर रखा और अपने हाथों से रत्नजटित बाजूबन्द खोलने लगे।

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी एक शुक्ति में रखी हुई औषध ले आयी। वह सरसों के दाने जितनी बड़ी थी। साथ में वह दूध से भरा एक स्वर्ण कटोरा भी लायी।

महाराज ने उस गोली को मुंह में रखा और दुग्धपान कर लिया।

रानी ने पूछा—"आज मंत्रणागृह में क्या किया ?"

"शंबुक वन की चर्चा।"

"क्या मन्त्रिगण और महाबलाधिकृत शंबुक राक्षस पर आक्रमण करने में सहमत हुए।"

"नहीं।"

"तब तो यह कार्य राजकुमार दुर्दम को ही करना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि दुर्दम राजकुमार अवश्य ही राक्षसराज शंबुक का वध करने में सफल होगा", रानी ने कहा।

औषध का प्रभाव प्रसेनजित के रक्ताणुओं में प्रारम्भ हो चुका था। वे पलंग पर बैठते हुए बोले—"मुझे भी ऐसा ही विश्वास है। दुर्दम में अपने निश्चित कार्य को करने की धुन है। वह मन्त्रियों की सलाह पर विशेष ध्यान नहीं देता। दो-चार वर्षों के पश्चात् उसे ही तो यह राज्य सौंपना है।"

रानी पलंग पर बैठती हुई बोली—"महाराज! श्रेणिक को देश से निष्कासित करने के कार्य के उपाय की क्रियान्विति कल मध्य रात्रि में होगी।"

"कल ही? इतनी जल्दी?"

"हां, विलम्ब उचित नहीं होगा।"

"प्रिये! तेरी बुद्धि के सामने सारे मन्त्री भी फीके हैं"—कहकर प्रसेनजित ने रानी का हाथ पकड़ा।

औषधि का प्रभाव प्रारम्भ हो गया था।

मनुष्य को औषधि खाकर यौवन का अभिनय करना पड़े तो इससे और बड़ा अभिशाप क्या हो सकता है।

किन्तु कामशक्ति अन्धी होती है। वह 'बेचारी' होने पर भी भयंकर होती है। अनेक मुनि भी कामजित् नहीं हो सके। यह कामशक्ति अनेक घोर तपस्वियों के तप को पाताल पहुंचा कर ही कृतार्थ होती है।

कामराग के स्वरूप का पूरा-पूरा भान होने पर भी मनुष्य इसी में तृप्ति मानता है।

श्यामा ने रानी के समक्ष जिस दास का जिक्र किया था, वह वास्तव में उसका दास नहीं था, उसकी शारीरिक क्षुधा को शान्त करने का साधन था। श्यामा उसकी सुरक्षा सावचेती से करती थी। वह दास भी श्यामा के प्रत्येक कार्य को करने में तत्पर रहता था।

दास को उत्तम भोजन मिलता, मैरेय मिलता और विलास भी मिलता। एक दास को इससे अधिक और क्या चाहिए?

और जब श्यामा यहां आयी थी तब वह अपने पति के साथ थी। पति बेचारा दो वर्ष कुशाग्रपुर में रहने के पश्चात् मृत्यु का भोग बन गया था। उस समय श्यामा पूरे यौवन से मदमाती थी। वह राजमहिषी की प्रीतिपात्र सखी थी। सखी से जो रानी चाहती वह मिल जाता था। हां, इसका वर्ण गेहुंआ था पर इसके यौवन का आकर्षण कम नहीं था। इसका शरीर सुगठित, आनन कमनीय और आंखें काममद से भरी पूरी थीं।

और पति की मृत्यु के पश्चात् श्यामा ने अपने एक समवयस्क दास को अपनी शय्या का साथी बना लिया था। कंगाल दास अपने आपको धन्य-धन्य मानने लगा।

दूसरे दिन संध्या के समय श्यामा रानी त्रैलोक्यसुन्दरी के पास आयी। उस समय रानी स्नानगृह में थी। वह अत्यन्त प्रसन्न और हर्षित थी, क्योंकि अपने इकलौते लाड़ले राजकुमार को मगध का अधिपति बनाने का स्वप्न आज सिद्धि की ओर अग्रसर होने वाला था।

श्यामा रानी की प्रतीक्षा करती हुई एक कक्ष में बैठ गयी।

एक परिचारिका ने रानी से श्यामा के आगमन की बात कही।

रानी प्रसन्न हुई। वस्त्रों को धारण कर वह अपने विशेष खंड में गयी और श्यामा को बुला भेजा।

श्यामा खंड में प्रविष्ट हुई। रानी की दीर्घ और खुली केशराशि बादलों की भांति शोभित हो रही थी। उसने रानी को नमस्कार किया।

रानी ने उसको पास बुलाकर पूछा—"तेरा दास ?"

"ठीक समय पर काम कर देगा। आप संशय न करें। महाराज को कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?"

"पगली ! मेरे इशारे पर चलने वाले महाराज को क्या आपत्ति हो सकती है ?"

"समझी, आप निश्चित रहें। समय पर काम हो जाएगा", श्यामा ने कहा।

रानी बोली—"आग में कहीं श्रेणिक न जल जाएं। यह चिन्ता मुझे सताती है। हमारी इससे बहुत बड़ी बदनामी होगी।"

श्यामा हंस पड़ी और हंसती-हंसती बोली—"तब तो सांप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी।"

"नहीं श्यामा, ऐसा हो जाएगा तो भयंकर अपवाद हो जाएगा। महाराज भी ऐसा नहीं चाहते।"

"महारानी जी ! आप चिन्ता न करें। मैंने पहले ही इसकी व्यवस्था कर डाली है। आज मध्य रात्रि में वह काम होगा और फिर प्रातः मैं आपसे मिलूंगी।"

"अच्छा, मुझे तेरा पूरा विश्वास है। तू मेरी हितकांक्षिणी है।" रानी ने विश्वास भरे स्वरों में कहा।

"महादेवी ! मेरा दास बहुत होशियार है। वह इस काम की गन्ध भी नहीं आने देगा। वह मेरे इशारे पर न्यौछावर है।"

ऐसा ही हुआ।

रात्रि का तीसरा प्रहर। राजकुमार श्रेणिक के महल के पीछे के भाग से आग की ज्वालाएं निकलने लगीं। राज्य के रक्षक और महल के पहरेदार चिल्लाने लगे। वे इधर-उधर भागने लगे और आग पर काबू पाने की सामग्री जुटाने लगे।

कुछ ही समय में वहां सैकड़ों दास-दासी और कर्मकर एकत्रित हो गए।

महाराज कुमार श्रेणिक अपनी महाबिम्ब वीणा को लेकर महल से बाहर आ गए।

महाराज प्रसेनजित को यह समाचार मिला। वे अन्यान्य रानियों के साथ वहां पहुंचे। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महल की इस आग में कोई जीवित प्राणी नहीं जला।

सभी ने राजकुमार के दीर्घ आयुष्य की कामना की।

आग बुझ गई।

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी श्रेणिक के दीर्घ आयुष्य की कामना बार-बार व्यक्त करने लगी।

उसे यह पता नहीं था कि वह आग श्रेणिक के महल में नहीं, उनके द्वारा निर्मित आशा के महल में लगी है। वह इस घटना से अपने स्वप्न के साकार होने की कल्पना कर रही थी। पर वह स्वप्न आज इस घटना से बिखर कर नष्ट हो गया था। रानी इसकी कल्पना कैसे कर पाती?

यह तो केवल महाराज प्रसेनजित और आचार्य अग्निपुत्र ही जानते थे। दूसरा कोई नहीं।

९. देश का त्याग

राजभवन में लगी आग के समाचार धीरे-धीरे नहीं, पवन गति से प्रसृत हुए। सारे राज्य में इसकी चर्चा होने लगी। पर आग लगने के कारण को कोई नहीं जान सका।

नाना प्रकार की अटकलें लगाई जा रही थीं। चारों ओर गुप्तचर विभिन्न उपायों से कारण की खोज में घूम रहे थे।

महाराजा प्रसेनजित ने श्रेणिक कुमार को पूछा—"कुमार! आग के संबंध में क्या तुझे किसी पर संशय है?"

"नहीं महाराज।"

"यह तो आश्चर्य की बात है। प्रिय राजकुमार! एक बात है जब तक आग लगाने वाले व्यक्ति का अपा-पता नहीं लगता तब तक मुझे चिन्तित ही रहना पड़ेगा।"

"चिन्ता क्यों?"

"वत्स! प्राचीन राजाज्ञा यह है कि जिसके भवन में आग लगती है, उसको

मगध से निष्कासित करना होता है। यह आज्ञा सबके लिए समान रूप से लागू होती है। इस नियम के अनुसार कुशाग्रपुर में अनेक व्यक्तियों को निष्कासित होना पड़ा था। परन्तु राजगृह में यह पहला ही अवसर है। मुझे···।"

"कृपावतार! आप चिन्तित न हों। पुत्र-प्रेम के वशीभूत होकर आप राजाज्ञा का अपमान न करें। मैं राजाज्ञा को सम्मान देने के लिए प्रतिपल तैयार हूं। मगधेश्वर की न्यायप्रियता पर कोई कलंक न आने पाये।" बिम्बिसार ने नम्रतापूर्वक कहा।

राजा समझता था कि यह अभिनय केवल श्रेणिक की रक्षा के लिए था। फिर भी पुत्र के इन वचनों ने उसके दिल को दहला दिया।

राजसभा जुड़ी।

राजा ने कहा—"जो राजाज्ञा है, वह अखंड। उसमें किसी का भेद नहीं है। परन्तु मेरा हृदय आज···" कहते-कहते राजा ने गद्गद होने का अभिनय किया।

सारी सभा मगधेश्वर के दर्द से व्याकुल हो उठी।

राजसभा में उपस्थित श्रेणिक ने कहा—"महाराज! इस राजसभा में आप यह भूल जाएं कि आप मेरे पिताश्री हैं। मेरे प्रति ममता के वशीभूत होकर यदि आप राजाज्ञा को मान नहीं देंगे तो आपके यश में धब्बा लग जाएगा। कोई भी सुपुत्र अपने पिता के यश को कलंकित नहीं देखना चाहता।"

"श्रेणिक···!"

"पिताश्री···!"

महाराज प्रसेनजित ने उत्तरीय से आंसू पोंछने का हृदयद्रावक अभिनय किया। कुछ क्षणों के बाद वे स्वस्थ होकर खड़े हुए और राजसभा की ओर देखते हुए बोले—"श्रेणिक! तू वास्तव में धन्यवाद का पात्र है। तेरे शब्दों ने मेरे दिल में प्रेरणा जगायी है कि पुत्र-प्रेम से राजाज्ञा बड़ी होती है। आज मुझे अत्यन्त दुःखी हृदय से कहना पड़ रहा है कि राजाज्ञा के अनुसार तुझे अगली पूर्णिमा तक मगध का त्याग कर देना होगा।"

श्रेणिक ने बुलन्द आवाज में कहा—"मगधेश्वर की जय हो! मगधपति की कीर्ति समस्त पृथ्वी-मंडल पर विस्तृत हो।"

सभा विसर्जित हो गई।

लोगों ने मगधेश्वर की न्यायप्रियता और श्रेणिक की निर्भयता की प्रशंसा की।

ज्यों-ज्यों पूर्णिमा का दिन निकट आ रहा था, महाराज प्रसेनजित का हृदय पीड़ा से भरता जा रहा था।

उन्होंने श्रेणिक के साथ अपने विश्वस्त व्यक्तियों को भेजना चाहा। श्रेणिक

ने स्पष्ट इनकार करते हुए कहा—"पिताश्री ! मेरे लिए दूसरों को निष्कासित करना ठीक नहीं है।"

"यह विचार तो मुझे करना है। मैं मगधपति भले ही हूं पर तेरा बाप हूं, तू मेरा अतिप्रिय पुत्र है। मगधेश्वर भले ही हृदय से शून्य हों पर प्रसेनजित में धड़कता हृदय विद्यमान है।"

"आपकी व्यवस्था को मैं स्वीकार करता हूं।"

"पुत्र ! तेरे साथ नवजवान धनंजय रहेगा। वह अत्यन्त चतुर है। वह तेरा पूरा ध्यान रखेगा और जितना धन आवश्यक होगा उतने की वह व्यवस्था कर देगा। वह मेरा विश्वासी सुभट है और तुझे एक वादा करना पड़ेगा।"

"वादा क्यों ? आपको आज्ञा देने का अधिकार है।"

"वत्स ! तू जानता है कि मैं वृद्ध हो चुका हूं। न जाने कब यह शरीर ढल जाए। इसलिए तुझे अपनी सेवा के लिए मैं बुलाऊं तब तू अपने हजारों आकर्षणों को छोड़कर यहां उपस्थित हो जाना।"

"आपके चरण स्पर्श कर मैं यह वादा करता हूं कि आपकी प्रत्येक आज्ञा मेरे लिए शास्त्र-वाक्य जैसी होगी।" कहता हुआ बिम्बिसार पिताश्री के चरणों में गिर पड़ा।

पिता ने पुत्र को उठाकर हृदय से लगाया और अपने गले में पहना हुआ अति मूल्यवान् रत्नहार उसके गले में डाल दिया।

बिम्बिसार के नयन सजल हो गए। वृद्ध प्रसेनजित के नयनों से भी अश्रु-धारा बह चली।

पिता-पुत्र विलग हुए।

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी को राज्य सभा की बात ज्ञात हुई और वह अत्यन्त हर्षित हो गई। पर वह चिन्तातुर होने का अभिनय करने लगी।

बिम्बिसार बहुत प्रसन्न था। किन्तु उसे ज्ञात नहीं था कि आज की राजाज्ञा के पीछे पिताजी का एक गुप्त रहस्य छुपा हुआ है।

पूर्णिमा का दिन।

सभी रानियां और राजपुरुष एक स्थान पर एकत्रित हुए। रानी त्रैलोक्य-सुन्दरी ने पुत्र का मस्तक सूंघा और आशीर्वाद के साथ-साथ अपना रत्नजटित गलहार उसको पहना दिया।

सभी अपर माताएं बिम्बिसार को आंसू भरे नयनों से विदा देने वहां आ पहुंचीं।

सुभट धनंजय और दो परिचारक दो अश्वों को तैयार कर खड़े थे।

ठीक समय पर कुमार श्रेणिक एक हाथ में महाबिम्ब वीणा और कंधे पर

धनुष्य धारण कर नीचे आया। उसकी वृद्ध परिचारिकाएं जोर-जोर से रो रही थीं।

श्यामा भी त्रैलोक्यसुन्दरी के पास खड़ी-खड़ी सुबक-सुबक कर रो रही थी।

आचार्य अग्निपुत्र भी आ गए थे और वे सबके सामने महाराज को उपालंभ दे रहे थे।

सभी लोगों ने महाराज कुमार का जयनाद किया।

मन कितना ही कठोर क्यों न हो जाये, जन्मभूमि को छोड़ते समय वह अत्यन्त चंचल हो जाता है।

बिम्बिसार का हृदय भी टूक-टूक होने लगा। उसने धैर्य के साथ वहां से प्रस्थान किया, पर आंखें डबडबा आईं।

१० शंबुक वन में

बिंबिसार को विदा देकर महाराज प्रसेनजित ने अत्यन्त शान्ति का अनुभव किया। जिसको महाराज स्वयं इनकार नहीं कर सकते, जिसके प्रति महाराज अन्यन्त मुग्ध हैं वह त्रैलोक्यसुन्दरी अब श्रेणिक का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाएगी। इस बात का पूर्ण सन्तोष अब मगधेश्वर अनुभव कर रहे थे। फिर भी अपने मन को और अधिक दृढ़ करने के लिए वे आचार्य अग्निपुत्र को लेकर अपने निवास पर आये।

वहां सभी रानियां और राजपुरुष महाराज को सान्त्वना देने के लिए एकत्रित हुए थे। वे जानते थे कि बिंबिसार के देश-निष्कासन से मगधेश्वर के हृदय पर बहुत आघात लगा है।

महाराज अपने महल में आए और एक विशेष खण्ड में आकर अपने विशेष प्रतिहार से कहा—"मेरी आज्ञा के बिना कोई भीतर न आने पाए।"

"जी", कहकर महाप्रतिहार चला गया।

एक आसन पर बैठते हुए आचार्य अग्निपुत्र बोले—"महाराज! आपको मैं धन्यवाद देता हूं। आपने यह कार्य सहज और उत्तम रूप से सम्पादित किया है। अब आप निश्चित रहें। जब बिंबिसार लौटेंगे तब अनेक अनुभव साथ लाएंगे।"

"आचार्य! आपके मार्गदर्शन से मेरा कार्य सहज हो गया है। बिंबिसार स्वयं दक्ष है, वीर है, उसके सम्बन्ध में मुझे कोई चिन्ता नहीं है। किन्तु एक प्रश्न मेरे मन को बार-बार कुरेद रहा है।"

"कौन-सा प्रश्न?"

"दुर्दम को मगधेश्वर बनाने के लिए अब रानी और अधिक आग्रह करेगी।"

"आपके जीवित रहते ऐसा होना असम्भव है। आप सदा प्रेम से रानी की

बात को टालते रहें। दुर्दम को दो-तीन वर्षों के लिए रणशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए कहीं भेजना होगा। इससे रानी और विश्वस्त होगी।"

"यही उचित है।"

इतने में महाप्रतिहार ने आकर कहा—"महादेवी आयी हैं।"

"आने दो।"

उसी क्षण रानी ने खण्ड में प्रवेश किया। उस समय अग्निपुत्र मगधेश्वर से कह रहे थे—"महाराज! सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। इस बुद्धिमत्ता से सारा काम सफल हो गया। अब आप दुर्दम को रण-शिक्षा लेने कहीं भेजें। भावी मगधपति की भुजाओं में बल ही अपेक्षित नहीं है, किन्तु ज्ञान और अनुभव से भी उन्हें समृद्ध होना है।"

आचार्य के ये शब्द सुनकर रानी का चेहरा प्रफुल्लित हुआ। वह बोली—"आचार्य देव! आपके हृदय में दुर्दम के प्रति जो ममता है, उसे जानकर मैं धन्य हो गई। मेरा पुत्र दुर्दम उत्तम गुणों से युक्त है। सैनिक शिक्षा इसके लिए अपेक्षित है, पर जब आप उसके स्वास्थ्य को देखेंगे तो आप अवश्य कहेंगे कि इसका शरीर सैनिक शिक्षा लेने योग्य नहीं है।"

"महादेवी, आपकी बात सही है। पर सैनिक शिक्षा बहुत जरूरी है। शरीर को व्यायाम मिलने पर वह मजबूत होगा और वह सबके लिए सुखदायी होगा।"

रानी ने यह बात स्वीकार की।

प्रसेनजित ने आचार्य की ओर देखकर कहा—"आचार्य! आपके उस प्रयोग का क्या हुआ?"

आचार्य समझ गये कि महाराज ने दुर्दम की बात को टालने के लिए यह प्रश्न किया है। वे बोले—"महाराज! अभी तक चौदह वर्ष की रूपवती कन्या प्राप्त नहीं हो सकी है।"

"यदि विषकन्या का निर्माण हो जाए तो मेरे लिए उसकी परम आवश्यकता है।"

"आपको?"

"हां, महापुरुष! राक्षसराज शंबुक पर विषकन्या का प्रयोग ही सफल होगा, ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है।"

"हां, महाराज! आप ठीक कह रहे हैं। पर मैं क्या करूं? जब तक रूपसी कन्या नहीं मिलती विषकन्या के निर्माण की कोई प्रयोजनीयता नहीं होती।"

"यदि कोई दासी हो तो···?" महारानी ने पूछा।

"हां महादेवी! वह अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक, स्वस्थ और सुगठित होनी चाहिए। ऐसी कन्या वेश्याओं में मिल सकती है।" आचार्य ने कहा।

महादेवी बोली—"आचार्यजी ! आप निश्चित रहें। एकाध महीने में वैसी कन्या खोज लूंगी।"

"धन्यवाद ! ऐसा होने पर एक महान् सिद्धि का साक्षात्कार होगा।" कहकर अग्निपुत्र खड़े हुए।

राजा-रानी ने आचार्य को नमस्कार किया और आचार्य अपने आश्रम की ओर चले गये।

आचार्य के जाने के बाद रानी ने मगधेश्वर से कहा—"प्राणनाथ ! अब आप निश्चितता से सोएं।"

इधर आकाश मेघाच्छन्न हो रहा है। आज रात को वर्षा का प्रारम्भ होगा ऐसा प्रतीत हो रहा था।

संध्या हो गई थी। कुमार बिंबिसार अपने साथियों के साथ आठ कोस दूर निकल गया था। वहां सब एक छोटे से गांव में जा पहुंचे।

धनंजय बोला—"कुमारश्री। रात हमको यहीं बितानी पड़ेगी।"

"हां, किन्तु धनंजय ! तुझे एक बात का ख्याल रखना होगा।"

"कौन-सी बात का ?"

"मैं राजकुमार हूं, महाराज हूं—यह सब विस्मृत कर देना होगा। हम सब प्रवासी हैं। हमें जहां उचित लगेगा वहां रहेंगे। और जहां जाना होगा वहां जाएंगे।"

"परन्तु···।"

"मित्र, मैं मगध का राजकुमार हूं, इसे जतला कर हमें कोई लाभ तो नहीं कमाना है।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" धनंजय ने कहा।

गांव छोटा था। पर मगध राज्य के प्रत्येक छोटे-बड़े गांव में पान्थशाला होती थी। वे सब एक छोटी-सी पान्थशाला में गए, ठहरे। धनंजय ने भोजन की व्यवस्था की।

रात के दूसरे प्रहर में मूसलाधार वर्षा होने लगी।

कहां तो राजभवन का राजसी भोजन और कहां इस गांव का सीधा-सादा भोजन। फिर भी बिंबिसार ने उस भोजन में पूरा रस लिया और भोजन करते-करते धनंजय से कहा—"मित्र ! जहां सादगी है, वहां वास्तविक आनन्द है और जहां आवश्यकताओं की अधिकता होती है, वहां वेदना भी प्रबल होती है।"

अभी कुमारश्री ने अपने बीस वर्ष पूरे नहीं किये थे। ऐसे वचन सुनकर धनंजय आश्चर्यचकित रह गया।

इस पांथशाला में न स्वर्णमय पलंग थे, न मसृण शय्या थी और न रेशमी

चादर थी। फिर भी यहां एक वस्तु ऐसी थी जो राजभवन में नहीं थी। वह थी शान्ति, जीवन को तृप्त रखने वाली शान्ति।

बिंबिसार और उसके साथी भोजन से निवृत्त होकर सो गये।

दूसरे दिन मध्याह्न के समय वर्षा रुकी और वे वहां से आगे चल पड़े। रास्ते में बिंबिसार ने कहा—"धनंजय ! हमें गंगा नदी के उस पर जाना है। मैंने सुना है कि वहां शांडिल्य मुनि का भव्य आश्रम है। जीवन को प्रेरित करने वाला एक तपोवन है।"

चलते-चलते वे आश्रम में पहुंचे। वहां के व्यवस्थापक और अधिष्ठाता मुनि शिवभट्ट ने उनका स्वागत किया। उन्हें एक कुटीर में रहने के लिए कहा।

वहां दो दिन रहकर बिंबिसार व्यथित हो गया। आश्रम सुन्दर था। पर केवल ब्राह्मण ही वहां प्रवेश पा सकते थे, दूसरे नहीं। यह कैसा अन्याय। बिंबिसार उस आश्रम की व्यवस्था से तिलमिला उठा।

तीसरे दिन वे वहां से चले और सात-आठ कोस चलकर एक क्षुद्र पल्ली में विश्राम किया। वहां से वे आगे चले।

धनंजय बोला—"महाराज ! इस ओर शंबुक वन है। रास्ते में कोई पल्ली नहीं है। इसलिए हम···।"

बीच में ही श्रेणिक ने हंसते हुए कहा—"मित्र ! शांडिल्य आश्रम से तो शंबुक वन उत्तम होगा। वहां जातीय दीवारें नहीं होंगी।"

"महाराज ! शंबुक वन अत्यन्त भयंकर है। राक्षसराज शंबुक वहां रहता है और उस वन में गया हुआ पथिक पुनः जीवित बाहर नहीं आ सकता।"

"धनंजय ! लोककथा सर्वांश सत्य नहीं होती।"

वे आगे बढ़ रहे थे। गाज-बीज के साथ प्रलयंकारी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। आस-पास में कोई आश्रय-स्थान नहीं दिखायी दिया। वे चलते रहे।

धनंजय ने कहा—"कोई अलग-थलग न चले। चारों अश्व साथ-साथ रहें।

किन्तु अश्व कोई निर्जीव या यंत्र तो नहीं हैं। आंधी में अश्व चमक उठे। घोर अंधकार व्याप्त हो गया था। गंगा का किनारा तो बहुत दूर रह गया था। सामने शंबुक वन था। अश्व किस ओर जा रहे हैं, कोई नहीं जानता था।

चार घटिका के पश्चात् चलते-चलते वे शंबुक वन में प्रविष्ट हो गये।

नियति का चक्र ! नहीं चाहते हुए भी शंबुक वन ने उनको खींच लिया।

११. शंबुक

शंबुक वन। राक्षसराज शंबुक का आवास-स्थल। नाम सुनते ही लोगों के प्राण गले में अटक जाते थे। बड़े-बड़े पराक्रमी और भुजबली व्यक्ति भी जहां

जाने से कतराते थे, वहां मगध का राजकुमार बिंबिसार अपने तीन साथियों के साथ दर-दर भटक रहा था।

रात की घड़ियां। भयंकर वर्षा और तूफान। चारों ओर गगन में बीज-गाज। वे चारों एक विशाल वृक्ष के नीचे रुके। कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। चारों अश्व साथ थे। सब पानी से तर-बतर हो रहे थे। जब बिजली चमकती तब उसके क्षणिक प्रकाश में उन्हें कुछ दिखता और वे उसे पहचान पाने का प्रयत्न करते। तब तक पुनः सघन अंधकार छा जाता। तांडव चल रहा था। बिंबिसार के अतिरिक्त सभी भयभीत थे। धनंजय को यह भय सता रहा था कि यदि बिंबिसार को कुछ हो गया तो जीवित रहना व्यर्थ होगा। क्या कहेंगे महाराज! क्या मेरे कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाएगी तब?

रात बीती। वर्षा मंद हो गयी। सूरज की किरणों ने प्रकाश बिखेरा और वे चारों अपने-अपने अश्वों पर आरूढ हो आगे बढ़े। आगे एक परिचारक चल रहा था।

अकस्मात् उस परिचारक का अश्व चौंका। परिचारक यह जान पाये कि क्या है, इससे पहले ही अजगर जैसा विशाल प्राणी नीचे गिरा और परिचारक के चारों ओर लिपट गया। धनंजय ने एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना म्यान से तलवार निकाली और अजगर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। परिचारक प्राणशून्य-सा हो रहा था। कुछ क्षणों में वह स्वस्थ हुआ और फिर वे सब आगे चले।

सामने एक नदी दिख रही थी। सभी उस ओर बढ़ने लगे। पर वे नदी के तट पर नहीं पहुंच सके, क्योंकि मार्गगत एक विशाल वृक्ष के नीचे से गुजरते समय उस वृक्ष से लगभग पन्द्रह मनुष्य, जो विशाल कद के और श्याम रंग के थे, नीचे कूद पड़े। प्रत्येक के हाथ में भयंकर शस्त्र था। प्रत्येक का चेहरा विकराल, निर्दय और अमानवीय जैसा लगता था।

धनंजय ने तलवार को म्यानमुक्त करने के लिए अपना हाथ मूठ पर रखा, और तब बिंबिसार बोला—"मित्र! उतावले मत बनो। जो कार्य शक्ति से असंभव लगते हैं वे युक्ति से संभव बन जाते हैं।" यह कहकर बिंबिसार ने उन व्यक्तियों की ओर देखकर कहा—"महानुभावो! यहां कोई आश्रम है?"

वे भय पैदा करने वाले मनुष्य कुछ नहीं समझ पाये। उनमें से एक व्यक्ति ने प्राकृत भाषा में कहा—"तुम कौन हो? यहां क्यों आये हो?"

बिंबिसार ने तत्काल प्राकृत भाषा में उत्तर दिया—"हम महाराजाधिराज राक्षसराज शंबुक से मिलने आए है। किन्तु भयंकर तूफान के कारण भटक गये हैं।"

"महाराजाधिराज से मिलने आये हो? कौन हो तुम?" राक्षसों के सरदार ने कहा।

"मैं एक संगीतज्ञ हूं। महाराज शंबुक के चरणों में अपनी कला प्रस्तुत कर उनको प्रसन्न करना चाहता हूं। मैं उत्तर भारत से आया हूं।"

"तब हमारे साथ चलो।"

चारों ओर राक्षसों का घेरा। बीच में चारों प्रवासी। वे चलने लगे। धनंजय बोला—"महाराज ! खूब फंसे !"

"मित्र ! यश और कीर्त्ति की भूख, प्रशंसा की चाह सबको होती है। संभव है हम निर्विघ्नरूप से यहां से छिटक जायें।"

शंबुक के ये राक्षस यही मान रहे थे कि ये प्रवासी महाराज शंबुक से मिलने आये हैं।

चलते-चलते नदी का स्वच्छ और सुन्दर किनारा आ गया। बिंबिसार ने प्राकृत भाषा में सरदार से कहा—"वीरश्रेष्ठो ! हम पर कृपा करें हम रात भर वर्षा में भीगते आएं हैं। सारे वस्त्र गीले हैं। महाराज शंबुक से मिलने से पहले हम इनको सुखा दें तो उत्तम होगा। यहां हमें विश्राम करने की आज्ञा दें।"

बिंबिसार की नम्र वाणी से सरदार का मन पिघला। और उसने कहा—"जैसा आप चाहें वैसा करें।"

सब वहीं रुक गये।

सरदार ने अपने साथी से ईंधन लाने को कहा, जिसको जलाकर ये पथिक ताप ले सकें।

जो व्यक्ति ईंधन लेने गया था वह कुछ ही समय में गीले ईंधन के दो-चार टुकड़े ले आया।

धनंजय ने भीगे वस्त्र सुखाने के लिए डाल दिये। ईंधन को देख धनंजय बोला—"महाशय ! इस गीले ईंधन में आग कैसे पकड़ेगी।"

"भाई ! यह अग्निपत्री नाम की वनस्पति है। यह गीली ही जलती है, सूखी नहीं।"

ऐसा ही हुआ। एक राक्षस सैनिक ने चकमक पत्थर से अग्नि निकाली। और सबके देखते-देखते वह अग्निपत्री जल उठी।

बिंबिसार, धनंजय और दोनों परिचारक अग्नि का ताप लेने लगे। अग्नि का ताप तीव्र था। इसलिए रात भर का शीत भाग गया।

लगभग तीन घटिका के पश्चात् सूखे वस्त्र पहनकर सब आगे बढ़े।

अश्व भी नदी के किनारे हरी दूब खाकर मस्त हो गये थे।

बिंबिसार ने इष्टदेव नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया।

नदी के किनारे-किनारे आधा कोस चले। नायक ने अपने दो साथी राक्षसों से फल लाने को कहा। साथी जंगल में गये। ताजे फल ले आए। 'अनजाने फल नहीं खाने चाहिए' धनंजय ने कहा। पर सभी भूख से व्याकुल हो रहे थे। वे फल

सभी ने खा लिये । फल अत्यन्त स्वादिष्ट और मधुर थे ।

एक संकरे मार्ग से चलते हुए वे आगे बढ़ रहे थे । इतने में ही राक्षस नायक ने अपने कंधे पर लटकाए हुए शृंग वाद्य से एक भयंकर आवाज निकाली । तत्क्षण सामने से भी ऐसी ही आवाज उत्तर में आयी ।

नायक ने बिंबिसार की ओर देखकर कहा —"भाई ! अब हम निर्धारित स्थान पर आ गए हैं । वह जो सामने दीख रही है, वही है महाराजधिराज शंबुक की नगरी ।"

बिंबिसार और धनंजय ने उस ओर देखा, पर वहां कोई भव्य प्रासाद नहीं दिखा । मिटटी और पत्थर के बने छोटे-छोटे मकान अवश्य दिखाई दिये ।

राक्षसों का बर्ताव कैसा होगा—यह प्रश्न तो था ही, पर अब क्या हो, जो होगा, वह देखा जाएगा ।

राक्षसनायक अपने राक्षस सैनिकों के साथ उन चारों को एक मकान में ले गया । बाहर से वह मकान अत्यन्त क्षुद्र लग रहा था । पर भीतर से भव्य और सुन्दर था । बीच में विशाल चौक था । स्वच्छता बहुत थी । सारा वातावरण शान्त और स्निग्ध था ।

विशाल मैदान में एक स्तम्भ था । उस स्तम्भ पर एक विशाल घण्टा था । राक्षसनायक ने उस घण्टे के साथ लटकती हुई रस्सी को पकड़कर घण्टा-नाद किया ।

कुछ ही क्षणों के पश्चात् एक ओर लोह द्वार खुला और उसमें से चार राक्षस बाहर आये और नायक के पास आकर खड़े हो गये ।

नायक ने कहा—"ये आगन्तुक महाराजाधिराज के दर्शनार्थ आये हैं । संगीतकार हैं । इन्हें अतिथि निवास में ले जाओ और इनके भोजन आदि की व्यवस्था कर राक्षसराज के पास इनके आगमन का समाचार भेजो ।"

चारों राक्षसों ने बिंबिसार और उनके साथियों को अपने पीछे-पीछे आने का इशारा किया ।

नायक बोला—"संगीतकार ! आप हमारे राज्य के विशेष अतिथि हैं । आपका विशेष स्वागत होगा । आपके अश्व हमारे अस्तबल में सुरक्षित रहेंगे ।"

बिंबिसार ने आभार माना ।

चारों अतिथिगृह में गये । वह आवास-स्थल अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर था । वहां राक्षसों ने खाट-बिछौने आदि की व्यवस्था कर दी ।

एक राक्षस तरुणी पानी का बर्तन रख गयी । धनंजय ने देखा, राक्षस-तरुणी श्याम वर्ण की होने पर भी उसका व्यक्तित्व मोहक था । उसके नयन चमक रहे थे । उसका शरीर सुगठित और केशराशि सघन और खुली थी । वह छोटा-सा अन्तर्वसन पहने हुए थी । और उसने वल्कल का कंचुकी बंध धारण कर रखा था ।

और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं था । पैरों में चांदी की नूपुर, हाथ में विविध प्रकार की चूड़ियां और गले में प्रवाल, मोती आदि की मालाएं थीं।

तरुणी ने पानी रखकर एक बार प्रवासियों पर दृष्टि डाली और चली गयी ।

उसी समय तरुणी के साथ दो प्रौढ़ राक्षस-नारियां हाथों में दो-दो थाल लेकर उस खण्ड में आयीं । तरुणी के हाथ में चार लोहपात्र थे । एक पात्र में दूध भरा था । उसने इशारे से भोजन करने के लिए कहा ।

बिंबिसार उनके इशारे से समझ गया । चारों भोजन करने बैठे ।

बिंबिसार ने देखा कि प्रत्येक थाल में एक मोटा-मोटा रोट है । दो प्रकार के शाक हैं जो अनजाने हैं । एक कटोरे में पकाया हुआ मांस है ।

बिंबिसार ने ऐसे मोटे रोट कभी देखे तक नहीं थे । खाने की बात तो दूर रही । उसने रोटी का एक टुकड़ा तोड़ा । तरुणी ने चारों के सामने एक-एक लोह पात्र रखा । और उसमें दूध उड़ेला । दूध गाढ़ा और मधुर था । राक्षसों में गायों से भी अधिक महत्त्व होता है भैंसों का । वह दूध भैंस का था । बिंबिसार ने तरुणी की ओर देखकर कहा—"देवि ! तुम्हारा नाम क्या है ?"

"चरिता···" तरुणी ने मुसकराते हुए उत्तर दिया ।

कड़कड़ाती भूख थी । चारों ने उस मोटे और कठोर रोट को खाना प्रारंभ किया । दूध के साथ उसे खाया ।

बिंबिसार ने मांस का कटोरा पहले ही अलग रख दिया था । वह शाकाहारी था । मांसाहार उसके लिए त्यक्त था । उसमें जैनत्व के संस्कार थे ।

मांसाहार मानसिक वृत्तियों को बिगाड़ता है और मादकता पैदा करता है, यह वह जानता था ।

तरुणी ने बिंबिसार की ओर देखकर कहा—"महाशय ! आप मांस क्यों नहीं खाते ? यह हरिण का ताजा मांस है ।"

बिंबिसार बोला—"देवि ! दूध और रोट में जो मिठास है उसके समक्ष सारी चीजें फीकी हैं ।"

इतने में ही दूसरी दो दासियां चार रोट और भात लेकर आयीं । वे आश्चर्यचकित रह गयीं यह देखकर कि जो पहले परोसा गया था, उसमें से आधा भी नहीं खाया गया है ।

चरिता बोली—"महाशय ! आप सब खाने में बहुत मंद और कमजोर लगते हैं ।"

"हां, देवि ! हम इस पूरे रोट को तो खा ही नहीं सकते ।" यह सुनकर वह तरुणी और अन्य नारियां खटखटा कर हंस पड़ीं । चरिता ने कहा—"तो फिर

आप जीते कैसे हैं ? हमारे यहां तो ऐसे आठ-दस रोट खा लेना सामान्य बात है।"

बिंबिसार ने हंसते हुए तरुणी से कहा—"देवि ! इसीलिए तो आप सबकी शक्ति अजोड़ है।"

चारों भोजन कर चुके। तत्काल एक दासी ने पूछा—"मद्यपान करेंगे ?"

"नहीं।"

कुछ ही समय के पश्चात् एक राक्षस सैनिक आया और मस्तक झुकाकर बोला—"महाराजाधिराज महाराज शंबुक आपको याद कर रहे हैं। आप मेरे साथ चलें।"

बिंबिसार और धनंजय उनके साथ चल दिये।

लगभग एक घटिका पर्यन्त भूगर्भ मार्ग में चलते रहे। सामने एक दीवार आयी। वहां दो मशाल जल रहे थे। राक्षस ने दीवार में लगे एक कड़े को बाहर खींचा। तत्काल दीवार में एक पत्थर सरका। बिंबिसार ने देखा की भीतर एक सोपान श्रेणी है। उस राक्षस के साथ सभी सोपान श्रेणी चढ़ने लगे। लगभग सौ सीढ़ियां चढ़ने के पश्चात् एक दूसरा द्वारा आया। वह खुला था। वहां भयंकर आकृति वाले दो राक्षस खड़े थे। सभी उस द्वार मार्ग से एक खण्ड में आए।

बिंबिसार ने देखा कि उस खण्ड में सिंह, बाघ और मृग के चर्म यत्र-तत्र दीवारों की खूटियों पर लटक रहे थे। प्रत्येक कोने में पांच-पांच भाले, पांच-पांच कृपाण तथा धनुष्य और बाणों से भरे तूणीर व्यवस्थित रूप में रखे हुए थे।

उस खण्ड में आने के पश्चात् सैनिक ने एक लटकती हुई स्वर्ण जंजीर को खींचा और उस खण्ड का मुख्य द्वार खुल गया।

कुछ ही क्षणों के पश्चात् उस राक्षस सैनिक ने कहा—"आप मेरे पीछे-पीछे आ जायें।"

अनेक खण्डों को पार करते हुए वे चल रहे थे। एक खण्ड के द्वार पर दो सशस्त्र सैनिक खड़े थे। उसने सबको वहां रोक लिया। सब वहां एक घटिका पर्यन्त खड़े रहे।

एक श्यामवर्ण की राक्षस सुन्दरी पर्दे से बाहर आयी और उन सबको अन्दर आने का संकेत किया।

वे एक विशाल और सुन्दर खंड में प्रविष्ट हुए। एक ओर स्वर्ण का पलंग पड़ा था और दूसरी ओर रत्नजटित बड़ा सिंहासन था। बिंबिसार और धनंजय की दृष्टि उस सिंहासन की ओर गई। दोनों चौंक उठे। उन्होंने देखा एक स्वस्थ और मांसल व्यक्ति उस पर रौब से बैठा है। वह प्रसन्न मुद्रा में है। उसके गले में सुपारी जितने बड़े-बड़े मोतियों की माला है और कमर में वज्रमंडित स्वर्ण की करधनी है। अन्यान्य अनेक प्रकार के अलंकारों से सज्जित उन्होंने शंबुक को

देखा। वह मात्र पचास वर्ष की उम्र का था। किन्तु वह पचीस वर्ष के नवयुवक जैसा तरुण लगता था। शरीर का रंग गहरा लाल होने पर भी तेजस्वी था। आंखें भय पैदा करने वाली थीं।

उसके सिंहासन के पास चार अर्धनग्न तरुणियां खड़ी थीं। वे चामर डुला रही थीं।

बिंबिसार और धनंजय—दोनों ने सिंहासन के निकट जाकर मस्तक नवाकर हाथ जोड़े। फिर बिंबिसार से मधुर स्वर में कहा—"राजेश्वर शंबुकराज की जय हो। जिसकी कीर्तिगाथा को सुनकर देवता भी आकर्षित होते हैं, ऐसे समर्थ और शक्तिशाली महाराजाधिराज की जय हो।"

बिंबिसार ने यह बात प्राकृत भाषा में कही थी। इसलिए शंबुक अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला—"तेरी उम्र छोटी है। कहां से आया है?"

"महाराज, मैं उत्तर भारत से आया हूं।"

"क्यों आया है? तेरा नाम क्या है?"

"महाराज! इस सेवक का नाम है जयकीर्ति। मैं उत्तर भारत का प्रसिद्ध वीणावादक हूं। एक वर्ष पूर्व एक संगीतज्ञ ने आपकी उदारता और संगीत-प्रेम के विषय में मुझे बतलाया था और उसने मुझे आग्रहपूर्वक आपसे मिलने के लिए कहा था। मैं आपका मनोरंजन करने आया हूं।"

"हुं···तेरे साथ यह कौन है?"

"यह मेरा साथी है। किन्तु एक मेरी मंदभाग्यता···।" कहते-कहते बिंबिसार रुक गया।

एक तरुणी ने राक्षसराज के हाथ में मद्य का पात्र दिया और शंबुक ने उसे एक ही श्वास में पी डाला। उसने पूछा—"युवक! निःसंकोच बता कि तेरी मंदभाग्यता क्या थी?"

"मेरे साथ मृदंग और वेणुवादक—दो साथी और थे। परन्तु मार्ग में उनको किसी ने भड़का दिया और वे वहां से भाग छूटे।"

राक्षस ने अट्टहास करते हुए कहा—"और तू नहीं भड़का?"

"आपकी उदारता, मूल्यांकन की वृत्ति और संगीत-प्रेम के प्रति मेरे में विश्वास जग गया था।"

"तेरी वीणा में कौन-सी शक्ति है?"

"यह तो आप सुनेंगे तब पता चलेगा। मैं अपनी विशेषता स्वयं क्या बताऊं।"

"हुं···हुं···किसी के निद्रा-भंग न होती हो तो क्या तू उसकी निद्रा-भंग कर सकता है?"

"हां, महाराज!"

"मेरी पुत्री तीन महीनों से निद्राधीन है। केवल मध्यरात्रि में एक बार जागती है और उसी समय भोजन कर सो जाती है। किसी भी उपाय से वह फिर नहीं जागती। यदि तू उसको जगाने में सफल हो जाएगा तो मैं तुझे मुंहमांगा स्वर्ण दूंगा।"

"महाराज की जय-विजय हो। आप जब आज्ञा देंगे, यह सेवक तैयार है। पारितोषक की कोई लालसा नहीं है।"

'तो कल प्रातः तैयार रहना।"

"जैसी आज्ञा···" कहकर बिंबिसार ने मस्तक नवाया। धनंजय ने भी नमस्कार किया।

राक्षसराज ने कहा—"जयकीर्ति ! तेरे रहने की व्यवस्था मैंने अपने निवास-स्थान पर कर दी है। तेरे साथियों को तथा सामान को सेवक ले आएंगे। तू मेरी इस दासी के साथ जा।"

१२. महाघोष

राक्षसराज शंबुक के पैंतालीस वर्ष की मात्र पांच रानियां थीं। किन्तु उपपत्नियां अनेक थीं। वे सब तरुण थीं। वे तरुणियां प्रायः परिचारिकाओं के रूप में भवन में रह रही थीं। राक्षसराज के केवल दो सन्तानें थीं। एक तो अठारह वर्ष की कन्या और एक दो वर्ष का पुत्र था। कन्या का नाम प्रियंबा था।

कन्या स्वस्थ थी। कोई खास रोग नहीं था। अभी-अभी तीन माह पूर्व एक दिन सायंकाल के समय वह बैठी बातें कर रही थी। अचानक उसे जंभाइयां आने लगीं और तब वह निद्राधीन हो गयी। दो दिन तक वह निरन्तर सोती रही। सभी ने यह माना कि यह सम्भवतः थककर सोयी है, इसलिए गहरी नींद ले रही थी। जब तीसरे दिन अनेक प्रयत्नों के बावजूद नहीं जागी, तब सब चिन्तित हो गये। राक्षसराज का प्रमुख वैद्य उसी नगरी में रहता था। वह आया। नाड़ी-परीक्षण करने के बाद भी उसे कोई रोग ज्ञात नहीं हो सका। फिर भी उसने अनेक जड़ी-बूटियों के प्रयोग किए, पर नींद नहीं टूटी। अन्यान्य अनेक उपचार हुए।

राक्षसराज ने अपनी कुलदेवी की आराधना की। विविध प्राणियों की बलि दी गयी। एक महीने के पश्चात् इन प्रयोगों का यह परिणाम हुआ कि प्रियंबा मध्यरात्रि की वेला में एक बार जागती, मल-मूत्र विसर्जित करती, भोजन करती और फिर सो जाती। वह न किसी से बोलती और न किसी की ओर देखती। यह क्रम चलता रहा। सबसे बड़ी कठिन बात थी कि उस वन-प्रदेश में कोई भी दूसरा वैद्य आने से हिचकता था। राक्षसराज के समक्ष कौन आये ! आज तक उस वन में गया हुआ मनुष्य फिर नहीं लौटा।

एकाकी प्रिय कन्या के लिए राक्षसराज ने अपनी इच्छानुसार अनेक प्रयोग किये। राक्षसों के पास जो नानाविध वाद्य थे वे भी बजाकर देखे। किन्तु प्रियंबा की नींद में कोई अन्तर नहीं आया।

इस जटिल परिस्थिति में आगन्तुक को देख राक्षसराज के मन में कुछ आशा जागी थी और इसलिए उसने वीणा की शक्ति का परीक्षण करने की बात सोची।

बिंबिसार राग के प्रभाव को जानता था। एक महान् गुरु के पास रहकर उसने अपूर्व सिद्धि प्राप्त की थी। इसी श्रद्धा के आधार पर उसने शंबुक की बात मानकर कन्या के उपचार की स्वीकृति दी थी।

प्रातःकाल हुआ।

बिंबिसार ने प्रातः कार्य से निवृत्त होकर अपनी महाबिंब वीणा को स्वरबद्ध कर थाम लिया था।

धनंजय बोला—"महाराज ! आपने भारी जोखिम का कार्य स्वीकार किया है।"

"जोखिम ?"

"हां, महाराज ! यदि राक्षसराज की कन्या की निद्रा भंग न हो सकी तो वह सबकी बलि दे देगा।"

"तेरी बात सही है, किन्तु मुझे अपनी गुरुशक्ति पर पूरी श्रद्धा है। गुरुदेव ने एक बार मुझे राक्षसों की अतिप्रिय राग के विषय में समझाया था। वे कहते, इस राग की आराधना नहीं करनी चाहिए। कोई व्यक्ति यदि कुम्भकर्णी नींद की स्थिति में हो या अकारण मूर्च्छित हो जाए तब इस राग की आराधना करनी चाहिए। इस राग का नाम है 'महाघोष'। इस राग की उत्पत्ति के विषय में यह किंवदन्ती है—प्राचीनकाल में महात्मा शुक्राचार्य ने भगवान शंकर की आराधना कर इस राग का निर्माण किया था। इस राग का स्वरान्दोलन इतना भयंकर होता है कि वह मनुष्य के ज्ञानतन्तुओं पर सीधा प्रहार करता है, उत्तेजित करता है। मुझे विश्वास है कि गुरुकृपा से महाघोष की आराधना अवश्य सफल होगी।"

इस प्रकार दोनों बातें कर रहे थे। तभी राक्षसराज के दो सेवक उनको बुलाने आये।

तत्काल हाथ में वीणा लेकर बिंबिसार खड़ा हुआ और साथ ही साथ धनंजय भी उठा।

वे अनेक छोटे-बड़े कक्षों को पार करते हुए राक्षसराज के अन्तःपुर के द्वार के निकट आये।

साथ में आये हुए सेवक दोनों ही बाहर खड़े रह गये। भीतर से दो तरुण दासियां बाहर आकर उनको अन्दर ले गयीं।

अन्तःपुर के विशाल खण्ड में पहुंचकर बिंबिसार ने देखा कि एक विशाल पलंग पर राक्षसराज की प्रिय कन्या प्रियम्बा सो रही है। राक्षसराज की सभी रानियां वहां घेरा बनाकर खड़ी थीं। दो दासियां पंखा झल रही थीं। राक्षसराज शंबुक एक स्वर्ण-आसन पर बैठा था।

राक्षसराज ने बिंबिसार का स्वागत किया। उसे अपने पास वाले आसन पर बिठाया। सभी रानियां और दासियां गुलाब के फूल जैसे तरुण बिंबिसार की ओर देखने लगीं।

राक्षसराज बोला—"जयकीर्ति ! यदि तू मेरी चिन्ता दूर कर देगा तो मैं तेरा उपकार जीवन भर नहीं भूलूंगा।"

"महाराज ! मैं अपना कर्त्तव्य करने में कोई कसर नहीं रखूंगा। फिर भी मैं वैद्य नहीं हूं। मैं नहीं जानता कि इस कन्या को कोई रोग है या नहीं।"

"नहीं, मित्र ! तुमको अवश्य सफलता मिलेगी। कल मध्यरात्रि में मैं अपनी कुलदेवी की आराधना में तल्लीन था। उस समय मेरा अन्तर् बोल उठा कि तेरे प्रयत्न से ही मेरी कन्या स्वस्थ होगी। अब तू अपना कार्य कर।"

बिंबिसार बोला—"महाराज ! मैं कन्या के पलंग के निकट बैठकर ही राग की आराधना करूंगा। आप सबको एक ओर बैठना पड़ेगा।"

तत्काल सभी वहां से एक ओर हटकर बैठ गये।

बिंबिसार वीणा लेकर खड़ा हुआ। उसने एक बार प्रियंबा की ओर देखा। वह ताम्रवर्णी युवती सघन निन्द्रा में सो रही थी। उसके आनन पर यौवन की ऊर्मियां अठखेलियां कर रही थीं। पूरे शरीर पर केवल एक कौशेय चादर थी। दोनों भुजाएं खुली थीं। उसका शरीर सुगठित और आकर्षक था।

बिंबिसार देवी सरस्वती का स्मरण कर वहां आसन पर बैठ गया। उसके मानस चक्षु जितारी देश की पर्वतमाला के बीच भव्य मन्दिर में विराजित देवी सरस्वती की सौम्य प्रतिमा देख रहे थे।

उसके मन में सफलता-असफलता का कोई विकल्प नहीं था। देवी सरस्वती की स्तुति कर बिंबिसार ने वीणा के तार पर झंकार किया। स्वर-मेल यथार्थ था।

जीवन के छोटे-मोटे कार्यों को जो व्यक्ति फल की आशा किये बिना ही करता है तो उसे सफलता मिल सकती है, उसका पुरुषार्थ सिद्ध होता है। गुरुदेव के कहे हुए ये स्वर बिंबिसार के मानस-पटल पर नाचने लगे। उसने मन-ही-मन गुरु का स्मरण किया और महाघोष नामवाली राक्षसप्रिय राग की आराधना प्रारम्भ की।

इससे पूर्व बिंबिसार को इस राग की आराधना का अवसर नहीं मिला था।

गुरु ने यह भी कहा था कि इस राग को कहीं भी प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। पर···।

उस समय राक्षसों का युग समाप्त-प्राय था। केवल शंबुक वन में यह अवशेष रह गया था। दक्षिण भारत के पहाड़ी प्रदेशों में यत्र-तत्र वे रह गये थे।

जिस समय संसार पर राक्षस जाति का वर्चस्व था, पराक्रमी और शक्ति सम्पन्न राक्षस देवताओं को भी आकुल-व्याकुल और स्थान-च्युत कर देते थे, उस समय शुक्राचार्य ने महाघोष राग का प्रवर्तन किया और वह राग यौवन काल में क्रीड़ा कर रहा था। जैसे-जैसे राक्षस जाति का ह्रास होता गया वैसे-वैसे राग की विस्मृति भी होती गयी।

बिंबिसार ने श्रद्धापूर्वक महाघोष राग की स्वर लहरियां उत्पन्न कीं। महाघोष राग का स्वरूप ही ऐसा भयंकर होता है कि सुनने वालों के ज्ञानतन्तु मस्तिष्क में हलचल पैदा कर देते हैं।

एक घटिका बीती। राग अपने पूर्ण स्वरूप में नाच रही थी। वहां उपस्थित राक्षसराज की रानियां और दासियां उस राग की लहरियों को सहन न कर सकने के कारण बार-बार उठतीं और नाचने के लिए तत्पर हो जातीं। किन्तु घोर निद्रा में सो रही कन्या को देख वे ठिठक जातीं और पुनः अपने आसन पर बैठ जातीं। यही स्थिति शंबुक की भी हो रही थी। महाघोष राग का आन्दोलन उसके प्राणों को चंचल कर देता था और वह बार-बार खड़ा हो जाता था।

धनंजय पर भी यही प्रभाव हो रहा था। वह बार-बार प्रियंबा और बिंबिसार की ओर देखता था।

यौवनकाल सदा अनोखा होता है। महावीणा पर यौवनकाल थिरक रहा था। निद्राधीन प्रियंबा का मस्तक यदा-कदा प्रकम्पित होता था। बिंबिसार को यह सब ज्ञात नहीं था। वह आंखें बन्द कर तन्मयता से राग की आराधना कर रहा था। धनंजय बार-बार प्रियंबा में होने वाले परिवर्तनों की ओर देख रहा था।

तीन घटिकाएं पूरी हुईं।

बिंबिसार ने वीणा के दो ग्राम उद्घाटित किये और कुछ ही क्षणों के पश्चात् प्रियंबा किसी भयंकर स्वप्न को देखकर चौंक पड़ी हो, इस प्रकार वह चौंककर बैठ गयी और आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगी। राक्षसराज भी यकायक खड़ा हो गया।···रानियां भी खड़ी हो गयीं।

प्रियंबा के मुंह से मां-मां की आवाज निकली। उसकी मां आये, उससे पहले ही प्रियंबा अपनी मां के पास जाकर उससे लिपट गयी। शंबुक भी कन्या की ओर बढ़ा।

बिंबिसार अभी भी राग की आराधना में तल्लीन हो रहा था। उसे कुछ भी ज्ञात नहीं था।

धनंजय इस चमत्कार से आश्चर्यमूढ़ हो गया। शंबुक और उसकी पत्नियां प्रियंबा के साथ नाचने लगीं। धनंजय भी अपने आपको सम्भाल नहीं सका। वह तत्काल उठा और अपने स्वामी बिंबिसार को बांहों में जकड़ लिया।

राग स्थगित हो गयी। बिंबिसार ने देखा—प्रियंबा की शय्या खाली पड़ी है। खण्ड में सभी नाच रहे हैं। प्रियंबा भी नाच रही है। धनंजय बोला—"महाराज! मैं आपका सेवक आपके चरणों में···।"

बीच में ही बिंबिसार बोल उठा—"मित्र! मैं भी आश्चर्यचकित हूं। इससे पहले मेरी कसौटी कभी नहीं हुई।"

बाहर वर्षा का तांडव भी महाघोष राग जैसा भयंकर बन गया था।

सभी का नाचना बन्द हो गया। राक्षसराज बिंबिसार के पास आया और अपनी प्रचण्ड भुजाओं से बिंबिसार को एक नन्हें बालक की तरह उठा लिया। वह बोला—"जयकीर्ति! तूने मेरे पर महान् उपकार किया है। जो चाहे वह मांग ले। मैं तेरी हर मांग पूरी करूंगा।"

बिंबिसार ने कुछ स्वस्थ होकर कहा—"महाराज! आज मुझे भी बहुत आनन्द हो रहा है। मुझे इस प्रकार की सफलता मिलेगी, यह कल्पना भी नहीं थी। परन्तु···"

"बोलो मित्र! बिना संकोच किए कहो।"

बिंबिसार ने कहा—"महाराज! राजकन्या का तेल मर्दन करें और फिर उसे स्नान कराकर यह प्रबन्ध करें कि रात भर उसे नींद न आने पाये।"

"आज रात को तो उत्सव होगा। तू जो चाहे वह मांग।"

"महाराज! मैं सोचकर मागूंगा।"

"जैसी तेरी इच्छा", कहकर राक्षसराज ने उत्सव करने की आज्ञा प्रसारित की और यह भी बता दिया कि रातभर जागरण होगा और मन्दिर के सामने उत्सव आयोजित होगा।

रात का समय। सभी मन्दिर के सामने विशाल मैदान में एकत्रित हो गये।

शंबुक अपने पूरे परिवार के साथ वहां आया। प्रियंबा भी साथ थी।

सभी राक्षसों के मध्य मदिरा के भांड को लेकर दासियां घूम रही थीं। शंबुक के पास ही बिंबिसार अपने साथियों के साथ बैठा था और राक्षस जाति के उत्सव को मनोयोग से देख रहा था।

मध्यरात्रि का समय। सभी राक्षस मण्डलाकार नृत्य करने लगे। शंबुक के आग्रह से बिंबिसार भी अपने साथियों के साथ नृत्य में शामिल हुआ।

विचित्र प्रकार के वाद्य गरज रहे थे।

आकाश में मेघों का गर्जारव भी हो रहा था।

प्रियंबा मस्त होकर सबके साथ नाच रही थी। उसने अपनी मां से जयकीर्ति की आराधाना के विषय में जान लिया था। वह बार-बार उसकी ओर देख रही थी।

नृत्य के बीच भी यदा-कदा मद्यपान चलता था।

बिंबिसार और धनंजय थक गये थे। उन्होंने सोचा नृत्य सारी रात चलेगा। पर हम···।

बिंबिसार ने राक्षसराज से आज्ञा ली और पास वाले मन्दिर में जा विश्राम किया।

१३. रहस्यमय खजाने की ओर

दस दिन बाद वर्षा शान्त हुई। बिंबिसार ने राक्षसराज से कहा—"महाराज! अब मैं विदा होना चाहता हूं।" शंबुक बोला—"मित्र! अभी तक मैंने तेरा कोई सत्कार-सम्मान नहीं किया है। तूने मेरी महान् चिन्ता को दूर कर डाला, पर मैं अभी तक उसका ऋण नहीं चुका सका। देख, मेरे इस छोटे से प्रदेश में कैसी समृद्धि है, मेरे सैनिक कितने बलवान् हैं। मेरे धनुर्धर कितने निपुण हैं। यह सब तुझे देखना है, मुझे दिखाना है। सुन, एक बार मैंने अपने धनुर्धरों में से दो-चार की परीक्षा लेनी चाही। मैंने उनको एक खुले मैदान में बुलाकर आकाश की ओर इशारा करते हुए कहा—'देखो आकाश में वह पक्षियों का झुण्ड उड़ रहा है। उनको तुम अपने बाणों का निशाना बनाकर नीचे पृथ्वी पर पटको।' उन्होंने तत्काल धनुष्य पर बाण चढ़ाए और उन पक्षियों की ओर बाण छोड़े। देखते-देखते वे सारे पक्षी बाणों से बिंध गये और पृथ्वी पर आ गिरे।"

"महाराज! आप अपूर्व संपदा के धनी हैं। आपका सहज-सरल व्यवहार मुझे यहां रोक रहा है। पर···।"

"पर क्या? क्या यह उतावल इसलिए हो रही कि नवपरिणीता पत्नी का स्मरण हो आया है? किन्तु इस वर्ष मैं अपने कल्याणकारी मित्र को कैसे जाने दूंगा।"

बिंबिसार बोला—"ऐसा कुछ नहीं है। आपकी ममता मेरे लिए बंधन बन गई है। आप कहते हैं तो मैं कुछ दिनों के लिए रुक जाऊंगा।"

शंबुक ने पूछा—"क्या तू अविवाहित है?"

"हां, कृपावतार! परन्तु घर जाते ही मेरा विवाह हो जाने की संभावना है।"

शंबुक ने जयकीर्ति के दोनों हाथों को पकड़ते हुए कहा—"मित्र! तू

निश्चिन्त रह। तुझे मैं एक विशेष चीज दिखाऊंगा। कल हम एक विशेष स्थान पर जाएंगे।"

२

दूसरे दिन।

शंबुक अपने पांच महारथियों के साथ तैयार हो गया और बिंबिसार और धनंजय भी तैयार हो गए।

बिंबिसार और धनंजय को तैयार खड़े देखकर शंबुक बोला—"मित्र! तेरा यह साथी यहीं रहे तो अच्छा रहेगा।"

"जैसी आपकी आज्ञा। परन्तु इससे कोई भय नहीं है। यह मेरा अति-विश्वासपात्र साथी है।"

"भय की बात नहीं है। मैं तुझे अपना गुप्त धनभंडार दिखाना चाहता हूं। तेरी इच्छा है तो इसको साथ भले ही ले ले।"

बिंबिसार ने तत्काल धनंजय को वहीं रुकने के लिए कहा। धनंजय शंबुक को नमस्कार कर लौटा, पर उसका मन अत्यन्त आकुल-व्याकुल था। उसने सोचा, राक्षसजाति का क्या विश्वास। राक्षस कुछ भी कर सकते हैं।

और शंबुक बिंबिसार को साथ ले नगर के बाहर निकल गया।

शंबुक के सभी पांच अंगरक्षक विशेष शस्त्रों से सज्जित थे। शंबुक के पास भी एक तेजस्वी धनुष्य था। उसका तूणीर स्वर्णमय था। उसमें स्वर्णरंगी बाण भरे थे।

एक आध कोस जाने के बाद वे एक गहन वन में प्रविष्ट हुए। वर्षा शान्त हो गई थी, पर सारे मार्ग पंकिल थे। आकाश में सूर्य चमक रहा था। पर उसकी तेजस्वी किरणें पर्याप्त रूप से वनप्रदेश में प्रवेश नहीं कर पा रही थीं। झाड़ी सघन और वृक्ष विशाल थे।

दो रक्षक आगे चल रहे थे। उसके पीछे शंबुक और जयकीर्ति और फिर तीन अंगरक्षक। सभी अपने-अपने अश्वों पर धीरे-धीरे उस पंकिल मार्ग से आगे बढ़ रहे थे।

शंबुक ने बिंबिसार से कहा—"मित्र! धनुर्विद्या का तुझे परिचय है?"

"नहीं, महाराज!"

"तेरे पास धनुष्य बाण तो है।" हंसते-हंसते शंबुक ने कहा।

"हां, महाराज! यह मात्र प्रवास के लिए उपयोग में आता है?" बिंबिसार ने कहा।

"तेरी इच्छा होगी तो मैं तुझे धनुर्विद्या सिखाऊंगा। मेरा प्रत्येक सैनिक महान धनुर्धर है। प्राचीन काल की धनुर्विद्या आज भाग्य से ही कहीं देखी जा सकती है। किन्तु हम राक्षसों ने इसका संरक्षण किया है।" शंबुक ने कहा।

"महाराज ! मैंने तो सुना था प्राचीनकाल में धनुर्विद्या के साथ मंत्रशक्ति भी जुड़ी हुई थी।"

"हां ! आज भी हम उस दिव्य शक्ति के धारक हैं। प्राचीनकाल में दिव्य शक्ति के आधार पर एक बाण से हजारों बाणों का सृजन किया जाता था। पर मैं आज एक बाण से तीन सौ बाण निकाल सकता हूं। इसके अतिरिक्त धनुर्विद्या संबंधी और भी अनेक रहस्य हमें प्राप्त हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो हम इस प्रदेश में टिक नहीं पाते। मेरा एक सैनिक हजार सैनिकों के साथ निर्भयतापूर्वक लड़ने में समर्थ है।"

यह सब सुनकर बिंबिसार आश्चर्यचकित रह गया। वह कुछ नहीं बोला।

"मित्र ! जिस खजाने का हम हजार वर्षों से संरक्षण करते आ रहे हैं, उसको पाने के लिए इसी वन-प्रदेश के पड़ोसी राजा ने एक बार हम पर आक्रमण किया था।"

"पड़ोसी राजा ने ? वह दुर्भागी कौन था ?"

"मगधपति प्रसेनजित ! किन्तु हमारे सैनिकों ने महाराज के सैनिकों की खूब धुलाई कर भगा डाला था। फिर मालव प्रदेश के राजा ने भी आक्रमण किया, किन्तु उसे भी मुंह की खानी पड़ी। उसको हमने ऐसी शिक्षा दी कि वह फिर कभी इस ओर नजर भी नहीं डालेगा। यह सारा हमारी धनुर्विद्या का चमत्कार था।"

बिंबिसार कुछ कहे उससे पूर्व ही एक हृदय-विदारक चीख सुनाई दी।

उसी क्षण शंबुक ने अपना धनुष्य संभाला और तूणीर से एक बाण उस पर चढ़ाया। दूसरे अंगरक्षकों ने भी अपने-अपने धनुष्य संभाल लिये।

शंबुक बोला—"मित्र ! घबराना मत। लगता है किसी वराह ने हमें देख लिया है।"

बिंबिसार ने चारों ओर देखा, पर कुछ भी नजर नहीं आया। वन सघन था।

और इतने में ही दूर से किसी के पदचाप सुनाई दिए। और उसी क्षण शंबुक ने बाण छोड़ा।

बिंबिसार को यह अटपटा-सा लगा। कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ता है, और न जाने बाण कहां जाकर गिरेगा ?

किन्तु एक ही क्षण पश्चात् भयंकर चीख सुनाई दी। शंबुक बोल पड़ा—"मित्र ! मेरा शब्दवेधी बाण वराह के शरीर में घुस गया है।" इतना कहकर उसने अपने अंगरक्षकों को इसकी खोज करने का आदेश दिया।

दोनों अंगरक्षक अपने-अपने घोड़ों से नीचे उतरे और जिस दिशा में शंबुक ने बाण छोड़ा था, उसी दिशा में आगे बढ़े।

लगभग एक घटिका के पश्चात् वे दोनों सैनिक एक विशालकाय वराह को घसीट कर ला रहे थे।

बिंबिसार को अत्यन्त विस्मय हुआ।

शंबुक बोला—"मित्र ! धनुर्विद्या का यह शब्दवेधी चमत्कार है।"

"महाराज ! मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है।"

आश्चर्य होना स्वाभाविक है। परन्तु हमारे लिए तो यह सहज बन गया है।" शंबुक ने कहा।

"किन्तु आपने लक्ष्य स्थिर कैसे किया ?"

शंबुक बोला—"जयकीर्ति ! इसकी चीख सुनकर मैंने एक अनुमान कर लिया था, किन्तु इसके पदचाप को सुनकर मैंने यह तय कर लिया कि वह कितनी दूरी पर है और वह किस गति से चल रहा है।

फिर उसी अनुपात में शक्ति लगाकर मैंने बाण छोड़ा। इधर देख, वराह का मस्तिष्क बिंध चुका है।

बिंबिसार ने वराह की ओर देखा। बाण उसके मस्तिष्क को चीरता हुआ गहरे में घुस गया था।

वराह को वहीं छोड़कर शंबुक अपने साथियों के साथ वहां से आगे बढ़ा। एकाध कोस आगे जाने पर एक खुला मैदान आया। वह चारों ओर से सघन वृक्षों से घिरा हुआ था।

सभी वहां अपने-अपने अश्वों से नीचे उतर गए। शंबुक ने जयकीर्ति से कहा—"मित्र ! आज जो खजाना मैं तुझे बताने वाला हूं उसको आज तक मेरे पूर्वजों के अतिरिक्त किसी ने नहीं देखा है। मेरे विश्वासपात्र सैनिक उस खजाने के विषय में जानते अवश्य हैं, पर उन्होंने भी कभी उसको देखा नहीं है। बाहर के और किसी भी व्यक्ति के देखने की बात तो प्राप्त ही नहीं होती।"

"महाराज ! मेरे पर आपकी विशेष कृपा है।"

"मित्र ! तूने मेरी कन्या को जीवनदान दिया है।" कहकर शंबुक वहां बिछी घास पर बैठ गया। जयकीर्ति को उसने अपने पास बिठा लिया। उसने कहा—"अभी तक हम भूखे हैं। कुछ खा-पी लें फिर मैं और तू—दोनों आगे चलेंगे।"

शंबुक ने अपना डिब्बा खोला। उसमें हिमकण जैसे श्वेत रंग के लड्डू थे। शंबुक ने एक लड्डू जयकीर्ति को देते हुए कहा—"मित्र ! यह हमारी विशिष्ट मिठाई है। तुम सब मधुगोलक बनाते हो, हम क्षीरगोलक बनाते हैं।"

दोनों लड्डू खाने लगे।

साथियों ने भी वहां भोजन किया।

शंबुक बोला—"जयकीर्ति ! क्या तूने कृष्णयुग के इतिहास की बातें सुनी हैं ?"

"हां, महाराज ! 'जय' नामक काव्य में मैंने उसे पढ़ा है।"

"उस महाकाव्य में महान् इतिहास है। आज उस युग को साढ़े तीन हजार वर्ष हो चुके हैं। किन्तु मैं उसे कल का ही इतिहास मानता हूं। आज हम जो महान् खजाना देखने जा रहे हैं, उसकी जानकारी मैं तुझे दे दूं।"

"महाराज ! सुनकर मुझे अत्यन्त हर्ष होगा।"

"कुरुक्षेत्र में कौरव और पांडव के बीच एक महान् युद्ध हुआ था। वह अठारह दिनों तक चला। उस संग्राम में लाखों व्यक्ति मारे गए। उसमें मेरे पूर्वज राक्षसराज अलंबुष भी परम पराक्रम से लड़कर वीरगति को प्राप्त हुए थे और कुछेक हमारे व्यक्ति रणक्षेत्र से भाग गए थे। उस भीषण संग्राम में अनेक राजे और महारथी मौत के अतिथि बन गए थे। हमारे पूर्वज राक्षसराज के कुछ व्यक्ति रात्रिकाल में रणभूमि में जाते और मृत्यु प्राप्त योद्धाओं के दिव्य रत्नालंकार ले आते। ऐसे अनगिन अलंकार इस वन में एकत्रित हो गए थे। भविष्य में यह संपत्ति कार्यकारी होगी, इसी आशा से हमारे पूर्वजों ने उस सारी संपत्ति को एक गुप्त स्थान पर सुरक्षित रख दिया। वह विपुल और दिव्य खजाना आज भी वैसा ही है। मैं तुझे वह आज दिखाऊंगा। इस खजाने को एकत्रित किए साढ़े तीन हजार वर्ष बीत चुके हैं। हमारी अनेक पीढ़ियां बीत गईं। इस खजाने की कुछ संपत्ति काम में आ चुकी है, फिर भी जो कुछ बचा है वह भी कुबेर के भंडार की स्मृति कराने वाला है। हमारे पूर्वज राक्षसराज अलंबुष का मुकुट आज भी हमारे पास सुरक्षित है। वह इस खजाने में है। उस मुकुट को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि उस युग के वीर पुरुष कैसे होते थे ? दुस्सासन के गले की मुक्तामाला के एक-एक मोती को देखने से यह प्रतीत होता है कि वे बहुमूल्य मोती हैं। उनका मूल्य एक साम्राज्य से भी अधिक है।"

बिंबिसार यह सुनकर आश्चर्य से भर रहा था। शंबुक बोला—"मित्र ! मैं तुझे अनेक वस्तुएं दिखाऊंगा। उस खजाने में महाराज जयद्रथ की तलवार, दुर्योधन की गदा, घटोत्कच की स्वर्णमय शक्ति-शस्त्र, ये सब आज भी सुरक्षित हैं।"

उसके बाद शंबुक ने धनुष्य और तूणीर को संभाला और हाथ में भाला ले लिया।

एक सैनिक आगे बढ़ा और जयकीर्ति की आंखों पर कौशेय की एक पट्टी बांध दी।

शंबुक बोला—"मित्र ! अन्यथा मत समझना। कुछ धैर्य रखना होगा।"

"महाराज ! आप मुझे जो खजाना दिखाने जा रहे हैं, यह आपकी महान् उदारता है। इस कार्य में इतनी सावधानी अवश्य ही रखनी चाहिए।"

शंबुक ने अपने सैनिकों को गुप्त संकेतों से कुछ आज्ञा दी। सैनिक तत्काल सामने की दिशा में चले गए और भूमि पर औंधे सो गए।

आसपास नजर डालकर शंबुक ने बिंबिसार का हाथ पकड़ा और कहा—"मित्र ! किसी भी प्रकार का भय न रखते हुए तू मेरे कंधे पर हाथ रखकर धीरे-धीरे चला आ।"

"जी"—बिंबिसार ने कहा।

१४. अलंबुष का खजाना

उस पंकिल और संकरी पगडंडी पर दोनों लगभग आधे कोस तक चले। शंबुक ने पूछा—"जयकीर्ति ! व्याकुलता तो नहीं है ?"

"जहां आपका सहारा हो, वहां आकुलता कैसी ?" बिंबिसार ने हंसते हुए कहा।

"अब हम खजाने के निकट पहुंच गए हैं।"

बिंबिसार ने प्रसन्नता व्यक्त की, क्योंकि इस प्रकार आंखों पर पट्टी बांधकर चलने का अवसर जीवन में कभी नहीं आया था।

वे आगे बढ़े। एक स्वर पर शंबुक रुक गया। बिंबिसार भी खड़ा रह गया। शंबुक बोला—"कुछ समय तक हिले-डुले बिना तू यहां खड़ा रह। मैं अभी देखकर आता हूं।"

बिंबिसार उसी पगडंडी पर खड़ा रह गया। आंखों पर पट्टी बंधी हुई थी। अंधकार के अतिरिक्त कुछ भी दृश्य नहीं था। उसने पट्टी खोलकर फेंक देने की बात सोची, पर राक्षसराज की गुप्तता के संरक्षण को प्रथम कर्त्तव्य मानकर उसने वैसा नहीं किया।

शंबुक पगडंडी से १५-२० कदम आगे गया और विशाल वृक्ष के पास खड़ा हो गया। उसने मुड़कर बिंबिसार की ओर देखा, फिर मन-ही-मन कुछ मन्त्रोच्चारण कर वृक्ष के आगे सिर झुकाकर खड़ा रह गया। कुछ समय पश्चात् उसने वृक्ष की एक सूखी लगने वाली शाखा पकड़ी, उसे तीन बार खींचा और देखा कि बिना किसी शब्द के उस विशाल वृक्ष के स्कंध में एक द्वार जैसा कुछ खुल गया है।

राक्षसराज ने तीन बार वृक्ष को नमस्कार किया। फिर वह तत्काल बिंबिसार के पास गया और उसे इस वृक्ष के पास ले आया। फिर वह बोला—"जयकीर्ति ! एक संकरे द्वार से हमें भूगृह में जाना है। पहले मैं उसमें प्रविष्ट

होता हूं। फिर मैं तेरा हाथ पकड़ लूंगा। पहले तू अपने सिर को अन्दर डालना।"

"जी"—जयकीर्ति ने कहा।

शंबुक सावधानी पूर्वक अंदर घुसा। अपने सारे शस्त्र साथ में थे। फिर उसने जयकीर्ति को भी अंदर खींच लिया।

अब दोनों भूगृह की सीढ़ियां उतरने लगे। बीस सीढ़ियां उतरे ही थे कि वह द्वार अपने आप बंद हो गया।

वे और नीचे गए। सघन अंधकार। परन्तु राक्षसराज की तेजस्वी और चमकीली आंखें सब कुछ देखने में समर्थ थीं।

आगे चलकर शंबुक एक दीवार के पास खड़ा रहा और बोला—"जय अलंबुष, जय अलंबुष।"

तत्काल प्रतिध्वनि सुनाई दी।

फिर शंबुक ने उस दीवार के निश्चित स्थान पर हाथ रखा। कुछ ही क्षणों में दीवार में एक छिद्र हो गया। शंबुक ने अपनी तर्जनी अंगुली उस छिद्र में डाली और तीन बार तीन दिशाओं में उस अंगुलि को दबाया और उसी समय बिना किसी शब्द के पूरी दीवार एक ओर खिसक गई।

शंबुक ने भीतर देखा। प्रकाशमय स्थान था। अंदर प्रविष्ट हुए। खिसकी हुई दीवार पुनः स्थान पर लग गई। शंबुक ने जयकीर्ति की आंखों से पट्टी हटाते हुए कहा—"मित्र! अब हम उस खजाने के पास आ गए हैं जो विस्मयकारी और धन से भरा हुआ है। ऐसा खजाना सम्राटों के पास भी दुर्लभ है। यह अलंबुष का महान् खजाना है।"

जयकीर्ति ने देखा। एक मार्ग दृग्गोचर हो रहा था। उसने पूछा—"महाराज! क्या हम भूगृह में हैं?"

"हां, अभी हमें आगे और चलना है।"

"पर, यह प्रकाश कहां से आ रहा है? प्रकाश को देखकर मेरा मन आश्चर्य से भर गया है।"

"जयकीर्ति! यह आश्चर्य केवल तेरा ही नहीं है, हम भी इस प्रकाश को देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हैं। श्रीकृष्ण-युग के महान् शिल्पी महात्मा मयदानव ने इस भूगृह का निर्माण किया है और उसने इसमें ऐसी व्यवस्था की है कि बारह महीनों इसमें सदा प्रकाश रहे। यह प्रकाश किसका है? कहां से आता है? यह हम भी नहीं जान सके हैं। प्रकाश के साथ-साथ इस भूगृह में हवा और पानी का भी प्रबन्ध है। इसमें वर्षों तक कोई निवास करना चाहे, तो भी कोई बाधा नहीं आ सकती। यह गुप्तगृह छोटा नहीं है, चक्रवर्ती के प्रासाद जैसा विशाल और भव्य है।"

वे चल रहे थे। चलते-चलते शंबुक एक दूसरी दीवार के पास खड़ा रह गया। उसने दीवार को नमस्कार कर अपना मस्तक झुकाया। फिर अपने दोनों हाथ दीवार के नीचे के भाग में स्थापित किए। कुछ ही क्षणों के पश्चात् दीवार में एक छिद्र हुआ। शंबुक ने एक चाबी निकाली और उस छिद्र में घुमाई। जयकीर्ति (बिंबिसार) आश्चर्यभरी दृष्टि से सब कुछ देख रहा था। दीवार में एक द्वार जैसा हो गया। प्रकाश वहां भी यथावत् था।

वे दोनों और आगे गए। अनेक आश्चर्यकारी शिल्प-कलाओं का साक्षात्कार करता हुआ जयकीर्ति विस्मय से भर गया।

वे खजाने के पास पहुंचे। विशाल और प्रकाशमय उस खंड में रत्नजटित अलंकारों के ढेर लगे थे। अनेक प्रकार के आयुध और शस्त्रास्त्र व्यवस्थित रखे हुए थे। दुर्योधन की स्वर्णमय गदा, जयद्रथ की लंबी तलवार दिखाते हुए शंबुक ने जयकीर्ति से कहा—"मैं इस गदा को स्वयं नहीं उठा सकता। महाराज दुर्योधन की गदा इतनी भारी है तो भीम की गदा कितनी भारी होगी? ऐसे महान् शक्तिशाली पुरुष आज···?"

बीच में ही जयकीर्ति ने कहा—"सत्य है महाराज! काल की शक्ति के समक्ष सभी लाचार हैं।"

शंबुक ने कहा—"जयकीर्ति! इस खजाने से तुझे जो चाहिए, जितना चाहिए वह ले ले।"

"नहीं, महाराज! मुझे इन अमूल्य वस्तुओं से क्या करना है?"

"जयकीर्ति! तूने मेरी पुत्री को जीवनदान दिया है। तुझे जितना दूं उतना थोड़ा है। तुझे यहां से कुछ लेना ही होगा।"

जयकीर्ति ने कहा—"महाराज! एक वस्तु मांगता हूं।"

"अभी मांग लो।" शंबुक ने प्रसन्न होकर कहा।

"महाराज! मैं एक कलाकार हूं। इन रत्नों का संरक्षण मेरे लिए कठिन है। आप मुझे धनुर्विद्या सिखाने की कृपा करें।"

"तू धनुर्विद्या सीखकर क्या करेगा?"

"मुझे उसका शौक है।"

"अच्छा" कहकर शंबुक उस खंड से बाहर आया।

दोनों आगे बढ़े और चलते चले।

१५. दीपक बुझ गया

हृदय पर लगी हुई चोट अनेक बार प्राणघातक होती है। उसमें भी जब हृदय की कल्पना भस्मसात् हो जाती है तब मनुष्य के प्राण सूख जाते हैं। जब मनुष्य की

आशा भग्न हो जाती है तब चिन्ता उसे चिता-सी लगती है और मनुष्य तब अपनी हृदय की आग से धीरे-धीरे राख होता जाता है।

आम्रपाली के पालक-पिता आर्य-महानाम के साथ ऐसा ही हुआ। उसने अपनी पालक-पुत्री आम्रपाली का बड़े लाड-प्यार के साथ लालन-पालन किया। कन्या की काया, देवदुर्लभरूप और अजेय बुद्धि-चातुर्य से मंडित थी। जब उसका रूप निखरा तब महानाम ने एक सुन्दर स्वप्न संजोया था कि आम्रपाली का रूप किसी सामान्य घर की शोभा नहीं बनेगा, पर किसी सम्राट की राजरानी के रूप में प्रासादों में शोभित होगा। प्रायः प्रत्येक माता-पिता अपनी संतान का रूप असाधारण ही मानते हैं। मोह और ममता का यह प्रभाव अनादिकाल से चला आ रहा है किन्तु आम्रपाली के सौन्दर्य के प्रति माता-पिता की ममता से भी वास्तविकता का आधार अधिक था। महानाम अपनी कन्या आम्रपाली के राजरानी का स्वप्न संयोए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी। परन्तु आम्रपाली जिस दिन जनपदकल्याणी बनी या दूसरे शब्दों में वह वैशाली के युवकों के मनोरंजन की कामणगारी नगर-नारी बनी, उसी दिन से महानाम की सारी भावनाएं जलकर राख हो गयीं।

जिस व्यक्ति की भावनाएं भस्मसात् हो जाती हैं, उसके जीवन का रस सूख जाता है। महानाम का जीवन भी चिता और वेदना के अग्निकणों से झुलस गया।

एक बार वह अपने आपको आश्वस्त करने के लिए एक उद्यान में गया। वह एक आम्रवृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठा। पीछे की झाड़ी में कुछ युवक द्यूतक्रीड़ा में संलग्न थे। वे परस्पर बातचीत कर रहे थे। उनकी बात का विषय था आम्रपाली, नगरनारी आम्रपाली। एक युवक ने कहा—"मैं आम्रपाली की सुन्दर काया का रसपान करने का प्रयत्न कर रहा हूं।" दूसरे ने कहा—"मैं आम्रपाली का निरावरण रूप और सौन्दर्य देखना चाहता हूं।" इसी प्रकार की अन्यान्य बातें चल रही थीं। महानाम के कानों में ये शब्द टकरा रहे थे। ये कुत्सित शब्द गर्म शीशे की भांति उसके मस्तिष्क को झुलसा रहे थे। इन शब्दों को सुनते ही महानाम को प्रतीत हुआ कि आकाश टूटकर उस पर गिर पड़ा हो। वह उद्यान में शान्ति प्राप्त करने आया था, पर प्रबल उथल-पुथल का अनुभव कर, वह उठा और भवन की ओर चला गया।

आम्रपाली अपने पिता को सप्तभौम प्रासाद में ले जाना चाहती थी। अनेक निमंत्रणों के पश्चात् आषाढ़ी पूर्णिमा को वहां जाना निश्चित हुआ।

आज आषाढ का पहला दिन था। आम्रपाली अपने प्रासाद में जा चुकी थी। महानाम ने सोचा—मुझे एक माह के बाद वहां जाना होगा। उसके मन में एक भय पल रहा था कि वहां जाने के पश्चात् अपनी पुत्री को दूसरे रूप में देखना

पड़ेगा। वैशाली के युवकों के बीच अपने यौवन बिछाती हुई कन्या को देखने के बदले अंधा हो जाना अच्छा है अथवा मृत्यु का वरण श्रेष्ठ है।

आषाढ़ की पूर्णिमा आयी। महानाम की चिंता शतगुणित हो गयी। उसके मन में अनेक विचार उमड़ रहे थे। उसने आत्महत्या करने की बात भी सोची, पर उसमें जैनत्व के संस्कार कूट-कूट कर भरे हुए थे। जैन परंपरा में आत्महत्या को जघन्यतम पाप माना है। अर्हत् को देव मानने वाला कोई भी जैन उपासक आत्महत्या के जघन्य कार्य को नहीं कर सकता।

महानाम जैन था। वह साधुओं की संगति करता था। जैसे ही आत्महत्या का विचार आया, वह संभल गया। उसने सोचा, सब कुछ छोड़कर मैं मुनि क्यों न बन जाऊं। पर उसका मन बोल उठा, भागवती दीक्षा कोई मामूली बात नहीं है। इसको ग्रहण करने में केवल उमंग ही काम नहीं आती, उसके लिए मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक शक्ति अपेक्षित होती है।

एक विचार यह भी आया कि श्रावस्ती नगरी में अभी महात्मा बुद्ध विचरण कर रहे हैं। क्यों न मैं उनके संघ का भिक्षु बन जाऊं? किन्तु आयु का शेष कहकर मुझे भिक्षु संघ में प्रविष्टि न दें तो?

इस प्रकार अनेक विचार महानाम के मन में आ-जा रहे थे। अनेक बार वह अपनी प्रियतमा के चित्र के सामने खड़ा रहकर आंसू भरे हृदय से कहता—"देवि! मुझे इस संताप से मुक्त कर। तू जहां है, वहां मुझे ले जा। इस प्रिय कन्या के विषय में मैं जो कुछ सुनता हूं, वह सह नहीं सकता। मैं इसके साथ कैसे रहूंगा? पद्मा! तू मुझे भी अपने पास बुला ले।"

ऐसे अनेकविध विचार आते और बिजली की भांति चमक-दमक दिखाकर अदृश्य हो जाते।

आर्य महानाम अपनी शय्या पर सो रहा था। हृदय पर दबाव बढ़ रहा था। वह उसे असह्य लगा। वह बार-बार अपने हाथ-पैर पछाड़ रहा था।

उसकी सेवा में एक दास खड़ा था। उसने पूछा—"महाराज! क्या है? जल लाऊं?"

महानाम ने इशारे से मौन रहने को कहा। वेदना तीव्र हो रही थी। उसे लगा आज की रात जीवन की अन्तिम रात है। प्रियतमा ने प्रार्थना सुन ली है।

दास अपने स्वामी की इस बेचैन अवस्था को देख नीचे के भाग में दौड़ा-दौड़ा गया। वहां जो पुरुष थे, उन्हें ऊपर आने को कह, तत्काल ऊपर आ गया। वे सब आये। महानाम का मुख्य परिवार भी आ गया।

एक रथ वैद्यराज को बुलाने भवन से बाहर निकले उससे पूर्व ही महानाम का अन्तिम श्वास पूरा हो गया। महानाम का नामशेष हो गया।

उस समय दीपमालिकाओं के भरपूर प्रकाश में आम्रपाली अपने सप्तभौम

प्रासाद में रूप-यौवन की किरणें बिखेरती हुई प्रेक्षकों को दिग्मूढ़ बना रही थी।

प्रथम यौवन के मादक स्पर्श से प्रफुल्ल और चंचल बनी हुई नवयौवना नारी का अभिसार हृदय को बींधकर निकलने वाली कविता जैसा होता है। अनेक बार ऐसा अभिसार जीवन में मधुर स्वप्न की शृंखला बनकर रह जाता है।

आम्रपाली अभी सोलह वर्ष की थी और उसका यौवन, रूप, कला, माधुर्य—यह सारा अप्सराओं को लज्जित करने वाला था। देवी का साहचर्य पाने के लिए अनेक तरुण लालायित थे।

आज आषाढ़ी पूर्णिमा का उत्सव था और आम्रपाली ने इस उत्सव का अभिनंदन अभिसार नृत्य द्वारा किया और यह अभिसार नृत्य इतना मादक था कि दर्शक अपने आपको विस्मृत कर बैठे थे।

अभिसार नृत्य ! प्रियतम से मिलने की उत्कट उकलाहट के होने पर भी लज्जा और भय का भार इतना मोहक बन गया था कि अभिसारिका के मन का चंचल आवेश अचानक दब जाता···विमूढ़ बन जाता।

आम्रपाली प्रियतम से मिलने के लिए आतुर हो रही थी। मेघाच्छन्न आकाश। रात का समय। लज्जा, संकोच और चंचलता के साथ आम्रपाली अपने प्रिय से मिलने निकल पड़ी। किन्तु सांकेतिक स्थल ज्यों-ज्यों निकट आता, त्यों-त्यों लोक-लाज और भय का भार उसके नयन और चरणों को मानो स्तंभित कर रहा था।

पूर्व भारत के श्रेष्ठ वाद्यकार अभिसार के भावों को वाद्यध्वनि से मस्त बना रहे थे।

पिय-मिलन की मदभरी तमन्ना नर्तकी आम्रपाली के नृत्याभिनय से साकार बनकर प्रेक्षकों को रसमुग्ध बना रही थी।

और···।

नील पद्म प्रासाद में एक शय्या पर महानाम का निर्जीव शरीर पड़ा था। वैद्य ने कहा—"चिड़िया चुग गयी खेत।" अब कथा समाप्त है। और मुख्य रक्षक आम्रपाली को सूचना देने दौड़ा। उस समय आम्रपाली का नृत्य यौवन अवस्था में था। नृत्यगृह के आभ्यंतर भाग में अनेक नृत्यांगनाएं, परिचारिकाएं खड़ी थीं। एक नर्तकी प्रियतम की रूप-सज्जा कर तैयार होकर खड़ी थी, क्योंकि कुछ ही क्षणों के पश्चात् उसे नृत्यभूमि में प्रवेश करना था, क्योंकि पिउमिलन के उत्तेजक क्षण अब निकट आ गए थे।

आम्रपाली की प्रिय सखी माध्विका वहीं थी। उसने सुना कि महानाम का अवसान हो गया है। आम्रपाली को सूचित कैसे किया जाए···इसी विचार में वह एक ओर चली गयी। वहां धूम्रावरण करने वाले चार व्यक्ति बैठे थे। माध्विका ने कहा—"तत्काल धूम्रावरण करो।" वे अवाक् रह गए। माध्विका

ने पुन: कहा। उन्होंने तत्काल संगृहीत धूम्र को नृत्यभूमि में प्रसृत करने के लिए एक यंत्र को घुमाया।

अभी प्रियतम के मिलन के क्षण प्राप्त नहीं हुए थे। अभिसारिका थिरकती हुई, भयार्त्त बनकर प्रीतम के मिलने के संकेत-स्थल की ओर देख रही थी। आंख में उमंग थी और काया पर लज्जा के अलंकार दृग्गोचर हो रहे थे। प्रेक्षकों के धन्य-धन्य की आवाज से सारा प्रेक्षागृह गूंज उठा। और उसी समय धूम्रावरण प्रारंभ हो गया।

नृत्याभिनय में तल्लीन बनी हुई आम्रपाली का चेहरा इस आकस्मिक धूम्रावरण से मुरझा गया।

माध्विका भीतर आयी। आम्रपाली को यह कहकर बाहर ले गयी कि पिताश्री अचानक बीमार हो गए हैं।

अभिसारिका की वेशभूषा में ही आम्रपाली रथ में बैठ नीलपद्म प्रासाद की ओर चल पड़ी।

नीलपद्म प्रासाद के पास आकर रथ रुका। आम्रपाली नीचे उतरी और तीव्र गति से अपने बापू के खंड की ओर चली।

महानाम शय्या पर चिरनिद्रित अवस्था में पड़े थे। मुंह खुला था। शेष शरीर पर एक कौशेय वस्त्र था। उनकी शय्या से दूर एक सेवक बैठा था।

आम्रपाली ने देखा, 'बापू ! बापू !' कहती हुई उनके निर्जीव शरीर पर गिर पड़ी। वहीं वह मूर्च्छित हो गयी।

अर्धघटिका के पश्चात् मूर्च्छा टूटी। वह फिर करुण स्वर में बोली—"बापू ! बापू !"

दीपक बुझ गया। वह भांडागारिक ऋषभदास की ओर देखकर बोली—"चाचा ! नीड़ लुट गया। मेरा आश्रय टूट गया। मैं अब बिना आधार की हो गयी।" उसके बोल आगे नहीं फूटे। वे सदन के नीचे दब गये।

आम्रपाली ने नृत्यांगना की पोशाक उतारी। हिमकण से सफेद वस्त्र धारण किये। सादी वेशभूषा कर अलंकारशून्य बन गयी। उस समय भी उसके रूप को निहार कर वहां की स्त्रियां दिग्मूढ़ बन गयीं।

मध्याह्न से पूर्व ही महानाम के नश्वर शरीर का दाह-संस्कार कर दिया गया।

शोकमग्न आम्रपाली को सान्त्वना देने नगर के सभी गणमान्य व्यक्ति आ-जा रहे थे।

इधर शंबुक वन में राक्षसराज का परम अतिथि बिंबिसार वहां से ऊब चुका था। वह राक्षसराज से बार-बार विदा करने की प्रार्थना करता रहा। शंबुक उसकी प्रार्थना को मान नहीं रहा था। धनुर्विद्या के कुछ रहस्य शंबुक ने बिंबिसार

को सिखा दिये थे। वे दोनों प्रतिदिन वन में जाते और शंबुक बिंबिसार को धनुर्विद्या के विविध प्रयोग करके दिखाता। ऐसे तो बिंबिसार धनुर्विद्या जानता था, फिर भी उसे शंबुक के माध्यम से बहुत कुछ सीखने को मिला। शंबुक पूर्ण मनोयोग से बिंबिसार को सब रहस्य बताता रहा, केवल धनुर्विद्या के साथ जुड़ी हुई मंत्रविद्या बिंबिसार के लिए असाध्य बन गयी, क्योंकि उसे सीखने के लिए दो-तीन वर्ष लगाने अपेक्षित थे।

धनंजय भी वहां से शीघ्र प्रस्थान करना चाहता था, क्योंकि राजगृह से चलने के पश्चात् उसने महाराज प्रसेनजित को कोई समाचार नहीं भेजे थे। वह सोच रहा था, महाराज प्रसेनजित बहुत बेचैनी अनुभव करते होंगे। इसीलिए वह बार-बार बिंबिसार से प्रार्थना करता। बिंबिसार कहता—"मित्र! स्नेह की उपेक्षा करना महान् पाप है। राक्षसराज शंबुक के स्नेह का अनादर करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होगा।"

बिंबिसार ने एक रात शंबुकराज के परिवार के समक्ष वीणावादन कर स्नेहयुक्त स्वरों में कहा···"महाराज! आपकी ममता का अनादर करना मेरे लिए अशक्य है, पर मेरा चित्त घर-परिवार की ओर लगा है। यदि आप कृपा करें तो···"

"मित्र! मैं तेरी अकुलाहट को समझता हूं। श्रावणी पूर्णिमा को यहां एक मेला लगेगा। शंबुक वन में रहने वाले सभी लोग यहां एकत्रित होंगे। उस उत्सव का आनंद ही कुछ और है। फिर मैं तुझे यहां से विदा कर दूंगा।"

१६. श्रावणी पूर्णिमा

श्रावण की पूर्णिमा।

संध्या से पूर्व ही शंबुकवन में फैली हुई छोटी-मोटी पल्लियों से सभी राक्षस परिवार शंबुकवन की राजधानी में आ गए।

रात्रि का समय प्रारंभ हुआ। देवी के मंदिर के विशाल प्रांगण में सभी आ पहुंचे। वर्षा रुक गई थी। राक्षसों का यह अटूट विश्वास था कि श्रावणी पूर्णिमा की रात में वर्षा नहीं आनी चाहिए और यदि वर्षा होती है तो वह अनिष्ट की सूचना है।

रात्रि का प्रथम प्रहर पूरा होने वाला था। शंबुक अपने परिवार के साथ वहां आ पहुंचा। उसके साथ बिंबिसार, धनंजय और दोनों परिचारक थे।

बिंबिसार ने देखा, आबालवृद्ध वहां मद्यपान कर पागलों की भांति घूम रहे हैं।

स्त्रियां भी मद्यपान में मत्त थीं। कहीं सहनृत्य हो रहा था, कहीं आपसी

छेड़छाड़ हो रही थी, कहीं पराक्रम और शौर्य के प्रतीक रूप छुरिकायुद्ध, कृपाण-युद्ध और मल्लयुद्ध हो रहे थे।

राक्षस स्त्रियां कृपाणयुद्ध और छुरिका-युद्ध में तन्मय बन रही थीं। यौवन और श्यामवर्ण के मद से मदोन्मत्त स्त्रियां रोमांचित करने वाले छुरिका-युद्ध कर रही थीं।

बिंबिसार और धनंजय घूम-घूमकर विविध प्रयोग देख रहे थे। उन्हें प्रतीत हुआ कि सभी राक्षस, राक्षस-स्त्रियां और बालक युद्ध-कला में निपुण हैं।

रात का अंतिम प्रहर।

बिंबिसार ने रात के अंतिम प्रहर में सभी राक्षसों को वीणावादन सुनाया। वीणावादन सुनकर सभी स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न हुए।

उत्सव धारणा से भी अधिक सफल रहा।

सूर्योदय हुआ। तीन दिन और बीत गये। चौथे दिन शंबुक ने भावभरें हृदय से बिंबिसार को विदा किया। उस समय शंबुकराज ने बिंबिसार को एक मूल्यवान मोतियों की माला और एक व्यक्ति उठा न सके, उतना स्वर्ण दिया। धनंजय और दूसरे दो परिचारकों को भी स्वर्ण के अलंकार भेंट स्वरूप दिये। वहां से विदा होते समय बिंबिसार का मन अत्यन्त वेदना अनुभव कर रहा था। जहां स्नेह होता है वहां संताप भी होता है।

सजल नयनों से बिंबिसार वहां से विदा हुआ। शंबुक तथा कुछ सैनिक साथ में चले और वन की सीमा तक साथ रहे। सीमा पर आकर शंबुक ने बिंबिसार को वैशाली की सीमा की पूर्ण जानकारी दी।

बिंबिसार ने प्रस्थान से पूर्व शंबुकराज के दोनों हाथों को पकड़कर कहा—"महाराज ! मैं आपको कभी भूल नहीं पाऊंगा।"

"मित्र ! मैं भी तुम्हारे सहवास की विस्मृति नहीं कर सकूंगा। मेरी एक प्रार्थना है कि जब तुम्हारा विवाह सम्पन्न हो जाए तब दोनों पति-पत्नी मेरे यहां आना। मैं तुम्हें अपनी नामांकित अंगूठी दे रहा हूं। इस मुद्रिका को मेरा कोई भी राक्षस देखेगा तो वह प्रेमपूर्वक तुम्हारा सत्कार करेगा", कहकर शंबुकराज ने अपनी मुद्रिका बिंबिसार को दी।

बिंबिसार ने इस स्नेहदान को ले, मस्तक पर चढ़ाया। वह उस मुद्रिका को अंगुली में पहन नहीं सका, क्योंकि उसका अंगूठा भी उसके लिए छोटा पड़ रहा था।

बिंबिसार अपने साथियों और सामान के साथ अश्वों पर चढ़ वहां से आगे बढ़ा।

इधर आम्रपाली ने पितृशोक को सम्पन्न कर दिया था। सप्तभौम प्रासाद

में पुनः वाद्यों की झंकार होने लगी। सैकड़ों मिलने-जुलने वाले उस प्रासाद में आने लगे।

सायंकाल के समय शीलभद्र अपने दो साथियों के साथ वहां आया।

माध्विका कुमार शीलभद्र को आदर सहित देवी आम्रपाली के विश्रामखंड में ले गयी। शीलभद्र ने आम्रपाली का अभिवादन करते हुए कहा—"आप शोक से निवृत्त हुई हैं, यह जानकर वैशाली के समस्त जन प्रसन्न हुए हैं।

एक परिचारिका मैरेय का स्वर्ण पात्र ले आयी। माध्विका ने शीलभद्र और उसके साथियों के समक्ष मैरेय से भरे स्वर्ण पात्र रखे।

शीलभद्र बोला—"देवि ! आप···।"

"आप ही लें। मैरेय मेरी प्रकृति के अनुकूल नहीं है।" आम्रपाली ने मधुर स्वरों में कहा।

मैरेय का एक घूंट लेते हुए शीलभद्र बोला—"देवि ! यहां प्रतिवर्ष श्रावण मास में पांच दिनों का वन-महोत्सव होता है। उसमें जनपदकल्याणी महोत्सव की शोभा होती है।"

"हां, गणसभा से मुझे निमंत्रण मिल चुका है।" आम्रपाली ने कहा।

"देवि ! यह वन-महोत्सव अपनी सीमा के पास आयोजित होता है। उसमें हजारों नर-नारी शामिल होते हैं, मनोरंजन करते हैं। उस अवसर के लिए मैं आपको एक विशेष निमंत्रण देना चाहता हूं। वैशाली की सीमा से सटकर एक नदी बहती है। उसके दूसरे तट के आसपास पर्वतश्रृंखला है। वहां आखेट के लिए आप हमारा साथ दें, इसका वचन लेने आया हूं।"

"शिकार ?"

"हां, देवी ! उस भयंकर वन में सिंह, बाघ, वराह आदि रहते हैं।

"आप सिंह का शिकार करते हैं ?"

"हंसते-हंसते···।"

"मैं आपका साथ दूंगी। मुझे वन्य-जन्तु देखने का शौक है।"

"मैं धन्य हुआ। मैं स्वयं आपको लेने आ जाऊंगा।" कहते हुए शीलभद्र ने मैरेय का पात्र खाली कर परिचारिका को दे दिया।

शीलभद्र के जाने के बाद माध्विका ने कहा—"देवि ! यह निमंत्रण तो भयंकर है।"

"माध्विका ! आर्य शीलभद्र के भुजबल को देखने के लिए ही मैंने यह निमंत्रण स्वीकार किया है। मेरी यह मान्यता है कि जो वाचाल होता है वह अपने कर्त्तव्य में शिथिल होता है।" आम्रपाली ने कहा।

वनमहोत्सव की तैयारी होने लगी।

वैशाली के विशिष्ट व्यक्तियों ने उत्सव की निर्धारित भूमि पर अपने-अपने तंबू लगवाए।

जनपदकल्याणी के लिए विशेष व्यवस्था की गयी थी। वहां सैकड़ों दास-दासियां और रक्षक-दल आ गए। यह शिविर भव्य और रमणीय था। सभी से यह अकेला ही चमक रहा था।

शीलभद्र का तंबू भी रमणीय था। वह दिवस के प्रथम प्रहर में ही अपने साथियों के साथ वहां आ गया था। उसके हृदय में आशा का एक मधुर गीत झंकृत हो रहा था। संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के हृदय में प्रेमांकुर उगाने और रूप की प्रतिमूर्ति सुकुमार आम्रपाली को प्राप्त करने की भावना साकार होगी, यह श्रद्धा उसके प्राणों में अनन्त आनंद को उभार रही थी।

जिस समय आम्रपाली ने शिकार का निमंत्रण स्वीकृत किया उसी क्षण से शीलभद्र के प्राणों में मधुर-मिलन की बंसरी बजने लग गयी थी। वह आशा को और पुष्ट बना रही थी।

यौवन और आशा दोनों साथी हैं। दोनों चंचल होते हैं। दोनों को अपनी चंचलता का ख्याल नहीं आता।

इधर शंबुक वन से प्रस्थान कर बिंबिसार अपने साथियों के साथ इसी पर्वतश्रृंखला के पास आ ठहरा। उसे यह ज्ञात नहीं था कि कुछ ही दूरी पर वैशाली की जनता भव्य वनमहोत्सव का आनन्द ले रही है। शंबुक महाराज के कथनानुसार बिंबिसार इस पर्वत पर कुछ दिनों तक विश्राम करना चाहता था। वह किसी पल्ली की टोह में था। पल्ली नहीं मिली। धनंजय पहाड़ी पर चढ़ा। उसने देखा, एक प्रस्तर गृह है। वह खण्डहर हो गया है। उसने नीचे उतरकर बिंबिसार को बताया।

बिंबिसार वहां कुछेक दिन ठहरने के लिए ऊपर गया। ऊपर जाने के बाद बिंबिसार ने प्रस्तर-गृह के चारों ओर देखा। उसे वह स्थान उपयुक्त लगा।

जब चारों वहां रह गए, तब धनंजय ने एक भृत्य को सारे समाचार कहकर राजगृह की ओर भेज दिया।

दूसरे दिन भोजन की सामग्री के लिए बिंबिसार और धनंजय—दोनों अपने-अपने अश्वों पर चढ़कर एक पल्ली में गए और एक भृत्य को वहीं प्रस्तर-गृह की सम्भाल के लिए छोड़ दिया।

पल्ली के सभी लोग मेले में चले गए थे। एक वृद्ध अपनी खाट पर बैठा था। धनंजय ने कहा—"इस बस्ती में कोई नजर नहीं आता। यह निर्जन कैसे है?"

"महाराज! सभी वन-महोत्सव में गए हैं।"

बिंबिसार ने कहा—"कैसा उत्सव?"

"आप इस प्रदेश से अजान दीखते हैं"—वृद्ध ने प्रश्न किया।

"हम परदेशी हैं। सामने की पहाड़ी पर एक सुनसान खण्डर हैं। वहां ठहरे हैं। यहां हलवाई की खोज में आए हैं।" तत्काल वृद्ध अपनी टूटी-फूटी खाट से खड़ा हो गया और टेकरी की ओर अंगुलि-निर्देश करते हुए बोला—"क्या आप सामने की टेकरी पर उतरे हैं? वहां एक टूटा-फूटा घर है? एक कुंड है?"

बिंबिसार ने कहा—"हां, हम वहीं रुके हैं।"

वृद्ध बोला—"आप परदेशी हैं। आपकी अवस्था भी छोटी है। कृपा कर आप पहाड़ी से तत्काल अन्यत्र चले जाएं। उस पहाड़ी पर एक भयंकर भूत रहता है। अनेक अनजान मनुष्य इस प्रस्तरगृह में मौत का आलिंगन कर चुके हैं।"

वृद्ध की बात सुनकर बिंबिसार ने पूछा—"क्या तुम वन महोत्सव के विषय में कुछ जानकारी दे सकते हो?"

"महाराज! वैशाली का यह उत्सव पूर्व भारत में बेजोड़ गिना जाता है। पांच दिनों तक यह चलेगा। वहां हजारों नर-नारी आएंगे। वहां विविध प्रकार की खाद्य सामग्री की अनेक दुकानें लगेंगी। उत्सव का स्थान यहां से एकाध कोस दूर है। आप टेकरी से सीधे वहीं चले आएं। खाद्य सामग्री मिल जाएगी।" वृद्ध ने कहा।

वे सब टेकरी पर आए और वृद्ध पुरुष की बात मानकर तीनों उत्सव को देखने निकल पड़े। शंबुकराज द्वारा प्रदत्त कुछ स्वर्ण और दो घोड़े वहीं छोड़ वे नीचे उतर आए।

बिम्बिसार ने शंबुक द्वारा प्रदत्त मुक्तामाला और पिता द्वारा प्रदत्त रत्न-माला दोनों अपने साथ रख लीं।

जब वे तीनों उत्सव में पहुंचे तब मध्याह्न बीत चुका था और वह उत्सव स्थल ऐसा लग रहा था मानो कोई नया नगर बसा हो। तीनों आगे से आगे जा रहे थे। एक स्थान पर उन्होंने देखा—"हजारों व्यक्तियों का कलरव उछल रहा हैं।"

धनंजय ने पूछा—"यह कलख किसलिए?"

"आपको ज्ञात नहीं है? संसार की अप्रतिम सुन्दरी आम्रपाली वैशाली से आ रही है। देवी आम्रपाली हमारी जनपदकल्याणी है। उसका रूपदर्शन भी भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है।" यह कहकर वह दौड़ता हुआ चला गया।

धनंजय ने बिम्बिसार से कहा—"महाराज! हम भी उस ओर चलें?"

"नहीं मित्र! हम सुन्दरियों को निहारने नहीं निकले हैं। हमें एक शर्राफ की दुकान पर जाना है।"

बिंबिसार और धनंजय ने देखा कि लोग अपनी-अपनी दुकानों को वैसे ही छोड़ आम्रपाली को देखने निकल पड़े हैं। वहां तीन दुकानें थीं। दो पर कोई

व्यक्ति नहीं था। एक दुकान का शर्राफ अपने साथियों के साथ आम्रपाली को देखने की तैयारी कर रहा था। धनंजय ने स्वर्ण देकर उससे कुछ मुद्राएं ले लीं।

मुद्राएं देकर शर्राफ दुकान को खुली छोड़ आम्रपाली को देखने निकल पड़ा। उसे दूकान में पड़े स्वर्ण की या मुद्राओं की चिन्ता नहीं थी। उस शर्राफ की उम्र लगभग पचास वर्ष की थी, पर उसकी अधीरता चंचल युवक से अधिक थी।

धनंजय ने कहा—"महाराज ! आम्रपाली का जादू गजब का लगता है। यौवन को भी पार कर अधेड़ अवस्था में पहुंचा हुआ शर्राफ कितना अधीर हो गया था ?"

बिंबिसार बोला—"धनंजय ! सुन्दर नारी का आकर्षण युग-युग से चला आ रहा है। राजगृह में मैंने आम्रपाली के विषय में कुछ सुना था और अब इस अधेड़ व्यक्ति की अधीरता उस सत्य का साक्षात्कार कराती है।"

दोनों बात करते-करते अपने अश्वों पर आगे चले। वे पहाड़ी के निकट आए। जब अश्व पहाड़ी पर चढ़ने लगे, तब धनंजय ने बिंबिसार से पूछा—"महाराज ! आप कुछ गम्भीर विचार में हैं, ऐसा लग रहा है।"

"धनंजय ! मेले का सामान्य निरीक्षण करने के पश्चात् मेरे मन में अनेक विचार आ रहे हैं। आज पूर्व भारत में लिच्छवियों का शौर्य अजोड़ गिना जाता है। उनकी जवांमर्दी और गुणग्राहकता प्रसिद्ध है। एक लिच्छवी सौ योद्धाओं के साथ लड़ सकता है। मौत को हथेली पर रखकर चलना लिच्छवियों की मस्ताई है। किन्तु इस मेले के निरीक्षण के पश्चात् मुझे विनाश की छाया दिखने लगी है।"

"विनाश की छाया ?"

"हां, धनंजय ! एक बार जब मैं जितारी सन्निवेश में वीणा की अन्तिम साधना कह रहा था, तब आचार्य कार्तिक स्वामी के पास वैशाली के अनेक समाचार आते थे। मैंने सुना था कि देवी आम्रपाली सौन्दर्य की देवी है और उसको प्राप्त करने के लिए लिच्छवियों में गुटबंदी हुई है। किन्तु आम्रपाली को जनपदकल्याणी बनाकर सिंह सेनापति ने लिच्छवियों की एकता को बनाये रखा। उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि पूर्व भारत की एक महान् जाति विनष्ट होने से बच गयी। पर आज···।"

"महाराज ! लिच्छवियों की एकता तो आज भी अटूट है।"

"धनंजय ! महान् जीवन जीने के लिए केवल एकता ही नहीं, चरित्रबल भी अपेक्षित होता है। मुझे मेले में लिच्छवियों की विलासप्रियता का दर्शन हुआ। वहां कितनी नगर-नारियां आयी थीं। कितने मद्यगृह थे ? द्यूतगृह तो सर्वत्र देखने को मिल जाते। आम्रपाली को देखने के लिए कितनी अधीरता ! रूपदर्शन की इस अंधी लालसा के पीछे चरित्रबल की न्यूनता स्पष्ट है।"

धनंजय ! प्रजा यदि दरिद्र है, सम्पत्तिहीन है किन्तु यदि चरित्रबल और एकता से सम्पन्न है तो वह अमर बन जाती है। मद्यपान की अमर्यादा, स्त्री-सहचार की तीव्र लालसा, रंगराग की लूट—ये सब विनाश के चिह्न हैं।"

धनंजय मौन रहा।

१७. पागल हाथी

बिंबिसार और धनंजय मेले का निरीक्षण करते-करते आगे बढ़े। चारों ओर भिन्न-भिन्न वस्त्रों की दुकानें, अलंकार और आभूषणों की दुकानें देख वे विस्मित हो रहे थे।

बिंबिसार कुछ कहे उससे पूर्व ही पीछे से आने वाली भीड़ की प्रबल आवाज सुनाई दी। भागो-भागो, हटो-हटो की आवाज आने लगी और दोनों ने मुड़कर देखा।

एक मदोन्मत्त हाथी भयातुर होकर भाग रहा था। सारा मार्ग वैशाख के बादलों की तरह जनशून्य हो गया। धनंजय ने भी बिंबिसार का हाथ पकड़कर उन्हें एक ओर ले गया। बिंबिसार ने देखा, भय से पागल बना हुआ एक गजराज आ रहा है। यदि यह गजराज काबू में न आए तो बड़ी विपत्ति खड़ी हो सकती है और अनेक व्यक्ति उसके पैरों तले कुचले जा सकते हैं।

बिंबिसार इस प्रकार चिन्तन कर ही रहा था कि गजराज उसकी ओर मुड़ता-सा दिखाई दिया। सभी लोग हाहाकार करने लगे। वे चिल्ला रहे थे—"इस ओर भीड़ अधिक है। यदि पागल गजराज इस ओर आ गया तो सैकड़ों व्यक्तियों की मौत निश्चित है।"

बिंबिसार ने ये शब्द सुन लिये। उसने धनंजय से कहा—"धनंजय ! आज हम बिना किसी शस्त्रास्त्र के आये हैं। यदि इस हाथी को किसी भी उपाय से रोका नहीं गया तो अनेक निर्दोष व्यक्ति कुचले जाएंगे।"

"अब हम क्या करें ?"

"चल, आगे चलें। किसी से धनुष-बाण ले लेंगे।"

"वे आगे चले।"

हाथी के पीछे-पीछे सैकड़ों व्यक्ति आ रहे थे। उनमें धनुर्धारी लिच्छवी भी थे। वे लोगों को सचेत करने के लिए आवाज कर रहे थे, पर आगे जाने के लिए कोई साहस नहीं कर रहा था।

गणतन्त्र के सैकड़ों सैनिक भी आ पहुंचे थे। परन्तु किसी के मस्तिष्क में यह विचार नहीं आया कि पागल हाथी को वश में करने के लिए उसके सामने जाना चाहिए। पीछे से कोई बाण या भाला फेंक नहीं सकते थे, क्योंकि यदि हाथी पीछे मुड़ आए तो हजारों को पीस डाले।

और बिंबिसार ने एक लिच्छवी जवान के कंधे से तूणीर खींच लिया और धनुष मांग कर ले लिया। वह नवयुवक और कोई नहीं, महाबलाधिकृत का पुत्र पद्मकेतु ही था। वह बोला—"महाशय ! यह आप क्या कर रहे हैं। आप बाण मत फेंकना। बाण से हाथी मुड़ेगा और अधिक विकराल बन जाएगा।"

किन्तु बिंबिसार ने कोई उत्तर नहीं दिया और वायु वेग से भीड़ को चीरता हुआ हाथी से आगे निकल गया।

गजराज की लाल आंखें युवक बिंबिसार की ओर मुड़ीं। बिंबिसार ने आगे बढ़कर, कुछ दूर जा हाथी की सूंड को एक बाण से बींध डाला और हाथी अधिक उत्तेजित हो गया।

धनंजय आगे नहीं जा सका। वह कांप उठा···क्योंकि पागल हाथी बिंबिसार को लक्ष्य कर उसके पीछे दौड़ रहा था।

बिंबिसार चाहता था कि हाथी को जनमेदिनी की भीड़ वाले स्थान से किसी मैदान में लाया जाए। इसीलिए वह आगे-आगे दौड़ने लगा। किन्तु हाथी के पीछे पीछे आने वाले हजारों राजपूत और अनेक सैनिक यह नहीं समझ सके कि बिंबिसार लोगों को हाथी से अभय बनाने के लिए दौड़ रहा है। उन्होंने यही समझ रखा कि इस युवक ने विमर्शपूर्वक कार्य नहीं किया है और यह नवजवान रोषाग्नि से भड़के हुए गजराज के पैरों तले कुचला जाकर प्राण त्याग देगा। किसी का लाड़ला यह सुकुमार धरती की मिट्टी चाटने लगेगा।

धनंजय का हृदय धड़क रहा था। अपने प्रिय युवराज को बचाने के लिए क्या करना है, वह समझ नहीं सका और पास में कोई शस्त्र भी तो नहीं था।

अब क्या करे ?

बिंबिसार पूरा सावचेत था। उसके तूणीर में बाण थे और उसे अतुल आत्म-विश्वास था कि वह इन बाणों से हाथी को वश में कर लेगा।

बिंबिसार अपने प्रयत्न में पूर्ण सफल हो गया। वह पागल हाथी को पड़ाव के बाहर मैदान में खींच ले गया। हाथी बहुत दूर नहीं था और वह थकावट भी महसूस नहीं कर रहा था क्योंकि पागलपन और थकावट का आपसी सम्बन्ध नहीं होता।

बिंबिसार दौड़ते-दौड़ते हाथी को बहुत दूर ले गया। हाथी के मन में भी रोष था कि जिस व्यक्ति ने तीर से सूंड को घायल किया है, उसको धरती पर पटक कर पीस डाला जाए।

पीछे-पीछे आने वाले लोग आतुर नयनों से परिणाम को देखने के लिए आतुरता से दौड़ रहे थे। बिंबिसार ने सोचा और राक्षसराज शंबुक से सीखे धनुर्विद्या के रहस्य स्मृति-पटल पर छा गए। उसने एक साथ दो बाण धनुष पर चढ़ाए और प्रत्यंचा को कानों तक खींच कर पूर्ण पराक्रम के साथ बाणों को

छोड़ा। उसका एकमात्र लक्ष्य था दौड़ते हुए हाथी के दोनों पैर। यदि यह प्रयत्न निष्फल होता है तो उसकी मौत निश्चित थी।

किन्तु राक्षसराज की शिक्षा निष्फल नहीं गयी। हाथी के दोनों पैर एक साथ बाणों से बिंध गए और उसने अतुल पीड़ा से चिंघाड़ा।

क्रोध राक्षस का दूसरा रूप है। क्रोध के समय बल बढ़ जाता है और वह तब अन्धा होता है।

हाथी के क्रोध की सीमा न रही। शत्रु को पीस डालने के लिए गजराज उछला। किन्तु अति क्रोध और पीड़ा के कारण वह लड़खड़ाकर भूमि पर गिर पड़ा।

बिंबिसार ने देखा, अब गजराज उठ नहीं सकेगा। बिंबिसार हाथी की दृष्टि से बचता हुआ दूसरी दिशा में चला गया।

पीछे आने वाले सैकड़ों व्यक्तियों ने गजराज को निढ़ाल पड़ा देखा और तब उस नवजवान को हजार-हजार धन्यवाद दिए। उस भीड़ में इसी हाथी के दो महावत भी थे। वे धरती पर पड़े हाथी के पास गए।

धनंजय ने स्वामी को देखा। उसके नयन हर्ष से सजल हो गए। वह स्वामी के पास आकर बोला—"मेरे पाण-पखेरू ऊपर चढ़ गए थे।"

"क्यों ?" बिंबिसार ने पूछा।

"आपने भयंकर साहस कर डाला था···?"

"साहस के बिना जीवन कैसा ?"

इतने में अनेक व्यक्ति वहां आ पहुंचे और युवक बिंबिसार का अभिवादन करने लगे। एक युवक ने पूछा—"क्या आप मागध हैं ?"

"नहीं मैं, मालवीय हूं।" बिंबिसार ने तत्काल उत्तर दिया।

इतने में ही दूसरे युवक ने पूछा—"परन्तु आपकी वेशभूषा तो···?"

आपका अनुमान सही है। मैं पांच वर्षों से मगध में धनुर्विद्या सीख रहा हूं, इसलिए मगध की वेशभूषा है।" बिंबिसार बोला।

अनेक बार कारणवश असत्य का आश्रय लेना पड़ता है। बिंबिसार जानता था कि लिच्छवियों और मागधों के बीच विसंवाद है। कोई भी लिच्छवी मगध के मनुष्य की प्रशंसा नहीं कर सकता। लिच्छवियों को यह पूरा विश्वास था कि मगधपति वैशाली के विनाश का निरन्तर स्वप्न देखते रहते हैं और अवसर की टोह में हैं। अवसर मिलते ही वे वैशाली को विनष्ट कर देंगे। किन्तु लिच्छवियों की एकता को देखकर वे आक्रमण करने का साहस नहीं कर पा रहे थे। इस परिस्थिति में बिंबिसार को अपने आपको छुपाने के लिए असत्य बोलना पड़ा।

सभी ने देखा, गजराज के प्राण पखेरू उड़ गए हैं। वह ठंडा हो गया है। दोनों महावत उसके पैरों से बाण खींच रहे हैं। यह देखकर लोग लौटने लगे।

महाबलाधिकृत का पुत्र पद्मकेतु भी आ पहुंचा। उसने धन्यवाद देते हुए कहा—"महाशय ! आपने अपनी दीर्घदृष्टि का स्पष्ट परिचय कराया। आपने हजारों के प्राण बचाए, सबका कल्याण किया।"

बिंबिसार ने उसके धनुष-बाण को लौटाते हुए उसका अत्यन्त आभार माना।

पद्मकेतु बोला -"आप वैशाली के तो नहीं लगते।"

"नहीं, मैं मालवीय हूं।"

"आपका शुभ नाम ?"

"जयकीर्ति···" बिंबिसार बोला।

कुछ ही समय में 'जयकीर्ति' का नाम वहां के लोगों की जीभ पर नाचने लगा और वे सभी जयकीर्ति के साथ बतियाते हुए मेले की ओर चल पड़े।

१८. मृगया के लिए प्रयाण

बिंबिसार ने जाते-जाते देखा कि लोगों के झुंड आम्रपाली को देखने जा रहे हैं। सैकड़ों लिच्छवी युवक आम्रपाली के नयनाभिराम शिविर के पास पहुंचे। वहां गणतन्त्र के सैनिक पहरा दे रहे थे। युवकों ने आम्रपाली से मिलने की बात कही।

सैनिक बोले—"देवी भोजन कर रही हैं। अभी वे किसी से मुलाकात नहीं करेंगी, क्योंकि कल के नृत्य से वे थक चुकी हैं। भोजन के पश्चात् वे विश्राम करेंगी। आज भी देवी मेले के नृत्यमंच पर नृत्य करेंगी।"

लोग वहां से अपने-अपने घर चले गए। आम्रपाली की एक मुख्य परिचारिका शिशिरा ने भोजन-खण्ड में प्रवेश कर कहा—"देवि ! आज बड़ी अद्भुत घटना घटी। एक हाथी पागल हो गया। यदि उसको अन्य दिशा में नहीं मोड़ा होता तो आज यहां हजारों लाशें बिछ जातीं। एक युवक ने अपनी समयसूचक दृष्टि से हाथी की दिशा मोड़कर हजारों के प्राण बचा लिये। उस हाथी का सामना करने का साहस किसी में नहीं जागा। उस हाथी के पीछे सैकड़ों व्यक्ति आ रहे थे और हटो, हटो की आवाज से सबको सावधान कर रहे थे। इतने में ही एक नवजवान हाथ में धनुष बाण लेकर आगे आया, हाथी के सामने पहुंचा और एक ही बाण से हाथी की सूंड विंध डाली। वह हाथी रोषाक्रुष्ट हो यमराज की भांति विकराल बनकर उस युवक के पीछे भागा। वह नवजवान उस हाथी को मेले के पड़ाव से बहुत दूर ले गया और एक साथ दो बाण छोड़कर उसके दोनों पैर बिंध दिए—और हाथी लड़खड़ाकर नीचे गिरा और कुछ ही क्षणों के पश्चात् वह यमराज का अतिथि बन गया।"

"ओह ! तब तो लिच्छवियों की धरती वीरता से शून्य नहीं है।" आम्रपाली ने भाव भरे हृदय से कहा।

"महादेवि ! वह नवजवान लिच्छवी नहीं था।"

"कौन था ?"

"मालवीय था ।"

"अशक्य ! मालवा के नवयुवकों में ऐसी दीर्घदृष्टि हो ही नहीं सकती। सम्भव है, वह या तो मागध होगा या कालिंग। आश्चर्य की बात है कि कोई लिच्छवी युवक आगे नहीं आया।"

आज आकाश मेघों से आच्छन्न था। आम्रपाली के हृदय में भी अनेक मेघ उमड़-घुमड़ रहे थे। किसी लिच्छवी युवक ने हाथी को परास्त करने का साहस नहीं किया, यह बात उसके प्राणों में तीर की भांति चुभ रही थी। उसने सोचा, पूर्व भारत में वीर शिरोमणि कहे जाने वाले लिच्छवियों के रक्त में ऐसा परिवर्तन कब-कैसे हुआ ?

आम्रपाली इन विचारों में उन्मज्जन-निमज्जन कर रही थी। इतने में ही माध्विका ने खण्ड में प्रवेश कर कहा—"देवि ! आनर्त की पोशाक तैयार है। पगड़ी भी तैयार है। आप एक बार इनको पहनकर देखें।"

कुछ समय पश्चात् आम्रपाली ने माध्विका की सहायता से आनर्त देश के किसी नवजवान की वेशभूषा धारण की। लाल किनारे की ढीली धोती, अंगरखा, उसके ऊपर पतले लोहे का कवच और मस्तक पर पाग। फिर उसने आदमकद शीशे में अपनी प्रतिकृति देखी। माध्विका ने कहा—"देवि ! इस पोशाक से आपका रूप-रंग खिल उठा है। आपको कोई पहचान ही नहीं पाएगा।"

"फिर भी नारी की आंख कभी छिपती नहीं। किन्तु कल जब मैं मृगया के लिए जाऊंगी, तब यह वेशभूषा बहुत उपयोगी होगी।"

"देवी क्षमा करें तो एक बात कहूं।"

"बोल।"

"आपने आर्य शीलभद्र को वचन दिया है, वह मैं जानती हूं। किन्तु उसके साथ आप अकेली जाएं तो···।"

"क्या कोई भय है ?"

"हां, देवि ! पुरुष जाति का मन कब विकल हो जाए, कहा नहीं जा सकता।" माध्विका ने कहा।

"माध्विका ! मुझे अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा है। जो लिच्छवी युवक एक हाथी को वश में नहीं कर सके, वे एक सुन्दरी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेंगे। शीलभद्र ने यह आयोजन मेरी प्रीति प्राप्त करने के लिए किया है। पर वह बेचारा नहीं जानता कि नारी की प्रीति प्राप्त करना स्वर्ग-प्राप्ति से भी कठिन है।"

माध्विका मौन रही।

आम्रपाली पुरुषवेश उतारने लगी।

आज मेले की अनोखी रात।

विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी आम्रपाली अपने नृत्य से हजारों-हजारों को मंत्रमुग्ध कर रही थी। बिंबिसार उस ओर जाना नहीं चाहता था, पर उसका मार्ग उस नृत्य-रंगमंच के सामने से गुजर रहा था। विशाल मार्ग भी आज संकीर्ण हो रहा था।

बिंबिसार ने उस रंग-मण्डप की ओर दृष्टि डाली। उसने जो देखा उससे उसका मन टूक-टूक हो गया। उसने सोचा, किसी भी महान् जाति का विनाश स्वच्छन्दता के मीठे जहर से ही हुआ है, होता है। जहां स्वच्छन्दता होती है वहां स्वाधीनता पंगु बन जाती है। वैशाली की जनता ऐसे रंगीले मेले से पागल-सी बन गयी थी। नगरनारियों, नर्तकियों, वारांगनाओं, विलास के उपादानों और असंयम की ज्वालाओं में जो प्रजा सुख देखती है, वह कितनी ही वीर और महान् क्यों न हो, उसका पतन होता है। वह मिट्टी में मिल जाती है।

रात्रि का चौथा प्रहर समाप्त होने वाला था। इतने में ही वहां कलरव कानों से टकराया। देवी आम्रपाली के जयनाद से सारा वातावरण गूंज उठा। लोग मनोहारी नृत्य को देखकर आनन्दित हृदय से घर लौट रहे थे।

प्रभात हुआ।

बिंबिसार अश्व पर आरूढ़ होकर पहाड़ी की ओर गया। और भूतिया आवास-गृह में पहुंच कर वीणावादन करने लगा।

इधर देवी आम्रपाली अपनी प्रिय दासियों के साथ एक रथ में बैठी हुई, हजारों प्रशंसकों का अभिवादन स्वीकार करती हुई अपने पड़ाव-स्थल पर पहुंची। नृत्य की वेश-भूषा उतारे बिना ही वह शय्या पर सो गयी।

कुछ समय पश्चात् आर्य शीलभद्र अपनी मीठी स्वप्निल कल्पनाओं में खोया हुआ वहां आ पहुंचा। वह आम्रपाली से मिला और विनम्र स्वर में बोला—"देवि! एकाध घटिका के बाद ही मृगया के लिए जाना पड़ेगा।"

"क्यों?"

"मेरे साथी शिकारी आज प्रातः वन में गए थे। वे एक भयंकर वराह के समाचार लेकर लौटे हैं। हमें उसका शिकार करना है।"

"अच्छा, मैं तैयार हो जाती हूं।"

लगभग अर्द्ध-घटिका के पश्चात् आम्रपाली एक तरुण आनर्त युवक के वस्त्र पहनकर अश्व पर सवार हुई।

आम्रपाली के वेश को देखकर शीलभद्र अवाक् बन गया। उसको देखने पर सबको यही प्रतीति होती कि वह कोई तरुण शिकारी ही है, स्त्री नहीं।"

शीलभद्र बोला—"देवी पुरुषवेश में···।"

"क्या अयोग्य लगता है ?"

"नहीं···बहुत ही आकर्षक है।"

कुछ समय पश्चात् दोनों अपने-अपने अश्वों पर बैठकर पड़ाव से बाहर निकल गए। उनके साथ चार सशस्त्र शिकारी थे। आर्य शीलभद्र के पास धनुष-बाण थे और एक भाला भी था। उसने अपनी कमर में तलवार लटका रखी थी।

आम्रपाली ने केवल धनुष-बाण ही रखे।

१९. भूतिया आवास

भूतिया आवासगृह वाली पहाड़ी के मार्ग की ओर चारों शिकारियों के साथ आर्य शीलभद्र और देवी आम्रपाली अपने-अपने अश्वों पर आरूढ़ होकर जा रहे थे।

देवी आम्रपाली श्वेत काम्बोजी अश्व पर आरूढ़ थी। वह अश्व अत्यन्त तेजस्वी था। देवी आम्रपाली अश्वचालन में अत्यन्त निपुण थी, क्योंकि उसके पिता उसको धनुर्विद्या और अश्वचालन की शिक्षा देने में प्रारम्भ से ही सतर्क थे और निपुण शिक्षकों के द्वारा उसे ये दोनों विद्याएं हस्तगत कराई थीं।

शीलभद्र आम्रपाली पर पहले से ही मुग्ध था किन्तु देवी का पुरुष वेश और अश्वचालन को देखकर वह और अधिक मुग्ध हो गया।

शीलभद्र के चारों साथी आगे चल रहे थे। उसके पीछे इन दोनों के अश्व चल रहे थे। इस शिकार योजना की पृष्ठभूमि में शीलभद्र का एक हेतु था। वनप्रदेश के नीरव एकान्त में वह वैशाली के इस उभरते यौवन को अपना करना चाहता था। इस उद्देश्यपूर्ति के लिए उसने एक सरोवर के किनारे विश्राम की सारी सामग्री जुटा रखी थी। वह चाहता था कि मृगया के बहाने वहां आकर आम्रपाली के हृदय में वह अपना स्थान बना लेगा। उस वन-प्रदेश में वराह, बाघ आदि भयंकर प्राणी रहते थे। शीलभद्र चाहता था कि ऐसे भयंकर प्राणियों का शिकार कर वह अपनी अपार शक्ति का परिचय आम्रपाली को करा सके। वह जानता था कि सुन्दर स्त्रियां सदा वीरत्व के प्रति मुग्ध होती हैं।

वे चलते-चलते नदी के किनारे पहुंचे। शीलभद्र बोला—"देवि ! सामने दो पहाड़ियां दीख रही हैं न ?"

"हां, दीख रही हैं।"

"इन दोनों पहाड़ियों के मध्य एक छोटा अत्यन्त सघन वन है। वहां हमें चलना होगा।"

"सघन वन में ?"

"हां, देवि ! वराह का शिकार कोई सामान्य बात तो नहीं है।"

"मैंने तो सुना है कि···।"

"क्या ?"

"वराह बहुत ही शक्तिशाली और भयंकर प्राणी होता है।"

"हां, देवि ! इसके जैसा दूसरा कोई प्राणी शक्तिशाली नहीं होता। जब तक तीर इसके आर-पार नहीं जाता, तब तक वह मरता नहीं, और तब वह अपने शिकारी को मारे बिना शांत नहीं होता।" शीलभद्र ने कहा।

देवी आम्रपाली कुछ कहे, इतने में ही आगे चलने वाले चारों साथी शिकारियों ने अपने घोड़ों को रोककर कहा—"महाराज ! आप इस मार्ग से परिचित हैं, आप आगे बढ़ें। हम वराह को जलाशय की ओर खदेड़ते हैं।"

"जलाशय तो वराह के लिए मृत संजीवनी होती है, परन्तु तुम उसे भूतिया आवासगृह की ओर खदेड़ो तो बहुत अच्छा रहेगा।" शीलभद्र ने कहा।

"ठीक है, हम ऐसा ही करेंगे", कहकर चारों अश्वारोही अपने घोड़ों को तीव्र वेग से दौड़ाते हुए आगे बढ़ गए।"

आम्रपाली बोली—"कुमारश्री ! भूतिया आवासगृह वाली पहाड़ी ?"

"हां, देवि ! उस मकान में कोई नहीं रह सकता। यदि कोई अनजान व्यक्ति वहां रात को रह जाता है तो उसकी मौत निश्चित है।"

"ओह !"

"देवि ! आप निश्चिन्त रहें। वहां हमें नहीं जाना है। मैंने जलाशय के पास एक कुटीर तैयार करा रखी है···"

"कुटीर···" आम्रपाली ने आश्चर्यभरी नजरों से देखते हुए कहा।

"मुझे तो शिकार का पीछा करना पड़ेगा···मैं वापस लौटूं तब तक आप वहां विश्राम कर सकेंगी।" शीलभद्र ने कहा।

"नहीं कुमार ! मैं भी शिकार के लिए ही आई हूं···मेरा निशाना कभी व्यर्थ नहीं जाता।" आम्रपाली बोली।

"देवी ! वराह का शिकार बहुत ही कठिन होता है।"

"फिर भी मैं तो साथ ही रहूंगी।"

शीलभद्र दो क्षण आम्रपाली की ओर देखते हुए बोला—"भद्रे ! परन्तु···।"

"आर्य ! मैं आपके बाहुबल का परिचय फिर कैसे प्राप्त कर सकूंगी। आप मेरी चिन्ता न करें। मेरा अश्व बहुत तेजस्वी है। मेरे बाण दिव्य हैं।" आम्रपाली ने सहज स्वर में कहा।

शीलभद्र मुस्कराया। वह बोला—"देवि ! आप मेरे साथ चलें, इसमें मुझे तनिक भी आपत्ति नहीं है···परन्तु नारी के नयनबाणों से मनुष्य तो घायल होता है, परन्तु वराह घायल नहीं होता।"

आम्रपाली ने हंसते हुए उत्तर दिया—"आपको तो कोई भय नहीं है ?"

"किस बात का ?"

"नारी के नयनबाणों का।"

"नहीं देवि ! ऐसा कोई भय नहीं है। नयनबाणों को झेले बिना किसी के हृदय में कविता का जन्म नहीं होता।" कुमार शीलभद्र ने कहा।

शीलभद्र का हृदय-सागर प्रेम की उत्ताल तरंगों से तरंगित हो रहा था। वह यौवन की प्रतिमूर्ति आम्रपाली को एकान्त में ले जाने के लिए आतुर था। पर आम्रपाली को अपनी भावना बताने में उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी।

दोनों पहाड़ी के बीच वाले मार्ग से आगे बढ़ने लगे।

वे चारों साथी उनसे छिटककर पूर्व योजना के अनुसार एक पल्ली में जा बैठे थे। आम्रपाली के साथ पूर्ण एकान्त प्राप्त करने की यह योजना शीलभद्र ने तय कर रखी थी।

इधर बिंबिसार पर्वतीय मेले से श्रान्त होकर विश्राम कर रहा था। उसने उस गहन वन-प्रदेश में जाने की बात सोची। भूतिया मकान में रहते उसे काफी समय हो चुका था। वह उठा। स्नान आदि से निवृत्त होकर जो मिठाई मेले से खरीदी थी, उसे खाकर भूख मिटाई। कुछ जलपान कर वह वन-प्रदेश की ओर जाने की तैयारी करने लगा। उसने धनुष-बाण लिये, तूणीर बाणों से भरा था। अश्व पर आरूढ़ होकर जाने जैसी पगडंडी न मिलने के कारण वह पैदल ही उस गहन वन-प्रदेश की ओर चल पड़ा।

उसी समय देवी आम्रपाली और कुमार शीलभद्र के दोनों अश्व उस संकरे मार्ग में प्रविष्ट हो चुके थे।

बिंबिसार ने न उन्हें देखा और न वे बिंबिसार को देख सके।

दोनों के अश्व उस संकरी पगडंडी को पार कर वन-प्रदेश में आ गए।

आम्रपाली ने देखा। वह प्रदेश स्वर्ग की तुलना कर रहा था। वहां विविध प्रकार के पक्षी, हरिणों के यूथ, अपनी चपलता पर सदा गर्व करने वाले वानर, विविध प्रकार के वृक्ष, लताएं, फूलों से झुकी हुई शाखाएं—यह सब देखकर आम्रपाली मुग्ध हो गयी। वह बोली—"कुमारश्री ! यह तो अत्यन्त सुन्दर वन-प्रदेश है।"

"हां, देवि ! बहुत सुन्दर है, पर है भयंकर।"

"क्या सुन्दरता भयंकर होती है ?" आम्रपाली ने सहज स्वरों में कहा।

"हां, देवि ! सुन्दरता भयंकर ही होती है ! आपका सौन्दर्य वैशाली के लिए···" बीच में ही आम्रपाली बोली—"नहीं प्रिय ! सुन्दरता कभी भयंकर नहीं होती। यह तो केवल लोगों की दृष्टि का दोष है···यदि लोग वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने का प्रयत्न करते तो मुझे आज लोगों के सामने नाचना न पड़ता।"

अश्व को रोककर शीलभद्र बोला—"देवि ! क्षमा करें ! मेरा आशय आपके दिल को दुःखाने का नहीं था।"

"नहीं कुमार! मेरा दिल अब सुकुमार नहीं रहा है···आपके कथन का मुझे तनिक भी दुःख नहीं है।"

उसी समय एक भयंकर चीख कानों को चीरती हुई निकली। दोनों अश्व चौंके···शीलभद्र और आम्रपाली भी चौंक उठी। शीलभद्र बोला—"देवि! सावधान रहें···कोई वराह होगा···आप अपने अश्व को मेरे साथ ही रखें।"

दोनों चले। एकाध दंड की दूरी तय की होगी कि पीछे भूचाल आया हो ऐसी आवाज सुनाई दी। वृक्ष कांप रहे हों, ऐसा दोनों को आभास हुआ। शीलभद्र ने पीछे देखा···एक विशालकाय वराह पूर्ण वेग से पीछे भागता हुआ आ रहा है।

शीलभद्र बोला—"देवि! अब हमें यहां से भागना चाहिए। भयंकर वराह अपना पीछा कर रहा है।"

देवी आम्रपाली का उत्तर सुने बिना ही शीलभद्र ने अपने अश्व को एक ओर मोड़ा। आम्रपाली का तेजस्वी अश्व भी सामने की दिशा में भागने लगा। भागते-भागते शीलभद्र ने पीछे देखा। आम्रपाली का अश्व उसके पीछे नहीं आ रहा था। वह भूतिया आवास की ओर भाग रहा था। और···भयंकर वराह उसका पीछा कर रहा था। अब क्या हो? आम्रपाली का क्या होगा? उसको कैसे बचाया जाए? स्वयं वहां खड़ा रहकर बाण का संधान करे या नहीं? बाण से वराह मरेगा या नहीं···और यदि वह वराह आम्रपाली का पीछा छोड़कर इस ओर आ जाए तो? तब तो इस निर्जन वन-प्रदेश में ही सारी आशाएं समाप्त हो जाएं···।"

यह सब कैसे हुआ? मैंने ऐसी कल्पना भी नहीं की थी। वराह का शिकार तो एक बहाना मात्र था···किन्तु वराह आया कहां से?

इन सभी प्रश्नों के बीच उलझा हुआ शीलभद्र अपनी सुरक्षा की चिन्ता में अत्यधिक व्याकुल हो उठा। वह अपने अश्व को पूर्ण वेग से दौड़ाने लगा।

किन्तु पहाड़ी की ओर जाती हुई आम्रपाली की स्थिति विषम बन चुकी थी। सघन झाड़ी के कारण वह तेजस्वी अश्व भी पूर्ण वेग से दौड़ने में असमर्थ हो रहा था। पग-पग पर अवरोध आ रहा था और पीछा करने वाले वराह का गर्जारव शरीर के रक्त को हिम की भांति सघन बना रहा था। अब क्या किया जाए?

कंधे पर पड़ा धनुष केवल शोभारूप बन रहा था। क्योंकि रुककर संधान करने का समय ही नहीं था। यदि यह साहस किया जाए तो संभव है वराह के दांतों से मृत्यु का वरण निश्चित था।

आम्रपाली अपने अश्व को तेज दौड़ाने लगी। अश्व को भी अपने प्राणों का भय था। वह स्वयं को और अपने स्वामी को बचाने के प्रयत्न में था।

मनुष्य हो या पशु, वह मौत से बचने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देता है।

आम्रपाली ने देखा—सामने एक छोटी-सी पहाड़ी है। उसके पीछे कोई-न-कोई मार्ग अवश्य होना चाहिए। वहां पहुंच जाने पर इस गहन वन-प्रदेश के भय से मुक्त हुआ जा सकता है। क्योंकि यह काम्बोजी अश्व मार्ग मिलने पर पक्षी की भांति जमीन पर उड़ सकता है।

उसी समय एक तीखी चीख ने सारे वन-प्रदेश में खलबली मचा दी।

आम्रपाली को यह अनुभव होने लगा कि अब मौत मुंह बाए सामने खड़ी है।

किन्तु टेकरी के पीछे वाली पहाड़ी से वन-प्रदेश को देखने की अभिलाषा से चला आ रहा बिंबिसार वराह की तीव्र आवाज को सुनकर सावधान हो गया। उसने देखा, एक श्वेत अश्व पर कोई भयार्त्त नवयुवक बैठा है और वह अश्व इसी ओर चला आ रहा है।

अश्व टेकरी पर चढ़े उससे पूर्व ही आम्रपाली ने पीछे देखा, वराह उससे केवल दस-बीस कदम ही दूर है और उसके दंतशूल कुछ ही क्षणों में उसको चीर डालेंगे, ऐसा प्रतीत हुआ। आम्रपाली ने करुण चीत्कार किया। यह स्त्री-स्वभाव की सुलभ चीत्कार थी। वराह ने भी अपने शिकार पर झपटने के लिए तीखा गर्जारव किया।

श्वेत अश्व चौंका···।

आम्रपाली अपने आपको सम्भाल नहीं सकी···वह अश्व से नीचे लुढ़क गयी। वह मूर्च्छित हो गयी।

किन्तु उसी समय सर्-सर् करता हुआ एक बाण वराह के मस्तिष्क के आर-पार निकल गया। वराह का रोष दुगुना हो गया। उसने पांच-सात कदम पर खड़े अश्व की ओर देखा और एक बाण तीव्र गति से आया और वही वराह की मृत्यु का कारण बना।

वराह ने मृत्यु से पूर्व अन्तिम चीख निकाली और वहीं का वहीं उछलकर भूमिसात् हो गया।

भयार्त्त अश्व खड़ा ही था।

किन्तु शीलभद्र कहां गया?

बहुधा ऐसा होता है कि प्राणी भय से आक्रान्त होकर मूर्च्छित ही नहीं होता, मर भी जाता है। तरुण राजकुमार के वेश में शिकार के लिए निकली हुई आम्रपाली वराह के भयंकर रूप को देखकर तथा मौत का सात-आठ कदम पर साक्षात्कार कर अत्यधिक भयाक्रान्त हो अश्व से लुढ़ककर मूर्च्छित हो गयी थी। वह भूमि पर उसी अवस्था में पड़ी थी। उसे यह ज्ञात नहीं हुआ कि जिस मौत के

भय से वह मूर्च्छित हुई है वह मौत किसी अनजान नययुवक के बाण से स्वयं मर चुकी है।

वन-प्रदेश की रमणीयता को देखने के लिए निकले हुए बिंबिसार को भी यह कल्पना नहीं थी कि इस प्रकार उसके हाथों एक भयंकर वराह का शिकार होगा।

आम्रपाली अचेत अवस्था में पड़ी थी। बिंबिसार भी अश्व से गिर पड़े शिकारी को ढूंढ़ता हुआ इस ओर आ रहा था। वह शिकारी आम्रपाली के निकट आए, उससे पूर्व ही अश्व ही अपनी स्वामिनी जहां गिरी थी, उस ओर डरते-डरते आ रहा था।

कुछ ही समय पश्चात् बिंबिसार तीव्र गति से चलता हुआ वहां आ पहुंचा और उसकी दृष्टि पुरुषवेशधारिणी मूर्च्छित आम्रपाली पर पड़ी।

बिंबिसार ने सात-आठ कदम दूर पड़े वराह को देखा। उसे यह निश्चित हो गया कि वराह मर गया है। वह मूर्च्छित आम्रपाली के पास गया और उसे देखते ही चौंका। उसने सोचा, क्या ऐसा सुकुमार राजकुमार शिकार खेलने आया था? उसने झुककर आम्रपाली का हाथ पकड़ा। ओह! क्या गुलाब की कली जैसी सुकुमारता एक नवजवान पुरुष के हाथ में हो सकती है?

कुछ दूर खड़ा अश्व हिनहिनाने लगा। बिंबिसार ने सोचा, इस युवक शिकारी को अपने खेमे में ले जाकर इसकी मूर्च्छा को दूर करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। यह भय से मूर्च्छित हुआ है।

यह सोचकर उसने दोनों हाथों से आम्रपाली को उठाया। ओह! इतना कोमल और फूल जैसा शरीर। उस समय आम्रपाली के सिर की पगड़ी नीचे गिर पड़ी और उसके जूड़े की सघन केशराशि बिखर गयी। बिंबिसार चौंका··· क्या यह कोई राजकन्या है? इसने पुरुषवेश क्यों धारण किया है? इसका साथी कहां है? वह कहां पलायन कर गया? क्या वह इस सुन्दरी का प्रियतम है? ऐसा कायर और डरपोक प्रियतम!

किन्तु विशेष प्रश्नों में मैं क्यों उलझूं? मेरा तो एकमात्र कर्त्तव्य है कि मैं इसका संरक्षण करूं। यह सोचकर बिंबिसार ने श्वेत अश्व पर आम्रपाली के मूर्च्छित शरीर को उचित ढंग से रखकर स्वयं अश्व की लगाम थामे अपने निवास की ओर चल पड़ा।

मनुष्य का यह सहज स्वभाव है कि वह अपने संरक्षण की बात पहले सोचता है, उसको ही प्रधानता देता है। दूसरों के संरक्षण की बात द्वयं होती है। दूसरों की खातिर अपने प्राणों को जोखिम में डालने वाले विरले ही होते हैं। शीलभद्र मौत के पंजे से अपने आपको बचाने के लिए भाग छूटा। भागते-भागते उसने करुण चीत्कार सुना था और उसने यह निश्चय कर लिया था कि वैशाली का

नारी-रत्न वराह के तीखे दांतों का भोग बन गया है। स्वयं के अन्तर में जो स्वप्न अठखेलियां कर रहा था, वह सदा-सदा के लिए मिट गया है।

शीलभद्र भागते-भागते उसी जलाशय के पास आया, जहां स्वप्निल आशाओं को मूर्त्त बनाने के लिए एक कुटीर का निर्माण कराया था। वह कुटीर आम्रपाली के उभरते यौवन के साथ रंगरेलियां मनाने के लिए बना था। पर उसे देखते ही उसने निःश्वास छोड़ा और अपने साथियों से मिलने एक निर्धारित दिशा में चल पड़ा।

इधर बिंबिसार का विश्वस्त मित्र धनंजय और भृत्य युवराज की टोह में इधर-उधर घूम रहे थे।

जब बिंबिसार उस श्वेत अश्व को लेकर उस पहाड़ी पर निर्मित भूतिया आवास या प्रस्तरगृह के पास पहुंचा तब सूर्य की अन्तिम किरणें लुप्त हो चुकी थीं।

बिंबिसार ने प्रस्तरगृह के एक शिलाखण्ड पर मूर्च्छित आम्रपाली को पूर्ण सावधानीपूर्वक सुलाया और थके-मांदे अश्व को बाड़े में चरने के लिए छोड़ दिया।

फिर उसने दूसरे खण्ड में एक दीपक ढूंढ़ा, चकमक प्रस्तर से अग्नि प्रकट कर दीपक जलाया और उसे आम्रपाली के खण्ड में रख दिया।

वह एक जलपात्र लेकर मूर्च्छित आम्रपाली के पास गया और धीरे-धीरे उसके मुंह पर शीतल जल के छींटे देने लगा।

इधर शीलभद्र संध्या होते-होते अपने साथियों से जा मिला। उसको अकेला देख एक साथी ने पूछा—"महाराज ! देवी···?"

"बड़ी दुर्घटना हो गई।" शीलभद्र ने दर्द भरे स्वर में कहा।

"कैसी दुर्घटना ?"

"हाय ! देवी आम्रपाली एक भयंकर वराह का भोग बन चुकी है।"

"देवी का शव ?"

"अब उसके मिलने की कोई सम्भावना नहीं है। मैंने देवी की अन्तिम चीख सुनी थी।" कहकर शीलभद्र ने संक्षेप में सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

वहां से शीलभद्र मेले के सप्तरंगी पड़ाव में गया जहां आम्रपाली का अस्थायी निवास था। माध्विका ने पूछा—"देवी···?"

"भयंकर दुर्घटना।" शीलभद्र ने कहा।

"दुर्घटना !" माध्विका के नेत्र विस्फारित रह गये।

"हां, एक वराह ने देवी का भोग ले लिया···" शीलभद्र ने कहा।

"किन्तु आप तो साथ थे···।" माध्विका ने कहा।

"हां, किन्तु मेरा अश्व चौंका और भागा। मैं निशाना साधूं इतने में ही देवी की अन्तिम चीख मेरे हृदय को चीर कर आर-पार निकल गयी।"

माध्विका के दोनों नयन अश्रु से छलक उठे। उसका हृदय फटने लगा। उसका साहस टूट गया और वह बुत की भांति नीचे बैठ गयी।

इधर पहाड़ी के प्रस्तर गृह में बिंबिसार पुरुषवेशधारिणी आम्रपाली को जागृत करने का सतत प्रयास कर रहा था। शीतल जल के छिड़काव से धीरे-धीरे मूर्च्छा टूटने लगी। उसने नेत्र-पल्लव खोले···।

उसने देखा, एक नवजवान सामने बैठा है। स्वयं पत्थर की शिला पर पड़ी है। एक दीपक मंद-मंद प्रकाश दे रहा है। उस खण्ड में कोई साधन-विशेष नहीं है।

आम्रपाली ने भयमिश्रित दृष्टि से चारों ओर देखा।

बिंबिसार बोला—"देवि! आप भयमुक्त हैं।"

मधुर स्वर से तथा देवि के सम्बोधन से आम्रपाली चौंकी और क्षीण स्वर में बोली—"हुं"

बीच में ही बिंबिसार बोला—"देवी! आप चिन्ता न करें। यहां किसी हिंसक प्राणी का भय नहीं है।"

"आप···?"

"मैं मालव देश का राजपूत हूं। आप यदि उठें तो मैं आपको जलपात्र दूं।" बिंबिसार ने कहा।

बिंबिसार के तेजस्वी बदन को निहारती हुई आम्रपाली शिलाखण्ड पर बैठी। उसने देखा अपने मस्तक की पगड़ी गिर जाने के कारण केशराशि खुली हो जाने के कारण ही इस युवक ने मुझे 'देवी' शब्द से सम्बोधित किया है।

आम्रपाली ने भयाक्रान्त स्वर में पूछा—"वह भयंकर वराह···?"

"देवि! आपका आयुष्य लम्बा था। वराह आपको कुछ हानि पहुंचाए, उससे पहले ही उसकी मौत हो गयी।"

"मौत? उसका नाश किसने किया?"

"देवि! आपके भाग्य ने···परन्तु आपका प्रेमी···?"

"मेरा प्रेमी···?" आम्रपाली ने पूछा।

"आपके साथ जो नवयुवक था···?"

"उसका क्या हुआ?"

"मैं यह नहीं जानता···किन्तु वराह के पंजों से वह सही-सलामत बच गया।"

आम्रपाली ने मन-ही-मन कहा—'कायर!' दो क्षण मौन रहकर वह

बोली—"तो फिर वराह का नाश किसने किया ? हमारे साथ और कोई पुरुष तो था ही नहीं।"

"मैंने कहा कि आपके भाग्य ने आपकी रक्षा की है।" बिंबिसार ने कहा।

"अच्छा, मैं समझ गयी। आप ही मेरे भाग्य बनकर आये। परन्तु···।"

"परन्तु क्या ?"

"यह स्थान ?"

"देवि ! मैं इस स्थान से अपरिचित हूं। मैं इस प्रस्तरगृह में रहता हूं। इसे ही लोग भूतियागृह कहते हैं।"

"भूतियागृह !"

"हां, किन्तु मुझे यहां कोई भूत-वूत नहीं मिला।"

"आप यहां अकेले ही रहते हैं ?"

"नहीं, मेरे दो साथी और हैं।" बिंबिसार बोला।

आम्रपाली ने चारों ओर देखा। फिर वह खड़ी हुई और बोली—"क्या मेरा अश्व वराह का भोग बन गया ?"

"नहीं आपका अश्व सुरक्षित है।"

"सुरक्षित है ?"

"हां ! आप मूर्च्छित हो गयी थीं। आपके अश्व पर आपको चढ़ाकर ही मैं यहां लाया हूं।"

आम्रपाली ने पूछा—"आपका शुभ नाम ?"

"मेरा नाम शुभ है या अशुभ, मैं नहीं जानता। मुझे लोग जयकीर्ति कहते हैं।"

"जयकीर्ति ! यह नाम तो परिचित-सा लगता है। क्या आप मेले में गये थे ? क्या आपने एक विकराल हाथी को···।"

"हां, देवि···। मैं वही जयकीर्ति हूं।"

"भाग्यवान् ! क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकती हूं ?"

"हां-हां, संकोच न करें।"

"क्षमा करें। आपने मेरे साथी को मेरा प्रेमी कैसे मान लिया ?" आम्रपाली ने पूछा।

"देवि ! मैंने उसको भागते हुए देखा था। जब मैंने आपको मूर्च्छित अवस्था में उठाया तब आपके पुरुषवेश का रहस्य खुल गया।"

आम्रपाली ने हंसते हुए कहा—"प्रेमी होता तो क्या कभी भागता ? अरे ! आपने मेरा परिचय तो पूछा ही नहीं।"

"आपका परिचय तो मुझे मिल गया।" बिंबिसार ने सहज स्वर में कहा।

"मेरा परिचय कैसे प्राप्त हुआ ?" आम्रपाली ने पूछा।

"आपकी सुकुमारता से।"

"तो फिर मैं कौन हूं?"

"आप अवश्य ही राजकन्या हैं।"

आम्रपाली खड़खड़ाहट करती हुई हंस पड़ी और हंसती-हंसती बोली—"आप कल्पना के खिलाड़ी हैं···और कोई कल्पना तो नहीं की है?"

"दूसरी कोई कल्पना नहीं की है, राजकुमारीजी! अब आप विश्राम करें।" बिंबिसार ने कहा।

"आराम! इस भूतिया घर में?"

"देवि! आप भय न करें। मैं सारी रात जागकर बिता दूंगा। आप निश्चिन्त होकर सो जायें।" बिंबिसार बोला।

कुछ समय तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। आम्रपाली बिंबिसार के व्यवहार और स्नेह से अभिभूत होकर उसके प्रति आकृष्ट हो गयी। उसने मन ही मन सोचा, यह मनुष्य नहीं, देवता है। इसके मन में करुणा है, प्रेम है, दया है, प्यार है।

बिंबिसार बोला—"देवि! आप विश्राम करें। रात बीत रही है। आप मेरे पर विश्वास रखें। आपको किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी।"

"जयकीर्तिजी! नारी का मन कितना कोमल होता है, यह आप···।"

बीच में ही बिंबिसार ने सहज स्वर में कहा—"आपका अनुमान सही है। किन्तु नारी के मन का मुझे परिचय नहीं है।"

आधी रात बीत गयी।

आम्रपाली बोली—"आर्य! अब हम दोनों जागते-जागते रात बिताएं। हम बातें करें और···।"

"और क्या?"

"पहले मैं इस पुरुषवेश को उतार दूं···।"

"दूसरे कपड़े हैं कहां? यहां तो···।"

बीच में ही आम्रपाली बोल उठी—"मेरे पास वे कपड़े हैं। मैं कपड़े बदलकर आपको आवाज दूं तब आप उस प्रस्तर-गृह में पड़ी वीणा को लेकर यहां आयें···।"

आम्रपाली दूसरे खण्ड में गयी जहां उसकी पोशाक पड़ी थी। उसने सोचा, मेरे पुरुषवेश के कारण इस नौजवान के चित्त में आकर्षण का अमृत नहीं छलक पाता। मेरे मूल वेश से इस युवक के निर्मल प्राणों में यौवन की माधुरी उत्पन्न हो सकेगी।

आम्रपाली ने आनर्तक युवक की पोशाक उतारी और भुवन-मोहिनी की

पोशाक धारण कर एक शिलाखण्ड पर बैठ गयी। उसने जयकीर्ति को आवाज दी।

बिंबिसार हाथ में वीणा लेकर उस खण्ड में आया···।

और···।

शिलाखण्ड पर बैठी भुवनमोहिनी राजकुमारी को देखकर वह चौंक पड़ा।

२०. रंग हिंडोल राग

बिंबिसार को देखते ही आम्रपाली बोल उठी—"आइये! आज की रात हमारे जीवन का एक स्मरण बन जाएगी।"

बिंबिसार सकुचाता हुआ शिलाखण्ड पर बैठ गया और अपनी वीणा एक ओर रख दी।

आम्रपाली बोली—"जयकीर्तिजी! आपका चित्त···?"

"प्रसन्न है। परन्तु एक चिन्ता···।"

"चिन्ता! किसी प्रियतमा से मिलने की उत्कण्ठा में मैं तो बीच में नहीं आ गयी?" आम्रपाली ने मुस्कराते हुए कहा।

"राजकुमारी! आप भी कल्पना की खिलाड़ी प्रतीत हो रही हैं। आप आश्चर्य न करें···मेरे जीवन में अभी तक किसी प्रियतमा ने या नारी ने प्रवेश नहीं किया है।"

"तो फिर आधी रात में पुरुष को कैसी चिन्ता?"

"मुझे आपकी चिन्ता है। मैं अपरिचित व्यक्ति। आपको कुछ हो गया तो मैं आपको कहां छोड़ूंगा?" बिंबिसार ने सहज भाव से कहा।

"आप चिन्ता न करें। ऐसे मधुर क्षण जीवन में कब-कहां उपलब्ध होते हैं?"

बिंबिसार मौन रहा। वह आम्रपाली के तेजस्वी और प्रफुल्ल वदन की ओर देखता रहा। उसने मन ही मन सोचा, इस राजकन्या को अपनी वर्तमान परिस्थिति की कोई चिन्ता नहीं है। यह नारी कौन होगी? ऐसे अनजान प्रदेश में एक अपरिचित व्यक्ति के समक्ष इसके वदन पर आनन्द और परिहास की रेखाएं उभर रही हैं।

आम्रपाली बोली—"आप किसी नारी के परिचय में नहीं आये, इस बात को जाने दें। क्या आप कल मेले में गये थे?"

"हां···!"

"तब तो आपने आम्रपाली का नृत्य अवश्य देखा होगा?"

"नहीं।"

"क्यों? क्या किसी द्यूतक्रीड़ा में फंस गये थे?"

"नहीं। देवि ! मैं जुए में रस नहीं लेता।"

"अच्छा, मेले का स्वरूप तो भव्य और सुन्दर होगा ?"

"लोकदृष्टि से वह भव्य और सुन्दर हो सकता है। मेरी दृष्टि में तो वह भयंकर था।"

"भयंकर ?"

"हां, राजकुमारी ! जो लिच्छवी जाति समग्र भारत के क्षत्रियों के लिए वीरत्व का प्रतीक है, उसका पतन देखकर मैं अकुला गया। मेले में मुझे उनके वीरत्व का कहीं दर्शन नहीं हुआ। सभी युवक और वृद्ध मदिरा, सुन्दरी और द्यूत को जीवन का वरदान मान रहे हैं, ऐसा लगा। लोगों की आंखों में विलास और वासना के मेघ उभरते मैंने देखे हैं।"

बीच में ही आम्रपाली बोल उठी—"मैंने सुना है कि मालवा के युवक भी रंगीले होते हैं ?"

"वैशालिकों की भांति नहीं।" बिंबिसार ने धीरे से कहा।

"कुमारश्री ! जहां वीरता होती है वहां विलास भी होता है।"

"मेरी मान्यता इससे भिन्न है। वीरता और विलास का कोई गठबन्धन नहीं होता। विलास, आनन्द और वासना अपनी सीमा में ही शोभित होते हैं। उसकी स्वच्छंदता स्वतन्त्रता के लिए खतरा पैदा कर देती है। इस मेले में मुझे वैशालिकों की वीरश्री के कहीं दर्शन नहीं हुए।" बिंबिसार ने कहा।

बिंबिसार ने पास में पड़ी वीणा की ओर देखा। उसके चित्त में इस देवकन्या तुल्य सुन्दरी ने अनेक ऊर्मियां उत्पन्न कर दी थीं। वह तो यही समझता था कि यह सुन्दरी वैशाली के किसी राजघराने की कन्या है। मेला देखने आयी होगी। किसी साथी के साथ शिकार खेलने चल पड़ी होगी। वह साथी इसका प्रेमी हो या भृत्य···किन्तु इस नारी के सहवास में अद्भुत मस्ती का अनुभव अवश्य होता है।

बिंबिसार धीरे-धीरे इस युवती के प्रति आकर्षित हो रहा था। किन्तु उसे अपनी मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान था।

आम्रपाली ने हंसते हुए कहा—"कुमारश्री ! आप निःसकोच रूप से वीणा-वादन करें। मुझे भी संगीत के संस्कार माता-पिता से प्राप्त हुए हैं। बाल्य अवस्था से मुझे इसका शौक रहा है।"

"मैं धन्य हुआ" कहकर बिंबिसार वीणा-वादन के लिए प्रस्तुत हुआ। उसने पूछा—"देवि ! आपको कौन-सा राग अतिप्रिय है ?"

आम्रपाली बोली—"श्रीमन् ! मुझे तो सभी राग प्रिय हैं···किन्तु श्रावण की सुहाविनी रात, नीरव एकान्त, शान्त वातावरण, यौवन के प्रथम स्पर्श से

पुलकित दो हृदय और वे भी अपरिचित। कुमार ! ऐसे समय में 'रंगहिंडोल' राग ही अच्छा रहेगा।"

'रंगहिंडोल !' रति का प्रिय राग ! राधा का प्रिय राग ! वासली का प्रिय राग !

बिंबिसार ने मन-ही-मन सोचा, यह नवयौवना राग-विज्ञान से अपरिचित हो, ऐसा नहीं लगता···किन्तु ऐसा मस्ती भरा राग तो प्रिया और प्रियतम के बीच ही शोभित होता है।

वीणावादन प्रारम्भ हुआ। रंगहिंडोल राग से सारा वातावरण आप्लावित हो गया। अभी तो राग का प्रारम्भ ही था। फिर भी आम्रपाली ने अनुभव किया कि उसके समर्थ वीणावादक आचार्य पद्मनाभ भी राग का यह माधुर्य उत्पन्न करने में समर्थ नहीं थे।

आधी घटिका बीत गयी।

आम्रपाली के नयनों में क्रीड़ा करने वाली परिहासप्रियता स्वतः लुप्त हो गयी। उसने श्रद्धाभरी तथा उन्मत्त दृष्टि से कलाकार की ओर देखा।

काल बीत रहा था।

वीणा पर बजने वाली दो ग्राम की मस्ती अनोखी थी। आम्रपाली का हृदय घनघनाहट कर रहा था। बिंबिसार की आंखें बन्द थीं।

दूसरी अर्ध घटिका भी बीत गयी।

अरे यह क्या ? तीन ग्राम पर स्वरान्दोलन ? आम्रपाली उठ खड़ी हुई। उसके रक्त के कण-कण में व्याप्त नृत्य अपने आप जागृत हो गया।

आम्रपाली ने समय, स्थल और संयोग का विचार किए बिना ही नर्तन प्रारम्भ कर दिया।

पैरों में घुंघरू नहीं थे। कमर में कटिमेखला नहीं थी। नृत्य के अलंकार भी नहीं थे। नृत्य का परिवेश भी नहीं था। नृत्यभूमि भी नहीं थी। रंगमंच भी नहीं था। दृश्यविधान भी नहीं था।

इतना न होते हुए भी अन्तर का नृत्य बाहर फूट पड़ा। आम्रपाली नृत्य में तल्लीन हो गयी।

वीणा तीन ग्रामों से आन्दोलित हो रही थी।

एक के बाद एक क्षण नहीं, घटिकाएं बीतने लगीं।

और अपने वीणावादन में बार-बार होने वाली तालबद्ध पदध्वनि से बिंबिसार का ध्यानमग्न मन जाग उठा। उसने आंखें खोलीं। देखते ही वह चौंका। राजकन्या का नर्तन गजब ढा रहा था। उसके समस्त अंग अभिनव नर्तनकला को फूल की शय्या की तरह बिछा रहे थे। अद्भुत था नर्तन और अद्भुत था हावभाव।

बिंबिसार को अत्यन्त हर्ष हुआ। उसकी सधी अंगुलियां रंगहिंडोल राग के सूक्ष्मतम भावों को उकेरने लगीं और तब बिंबिसार ने राग की अन्तिम सूक्ष्म लहरी को तरंगित किया।

यह स्वर लहरी आम्रपाली के नृत्य-मस्त प्राणों को बींध गयी। वह अचानक एक लता की भांति बिंबिसार के चरणों से लिपट गयी और बोली—"प्रियतम! क्षमा करें···अब मैं राग के अनुराग को सहन नहीं कर सकती।"

बिंबिसार ने तत्काल वीणा को एक ओर रख दिया और सुन्दरी के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"राजकुमारी···।"

"मैं राजकुमारी नहीं हूं प्रियतम! मैं राजकुमारी नहीं हूं। मैं हूं वैशाली की जनपदकल्याणी आम्रपाली···। आपकी दासी···कुमार! मेरी प्रतीज्ञा पूरी करें।"

ये शब्द सुनकर बिंबिसार चौंका। क्या यह संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी आम्रपाली है? ओह! इसे मैं पहचान नहीं सका। वह मधुर स्वर में बोला—"देवि! उठें···इस पथरीली भूमि पर···।"

बीच में ही आम्रपाली बोल उठी—"प्रियतम! मेरी प्रतिज्ञा···।"

"आपकी प्रतिज्ञा?" कहकर बिंबिसार ने आम्रपाली को उठाया।

आम्रपाली बोली—"हां, मेरी प्रतिज्ञा है कि जो व्यक्ति वीणा के तीनों ग्रामों पर राग आन्दोलित करे और भान भूलकर मुझे नृत्य करना पड़े तो उस कलाकार के चरणों में मुझे अपना सर्वस्व अपर्ण कर देना है।"

"देवि···!"

"नहीं, मुझे दासी कहें, प्रिया कहें।" कहकर आम्रपाली ने बिंबिसार के चरण पकड़ लिये।

"बिंबिसार ने कहा—"देवि! मैं मालव का जयकीर्ति नहीं हूं। यह मेरा छद्मनाम है देवि! मैं मागधी हूं···वैशाली को रौंदने का स्वप्न संजोने वाले मगधेश्वर प्रसेनजित का पुत्र बिंबिसार हूं।"

"आप श्रेणिक बिंबिसार हैं?"

"हां, देवि···!"

"आप ही मेरे प्राणवल्लभ हैं।" कहकर अम्रपाली ने भावभरी नजरों से बिंबिसार की ओर देखा।

बिंबिसार खड़ा हुआ। उसने आम्रपाली को दोनों हाथ पकड़कर उठाया और बोला—"सामने देखो, दीपक में तेल समाप्त हो रहा है। बाहर नजर करो, प्रातःकाल की माधुरी फैल रही है···हम अब बाहर चलें।" कहकर बिंबिसार आम्रपाली का हाथ पकड़कर बाहर जाने लगा। दोनों बाहर आये।

आम्रपाली बोली—"प्रियतम ! इस अनन्त आकाश के चंदोवा के नीचे आप मुझे···।"

"प्रिये···!" कहकर बिंबिसार ने आम्रपाली को अपनी बांहों में जकड़ लिया।

पीछे के बाड़े में बंधे हुए दोनों अश्व हिनहिनाने लगे।

और वातावरण को रंग डालने वाली रंगहिंडोल राग की स्वर तरंगें अभी भी अपनी मधुरिमा को बिखेर रही थीं।

२१. वैशाली की ओर

प्रातःकाल का धुंधला प्रकाश विश्व को नवचेतना प्रदान कर रहा था। प्रशांत वायु समग्र प्राणियों को पुलकित कर रहा था।

आसपास की डाली पर बैठे हुए पक्षी कलरव कर रहे थे। आकाश नीरव था।

बिंबिसार बोला—"प्रिये ! आज मैं धन्य बन गया। मुझे स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं थी कि तेरी जैसी स्वर्ग सुन्दरी मेरे प्राणों को सौभाग्य से भर देगी।"

आम्रपाली मौन रही।

बिंबिसार ने कहा—"कोई शुभ दिन देखकर हम विवाह कर लें।"

"स्वामिन् ! नर-नारी का मिलन यही तो विवाह है। हमारा विवाह तो आज ही हो गया···गगनमण्डप के नीचे···प्रकृति की साक्षी से···रंगहिंडोल राग के महामन्त्र से···अब विधि की कोई जरूरत नहीं है···नारी अपने जीवन में एक ही बार समर्पित होती है···आज मैं समर्पित हो गयी हूं···और एक विडम्बना नहीं होती तो···"

"कैसी विडम्बना ?"

"आर्य ! जनपदकल्याणी विवाह के बन्धन में बंध नहीं सकती। जनपद-कल्याणी का पद-गौरव नारी के लिए अभिशाप रूप होता है। मैं अपनी आशाओं और अरमानों की राख पर बैठी हुई एक अभिशप्त नारी हूं···फिर भी मैं अपने प्रियतम की प्रिया बनकर रह सकती हूं···यह मेरी विडम्बना आप···।"

"प्रिये ! तेरी विडम्बना का समाधान निकल जाएगा, किन्तु मैं एक मागध हूं···वैशाली के लिच्छवियों को जब यह ज्ञात होगा कि तुम्हारे घर मगधपति का पुत्र है, तब क्या···।"

"यह कोई नहीं जान पाएगा···आप तो मेरे लिए जयकीर्ति ही रहेंगे···।"

बिंबिसार ने आम्रपाली को बाहुबन्धन से मुक्त कर कहा—"पाली ! अब हम गंधर्व विवाह की एक विधि सम्पन्न करें।"

बिंबिसार भीतर के कक्ष में गया और शंबुक द्वारा प्रदत्त उत्तम मोतियों की माला लाकर आम्रपाली के गले में पहना दी।

आम्रपाली ने बिंबिसार के चरण छुए और कहा—"स्वामिन्! अब हम वैशाली चलें। मैं अपना पुरुषवेश धारण कर लेती हूं। आप भी तैयार हो जाएं।"

दोनों तैयार हो गये। बिंबिसार ने अपने एक उत्तरीय से आम्रपाली के सिर पर पगड़ी-सी बांध दी।

दोनों अश्वों पर बैठे और वैशाली की ओर चल दिये।

इधर आम्रपाली की प्रिय सखी माध्विका और आर्य शीलभद्र वनप्रदेश में आम्रपाली की खोज कर लौट आये। उन्हें मरा हुआ वराह मिला और उसके पास पड़ी हुई आम्रपाली की पगड़ी मिली। माध्विका ने शीलभद्र से पूछा—"क्या वराह को आपने मारा?"

"नहीं, मेरा अश्व तो चौंककर भाग खड़ा हुआ था।"

"तो फिर वराह का वध किसने किया?"

"संभव है, किसी वनवासी ने वध किया हो।"

"यदि ऐसा है तो देवी अवश्य बच गई होंगी।"

उन्होंने पुनः वनप्रदेश में आम्रपाली की खोज में आदमी भेजे। पर वे निराश ही लौटे।

बिंबिसार और पुरुष वेशधारिणी आम्रपाली वैशाली के पथ पर बहुत दूर निकल गए।

दोनों अश्व वेग से आगे बढ़ रहे थे। वैशाली एकाध कोस दूर रहा होगा कि आम्रपाली ने अपना अश्व धीमे कर दिया। वह बोली—"स्वामिन्! यहां से वैशाली के उपवन प्रारंभ होते हैं। हमें पीछे के रास्ते से जाना होगा।"

"क्यों?"

"अपने को कोई पहचान न ले, इसलिए।"

बिंबिसार बोला—"वीणावादक जयकीर्ति को कोई नहीं पहचान सकेगा।"

"चेहरे का तेज···"

बीच में ही बिंबिसार बोला—"प्रिये! तेरे तेज के आगे मेरा तेज क्या होगा? तुम भय मत रखो···।"

आम्रपाली प्रियतम की ओर देखकर हंसी और एकटक निहारने लगी।

२२. कादंबिनी

आचार्य अग्निपुत्र मगधेश्वर के प्रयोजन के लिए एक सुंदरी विषकन्या का निर्माण करना चाहते थे। परंतु उन्हें वैसी सुन्दर कन्या प्राप्त नहीं हो रही थी। रानी त्रैलोक्यसुंदरी ने ऐसी कन्या प्राप्त करने का वचन दिया था और उसने दो-

चार दासी-कन्याओं को प्राप्त भी किया था। किंतु आचार्य को उनमें से कोई भी दासी-कन्या उपयुक्त नहीं लगी। आचार्य ऐसी सुंदर कन्या चाहते थे जिसके नयन-पल्लवों पर कामण क्रीडा करते हैं, जिसको देखकर पुरुष बेभान ही न हो जाए, पर उसके अधीन होने में अपना गौरव समझे।

ऐसी कामनगारी सुंदरी हो तो मगधेश्वर अपने कतिपय शत्रुओं को यमसदन के अतिथि बना सकते थे और इसी के आधार पर शंबुकराज को परास्त कर उसके अधीनस्थ संपत्तिशाली वन-प्रदेश को अपने राज्य में मिला सकते थे।

रानी त्रैलोक्यसुंदरी ऐसी कन्या की खोज चारों ओर करने लगी। उसने यह निश्चय किया कि श्रावणी पूर्णिमा को चंपा में आयोजित होने वाले मेले से ऐसी कन्या प्राप्त करने का प्रयास किया जाए। क्योंकि श्रावणी पूर्णिमा को चंपा में प्रतिवर्ष एक विशाल मेले का आयोजन होता था और उस समय वहां हजारों दास-दासियों का क्रय-विक्रय होता था। रानी ने अपनी प्रिय सखी श्यामांगा को पांच-सात व्यक्तियों के साथ उस मेले में भेजा और किसी भी मूल्य पर ऐसी सुंदर दास-कन्या को लाने का आदेश दिया।

श्यामांगा मेले में गई, पर उसे वहां सफलता नहीं मिली। उसने खोज चालू रखी। अंत में एक वारयोषिता के भवन से चौदह वर्ष की कामनगारी कन्या को उसने दस हजार स्वर्णमुद्राओं में खरीदकर राजगृह की ओर प्रस्थान कर दिया।

उस कन्या को देखते ही रानी चौंकी। उसे अपने नवयौवन की स्मृति हो आई। उसने मन-ही-मन सोचा—यदि आचार्य को यह कन्या पसंद नहीं आएगी तो फिर संसार में कोई भी सुंदर कन्या उनको योग्य नहीं लगेगी।

त्रैलोक्यसुंदरी ने स्नेहपूर्वक कन्या के पीठ पर हाथ रखते हुए पूछा—"पुत्रि! तू भाग्यवती है! तेरा नाम क्या है?"

वह मधुर-मंजुल स्वर में बोली—"महादेवि! आपने मुझे नरक से मुक्त कर मेरे पर महान् उपकार किया है। मेरा नाम कादंबिनी है।

"सुंदर नाम!" कहकर रानी ने श्यामांगी से कहा—"देख, जब तक आचार्य न आएं तब तक इसे अपने पास रखना। इसके साथ दासी का व्यवहार न हो, इसका ध्यान रखना।"

श्यामांगी बोली—"महादेवी! आपने जिसे पुत्री के संबोधन से संबोधित किया है, उसकी मैं प्राणों की भांति रक्षा करूंगी।"

रानी ने श्यामांगी को उचित पुरस्कार देकर विदा किया।

श्यामांगी और कादंबिनी के चले जाने पर रानी की मुख्य परिचारिका ने रानी से कहा—"महादेवी! कादंबिनी को यहां रखना उचित होता।"

"क्यों?"

"हम उसकी ठीक तरह से देखभाल कर लेतीं।"

मैंने जानबूझकर ऐसा किया है। भयस्थान से दूर रहना ही अच्छा है। कादंबिनी इतनी सुंदर है कि मगधेश्वर की वृद्ध आंखें भी चौंक पड़ें।" कहकर त्रैलोक्यसुंदरी ने भयस्थान स्पष्ट कर दिया।

दासी मौन रही। उसे महादेवी के कथन में तथ्य लगा।

दूसरे दिन आचार्य अग्निपुत्र आ गए। रानी कन्या-प्राप्ति के समाचार उन्हें पहले ही भेज चुकी थी। उसने मगधेश्वर से भी सारी बात कह दी थी।

आचार्य अग्निपुत्र आए। राजा-रानी ने उनका भावभीना स्वागत किया और वहां उपस्थित सभी दास-दासियों को खंड से बाहर चले जाने का आदेश दिया।

आचार्य एक स्वर्णिम आसन पर बैठ गए। राजा और रानी उनके सामने बिछे आसन पर आसीन हुए। आचार्य ने रानी की ओर देखते हुए पूछा—"महादेवी! वह भाग्यवती कन्या कहां है?"

"अभी-अभी यहां आने वाली है।" महादेवी ने कहा।

आचार्य ने मगधेश्वर की ओर देखते हुए पूछा—"आपने तो कन्या को देखा होगा? क्या वह मेरी कल्पना के अनुकूल है?"

"आचार्यदेव! मैंने अभी तक उसे देखा ही नहीं।" मगधेश्वर ने उत्तर दिया।

आचार्य कुछ कहें, उससे पूर्व ही रानी ने कहा—"भगवन्! आप जब उसे देखेंगे तो मुझे आशीर्वाद दिए बिना नहीं रह सकेंगे। उसका रूप स्वर्ग की अप्सराओं को भी लज्जित करने वाला है।"

मगधेश्वर ने रानी की ओर देखा। रानी का चेहरा अत्यंत प्रफुल्लित था। वे कुछ प्रश्न करें उससे पूर्व ही एक दासी उस खंड में प्रविष्ट हुई और हाथ जोड़कर खड़ी रह गई। रानी ने उसकी ओर देखकर पूछा—"क्यों, श्यामांगिनी आ गई?"

"हां, महादेवी!"

"कादंबिनी को यहां भेजना।"

दासी तत्काल चली गई।

आचार्य ने कहा—"कादंबिनी···?"

"उस कन्या का नाम कादंबिनी है।"

"नाम सुंदर है।" आचार्य ने कहा।

इतने में ही कादंबिनी ने उस खंड में पैर रखे।

आचार्य, मगधेश्वर और महादेवी—तीनों स्थिर दृष्टि से संकोच, लज्जा और भयमिश्रित भाव से आती हुई कादंबिनी को देखने लगे।

उस रूपकला को देखकर मगधेश्वर आश्चर्यचकित रह गए। उनके वृद्ध नयन भी चमक उठे।

आचार्य अग्निपुत्र ने पहली ही नजर में यह विश्वास कर लिया कि यह कन्या उनकी कल्पना से भी अधिक सुंदर है।

कादंबिनी रानी के पास खड़ी थी।

आचार्य ने पूछा—"बेटी ! तू कहां की है ?"

कादंबिनी मौन रही। रानी ने कहा—"कादंबिनी ! ये महापुरुष हमारे गुरु हैं। ये जो पूछें उसका निःसंकोच रूप से जवाब दे।"

कादंबिनी ने नीची दृष्टि कर कहा—"मुझे पता नहीं, मैं कहां की हूं। मैं जब पांच वर्ष की थी तब चंपा नगरी आ गई थी।"

आचार्य ने देखा, कन्या की वाणी बहुत ही मधुर है। उन्होंने पूछा—"तूने और क्या-क्या अभ्यास किया है ?"

"नृत्य, संगीत और कामशास्त्र का अभ्यास मुझे कराया गया है।"

"उत्तम···।" आचार्य प्रसन्न स्वरों में बोल उठे। उन्होंने फिर मगधेश्वर से कहा—"महाराज ! मैं आज ही इसे अपने आश्रम में ले जाऊंगा।"

कादंबिनी ने रानी की ओर देखा। रानी ने उसकी दृष्टि को समझकर कहा—"कादंबिनी ! गुरुदेव तुझे विशेष अभ्यास करायेंगे। वहां तुझे कोई भय नहीं रखना है।"

मगधेश्वर के मन में यह क्षणिक विचार आया—ऐसे सुंदर फूल को विषकन्या बनाने के बदले···पर वे मौन रहे। उनका समग्र मन कादंबिनी के उभरते यौवन में अटक गया।

आचार्य ने कादंबिनी की ओर देखकर कहा—"पुत्रि ! तुझे मेरे आश्रम में तीन माह रहना पड़ेगा···फिर तू राजमहल में आ जाना।"

"जैसी आज्ञा।"···अनमने भाव से कादंबिनी बोली।

मगधेश्वर ने प्रश्न किया—"आप इसे आज ही ले जाना चाहेंगे ?"

"हां, महाराज ! आज का दिन उत्तम है। आज से ही मैं अपना कार्य शुरू कर दूंगा।" फिर रानी की ओर देखकर कहा—"महादेवि ! आप कादंबिनी को तैयार करने की आज्ञा दें।"

रानी ने ताली बजाई। मुख्य दासी खंड में प्रविष्ट हुई। रानी ने कहा—"कादंबिनी को तू ले जा। अभी-अभी इसे आश्रम में भेजना है। इसकी तू तैयारी कर।"

"जैसी आज्ञा।" कहकर दासी ने कादंबिनी की ओर देखा।

कादंबिनी ने सभी को नमस्कार किया और दासी के साथ खंड से बाहर निकल गई।

आचार्य ने मगधेश्वर से कहा—"महाराज ! आपके शत्रु अब अवश्य ही नष्ट हो जाएंगे। कादंबिनी की आंखों में मैंने चतुराई भी देखी है। वह एक वेश्या के यहां पली-पुसी है, इसलिए उसमें दूसरों को आकृष्ट करने के अनेक गुण विद्यमान हैं।"

"किंतु यह मुझे एक कोमल कली-सी लगती है···ऐसी सुकुमार कन्या-रत्न को आप विषाक्त···।"

बीच में ही आचार्य हंसकर बोले—"महाराज ! कर्त्तव्य के समक्ष अनुरक्ति को छोड़ना ही पड़ता है।"

रानी ने महाराज के भावों को भांप लिया था। उसने मन-ही-मन सोचा, यदि मैं कल इस कन्या को मगधेश्वर के समक्ष ला देती तो परिणाम कुछ और ही आता···।

लगभग दो घटिका पर्यन्त आचार्य और मगधेश्वर के बीच वार्तालाप होता रहा। कादंबिनी के तैयार होने के समाचार मिलते ही आचार्य उठ खड़े हुए। उन्होंने कादंबिनी को अपने रथ में बिठाया और वे आश्रम की ओर रवाना हो गए।

कादंबिनी इन सभी लोगों से अपरिचित थी। और एक महान् राजपरिवार के बीच आ जाने के कारण वह कल्पना के झूले में झूलने लगी। वह अत्यंत बुद्धिमती थी। जब वह पांच वर्ष की थी तब वह एक सार्थवाह के साथ चंपा नगरी में आई थी। वह बचपन से बीमार रहती थी। इसलिए सार्थवाह ने ऊबकर उसको चंपा-नगरी की प्रसिद्ध वेश्या के यहां मात्र बीस स्वर्ण मुद्राओं में बेच डाला था।

कादंबिनी को और कुछ भी स्मृति नहीं थी। अपने माता-पिता कौन थे? सार्थवाह उसे कहां से उठा लाया था—ये सारी बातें उससे अज्ञात थीं। वह चंपानगरी के वेश्या भवन में आई। मुख्य वेश्या ने उसे पुत्री मानकर उसकी चिकित्सा करवाई। वह रोगमुक्त हो गई। फिर वेश्या ने उसे नृत्य, संगीत और वेश्या-जीवन की शोभा रूप कामकला का शिक्षण दिया। धीरे-धीरे वह इन सारी विद्याओं में निष्णात हो गई। वेश्या को इससे बड़ी-बड़ी आशाएं थीं। और जब वह चौदह वर्ष की हुई, तब पालक वेश्या ने अनेक स्वर्णिम स्वप्न संजोए। वह उसे वेश्या-जीवन में प्रवेश करने की कलाएं सिखाने लगी। किंतु कादंबिनी केवल नर्तकी मात्र होना चाहती थी। वेश्या धंधा उसे नरक-सा लगता था।

एक दिन पालक-वेश्या ने कहा—"बेटी ! रूप के प्यासे जितना धन देते हैं, उतना धन नृत्य को देखने वाले कभी नहीं देते और धन जीवन का सर्वस्व है, सार है।"

वह बोली—"मां ! धन जीवन का सार नहीं, केवल उपयोगिता है। उसके लिए रूप और यौवन को बेचना नारी के लिए भयंकर अभिशाप है।"

अंत में माता ने सोचा, अभी एकाध वर्ष बाकी है। इतने में कादंबिनी के प्राणों में रूप और यौवन की मादकता प्रकट होगी। यदि यह तब भी नहीं मानेगी तो इसे जवरन पुरुष के विलास का खिलौना बनाना ही होगा।

माता का यह उपाय क्रियान्वित हो, उससे पूर्व ही दस हजार स्वर्णमुद्राओं में कादंबिनी के साथ-साथ वेश्या के सारे मनोरथ भी बिक गए।

आचार्य अग्निपुत्र कादंबिनी को साथ ले आश्रम की ओर जा रहे थे। कादंबिनी मन-ही-मन सोच रही थी—"मुझे आश्रम में क्यों ले जाया जा रहा है? मुझे वहां कौन से शास्त्र का अभ्यास करना होगा?"

कादंबिनी को गंभीर हुआ जानकर आचार्य ने पूछा—"बेटी! क्या सोच रही है?"

"आचार्यदेव! मुझे एक प्रश्न उलझा रहा है।"

"कैसा प्रश्न?"

"आप मुझे आश्रम में किस शास्त्र का अभ्यास करायेंगे?"

"पुत्रि! तेरे भूतकाल को मैं नहीं जानता। परंतु तेरे वदन पर जो सौम्यता है, उसे देखकर मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि तुझे वेश्या जीवन से नफरत है।"

"हां, गुरुदेव!"

"मैं तुझे राजनीति का अभ्यास कराना चाहता हूं। बेटी! तेरे रूप में और नयन में एक ऐसा गौरव छुपा हुआ है कि यदि तेरी जैसी सुंदरी कन्या राजनीति में निष्णात होती है तो वह मगध की सुरक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग बन सकती है। इसी दृष्टि से मैं तेरी जैसी कन्या की खोज कर रहा था। तू मिल गई। अब मेरे अरमान पूरे होंगे।" आचार्य अग्निपुत्र ने कहा।

कादंबिनी विचार-मग्न हो गई। उसकी आंखों के सामने—मगध की भावी रक्षा···यह चित्र नाचने लगा।

रथ तीव्र गति से वैभार गिरि को पार कर चुका था।

आचार्य ने कहा—"नृत्य और संगीत शास्त्र से राजनीति शास्त्र का अभ्यास कठिन नहीं है। यह शुष्क लगता है, पर वैसा है नहीं। एक बार इसमें उतरने के पश्चात् समग्र मानस बदल जाता है···इसके अभ्यास से तेरे में महान् शक्ति पैदा होगी···बड़े-बड़े सम्राट् तेरे चरणों में लुठेंगे···तेरा निर्णय अंतिम निर्णय माना जाएगा···पुत्रि! तपश्चर्या और श्रम के समक्ष कोई भी शास्त्र अलभ्य नहीं होता।"

कादंबिनी आचार्य के तेजस्वी वदन और कृश देह को स्थिर दृष्टि से देखती रही।

उसके अनुभवहीन मन में आशा का एक नया उन्मेष उभरा और वह उसमें उन्मज्जन-निमज्जन करने लगी।

पर वह नहीं जानती थी कि आचार्य अग्निपुत्र उसे राजनीति शास्त्र नहीं सिखायेंगे। वे उसे राजनीति का एक अभिशापभरा साधन बनाना चाहेंगे।

यह कल्पना चौदह वर्ष की कादंबिनी के मन में कैसे आए?

रथ आश्रम के पथ पर तीव्र गति से चला जा रहा था।

वातावरण शांत, भव्य और निर्मल था।

२३. मधुयामिनी

देवि आम्रपाली और बिंबिसार—दोनों अपने-अपने अश्वों के साथ सप्तभूमि प्रासाद के भव्य उद्यान में प्रविष्ट हुए तब दिन का अंतिम प्रहर चल रहा था। सूर्यास्त होने में अभी विलंब था।

वैशाली के मुख्य द्वार में प्रवेश करते समय आम्रपाली के मन में जो संशय था, वैसा कुछ भी नहीं हुआ। वे हजारों व्यक्तियों के बीच से गुजरे, पर किसी ने उन्हें नहीं पहचाना। दोनों दो भिन्न-भिन्न पोशाकों में थे। एक का मालवीय वेश था और आम्रपाली आनर्त्त युवक के वेश में थी। फिर भी बिना रोक-टोक के वे दोनों सप्तभूमि प्रासाद में पहुंच गए।

प्रासाद के मुख्य चौकीदार ने दोनों से परिचय मांगा। आम्रपाली ने अपनी मुद्रिका दिखाई और वह तत्काल झुक गया। चौकीदार को देवी के इस आकस्मिक आगमन पर आश्चर्य अवश्य हुआ, पर वह कुछ पूछने की स्थिति में नहीं था।

दासत्व की एक मर्यादा होती है और प्रत्येक दास को उसका ध्यान रखना पड़ता है।

वे दोनों आगे बढ़े। एक दास उनका परिचय जानने के लिए आगे आया। वह कोई प्रश्न करे, उससे पूर्व ही आम्रपाली अपने अश्व से नीचे उतरी और दास की ओर उन्मुख होकर बोली—"अश्व को पहचाना नहीं?"

दास ने आवाज पहचान ली। तत्काल मस्तक झुकाकर बोला—"देवि! क्षमा करें···आप इस प्रकार···।"

"महाराज के पास से वीणा संभाल।" आम्रपाली ने बीच में ही टोक दिया।

वह दास महाराज बिंबिसार के अश्व के पास गया, वीणा संभाली। बिंबिसार घोड़े से नीचे उतरा और फिर दोनों प्रासाद में आगे बढ़े।

उस समय वहां भी अनेक परिचारिकाएं एकत्रित हो गईं। आम्रपाली ने उनको भिन्न-भिन्न आदेश दिए। वह बिंबिसार के पास जाकर मधुर स्वरों में बोली—"स्वामिन्! मैं आपका अपने भवन में स्वागत करती हूं···आप मेरे साथ भवन में पधारें।"

बिंबिसार आम्रपाली की स्नेहसिक्त दृष्टि को झेलता हुआ उसके पीछे-पीछे चलता गया···।

वे दोनों प्रासाद की छठी मंजिल पर आए। आम्रपाली बोली—"महाराज ! श्रम के लिए क्षमायाचना···। आज अपने नवजीवन का मंगल दिन है। प्रथम प्रेम के प्रतीक पुष्पों से मैं आपका सत्कार करना चाहती हूं···।"

"देवि ! तेरे नयन, तेरा हृदय और तेरा कोमल मन नंदनवन के कोमल फूलों से भी अत्यधिक कोमल और मधुर है। उनसे तूने मेरा स्वागत कर दिया है।" कहते हुए बिंबिसार ने अपना एक हाथ आम्रपाली के कंधे पर रखा।

कुछ ही समय पश्चात् एक दासी श्वेत और लाल फूलों की दो मालाएं एक स्वर्ण थाल में रखकर ले आई।

सूर्यास्त की तैयारी थी। प्रकाश स्वच्छ था। सूर्यास्त का सुहावना प्रकाश पश्चिम के झरोखे से भीतर प्रविष्ट हो रहा था।

आम्रपाली ने श्वेत पुष्पों की माला दोनों हाथों से ले सलज्जभाव से बिंबिसार के गले में पहनाई और वह तत्काल स्वामी के चरणों में नत हो गई। बिंबिसार ने रक्तपुष्पों की माला, नत आम्रपाली के गले में डाली और दोनों हाथों से उसे खड़ी करते हुए कहा—"प्रिये ! यह माला तो कल कुम्हला जाएगी, किंतु माला पहनाने की पृष्ठभूमि में जो भावना है वह हमारे जीवन में नवनवोन्मेष भरती रहेगी।"

"मैं धन्य हो गई···आप मेरे सर्वस्व हैं···मेरे माता-पिता का स्वप्न आज साकार हुआ है।"

वन से आम्रपाली के सुरक्षित लौटने की बात चारों ओर फैल गई। जो रक्षकदल उसकी टोह में वन-प्रदेश में गए थे, वे सारे निराश लौट आये थे। आम्रपाली की मुख्य परिचारिका माधिका और आर्य शीलभद्र भी निराश लौटे थे।

गणनायक सिंह ने आम्रपाली के लौट आने के समाचार सुने। वह सप्तभूमि प्रासाद पर आया। उस समय आम्रपाली स्नानागार में थी। गणनायक प्रासाद के एक कक्ष में आम्रपाली की प्रतीक्षा में बैठे, इतने में ही श्वेत और सादी वेशभूषा में आम्रपाली ने खंड में प्रवेश किया। वह दोनों हाथ जोड़कर गणनायक के सामने खड़ी हो गई।

सिंहनायक ने कहा—"बेटी ! तुझे कुशल देखकर मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न है। किसी प्रकार की चोट तो नहीं आयी।"

"नहीं, पूज्यश्री ! मैं धर्म के प्रताप से बच गयी।"

"पुत्रि ! स्त्रियों के लिए मृगया का साहस उचित नहीं होता।"

"आपकी बात सही है, परन्तु यौवन के आवेश में बुद्धि अपनी मर्यादा का ख्याल नहीं रख सकती।" आम्रपाली ने कहा।

"इसीलिए यौवन अवस्था में अत्यन्य जागरूक रहना होता है।" गणनायक ने कहा।

आम्रपाली मौन रही। उसका चित्त सप्तभूमि प्रासाद के छठी मंजिल पर बैठे प्रियतम से मिलने के लिए आकुल-व्याकुल हो रहा था।

गणनायक के पूछने पर आम्रपाली ने रहस्यमय ढंग से अपने बचाव की बात बतायी और उनमें यह विश्वास पैदा कर दिया कि वीणावादक जयकीर्ति ने प्राण-रक्षा की है।

छठे मंजिल पर बिंबिसार स्नान आदि से निवृत्त हो आम्रपाली की प्रतीक्षा में बैठा था। प्रतीक्षा का काल दीर्घ लगता है। बिंबिसार के लिए एक-एक क्षण भारी हो गया। उसका हृदय प्रफुल्लित था। वह मन-ही-मन कुछ सोच रहा था।

इस प्रकार वह अनेक विचारों के बीच अटक गया था। इतने में ही आम्रपाली उस खंड में प्रविष्ट हुई। दो परिचारिकाएं जो वहां खड़ी थीं, वहां से दूर चली गयीं।

बिंबिसार का ध्यान टूटा। उसने देखा, आम्रपाली सादे वस्त्रों में बहुत ही आकर्षक लग रही है। आम्रपाली बिंबिसार के पास बैठ गयी।

उसी समय एक दासी खंड में प्रविष्ट हुई। उसने देखा, महाराज महादेवी के दोनों हाथ पकड़े हुए हैं। वह चौंकी क्योंकि उसने इससे पूर्व कभी भी देवी को इस प्रकार पुरुष के साथ एक आसन पर बैठे नहीं देखा था, और कोई भी पुरुष आज तक देवी के हाथों का स्पर्श भी कर नहीं सका था। आज का दृश्य दासी के लिए आश्चर्यकारी था। वह हल्का-सा 'खखारा' कर आगे बढ़ी।

आम्रपाली ने दासी की ओर देखा।

दासी ने मस्तक झुकाकर कहा—"देवि! भोजन की व्यवस्था पास वाले खंड में की है।"

फिर बिंबिसार और आम्रपाली—दोनों भोजन करने गए और निवृत्त होकर अपने-अपने खंड में आ गये।

लगभग दो घटिका के बाद आम्रपाली सोलह शृंगार कर तैयार हो गयी। उसने दर्पण में देखा···स्वयं वह अपना रूप देखकर चौंकी। उसने अपना ऐसा रूप पहले कभी नहीं देखा था। उसने सोचा, स्वामी को प्रथम बार मिलने जाती हुई प्रत्येक पत्नी का रूप क्या इस प्रकार खिल उठता है?

रात बीत रही थी।

आज पिउमिलन की प्रथम रात्रि थी। दोनों ने अपने-अपने पूर्व जीवन की रामकहानी कह सुनायी। रात्रि का चतुर्थ प्रहर चल रहा था। बाहर मंद-मंद वर्षा हो रही थी।

फूलों की शैय्या पर दोनों बैठे और···।

कुछ समय बीता।

आम्रपाली जागती हुई शैय्या पर पड़ी थी।

शैय्या पर बिछे सारे फूल चरमराकर अस्त-व्यस्त हो गए थे।

आम्रपाली के कण्ठ में शोभित माला के मुक्ता टूटकर शैय्या पर बिखरे पड़े थे।

उस श्रावणी भीनी रजनी में भी आम्रपाली के कपोलों पर श्रम से उत्पन्न प्रस्वेद के दो-चार बिन्दु मोती के समान चमक रहे थे।

आम्रपाली ने अपनी जीवन-गाथा आगे प्रारंभ कर बिंबिसार को सुनाई और कहा—"प्रिय! मेरी माता चाहती थी कि मैं किसी राजराजेश्वर की कुलवधू बनूं···आज उनकी इच्छा पूरी हुई है।"

प्रातःकाल हो गया था।

जीवन की प्रथम मधुयामिनी की अंतिम पल विदा होने के लिए तरस रही थी।

इधर धनंजय और वह भृत्य—दोनों युवराज की खोज में रात-दिन एक कर रहे थे। धनंजय प्रातःकाल से संध्या तक वैशाली के उपनगरों में घूमता-फिरता। उसका भृत्य मनु पांथशाला में उदास बैठा रहता। सायं धनंजय जब निराश लौटता तब मनु और अधिक उदास हो जाता। धनंजय ने बसन्त बाजार में युवराज को ढूंढ़ने का निर्णय किया।

देवी आम्रपाली किसी परदेशी वीणावादक के प्रेम में फंस गयी है, यह बात भवन के दास-दासियों से छिपी नहीं रह सकी। ऐसी बात कभी छिपी नहीं रह सकती।

देवी आम्रपाली का यह प्रणयगीत सप्तभूमि प्रासाद की चारदीवारी से निकलकर जन-जन के मुंह पर छा गया।

२४. आशा की एक किरण

राजनीति के स्वर्णमय स्वप्न के साथ कादंबिनी को ले जाने वाला रथ आचार्य के आश्रम के मुख्य चौक में खड़ा रह गया।

गुरुदेव को आए देख चार-छह आश्रमवासी रथ की ओर आए और एक अति सुन्दर तरुणी को रथ से उतरते देख सभी आश्चर्य विमूढ़ हो गये। क्योंकि गुरुदेव कभी अकेली स्त्री के साथ आए हों, ऐसा प्रसंग कभी नहीं बना था। वे कभी नहीं चाहते थे कि आश्रम में कोई तरुणी आकर रहे। इसीलिए उन्होंने अपने पाकगृह में पांच-चार अधेड़ औरतों को रखा था। उनके अलावा दो वृद्धाएं और थीं। गुरुदेव यदा-कदा कहते थे—"साधक को यदि अपना ध्येय सिद्ध करना हो और

विज्ञान को हथेली में क्रीड़ा करानी हो तो उसे नारी से दूर रहना चाहिए। उसे सदा जागृत रहना चाहिए। क्योंकि संसार के सभी आकर्षणों में पुरुष के लिए नारी सर्वोत्कृष्ट आकर्षण है और उसमें पुरुष के गर्व को खंडित करने की शक्ति भी है।"

ऐसे विचारों से ओतप्रोत गुरुदेव ऐसी सुन्दर कन्या को आश्रम में क्यों लाये हैं? इस सुन्दरी के साथ दूसरा कोई नहीं है, क्यों? यह सुन्दरी कौन होगी?

शिष्यों के मन में ये प्रश्न उभर रहे थे। इतने में ही आचार्य अपने एक शिष्य से बोले—"वत्स! आचार्य शिवकेशी कहां हैं?"

"प्रयोगशाला में हैं, गुरुदेव!"

"मेरे निवासगृह के पास वाले कुटीर को साफ करो। देवी कादंबिनी वहां रहेगी।" फिर आचार्य कादंबिनी की ओर देखकर बोले—"पुत्रि! यह मेरा पद्माश्रम है। नगर से दूर होने के कारण लोगों का आवागमन यहां कम होता है। जिसको अध्ययन करना होता है उसके लिए एकान्त आवश्यक होता है। और आश्रमवासियों का जीवन वैभव, विलास और सुख-सुविधाओं से दूर रहता है। आश्रम में जीवन को दीर्घ बनाने वाली शांति, अध्ययन को प्रेरित करने वाली स्वस्थता और आरोग्य को पोषण देने वाली शक्ति प्रचुर मात्रा में होती है। मुझे विश्वास है कि तुझे आश्रम-जीवन में जरूर आनंद मिलेगा।"

"जी" कहकर कादंबिनी चारों ओर देखने लगी। उसे पहले ही क्षण आश्रम का परिवेश मन को भा गया।

आचार्य ने फिर कहा—"पुत्रि! अब तू मेरे पीछे-पीछे चली आ। वहां मेरी कुटीर में तू विश्राम कर, फिर अपने स्थान पर चल देना।"

"जी" कहकर कादंबिनी गुरुदेव के पीछे-पीछे चलने लगी। वहां खड़े हुए शिष्यों के मन की द्विधा शांत नहीं हुई। वह और अधिक बढ़ गयी। उन्होंने सोचा, ऐसी सुन्दर तरुणी को अपने निवास में कैसे रखेंगे?"

आचार्य अग्निपुत्र के निवासखंड वाले खंड में प्रवेश करते ही कादंबिनी कांप उठी। वहां अनेक पशुओं के अस्थिपंजर व्यवस्थित रूप से रखे हुए थे।

आचार्य वहां से दूसरे खंड में गए। वहां प्रवेश करते ही कादंबिनी चीख उठी, क्योंकि उस खंड में अनेक पिंजरे पड़े थे और उनमें नानाविध रंग-बिरंगे सांप पड़े थे।

कादंबिनी की चीख सुनकर आचार्य वहां रुक गए और बोले—"पुत्रि! डरने की कोई बात नहीं है। ये सारे जीव-जन्तु आश्रमवासी ही हैं।"

कादंबिनी ने सोचा, ये आश्रमवासी कैसे हो सकते हैं? ये मनुष्य तो नहीं हैं, भयंकर विषधर हैं···पर वह कुछ बोली नहीं।

आचार्य बोले—"पुत्रि! इनको देखकर नव आगन्तुक व्यक्ति को भय लगता है, पर ये सारे अभ्यास के साधन हैं।"

"अभ्यास के साधन ?" कादंबिनी आगे कुछ नहीं बोली।

गुरुदेव ने कहा—"प्रयोगशाला का पिछला भाग तो अति भयंकर प्राणियों से भरा पड़ा है। पर वे किसी का अहित नहीं करते।"

विषधरों की अनगिन संख्या देखकर कादंबिनी घबरा गयी। पर वह मौन ही रही।

उसने पूछा—"गुरुदेव ! राजनीति का अभ्यास कब से आप···?"

"पुत्रि ! राजनीति के अभ्यास से भी उसकी प्रारंभिक तैयारी बहुत कठिन होती है।"

कादंबिनी समझी नहीं, इसलिए वह प्रश्नभरी दृष्टि से गुरु की ओर देखने लगी।

आचार्य बोले—"पुत्रि ! राजनीति में कुशल होने वाले व्यक्ति के आस-पास अनेक जोखम खड़े हो जाते हैं। राजनीतिज्ञ पुरुष का जीवन सदा जोखिम में ही रहता है।"

"जोखिम ?"

"हां, पुत्रि ! राजपुरुष लोगों के लिए आपदाओं के बातूल होते हैं। मैं तुझे राजनीति का अभ्यास कराने से पूर्व तेरे शरीर को कोई भी विष हानि न पहुंचा सके, ऐसा करना चाहता हूं।"

"गुरुदेव ! राजनीति और विष···? कुछ भी समझ में नहीं आता।"

"पुत्रि ! राजनीतिज्ञ सत्य-असत्य से अछूते होते हैं। राजप्रपंच उनके लिए एक खेलमात्र होता है। अनेक बार वे दूसरों के हितों को कुचलने की इच्छा लिये होते हैं, क्योंकि राजनीतिज्ञ पुरुष, जिनके लिए काम करते हैं, उनके प्रति ही वफादार होते हैं। ऐसी स्थिति में उनके चारों ओर शत्रुओं का सदा घेरा बना रहता है। चतुर राजनीतिज्ञ वह होता है जो इस घेरे को तोड़ने में समर्थ होता है। कभी-कभी वह शत्रु के हाथों में फंस जाता है और उसे विष-प्रयोग से गुजरना पड़ता है। उसका निश्चित परिणाम होता है—मृत्यु। मैं तुझे राजनीति में कुशल बनाना चाहता हूं। मैं तुझे मगधेश्वर के एक प्रधान अंग के रूप में देखना चाहता हूं। पर तू किसी शत्रु के विष-प्रयोग का शिकार न बने, यह चाहता हूं। इसलिए सबसे पहले मैं तेरी स्वर्णिम काया को ऐसी दृढ़ बना देना चाहता हूं कि वह समस्त प्रकार के विषों का प्रतिकार कर सके और मौत को भी पचा ले।"

कादंबिनी को इन शब्दों को सुनकर आश्चर्य हुआ। वह केवल चौदह वर्ष की थी, परन्तु एक वेश्या के घर बड़ी होने के कारण उसमें प्रवीणता और चंचलता स्वाभाविक रूप में विकसित थी। वह बोली—"गुरुदेव ! विष का असर न हो, ऐसा मैंने किसी के पास कभी नहीं सुना।"

आचार्य ने हंसते-हंसते कहा—"अभी तू छोटी है। नृत्य-गीत के तेरे छोटे से

संसार में यह बात तुझे कैसे ज्ञात हो ? जैसे नृत्य और संगीत का शास्त्र महान् शिखर को छू रहा है वैसे ही आयुर्वेद विज्ञान भी चरम सिद्धि तक पहुंचा हुआ है। इस विज्ञान से शरीर को हजारों वर्षों तक टिकाए रखा जा सकता है। रोग, विष आदि अनेक उपद्रवों से शरीर को बचाया जा सकता है—यह इस विज्ञान ने सिद्ध कर दिखाया है।"

आश्रम में बावन वर्षीया मनोजादेवी पाकशाला की देखरेख करती थी। आचार्य ने उसे बुलाकर कादंबिनी के सार-संभाल का भार सौंपते हुए कहा—"मनोजा ! तुझे इस कन्या की पूरी सार-संभाल करनी है। इसको किसी भी प्रकार की अड़चन न हो, इसका ध्यान रखना है। यह मेरी प्रिय पुत्री तुल्य है। इसको पास वाले अतिथि गृह में रहना है।"

मनोजा ने 'जी' कहकर मस्तक नमाया और वह कादंबिनी को साथ ले चल दी।

२५. अभिशप्त नारी

आचार्य अग्निपुत्र ने देखा, कादंबिनी राजनीतिशास्त्र में प्रवीण होने के लिए आतुर हो रही है और उसके प्राणों में उत्साह है, अनुराग है। इसलिए मात्र दो दिन के बाद ही उन्होंने विषकन्या के निर्माण का प्रयोग प्रारंभ कर डाला।

आश्रम में आने के बाद तीसरे ही दिन आचार्य ने कादंबिनी को गंगा में स्नान कराकर परिशुद्ध किया और देहशुद्धि के मंत्र के द्वारा उसे अभिषिक्त कर प्रयोगशाला में ले आये।

प्रयोगशाला को देखते ही कादंबिनी चौंक उठी···किन्तु आचार्य के आश्वासन का स्मरण करती हुई वह शांत रही, उत्साह को पूर्ववत् बनाए रखा।

कादंबिनी ने शण के वस्त्र धारण कर रखे थे। उसे शण से निर्मित एक आसन पर बिठाया। फिर प्रमुख शिष्य एक घटिकायन्त्र ले आया और गुरुदेव के पास रखकर चला गया। उस यन्त्र से समय का अनुमापन किया जाता था।

आचार्य अग्निपुत्र बोले—"पुत्रि ! किसी भी प्रकार के विष से तेरी मृत्यु न हो इसलिए मेरे इस प्रयोग से तेरी काया स्वस्थ, सुदृढ़ और विषापहारी बन जाएगी। यह कार्य अत्यन्त कठिन है। इसमें हम दोनों के धैर्य की परीक्षा होगी··· किन्तु मैं तेरी काया को विष-प्रतिकारक बना डालूंगा। क्या तू इतना धैर्य रख सकेगी ?"

"हां, गुरुदेव ! प्रारंभ किये हुए कार्य को अधूरा छोड़ने में मेरा विश्वास नहीं है।" कादंबिनी ने उत्साह भरे स्वरों में कहा।

"कादंबिनी ! कोई भी सिद्धि तप और बलिदान मांगती है। सिद्धि भौतिक हो या आध्यात्मिक, दोनों के लिए शक्ति अपेक्षित होती है। मुझे तेरे पर अनेक

प्रयोग करने पड़ेंगे···तू घबराना मत···संशय मत रखना। तेरे जीवन को कोई भी आंच न आ पायेगी, मैं तुझे ऐसा विश्वास दिलाता हूं।"

"गुरुदेव ! आपमें मेरी अगाध श्रद्धा है···यदि प्रयोगकाल में मेरी मौत भी हो जाए तो मुझे उसकी चिंता नहीं है। आप मेरे पर जो भी प्रयोग करना चाहें, उसे निःसंकोच रूप से करें।" कादंबिनी ने शांत स्वरों में कहा।

कादंबिनी के ये शब्द सुनकर आचार्य का हृदय कांप उठा। कितना विश्वास! और इसके अजोड़ विश्वास का कितना भयंकर परिणाम ! किन्तु क्या हो ? कोई भी स्त्री स्वेच्छा से ऐसे प्रयोग तो करना भी नहीं चाहेगी, क्योंकि विषकन्या होने के पश्चात् वह किसी पुरुष से प्रेम नहीं कर सकती···किसी के प्रति प्रेमभाव हो भी जाए तो भी उसे मन मारकर बैठना होगा। मन की समस्त सुनहरी आशाओं का बलिदान कर उसे अपना कर्त्तव्य-मात्र निभाना होगा।

आचार्य कुछ क्षणों तक मौन हो गए···फिर बोले—"पुत्रि ! तेरे साहस को धन्य है···तेरे प्रति मेरी श्रद्धा और अधिक प्रगाढ़ हुई है। अब तू आंखें बंद कर दे। केवल जीभ को बाहर निकाल कर निश्चिन्त बैठ जा। जब तक मैं न कहूं तब तक आंखें मत खोलना।"

"जी" कहकर नवयुवती कादंबिनी ने अपनी आंखें मूंद लीं और जीभ बाहर निकाल कर निश्चल बैठ गयी।

आचार्य ने पहले घटिकायंत्र की ओर देखा···फिर अपने प्रिय शिष्य शिवकेशी की ओर देखकर कुछ संकेत किया। तत्काल शिवकेशी मिट्टी का एक बंद पात्र लेकर आया और उस पात्र को आचार्य के हाथों में दे पास में रखे दूध से भरे घड़े को अपने हाथों में उठा लिया।

आचार्य ने कादंबिनी के जीभ के पास मिट्टी के पात्र को ला उसका ढक्कन खोला और एक-दो क्षणों में ही उसमें से एक नाग ने अपना मुंह बाहर निकालकर कादंबिनी के जीभ पर डंक मारा।

सर्पदंश होते ही कादंबिनी चीख उठी और उसकी आंखें खुल गईं···वह कुछ भी नहीं समझ सकी क्योंकि वह मिट्टी के पात्र को देखे उससे पूर्व ही उसका ढक्कन बंद कर दिया गया था। शिवकेशी ने औषधियों से सिद्ध किये हुए गाय के दूध को कादंबिनी के मस्तक पर डालना प्रारम्भ किया और तब तक डालता रहा जब तक कि वह घड़ा आधा खाली नहीं हो गया।

आचार्य बोले—"पुत्रि ! जरा भी अस्थिर मत होना···प्रयोग का प्रारम्भ बहुत सफल रहा है।"

कादंबिनी कुछ नहीं बोल सकी···मस्तक पर पड़ने वाली दूध की धारा सारे शरीर को दूध से नहला रही थी···जब वह घड़ा आधा खाली हो गया तब

शिवकेशी वहां रखे गये औषधिसिद्ध पानी के बारह घड़ों को एक-एक कर कादंबिनी के शिर पर उड़ेलने लगा।

लगभग दो घटिका पश्चात् कादंबिनी कुछ स्वस्थ हुई ··आचार्य ने उसका नाड़ी-परीक्षण किया और फिर एक लाल रंग की गुटिका उसके मुख में रखते हुए कहा—"पुत्रि ! इस गुटिका को चूसते रहना। इसका रस धीरे-धीरे शरीर में प्रवेश करे। आज का प्रयोग पूरा हो गया है। थोड़े ही समय पश्चात् तू अपने शरीर में ऐसी स्फूर्ति का अनुभव करेगी, जो अपूर्व होगी।"

ऐसा ही हुआ।

अर्धघटिका के पश्चात् कादंबिनी को नयी शक्ति और स्फूर्ति का अनुभव होने लगा। उसमें नयी चेतना का संचार होने लगा।

आचार्य ने पुनः नाड़ी-परीक्षण कर कहा—"आज का कार्य सम्पन्न हुआ है। अब तू स्नानगृह में जा और घृत का मर्दन कर स्नान कर ले। एक प्रहर पर्यन्त दूध के अतिरिक्त कुछ भी मत लेना, फिर सब कुछ खा सकेगी।"

कादंबिनी ने अपने आसन से उठते-उठते पूछा—"गुरुदेव ! मेरी जीभ पर क्या हुआ था ?"

आचार्य ने हंसते-हंसते कहा—"सात दिन के बाद मैं तुझे बताऊंगा तब तक तुझे धैर्य रखना है।"

कादंबिनी आचार्य को नमस्कार कर शिवकेशी के पीछे-पीछे प्रयोगशाला से बाहर निकल गयी।

सात दिन तक प्रयोग का यह क्रम चलता रहा। प्रत्येक दिन विषधर को बदल दिया जाता था। नये-नये सर्पों का दंश उसके जीभ पर होने लगा।

नागदंश का प्रयोग सात बार करने के पश्चात् आचार्य ने चौदह दिनों तक अंगमर्दन के द्वारा कादंबिनी के शरीर में अनेक प्रकार के विषों को प्रविष्ट किया और कादंबिनी को यह कहा कि सात दिन तक उसको सर्पदंश का प्रयोग कराया गया है।

कादंबिनी बोली—"गुरुदेव ! नागदंश का मेरे ऊपर कोई असर क्यों नहीं हुआ ?"

"पुत्रि ! सात दिनों तक भयंकर विषधरों के दंश कराए गए थे। उन विषधरों का विष बहुत प्रभावी और भयंकर था। अब और इक्कीस दिन तक नागदंश का प्रयोग कराना है···फिर तेरे शरीर पर किसी भी विषधर के विष का असर रंचमात्र भी नहीं होगा।"

चौदह दिन तक स्थावर विष का प्रयोग करने के पश्चात् आचार्य ने पुनः इक्कीस दिन पर्यन्त भयंकर से भयंकर नागों के दंश का प्रयोग सम्पन्न किया।

कादंबिनी समझती थी कि वह समस्त भयंकर विषों से मुक्त हो रही है और

आचार्य समझते थे कि कादंबिनी मानवजाति के अभिशाप स्वरूप विषकन्या बन रही है।

संसार में ये सारी विडंबनाएं चलती रहती हैं।

आश्विन शुक्ला पूर्णिमा आ गई।

कादंबिनी विषकन्या बन चुकी थी···विषकन्या बने उसे मात्र एक दिन ही हुआ था। आज रात को आचार्य कादंबिनी को यह बताने वाले थे कि वह क्या बनी है और उसे अब किस प्रकार से सावधान रहना है···और आज ही रात को महाराजा और महादेवी आचार्य के प्रयोग की सफलता को देखने आने वाले थे···

प्रयोग के पूर्ण होते ही कादंबिनी ने आचार्य से कहा—"गुरुदेव ! आपका यह महान् उपकार मैं जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकूंगी, अब मुझे आप राजनीति का अभ्यास कब करायेंगे ?"

"पुत्रि ! कल शरदपूर्णिमा है···कल मगधेश्वर और महादेवी यहां पधारेंगे··· उसी रात को मैं तुझे राजनीति के कुछ गुर बताऊंगा।"

"उसमें कितना समय लगेगा ?"

"उसकी तू चिन्ता मत कर। यह आश्रम-निवास तुझे अप्रिय तो नहीं लगा ?"

"नहीं, गुरुदेव ! स्त्री को पीहर कभी अप्रिय नहीं लगता···यह आश्रम तो मेरे पीहर के समान है।"

ये शब्द सुनते ही आचार्य के हृदय पर चोट लगी, पर अब कुछ भी होने वाला नहीं था···जो अन्याय होना था, वह हो गया। आचार्य कुछ नहीं बोले। वे मात्र मुसकरा कर रह गये।

और पूनम की रात आ गई। शशांक अपनी संपूर्ण सोलह कलाओं के साथ गगनमंडल में विचरण करने लगा। सभी आश्रमवासी खुले आकाश में एकत्रित होकर शरदोत्सव मना रहे थे।

और उसी समय मगधेश्वर प्रसेनजित रथ में अपनी महारानी त्रैलोक्यसुन्दरी के साथ आश्रम-द्वार में प्रविष्ट हुए। शिवकेशी ने उनका स्वागत किया और उन्हें गुरु के कक्ष में ले गया। उस समय आचार्य एक आसन पर बैठे थे और कुछ ही दूरी पर कादंबिनी भी बैठी थी। इस प्रयोग के पश्चात् कादंबिनी के शरीर में अनोखा परिवर्तन हुआ था···जो कल तक यौवन के प्रवेशद्वार पर खड़ी एक कन्या-सी लग रही थी, वही आज पूर्ण नवयौवना नारी के रूप में दिख रही थी। उसकी काया सुदृढ़ और स्वस्थ बन गयी थी। उसका रंग-रूप खिल उठा था। उसके नयन अत्यधिक वेधक और मादक बन गये थे। उसके उरोज उभर गये थे। इस आकस्मिक परिवर्तन का अनुभव स्वयं कादंबिनी भी कर रही थी और दर्पण में अपनी छवि देखकर आश्चर्य से भर रही थी।

महाराज और महादेवी दोनों ने आचार्य को नमस्कार किया। आचार्य ने आशीर्वाद देकर दोनों को आसन पर बिठाया। कादंबिनी ने दोनों को नमस्कार किया। त्रैलोक्यसुन्दरी बोली—"गुरुदेव ! पहली नजर में कादंबिनी को पहचाना भी नहीं जा सका। इसका स्वास्थ्य···"

बीच में ही आचार्य ने कहा—"महादेवि ! कादंबिनी का यौवन और आरोग्य दीर्घकाल तक टिका रह सकेगा।"

प्रसेनजित भी एकटक कादंबिनी को निहार रहे थे। उनके मन में यह विचार आया कि ऐसी सुन्दरी को विषकन्या नहीं बनाना चाहिए था। यह मगध की महादेवी बनने योग्य है।

आचार्य ने महाराजा से कहा—"राजन् ! कादंबिनी पर किया गया प्रयोग पूर्ण सफल रहा है।"

"आपके लिए कुछ भी अशक्य नहीं है।" मगधपति ने कहा।

फिर आचार्य ने कादंबिनी की ओर देखकर कहा—"पुत्रि ! मैं तुझे एक महत्त्वपूर्ण बात बता रहा हूं। मेरे इस प्रयोग से तू राजनीति का एक जीवंत साधन बन गई है। तेरा शरीर चिर यौवन से शोभास्पद बन गया है—परन्तु तू चिंता मत करना। तेरा शरीर इतना विषाक्त बन गया है कि जिस पुरुष का तू चुंबन लेगी या चुंबन देगी अथवा जिस पुरुष के प्रस्वेद के साथ तेरे शरीर का प्रस्वेद एकमेक होगा, वह पुरुष तत्काल मर जाएगा।"

"गुरुदेव···।"

"पुत्रि ! धैर्य रख। संसार का कोई भी विष तेरे पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेगा, यह तथ्य है। किन्तु राष्ट्रहित के लिए तुझे अपनी सुनहरी आशाओं और आकांक्षाओं का बलिदान देना पड़ा है···अब तू विषकन्या बन गयी है।"

"गुरुदेव !···गुरुदेव···गुरुदेव···।"

"मैं सत्य कह रहा हूं पुत्रि !···राजनीति के अभ्यास के बहाने मैंने तेरे अरमानों को भस्मसात् कर राख बना डाला है···आज से तू मगधेश्वर की अमोघ शक्ति बन गयी है···आज से तेरा यह कर्त्तव्य है कि मगध के शत्रुओं का तू सर्वनाश करे। मैं समझता हूं कि मैंने अक्षम्य विश्वासघात कर तेरे जीवन के उल्लास को मिट्टी में मिला डाला है। मगध राज्य के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही मैंने यह पाप किया है। मैं अपने अपराध को मुक्त कंठ से स्वीकार करता हूं।"

कादंबिनी ने यह सुनकर अपनी दोनों हथेलियों से मुंह ढक लिया और सिसक-सिसक कर रोने लगी।

महादेवी बोली—"पुत्रि ! तेरे व्यक्तिगत सुख से बड़ा सुख है मगध राज्य का सुख। तू किंचित् भी अस्वस्थ मत बन। मैं तुझे अपनी कन्या के रूप में ही रखूंगी।"

आचार्य अपने आसन से उठकर रोती हुई कादंबिनी के पास आये और उसके मस्तक पर हाथ रखकर बोले—"कादंबिनी ! तेरे ये आंसू मेरे अन्तःकरण को अत्यधिक व्यथित कर रहे हैं···पर मैं लाचार हूं। तुझे पुनः विषमुक्त करने की विधि मेरे पास नहीं है। मुझे क्षमा करना···।"

कादंबिनी ने अपने आंसू पोंछे और कहा—"गुरुदेव ! आपका कोई दोष नहीं है। मेरे कर्मों का ही यह परिणाम है। परन्तु···।"

"बोल, मैं तेरी इच्छा पूरी करूंगा।"

"तो फिर आप मुझे यहीं रखें।" कादंबिनी बोली।

"किन्तु तेरे पर एक भारी दायित्व आने वाला है।"

"जब जरूरत पड़ेगी तब मैं उस उत्तरदायित्व को उठा लूंगी। मगध के कल्याण का कोई भी कार्य करने के लिए मैं सदा तत्पर रहूंगी। किन्तु आप मुझे आश्रम में ही रखें···।"

महादेवी कादंबिनी के करुण वचन को सुनकर बोली—"कादंबिनी ! तू चाहे तो यहीं रह।"

महाराजा ने कहा—"पुत्रि ! तेरा आश्रम में रहना उचित नहीं होगा। मैं वहीं तेरे लिए स्वतंत्र व्यवस्था कर डालूंगा।"

कादंबिनी बोली—"कृपावतार ! आश्रम में रहने का मेरा आग्रह स्व-रक्षण है। मैं अभी कुमारिका हूं। मैं अभी यौवन के प्रथम सोपान पर हूं। मेरा रूप कैसा भी क्यों न हो, मेरा यौवन देखकर पुरुष पागल बनेंगे ही। मेरा संपर्क उनके लिए प्राणघातक होगा। मैं भी अभी तक यौवन की चंचलता पर नियन्त्रण करने में असमर्थ हूं। मैं एक अभिशप्त नारी हूं। चंचलता और मन का वेग आदमी को मूढ़ बना डालता है। आप मुझे यहीं रखें।"

आचार्य बोले—"कादंबिनी ! ठीक है। तू यहीं रह। तेरी सारी जिम्मेवारी मैं लेता हूं। मैं अब तुझे पुनः विषमुक्त करने के विषय में भी सतत चिंतन करता रहूंगा···तुझे अब एक बात पर विशेष ध्यान देना होगा···।"

"क्या गुरुदेव !"

"किसी भी स्त्री या पुरुष, बालक या प्राणी के स्पर्श से दूर रहना होगा।" आचार्य ने गंभीर होकर कहा।

"प्राणी के स्पर्श से···।"

"हां, पुत्रि ! मैं तुझे प्रत्यक्ष दिखाऊंगा।" कहकर आचार्य ने शिवकेशी को बुलाया और कहा—"वत्स ! एक शशक ले आ।"

"जी" कहकर वह गया और एक सुन्दर शशक लाकर आचार्य को दे, खंड के बाहर चला गया।

महाराज, महादेवी और कादंबिनी सभी शशक की ओर देख रहे थे। आचार्य ने कादंबिनी को कहा—"पुत्रि ! इस शशक को दोनों हाथों से पकड़कर इसके मुंह का चुंबन कर।"

उसने वैसा ही किया। कुछ क्षणों में वह शशक तड़फ कर मर गया।

आचार्य बोले—"पुत्रि ! यह तो एक शशक है। परन्तु यदि तू किसी भी भयंकर नाग को पकड़कर चुंबन लेगी तो उसकी भी यही दशा होगी। इसीलिए मैंने तुझे सावधान रहने के लिए कहा है।"

यह प्रत्यक्ष प्रयोग देखकर मगधपति और महादेवी आश्चर्यविमूढ़ हो गए··· और कादंबिनी···।

२६. विचित्र स्वप्न और उसका फल

धनंजय और भृत्य मनु वैशाली में आ गए। उन्हें युवराज बिंबिसार का पता लग गया।

आज आम्रपाली का नृत्य होने वाला था। हजारों प्रेक्षक प्रेक्षागृह में एकत्रित हो गये। धनंजय भी प्रेक्षागृह के पास आया और युवराज की टोह में खड़ा रहा। उसे युवराज कहीं नजर नहीं आये। वह हताश हो गया और आंखें फाड़-फाड़कर चारों ओर देखने लगा। उसे विश्वास था कि युवराज आज अवश्य मिलेंगे। यदि यहां नहीं मिले तो वसन्त बाजार में जाऊंगा। उनका संदेश था कि मैं वैशाली में मिलूंगा। उनका कथन अन्यथा नहीं हो सकता।

वह अनेक कल्पनाएं कर ही रहा था कि एक परिचारिका ने निकट आकर कहा—"श्रीमन् ! आप ही धनंजय हैं ?"

उसने तत्काल परिचारिका की ओर देखकर सोचा, कैसे पहचान लिया।

वह बोला—"क्यों ?"

"आचार्य जयकीर्ति आपको बुला रहे हैं।"

"कहां हैं ?"

"मेरे पीछे-पीछे आ जाएं", कहती हुई परिचारिका नंदिनी आगे बढ़ी।

धनंजय उसके पीछे-पीछे चलते हुए सप्तभौम प्रासाद की तीसरी मंजिल पर पहुंचा। चौथी मंजिल पर पहुंचते ही अतिथि निवास के द्वार पर बिंबिसार को खड़े देखा।

धनंजय उस निवासस्थान के वैभव और सौन्दर्य को देखकर आश्चर्य से अभिभूत हो गया। उसने सोचा, क्या युवराज यहां के अतिथि बने हैं। जो युवराज आम्रपाली के नृत्य को देखना निरर्थक और सारहीन समझते थे, क्या वे उसके अतिथि···।

एक आसन पर बैठने का संकेत कर बिंबिसार ने धनंजय से कहा—"मित्र!

मैं तेरी आंखों में उभरते आश्चर्य को समझ रहा हूं। तुझे ऐसा लगता होगा कि कहां आम्रपाली का प्रासाद और कहां जयकीर्ति ! क्या ऐसा है ?"

"महाराज ! जब असंभव संभव बनता है तब आश्चर्य होना स्वाभाविक है। आप कुशल तो हैं ?"

"हां, अब तुझे यहीं एक परिचारक के रूप में रहना है।"

"यहीं···।"

"हां, मित्र ! जब तू सारा वृत्तान्त सुनेगा तब तुझे ऐसा प्रतीत होगा कि जो हुआ है वह उत्तम हुआ है।" कहकर बिंबिसार ने मेले से पहाड़ी पर जाने, वराह का वध करने, मूर्च्छित आम्रपाली का उपचार करने, वीणावादन और गांधर्व-विवाह की सारी बात संक्षेप में बताई।

यह वृत्तान्त सुनकर प्रसन्न होने के बदले धनंजय गंभीर हो गया।

बिंबिसार ने कहा—"मित्र ! देवी आम्रपाली केवल रूप की रानी ही नहीं है, वह नारीरत्न है। ऐसे रत्न को पाकर मेरा जीवन धन्य हो गया। तू इतना गंभीर क्यों हो गया ?"

"महाराज ! आप तो जानते ही हैं कि वैशाली के लिच्छवी बहुत चतुर और चर-आंख वाले होते हैं।"

"धनंजय ! जयकीर्ति का लिच्छवियों के साथ कोई वैर नहीं है। तू भय मत खा। भृत्य को तू राजगृह भेज दे। केवल तुझे ही मेरे व्यक्तिगत परिचारक के रूप में रहना है।"

"जैसी आज्ञा" धनंजय ने कहा।

इस घटना के बाद अनेक दिन बीत गये और आश्विन पूर्णिमा का चांद गगन में उदित हुआ।

शरद पूर्णिमा के दिन उपवन के एक कुंज में आम्रपाली और बिंबिसार आमोद-प्रमोद करने वाले थे। देवी आम्रपाली ने प्रियतम के साथ उपवन में जाने की तैयारी की। इतने में ही माध्विका ने आकर कहा—"देवि ! उपवन में हजारों लिच्छवी आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"क्यों ?"

"आज शरद पूर्णिमा है···उत्सव की रात है···आज तो आपको ही उन एकत्रित लिच्छवियों का मैरेय से आतिथ्य करना होगा।"

"यह किसने कहा ?"

"अभी-अभी गणतन्त्र का सचेतक आया था और उसने यह सन्देश दिया है।"

"तब तूने इतने विलंब से मुझे यह बात क्यों कही ?"

"देवि ! आप स्नानगृह में थीं। मैं स्वयं नीचे सबका स्वागत कर रही थी।"

"हं, हं···आचार्य जयकीर्ति क्या कर रहे हैं?"

"आपके खंड में वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"ओह ! यह उत्सव कब तक चलेगा?"

"आधी रात तक···।"

"नहीं, मैं अपनी उमंग को इस प्रकार नष्ट नहीं होने दूंगी। उत्सव को शीघ्रता से सम्पन्न कर मुझे महाराज के पास पहुंचना है।"

रात्रि का दूसरा प्रहर पूरा हो गया। तीसरे प्रहर की दो घटिकाएं व्यतीत हो गयीं। बिंबिसार प्रियतमा की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में ही आम्रपाली उस कक्ष में प्रविष्ट हुई।

"हम बाहर चलें।" कहकर बिंबिसार आम्रपाली को हाथ पकड़कर बाहर ले गया।

चन्द्र का प्रकाश स्वच्छ और निर्मल था।

फिर दोनों वहां कुछ समय रहकर अपने शयनकक्ष में चले गए। वहां कुछ समय विनोद भरी बातें करते हुए दोनों शय्या में सो गए···उस समय रात्रि के चतुर्थ प्रहर की दो घड़ियां बीत चुकी थीं और सूर्योदय के पूर्व आम्रपाली चौंक कर उठी। घोर नींद में सोए हुए अपने प्रियतम को झकझोरती हुई बोली—"प्रियतम···।"

"क्यों? क्या हुआ?" कहता हुआ बिंबिसार उठा।

"एक विचित्र स्वप्न देखा है···।"

"स्वप्न? कैसा स्वप्न?"

"मैं एक सरोवर के किनारे खड़ी हूं···आकाश में पूर्ण चन्द्र चमक रहा है·· मैं उसे एकटक देखने लगी···उसी समय अचानक तारे की तरह चन्द्र टूटा। मैं चौंकी···और उसी क्षण चन्द्र मेरे मुंह में प्रविष्ट हो गया।"

"स्वप्न अति उत्तम है। सम्भव है कि···।"

"क्या?"

"स्वप्न कभी-कभी भविष्य की बात कह जाता है···अब तू सोना मत। अपने इष्टदेव का स्मरण कर। प्रातः स्वप्न पाठक को बुलाकर इस स्वप्न का अर्थ पूछेंगे।"

आम्रपाली बोली—"आज मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न है। मुझे प्रतीत हो रहा है, मानो शरीर में नयी चेतना व्याप्त हो रही हो।"

"प्रिये ! स्वप्न का फल उत्तम होगा।"

आम्रपाली शैया से उठी और अपने इष्ट को नमस्कार कर महामन्त्र का जाप करने बैठ गयी।

प्रातःकाल स्नान आदि से निवृत्त होकर आम्रपाली और महाराज एक खंड में बैठे थे। उन्होंने माध्विका को स्वप्न पाठक को बुलाने भेजा था। वे प्रतीक्षारत थे।

इतने में ही माध्विका ने आकर कहा—"महाराज! नैमित्तिक आचार्य गौतम पधारे हैं।"

"उनको आदरपूर्वक यहां ले आ।"

आचार्य गौतम की उम्र साठ वर्ष की थी। किन्तु उनका शरीर स्वस्थ और बलिष्ठ था···उनके नयन अत्यन्त तेजस्वी थे। उन्हें आते देख आम्रपाली और बिंबिसार दोनों उठे और आचार्य को नमस्कार कर उन्हें स्वर्ण आसन पर बिठाया। आचार्य ने आम्रपाली की ओर देखकर कहा—"बोल बेटी! इस वृद्ध को क्यों याद किया है?"

बिंबिसार ने कहा—"महाराज! देवी ने रात के अन्तिम प्रहर की अन्तिम घटिका में एक स्वप्न देखा था। उसकी फलश्रुति हम जानना चाहते हैं।"

आचार्य ने आम्रपाली से स्वप्न की सारी बात सुनी। दो क्षण आंखें बन्द कर कुछ गणना की। फिर आचार्य ने कहा—"देवि! स्वप्न बहुत उत्तम है। चन्द्र जैसा तेजस्वी और उत्तरोत्तर प्रकाश करने वाले पुत्र की प्राप्ति होगी। परन्तु···।" परन्तु कहते-कहते आचार्य गम्भीर विचार में उलझ गए।

बिंबिसार ने कहा—"महाराज! बात बीच में कैसे रह गई?"

"बालक का भविष्य बहुत अस्थिर है। एक ओर उसके लिए राजयोग है और दूसरी ओर संसार-त्याग का योग भी बनता है। श्रीमन्! मैं आपका परिचय नहीं जानता, इसलिए।"

तत्काल आम्रपाली बोली—"ये मेरे स्वामी हैं। इनका नाम जयकीर्ति है। ये समर्थ वीणावादक हैं···।"

बिंबिसार ने प्रियतमा की ओर देखकर कहा—"प्रिये! वैद्य और ज्योतिषी दोनों माता के समान होते हैं। इनके सामने सत्य कहने में नहीं हिचकना चाहिए।" फिर बिंबिसार ने आचार्य की ओर देखकर कहा—"महाराज! मेरा नाम श्रेणिक है। महाबिंब वीणा मुझे अत्यन्त प्रिय है, इसलिए मुझे बिंबिसार भी कहते हैं। मैं मगध सम्राट् प्रसेनजित का पुत्र हूं और राजाज्ञा से मगध का त्याग कर निकला हूं।"

"अच्छा, तब तो बालक के राजयोग की बात उचित लगती है···महाराज! दो वर्ष बाद आप···।"

बिंबिसार ने हंसते-हंसते कहा—"महात्मन्! मेरे से पांच भाई बड़े हैं, इसलिए मुझे···। यह अशक्य है। मेरे पिता के शताधिक पुत्र हैं। प्रथम दस बड़े पुत्र युवराज के रूप में माने जाते हैं, परन्तु गद्दी उसे ही मिलती है जो बड़ा होता है।"

आचार्य गम्भीर हो गए। मन-ही-मन गणित कर बोले—"महाराज ! आपका सारा जीवन-चित्र मेरी आंखों के सामने नाच रहा है। आप चातुर्मास के प्रारम्भिक दिनों में ही घर से निकल पड़े थे ?"

"हां···"

"गत मास आपके दो बड़े भाइयों की आकस्मिक मृत्यु हो गई है।"

"महात्मन् ! आप यह क्या कर रहे हैं ?"

"महाराज ! यह मैं नहीं कह रहा हूं। गणित के आधार पर आपके भविष्य की जो घटना घटी है, उसी का कथन कर रहा हूं। इसीलिए अब मगध का सिंहासन आपका होगा, यह निश्चित बात है।"

आम्रपाली यह सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई।

एक मास बीत गया।

आम्रपाली के स्वास्थ्य में विचित्र परिवर्तन होने लगा। प्रातः काल उठते ही उसे पित्त से भरा-पूरा हल्का-सा वमन होता।

मध्याह्न के समय उसे नींद आती।

सूर्यास्त के बाद उसे भोजन करने की इच्छा ही नहीं होती। कभी कुछ मनोगत वस्तु खा लेती तो दो-चार घटिका के बाद वमन होता, खाया-पिया सारा निकल जाता।

चार-पांच दिन तक आम्रपाली ने इन लक्षणों पर ध्यान नहीं दिया। अन्त में उसने अपने स्वामी बिंबिसार से कहा। बिंबिसार बोला—"प्रिये ! नैमित्तिक ने जो कहा है, क्या यह उसी का लक्षण तो नहीं है ? उदर में भावी···।"

आम्रपाली की आंखों में एक नयी चमक उभरी।

दूसरे दिन उसने वैशाली की प्रसिद्ध गर्भ-ग्राहिका को बुलाया। उसने नाड़ी-परीक्षा की। आंख देखी। पेडू पर हाथ रखकर परीक्षा कर कहा—"देवि ! ये सारे लक्षण इस बात के द्योतक हैं कि आप गर्भवती हुई हैं···आपको वमन होना स्वाभाविक है। पांचवें महीने के प्रारम्भ में या अन्त में वह स्वतः बन्द हो जाएगा।"

माध्विका पास में खड़ी थी। उसने पूछा—'देवी के पथ्यापथ्य के विषय में···?"

"हां, इस विषय में सावधानी बरतनी होगी। तीसरे महीने के अन्त में नृत्य बन्द करना होगा···संगीत भी स्थगित करना पड़ेगा···अभ्यंग और श्रमजनित कार्य का त्याग करना होगा।"

फिर गर्भ-ग्राहिका ने आहार के विषय में सूचना दी।

आम्रपाली ने पूछा—"क्या किसी औषधि का सेवन करना पड़ेगा ?"

धात्री विचार में पड़ गयी। उसे ज्ञान नहीं था कि आम्रपाली ने गुप्त रूप से विवाह कर लिया है। वह तो यही मानती थी कि जनपदकल्याणी का अनेक पुरुषों से मिलना-जुलना होता है और सम्भव है किसी पुरुष के साथ संभोग होने से गर्भ रह गया है।

माध्विका ने पूछा—"क्या सोच रही है ?"

उसने कहा—'गर्भ से निवृत्त होना हो तो औषधि का निर्देश···"

"नहीं।"

"तब औषधि की अपेक्षा नहीं है।" धात्री ने कहा।

माध्विका ने कहा—"देवी सगर्भा हैं, यह बात किसी से कहनी नहीं है।" यह कहकर उसे पुष्कल उपहार देकर विदा किया।

२७. नर्तकी कादंबिनी

विषकन्या के सफल निर्माण का प्रयोग आंखों से देखकर मगधेश्वर प्रसेनजित और महादेवी त्रैलोक्यसुन्दरी अपने राजप्रासाद में आ गए। फिर उन्होंने महामन्त्री को मंत्रणागृह में बुलाकर कहा—"आचार्यदेव ने कार्य सिद्ध कर दिया है।"

"अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समाचार ! क्या विषकन्या पूर्ण रूप से बन गई ?"

"हां।"

"क्या आप उसे साथ लेकर आए हैं ?"

"नहीं, कादंबिनी नगर में आना नहीं चाहती। वह आश्रम में ही रहेगी।"

महामन्त्री कुछ क्षणों तक विचारमग्न रहकर बोले—"कृपावतार !" कादंबिनी को अपनी नजरों के समक्ष रखना उचित होगा।"

"पर वह सहमत नहीं है।"

"नहीं, महाराज ! उसे यहां आना ही होगा। मैंने एक पहाड़ी पर उसके निवास की व्यवस्था कर रखी है।"

"मन्त्रीश्वर ! राज्य के प्रयोजन के लिए वह कभी भी यहां आ सकती है। परन्तु नगर में रहना उसे उचित नहीं लगा। वह कहती है, यौवन अन्धा होता है···वह कब क्या कर बैठे, कुछ कहा नहीं जा सकता।"

"कृपावतार ! कादंबिनी को यहां रखना ही श्रेयस्कर है। गुप्तशस्त्र को बाहर रखना ही नहीं चाहिए। हमने विषकन्या का निर्माण किया है। यह कोई नहीं जानता। आचार्यश्री यह बात किसी को नहीं कहेंगे, ऐसा विश्वास है। फिर भी एक भयस्थान है। यदि यह तथ्य बाहर प्रकट हो जाए तो अपना सारा श्रम निष्फल चला जाएगा।" महामन्त्री ने कहा।

"कैसा भय-स्थान ?" महाराजा ने पूछा।

"सम्भव है कि महादेवी···"

बीच में ही मगधेश्वर बोल पड़े—"यह भय निरर्थक है।"

"महाराजा ! महादेवी के प्रति जो आपका विश्वास है, वह मेरे से छिपा नहीं है। किन्तु स्त्री में यह एक महान दोष होता है कि वह महत्त्व की बात को पचा नहीं पाती।"

"मन्त्रीश्वर ! महादेवी का पेट सागर के समान गहरा है।"

"महाराज ! इस बात से मैं इनकार नहीं होता। मैं तो केवल स्त्री जाति के स्वभावगत दोष की बात ही कहता हूं। राजनीतिज्ञ पुरुष को ऐसी बातों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।"

"अच्छा, एक-आध सप्ताह के बाद कादंबिनी को यहां बुला लेंगे।" मगधेश्वर ने कहा।

"व्यवस्था मैंने कर दी है। उसकी देखरेख करने वाले सैनिक नपुंसक हैं। उसकी सेवा के लिए चतुर और वृद्ध परिचारिकाओं की नियुक्ति भी कर दी है।"

"उत्तम···परन्तु···।"

"परन्तु क्या ?"

"कादंबिनी जैसी निर्दोष और गुणवती युवती को···"

बीच में ही महामन्त्री ने कहा—"महाराज ! राजनीति सदा निर्दय होती है। उसमें किसी के प्रति लगाव नहीं होता। राजनयिकों की दृष्टि केवल स्वार्थ-सिद्धि में केन्द्रित होती है, नीति में नहीं।"

"तुम जो कहते हो, वह सत्य है। तुम विषकन्या का प्रयोग पहले-पहल कहां करना चाहते हो ?" महाराज ने पूछा।

मन्त्री बोला—"विषकन्या का पहला शिकार शंबुक राक्षस होगा।"

"किन्तु, उसके अभेद्य वन-प्रदेश में···।"

"महाराज ! कार्यसिद्धि महत्त्व की बात है, उपाय हजार हो सकते हैं। आप निश्चिन्त रहें। कादंबिनी एकाध महीना यहां रहेगी, फिर मैं उसका उपयोग करूंगा। उस अन्तराल में मैं उसे कुछ रहस्य समझा दूंगा।" महामन्त्री ने कहा।

प्रसेनजित महामन्त्री के विचारों से सहमत हुए और दोनों मंत्रणागृह से बाहर निकले।

राजा राजकार्य से निवृत्त होकर अन्तःपुर में आये। वे अपनी प्रियतमा रानी त्रैलोक्यसुन्दरी से बोले—"महामन्त्री कादंबिनी को आश्रम में रखना नहीं चाहते। उनका मानना है कि गुप्तशस्त्र नजरों से दूर नहीं रहना चाहिए।"

त्रैलोक्यसुन्दरी महाराजा से बोली—"महाराज ! महामन्त्री की बात सत्य है। कादंबिनी को यहीं रखना चाहिए।"

एकाध सप्ताह के बाद अनमने भाव से कादंबिनी अपने लिए पूर्व निर्धारित

आवासगृह में चली आयी। आते-आते उसने गुरुदेव से कहा—"गुरुदेव ! मैं इस अभिशप्त जीवन को लेकर लोगों के बीच रहूं, यह कैसी विडम्बना है।"

"पुत्रि ! तेरे जैसी एक सुशील कन्या को अभिशप्त जीवन की ओर धकेलने में मुझे कितना दुःख हुआ था, तू नहीं जान सकती। परन्तु राष्ट्र के कल्याण की भावना के आगे व्यथा और वेदना को पचा लेना पड़ता है।"

और भी अनेक बातें हुईं। गुरुदेव ने जाना कि कादंबिनी अपने जीवन से अत्यन्त पीड़ित और व्यथित है। पर···।

कादंबिनी अपने निवास स्थान में आयी। वहां की व्यवस्थाओं को देखा। परिचारिकाओं और रक्षक-सैनिकों को देखा। वह प्रसन्न हुई। उसे लगा, आश्रम से भी यह स्थान अच्छा है।

एक दिन महामन्त्री वहां आए। कादंबिनी ने उचित आदर-सत्कार किया। कादंबिनी को देखते ही महामन्त्री चौंक उठे···इतना रूप···इतनी मादकता··· इतना तेज···। उन्होंने कहा—"पुत्रि ! तेरा कल्याण हो। क्या यह स्थान तुझे पसन्द है ?"

कादंबिनी ने केवल मस्तक नमाया।

महामन्त्री ने कहा—"बेटी ! मगध की महान् शक्ति के रूप में तू यहां है। अब तुझे अनेक महान कार्य करने हैं। इसलिए एकाध महीने तक तू नृत्य और संगीत का पूर्ण अभ्यास कर ले। उसमें निपुणता प्राप्त कर ले। फिर तुझे विशेष कार्य करने होंगे। तुझे लोगों को ऐसा आभास कराना है कि तू एक महान नर्तकी है और राज्य के अतिथि के रूप में यहां आयी है। यह तुझे याद रखना है कि लोग तुझे महान् नर्तकी के रूप में ही जानें, मानें।

"लोग···?"

"हां, पुत्रि ! तू एक महान नर्तकी है, ऐसा जानकर लोग तुझसे मिलने आएंगे और अनेक रसिक व्यक्ति भी आएंगे। तुझे घबराना नहीं है। तू उनका स्वागत करना···उनको नृत्य से प्रसन्न करना···वे जो भेंट दे, उसे ले लेना। सबके हृदय-पटल पर यह छाप डालनी है कि तू एक निपुण नर्तकी है, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है और कामदेव की रति के समान है।

कादंबिनी ने कांपते स्वरों में कहा—"किन्तु मेरा···जीवन···।"

"पुत्रि ! सदा-सदा के लिए तू इन विचारों को निकाल फेंक···तेरा जीवन अभिशप्त नहीं है। वह आशा, उल्लास और आनन्द का प्रतीक है। ये विचार तुझे दृढ़ करने हैं।" महामन्त्री ने कहा।

महामन्त्री ने उसे यह भी समझा दिया कि राजनीति में कोई किसी का नहीं होता। उसमें दया और अनुकम्पा का कोई स्थान नहीं है। उसमें निर्दयता का स्थान प्रथम है। शत्रु को परधाम पहुंचाना उसका लक्ष्य है।

कादंबिनी को वहां आए कुछ दिन व्यतीत हुए। सारे नगर में महान नर्तकी के रूप में उसकी ख्याति होने लगी। सैकड़ों लोग उसके रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर भान भूलने लगे।

और महारानी त्रैलोक्यसुन्दरी जिसको मगध का मुकुट दिलाने का अथक श्रम कर रही थी, उसके एकाकी पुत्र दुर्दम ने एक दिन अपने मित्रों से जाना कि नगर में राजा के अतिथि के रूप में एक नर्तकी आयी है और उसके नृत्य के समक्ष स्वर्ग की अप्सराओं का नृत्य भी फीका होता है।

यह सुनकर उसने एक दिन अपने मित्र से पूछा—"क्या तुमने नर्तकी को देखा है?"

"हां, कल ही मैं उसका नृत्य देखने गया था। उसका नृत्य तो वैशाली की आम्रपाली से भी अनुपम है।"

"अरे, नृत्य को मार लात···उसका रूप और यौवन कैसा है?"

"महाराज! क्या बताऊं? वह अनुपम है, उसकी छटा अलबेली है। उसकी आंखें मादक हैं और अभी १५-१६ वर्ष की है।"

"हूं···मुझे एक बार देखना होगा।"

"प्रत्येक गुरुवार और रविवार को उसका नृत्य होता है, परन्तु आप कैसे···?"

"वेश बदल कर···" कुमार ने कहा।

२८. पहला शिकार

कादंबिनी के रूप-यौवन के गौरव की चर्चा चारों ओर होने लगी। केवल दस दिनों में ही कादंबिनी से मिलने-जुलने वाले कहने लगे—"यह नवयौवना नर्तकी पूर्व भारत की श्रेष्ठतम सुन्दरी है। यदि यह सुन्दरी वैशाली में हो तो आम्रपाली का गौरव अवश्य ही धुंधला जाए।"

महामन्त्री चाहते थे कि कादंबिनी की ख्याति राजगृही नगरी की सीमा को पारकर पूर्व भारत में पूर्णरूप से फैल जाए। शंबुक को नष्ट करने से पूर्व शत्रु-राज्य वैशाली के कुछेक मूर्धन्य व्यक्तियों का सफाया किया जा सकता है और यदि ऐसा होता है तो वैशाली का गणतन्त्र कमजोर हो जाता है और फिर उसे हस्तगत करना कठिन नहीं होता।

परन्तु महामन्त्री को यह कल्पना नहीं थी कि जिस विषकन्या का निर्माण शत्रुओं को नष्ट करने के लिए हुआ है, वही विषकन्या घर को भी उजाड़ सकती है।

चार दिन और बीत गये।

कादंबिनी के रूप-यौवन की प्रशंसा घर-घर होने लगी।

और जिसके मस्तक पर मगध के साम्राज्य का मुकुट रखने का स्वप्न रानी त्रैलोक्यसुन्दरी देख रही थी उसका एकाकी पुत्र दुर्दम कादंबिनी के नृत्य को देखने के लिए तड़प रहा था।

और एक दिन दुर्दम वेश बदलकर अपने पांच-सात मित्रों के साथ कादंबिनी के निवास-स्थान पर जा पहुंचा। उसने देखा कि कादंबिनी का नृत्य देखने के लिए हजारों दर्शक वहां उपस्थित हैं। दुर्दम भी उस प्रेक्षागृह के एक ओर अपने साथियों के साथ बैठ गया।

आसपास में बैठे लोग कादंबिनी के विषय में अनेक प्रकार की बातें कर रहे थे। कोई कहता, "कादंबिनी स्वर्ग की अप्सरा है और वह शापग्रस्त है।" कोई कहता, "कादंबिनी कामरूप देश का त्यागकर यहां आई है और मगधेश्वर इसे राज्य की महान् नर्तकी के पद-गौरव पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।" कोई कहता, "इसका पूर्व पति यक्ष है। वह इसकी रक्षा करता है। यह यक्ष-पत्नी है।"

दुर्दम सारी बातें सुन रहा था। उसने अपने एक मित्र से पूछा—"क्या कादंबिनी यक्ष-पत्नी है?"

"नहीं, महाराज! यह तो पन्द्रह-सोलह वर्ष की सुन्दरी है। लोग ऊटपटांग बातें करते हैं। मैंने तो यह भी सुना है कि यह नागकन्या है।

दुर्दम कुछ उत्तर दे, उससे पूर्व ही पटोत्थान हुआ। सरोवर का किनारा। चारों ओर बड़े-बड़े वृक्ष।

और सरोवर से एक सहस्रदल कमल निकला और सबने देखा कि उस कमल की कोमल पंखुड़ियों के बीचोंबीच कादंबिनी बैठी है। वह धीरे-धीरे कमल से बाहर निकली। वह जलपरी-सी लग रही थी। उसकी वेशभूषा भी वही थी। उसका रूप-सौन्दर्य पुरुष को अन्धा बनाने में समर्थ था। वह अलबेली थी।

जल सुन्दरी के अभिनय को देखने में दुर्दम तन्मय हो गया। यदि प्रकृति आंख से रूप को पीने की शक्ति दे पाती तो आज दुर्दम कादंबिनी के रूप को आंख से पी जाता।

नृत्य समाप्त हुआ। लोगों ने जय-जयकार किया।

दुर्दम का एक मित्र वहीं प्रेक्षागृह में रुक गया। उसने अवसर देखकर कादंबिनी की एक वृद्ध दासी से मेल-जोल किया। उसे उपहारों का प्रलोभन देकर कहा—"एक बार तुम मेरे स्वामी को कादंबिनी से मिला दो। वे तुझे मालामाल कर देंगे।" पहले तो वृद्धा ने आनाकानी की। फिर बहुत समझाने-बुझाने के पश्चात् उसने कहा—"देवी किसी से एकान्त में नहीं मिलती। उन्हें अपनी मर्यादा रखनी होती है। फिर भी वे एकान्त में कुछ क्षण निकाल सकें, यह मैं कोशिश करूंगी।"

वृद्धा के कथन से उसे कुछ आशा बंधी।

दूसरे दिन भी दुर्दम नृत्य देखने गया। आज अभिसारिका नृत्य था। कादंबिनी ने उस नृत्य में इतना प्राण फूंका कि सभी दर्शक बेहाल हो गये।

उस नृत्य ने दुर्दम के मन को और अधिक झकझोर डाला। वह उससे मिलने के लिए उतावला हो रहा था। उसने मित्र से अपनी उत्कंठा कही।

मित्र ने पुनः वृद्ध दासी से सम्पर्क साधा।

मित्र ने आकर कहा—"महाराज! आप सौभाग्यशाली हैं। कल संध्या के समय आप देवी कादंबिनी से मिल सकेंगे।"

यह सुनकर दुर्दम नाच उठा।

पर उसे यह ज्ञात नहीं था कि कल की संध्या उसके लिए अन्तिम संध्या है।

बेचारा!

उगता यौवन अधिक भयंकर होता है या अस्तंगत हुआ यौवन अधिक जोखिम भरा होता है, इसका निर्णय आज तक किसी मानसशास्त्री ने नहीं किया है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यौवन का उदय-काल और अस्त-काल दोनों भयंकर और जोखिम भरे होते हैं।

दुर्दम अभी सतरह वर्ष का था। यह काल ऐसा था कि वृत्तियों पर सहजता से नियंत्रण किया जा सकता है। किन्तु दुर्दम की बात निराली थी।

इसमें सारा दोष मां त्रैलोक्यसुन्दरी का था। उसका एकाकी पुत्र दुर्दम उसके जीवन का मधुर स्वप्न जैसा था। वह उसे मगध का अधिपति बनाना चाहती थी और वह अपनी इस योजना में चरम बिन्दु का स्पर्श कर चुकी थी। किन्तु दुर्दम के सारे दुर्गुणों को वह पचा रही थी। जो कोई दुर्दम का दोष बताता, वह उसे गौण कर देती। यह सारा मोहवश हो रहा था।

यही कारण था कि वह दुर्दम को न वीर बना सकी, न राजनीतिज्ञ और न रण-निपुण। वह यही समझती थी कि जब उत्तरदायित्व आएगा तब सब कुछ ठीक हो जाएगा।

केवल सत्रह वर्ष की वय वाला दुर्दम साथियों की संगत से शराब और सुन्दरी के व्यसन में फंस गया। यौवन की उदयावस्था आदमी को अंधा बना देती है, यदि ऐसा भान न रहे तो धीरे-धीरे व्यक्ति गहरे गड्ढे में गिर पड़ता है और अपरिपक्व यौवन की तृप्ति भी भयंकर होती है।

महामन्त्री के गुप्तचरों ने यह जान लिया था कि आज सायं दुर्दम कादंबिनी से मिलने वाला है। यह जानकर महामन्त्री का हृदय बहुत आनन्दित हो गया। वे चाहते थे कि दुर्दम इस प्रकार मौत का शिकार होता है तो त्रैलोक्यसुन्दरी की शासन-लालसा का स्वतः अंत हो जाता है और मगध साम्राज्य का बोझ एक दयनीय, उच्छृंखल और कमजोर हाथों में पड़ने से बच जाता है।

कादंबिनी तथा अन्य किसी को यह पता नहीं था कि आज जो मेहमान आने वाला है, वह अन्य कोई नहीं परन्तु मगध का भावी सम्राट कुमार दुर्दम है।

महामन्त्री तत्काल कादंबिनी के भवन में गये और अपने आगमन की सूचना भेजी।

महामन्त्री कादंबिनी के खंड में गये। कादंबिनी ने उनका भावभरा स्वागत किया और वहां आने का प्रयोजन पूछा।

महामन्त्री बोले—"आज जो तुम से मिलने आने वाला है वह एक भयंकर शत्रु है। वह कला का पुजारी नहीं, रूप का शत्रु है। तुझे आज पहली बार राजनीति की एक चाल चलनी है। आने वाला जीवित न लौटने पाए।"

"पुत्रि ! आने वाले को तुझे प्रसन्न करना होगा। बिना किसी अकुलाहट के तुझे उसको तड़पते देखना होगा। तेरी काया का विष आज अमृत हो जाएगा। मगध की एक जटिल पहेली तेरे हाथों सुलझ जाएगी। किन्तु वह कौन है, कहां से आया है, क्या करता है आदि की जानकारी तेरे लिए आवश्यक नहीं है। स्वतः यह सब कुछ तुझे समझ में आ जाएगा। निर्दयता, निश्चितता और निर्भयता—ये राजनीति के अमोघ शस्त्र हैं। तुझे इन शस्त्रों को सम्भालकर रखना है।"

कादंबिनी सब कुछ समझ गई। वह प्रसन्नचित्त होकर बोली—"आपकी आज्ञा के अनुसार ही सारा काम होगा।"

संध्या का समय। दुर्दम वेश परिवर्त्तन कर अपने साथी के साथ कादंबिनी के भवन पर आ पहुंचा।

महामन्त्री की सूचना के अनुसार कादंबिनी अपने अतिथि का स्वागत करने के लिए तैयार हो गयी। आज उसने अत्यन्त मुलायम और पारदर्शी कौशेय के वस्त्र धारण किए और वह उत्तम अलंकारों से सज्जित हुई। आज उसका रूप योगी को भी पथभ्रष्ट करने में समर्थ था।

कादंबिनी शिकार की प्रतीक्षा में बैठी थी। विचारों के आवर्त में वह फंस गई। उसका अतीत सामने आ गया।

इतने में ही राजकुमार दुर्दम अपने परिवर्तित वेश में वहां आ पहुंचा। ज्योंही वह भवन के द्वार पर आया, परिचारिकाओं ने उसका स्वागत किया और उसे कादंबिनी के एक विशेष खंड में ले गयीं और उसे सुनहरे आसन पर बिठाया।

उसने कादंबिनी को पहले देखा था, परन्तु कादंबिनी ने उसको कभी नहीं देखा था।

दुर्दम के नयन आनन्द से भरे-पूरे थे। उसके हृदय में मिलन की उग्र तमन्ना उभर रही थी।

और उसी समय लज्जारक्त वदन से सुशोभित, मन्द-मन्द गजगति से चलती हुई कादंबिनी ने उस कक्ष में प्रवेश किया।

आशाओं के ताने-बाने बुनता हुआ दुर्दम आसन से उठ खड़ा हुआ। कादंबिनी निकट आकर बोली—"आयुष्यमान् की जय हो। आप जैसे कलासेवी से मिलकर मुझे प्रसन्नता होती है। आप आसन पर विराजें।"

"देवि! आज मैं धन्य हो गया।" कहता हुआ दुर्दम आसन पर बैठ गया।

"आपका परिचय···?" देवी ने पूछा।

यह सुनते ही दुर्दम अकुला गया। उसने तत्काल चेतना को सम्भालकर कहा—"मैं अपना परिचय क्या दूं? मैं मालव का एक राजपूत हूं। मैं कला-प्रेमी हूं। मैंने आपका नृत्य देखा और साक्षात् दर्शन की उत्कण्ठा जाग उठी। वास्तव में आपका नृत्य स्वर्गलोक की मेनका के नृत्य की स्मृति कराता है।"

कादंबिनी ने सोचा—इस युवक की भाषा मधुर है, परन्तु यह मालवीय नहीं है। कोई भी हो, मुझे क्या?

वह बोली—"श्रीमन्! मैं परदेशी नर्तकी हूं। मेरा नृत्य आपको पसन्द आया, यह मेरा सौभाग्य है।"

कादंबिनी बातों ही बातों में दुर्दम को उत्तेजित करने लगी। नाना प्रकार की बातें होती रहीं। बीच-बीच में मैरेय का पान भी चलता रहा।

दुर्दम के चित्त की विह्वलता अति उग्र बन रही थी। उसने सोचा, कादंबिनी से मूल बात कैसे की जाए? वह सोचता रहा।

वह तत्काल बोल उठा—"देवि! मैं आपकी कला का सत्कार करने आया हूं। आपको बुरा न लगे तो एक बात कहूं···"

"प्रिय! मैं आपकी भावना का अवश्य सत्कार करूंगी। आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। यहां आने के पश्चात् आज ही तो यौवन को यौवन का सहवास मिला है।"

"मैं धन्य हुआ।" कहकर दुर्दम ने अपने कमरपट्ट से रत्नजटित हार निकाला और देवी कादंबिनी के आगे उपहृत कर दिया।

"प्रिय! आप ही इस हार से दासी को अलंकृत करें।" यह कहकर कादंबिनी आगे आई।

दुर्दम हार को उठा कादंबिनी के निकट आकर बोला—"रूप का सत्कार करूं या···।"

"आज आप मेरे प्रथम माननीय अतिथि हैं। आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें। आप पूर्ण स्वतन्त्र हैं।" कादंबिनी के ये वाक्य सुनकर दुर्दम हर्ष-विभोर हो गया। उसने रत्नजटित हार कादंबिनी के गले में पहना दिया।

कादंबिनी बोली—"हार अत्यन्त सुन्दर है।"

"हार नहीं, तुम अति सुन्दर हो।" कहते हुए दुर्दम ने कादंबिनी को बाहुपाश में जकड़ लिया···कादंबिनी का चेहरा लज्जारक्त हो गया।

दुर्दम बोला—"प्रिये! जब तुम जानोगी कि मैं कौन हूं तब तुम्हारा हर्ष हजार गुना बढ़ जाएगा।"

कादंबिनी कुछ कहना चाहती थी, पर उसके बोलने से पूर्व ही उसके गुलाबी अधरों पर मद्यपायी दुर्दम के अधर टिक चुके थे।

चुम्बन अत्यन्त दीर्घ हो गया।

दुर्दम के नयनों में अंधियारी छाने लगी। दुर्दम का बाहुपाश धीरे-धीरे ढीला होने लगा। कादंबिनी के अधरदंश का प्रभाव हो चुका था। दुर्दम कुछ कहना चाहता था, पर बोल नहीं सका···उसके सारे अंग-प्रत्यंग ढीले हो गए··· कादंबिनी ने अपने दोनों हाथ ढीले किए···मुख अलग किया और दुर्दम तत्काल धरती पर गिर पड़ा।

दुर्दम की ओर एक करुणदृष्टि फेंककर कादंबिनी द्वार के पास गयी और बन्द द्वार को धीरे से खोला।

वह पुनः दुर्दम के पास आयी। उसने देखा कि दुर्दम अन्तिम श्वास ले चुका है। देह नीला हो गया है। आंखें खुली हैं, जीभ बाहर निकल गयी है और उससे नीले रंग की लार टपक रही है।

कादंबिनी ने तत्काल एक दासी को बुलाकर कहा—"तत्काल महामन्त्री को यह समाचार दो कि मालव का एक युवक मुझसे मिलने आया था। वह अपना भान और विवेक खोकर मेरा आलिंगन कर बैठा। मेरे रक्षक यक्ष ने उसके प्राण खींच लिये।"

दासी ने दुर्दम की निर्जीव काया की ओर देखकर कहा—"मर गया? देवि! इसका परिचय···?"

"मालव का राजपूत है। इसका कोई परिचय नहीं है।"

"आपको कुछ···?

"मैं सुरक्षित हूं।" तू सबसे पहले एक दूत को भेज।

फिर कादंबिनी अन्यान्य परिचारिकाओं की ओर देखकर कहा—"इस लाश को कोई न छुए"। इतना कहकर वह चली गयी।

२९. आशा का दीप बुझ गया

दुर्दम का साथी श्रीमल्ल युवराज की प्रतीक्षा में बाहर खड़ा था। वह एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था, क्योंकि युवराज कादंबिनी के खंड से कब निकलेंगे,

यह निश्चित नहीं था। उसने भवन के भीतर जाने का तीन बार प्रयत्न भी किया, परन्तु भवन के रक्षकों ने विनयपूर्वक उसे इनकार कर दिया था।

श्रीमल्ल ने सोचा, इतना समय बीत गया है, इससे लगता है कि युवराज की भावना पूरी हुई है। इतने में ही भवन का दरवाजा खुला और उसने देखा कि एक अश्वारोही तेजगति से नगर की ओर दौड़ा आ रहा है।

कुछ समय बीता।

रात्रि के दूसरे प्रहर की अन्तिम घटिका पूरी हो रही थी। इतने में ही एक रथ कादंबिनी के भवन के पास आकर रुका। उसमें से महामन्त्री और चरनायक नीचे उतरे।

भवन की मुख्य परिचारिका ने उन्हें भीतर प्रवेश कराया और एक विशेष खंड में बैठने का निवेदन किया।

इतने में ही कादंबिनी वहां आई। महामंत्री ने पूछा—"बेटी! क्या हुआ? वह अभागा कौन था?"

कादंबिनी ने सारी बात बताई। चरनायक ने कुछ पूछताछ की। फिर वे सब शव के पास आए। शव सफेद चादर से ढका हुआ था। चरनायक ने मुंह पर से चादर हटाई और वह चेहरा देखकर अवाक् रह गया। वह बोला—"पूज्य! गजब हो गया···"

"क्या?"

"आपने नहीं पहचाना? ये तो कुमार दुर्दम हैं।"

"दुर्दमकुमार?" महामन्त्री ने फटे स्वरों से कहा। उन्होंने झुककर देखा और बोले—"गम्भीर प्रसंग उपस्थित हो गया है। यह बात जाहिर न हो। इसका जाहिर होना राज्य के लिए हितकर नहीं है। इस शव को चुपचाप राजभवन पहुंचा दो और जो इसका साथी बाहर खड़ा है, उसे गिरफ्तार कर लो।"

कुछ सोचकर चरनायक बोला—"दादा! आप जो कहते हैं वह उचित है।"

महामन्त्री बोला—"दुर्दमकुमार की यह मौत अस्वाभाविक नहीं है। वे प्रारम्भ से ही रूप और यौवन के पीछे पागल थे। उन्हें इससे कभी नहीं रोका जा सका। लगता है वे कादंबिनी के रूप की प्रशंसा सुनकर यहां आए होंगे और अपना विवेक खोकर कादंबिनी का आलिंगन किया होगा। कादंबिनी का रक्षक यक्ष इसे कैसे सहन कर पाता? उसने कुमार के प्राण खींच लिये, लगता है।"

चरनायक बोला—"यह ठीक है। परन्तु महादेवी जब यह दुःखद समाचार सुनेंगी तब···।"

"होगा क्या ? इस घटना में कोई अपराधी है, ऐसा मुझे नहीं लगता। फिर भी हमें खोज करनी ही होगी।"

चरनायक बाहर चला गया।

महामन्त्री एक ओर जाकर कादंबिनी से बोले—"पुत्रि ! तेरे लिए यह पहला प्रसंग है। तूने मगध का बहुत बड़ा उपकार किया है। मरने वाला और कोई नहीं, किन्तु रानी त्रैलोक्यसुन्दरी का एकाकी लाड़ला पुत्र दुर्दमकुमार है।"

"हैं···।"

"तू घबरा मत। तुझे गर्म आंच भी नहीं लगने पाएगी। तुझे केवल अपनी बात पर ही अडिग रहना है।"

"परन्तु···?"

"महादेवी की पांख आज टूट गई है। पांखरहित पक्षी कुछ भी नहीं कर सकता···और इसमें तू सर्वथा निर्दोष है। तू निश्चिन्त रह।"

इतने में ही चरनायक अन्दर आकर बोला—'मन्त्रीश्वर ! मैंने कुमार के साथी को गिरफ्तार कर लिया है। शव को एक रथ में रखने की आज्ञा दे दी है।"

"अच्छा किया। अब हमें यहां से शीघ्र ही चलना चाहिए और किसी बात की खोज तो नहीं करनी है ?" मन्त्रीश्वर ने कहा।

चरनायक बोला—"नहीं। मैंने कादंबिनी तथा परिचारिकाओं से पूछताछ कर ली है।"

कादंबिनी बोली—"महात्मन् ! मरने वाला कौन है, क्या यह आपने जान लिया ?"

चरनायक बोला—"देवि ! हमने उसके साथी को पकड़ लिया है, इसलिए मरने वाले की पहचान अब कोई पहेली नहीं है।"

और कुछ ही समय पश्चात् दो रथ कादंबिनी के आवास-स्थल से बाहर निकले। साथ में ही सिपाही श्रीमल्ल को पकड़े हुए घोड़ों पर साथ-साथ चल रहे थे।

रात्रि का तीसरा प्रहर पूरा होने वाला था। मगधपति और महारानी त्रैलोक्यसुन्दरी गहरी नींद में सोए हुए थे। उनको यह कल्पना भी नहीं थी कि जिस शस्त्र का निर्माण दूसरों के घात के लिए उन्होंने करवाया है, उसी शस्त्र से स्वयं की छाती चीरी गयी है।

मनुष्य माया करता है दूसरों को फंसाने के लिए, परन्तु सबसे पहले वह स्वयं उसमें फंस जाता है।

शयनगृह के बाहर खड़ी परिचारिकाओं ने दरवाजा खटखटाया। राजा

और रानी की मीठी नींद टूट गई। दोनों जाग गए। रानी ने वस्त्र व्यवस्थित किए। वह बोली—"कौन है?"

"मैं हूं महादेवी जी!" मुख्य दासी ने कहा।

रानी ने तत्काल दरवाजा खोला।

मुख्य दासी अन्दर आई और नमस्कार कर बोली—"राजराजेश्वर की जय हो। महामन्त्री और चरनायक आपसे मिलने आए हैं।"

"वे कहां हैं?"

"मंत्रणागृह में।"

"दोनों को यहां भेजो।" रानी ने कहा।

तत्काल मगधेश्वर बोले—"नहीं, मैं स्वयं वहां जाता हूं। महत्त्व के कार्य के बिना महामन्त्री इतनी रात गये नहीं आते। सम्भव है कोई विशेष प्रयोजन हो।"

रानी मौन रही। अभी भी उसकी आंखें गुलाबी नींद से खुल नहीं रही थीं।

मगधेश्वर तत्काल तैयार होकर शयनगृह से बाहर निकले और मंत्रणागृह की ओर चल पड़े।

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी पुनः सो गयी। मुख्य दासी दरवाजा बन्द कर चली गयी। लगभग अर्ध-घटिका के बाद पुनः दासी ने द्वार को खटखटाया। रानी गहरी नींद में थी। मीठे स्वप्नों में वह खो रही थी। इतने में ही आवाज ने उसका निद्राभंग किया। वह बोली—"कौन है?"

"मैं हूं। आप शीघ्र ही मंत्रणागृह में पधारें। सभी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

रानी वस्त्रों को व्यवस्थित कर वहां से दासी को साथ ले चली।

वह मंत्रणागृह में पहुंची। वहां के गमगीन वातावरण को देखकर वह स्तब्ध रह गयी। उसने पूछा—"आज मगधेश्वर का चेहरा···।"

बीच में ही महामन्त्री ने कहा—"देवि! बहुत ही धैर्य रखने जैसी एक अकल्पित घटना घटी है।"

"क्या हुआ है?"

"संसार में जो होता आया है, वही हुआ है। पर अपने लिए न होने वाली घटना घटित हुई है। हृदय को आघात लगने वाली यह घटना है।"

रानी का चेहरा गम्भीर हो गया। वह महामन्त्री के सामने देखने लगी।

महामन्त्री ने कहा—"महादेवि! कुछ ही दिनों पूर्व महाराज कुमार अपने मित्रों के साथ कादंबिनी का नृत्य देखने गये थे और नर्तकी को देखकर विह्वल हो गये थे···?"

महामन्त्री ने पूरी बात सुनाई और अन्त में कहा—"महादेवि ! महाराज कुमार ने कादंबिनी को हार पहनाया।"

"फिर ?" कंपित स्वरों में रानी ने पूछा।

"महादेवि ! विष को पचाना सरल है, पर यौवन की मादकता को पचा पाना सरल नहीं होता। महाराज कुमार ने अचानक कादंबिनी को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया। कादंबिनी ने उस बाहुपाश से छूटने का बहुत प्रयत्न किया, पर महाराजकुमार ने अपनी पकड़ ढीली नहीं की और एक चुंबन ले लिया। तत्काल महाराजकुमार धरती पर लुढ़क गये···कादंबिनी की सतत रक्षा करने वाले यक्ष ने मगध के भावी सम्राट् के प्राण ले लिये···।"

"ओह ! मेरा दुर्दम।" कहती हुई रानी आसन पर मूर्च्छित हो गई।

राजा को भी अत्यन्त दुःख हुआ।

महामन्त्री ने राजा को एक ओर ले जाकर कहा—"महाराज ! जो होना था हो गया···किन्तु महाराजकुमार की मृत्यु का रहस्य गुप्त ही रखना है। आप महादेवी को भी इसकी सूचना दे दें। मैं अन्यान्य तैयारी करता हूं।"

महादेवी की मूर्च्छा दूर हुई। वह सुबक-सुबककर रोने लगी। महाराज ने सान्त्वना दी। महारानी का हृदय फट रहा था। उसका एकाकी आशा-दीप सदा-सदा के लिए बुझ गया। जिसके जीवन को लेकर उसने आशा के इतने ताने-बाने बुने थे, वह लाड़ला राजकुमार असमय में मौत का शिकार हो गया।

महाराजा ने नाना प्रकार से महादेवी को सान्त्वना दी। रानी कुछ आश्वस्त हुई। महाराजा ने उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—"देवि ! कादंबिनी के स्पर्श से दुर्दम की मृत्यु हुई है। पर यह बात गुप्त रखनी है, क्योंकि इससे हमारी निन्दा होगी। हमारा उपहास होगा और गुप्त शस्त्र की बात भी उघड़ जाएगी। इससे राज्य का बड़ा नुकसान होगा, इसलिए महामन्त्री ने दुर्दम की मृत्यु सर्पदंश से हुई है, ऐसी घोषणा करवाई है। तुम भी इस विषय में सावचेत रहना। कभी-कभी हमारी ममता विपत्ति खड़ी कर देती है।"

रानी कुछ क्षण मौन रही। फिर बोली—"आपने जो कहा, वह उचित है।" रानी के चित्त को प्रसन्न रखने के लिए राजभवन में तीन मास का शोक और नगर में बीस दिन का शोक रखने की आज्ञा प्रसारित की गयी।

काल बीतता गया। समय रुकता नहीं। संसार में काल ही एक ऐसा तत्त्व है जो निरन्तर चलता रहता है।

एक दिन महादेवी ने प्रिय सखी श्यामांगी को बुला भेजा। उसे कहा—"सखी ! मेरा तो सारा घर ही लुट गया। मेरे सारे बेड़े डूब गए।"

"महादेवी ! आपकी इस गहरी विपत्ति को मैं टूटे हृदय से देखती हूं।"

"सखी ! कैसी विचित्रता ! मुझे सहारा देने वाला दूसरा मेरे कोई पुत्र नहीं है।" रानी ने दर्द भरे स्वरों में कहा।

"महादेवी ! आपको दुःख न हो तो मैं एक बात कहूं।"

"बोल, तेरी बात से मुझे न कभी दुःख हुआ है और न कभी होगा। जो तू कहना चाहती है वह कह।"

"यदि आप चाहें तो सहारा मिल सकता है।"

"कैसे ?"

"आप नियमित रजस्वला तो होती ही हैं। कामशास्त्र कहते हैं कि जो स्त्री रजस्वला होती है उसमें संतान पैदा करने की योग्यता भी होती है।"

"पगली ! तो मैं इस सत्तर वर्ष की अवस्था में पुत्र-प्रसव कर सकूंगी ?"

"महादेवी ! बीज निर्जीव हो तो वह भूमि का दोष नहीं है। बीज का ही दोष है। आप इस विषय में महाराज से बात करें। वे यदि आचार्य अग्निपुत्र से विमर्श करेंगे तो अवश्य ही औषधि के प्रभाव से आचार्य महाराजा को संतानोत्पादक बीज से युक्त कर सकेंगे।"

"उत्तम···सखी ! उत्तम मार्ग है।" रानी त्रैलोक्यसुन्दरी के गमगीन क्षणों में आशा की एक उज्ज्वल रेखा उभर पड़ी।

रानी ने यह बात मगधेश्वर से कही और उन्होंने आश्रम में जाने की बात स्वीकार कर ली।

रानी निश्चिन्त हो गई।

महाराजकुमार दुर्दम की मृत्यु सर्प-दंश से हुई है, यह घोषणा की गई।

कोई कहता, इस मृत्यु के पीछे कोई राजकीय षड्यन्त्र होना चाहिए। कोई कहता, कादंबिनी के रक्षक यक्ष ने इसके प्राण ले लिये हैं। इन सब बातों के साथ-साथ यह हवा भी फैल चुकी थी कि अब महाराजा प्रसेनजित फिर कभी वैशाली की ओर दृष्टिपात नहीं करेंगे। वैशाली के राजपुरुष जानते थे कि रानी त्रैलोक्यसुन्दरी ने अपने पुत्र को मगध का मुकुट मिले इसलिए उसने अनेक युवराजों के प्राण विविध प्रकार से लिये हैं। इसलिए अब वह निराश हो चुकी है और मगधेश्वर का हृदय भी टूट-टूटकर चकनाचूर हो गया है। अब वे वैशाली को रौंदने का विचार कभी नहीं कर सकते।

दुर्दम की मृत्यु के समाचार बिंबिसार को भी मिल गये थे। धनंजय ने कहा था—"महाराज ! प्रकृति का न्याय यहीं का यहीं प्राप्त हो जाता है। कर्म का फल कभी अन्यथा नहीं होता। मुझे लगता है कि दुर्दम की मृत्यु से महारानी की तमाम आशाओं पर तुषारपात हो गया है।"

वैशाली के घर-घर में पहली चर्चा थी दुर्दम की मृत्यु की और दूसरी चर्चा थी कादंबिनी के आगमन की।

वैशाली के युवकों में कादंबिनी के आगमन की चर्चा से आनन्द और कुतूहल का वातावरण व्याप गया।

कादंबिनी के आगमन के विषय में भी अनेक कल्पनाएं जुड़ गयी थीं। लोग कहते—कादंबिनी गांधार से पलायन कर आई हुई एक अनिन्द्य सुन्दरी है। राजगृह के लोग तो यहां तक कहते कि यह जनपदकल्याणी आम्रपाली से भी नृत्य और रूप में सवाई है। यह मगध की राजनर्तकी बनने आई थी, परन्तु दुर्दम की आकस्मिक मृत्यु के कारण यह प्रश्न एकाध वर्ष के लिए टल गया है। इसलिए अब वह वैशाली आ रही है।

साथ ही साथ यह बात भी वहां फैल रही थी कि कादंबिनी पूर्वजन्म में एक यक्ष की पत्नी थी। मनुष्य भव में आ जाने पर भी वही यक्ष इसका संरक्षण करता है, जो कोई पुरुष कादंबिनी की इच्छा का अतिक्रमण कर उस पर आक्रमण करता है, यक्ष तत्काल उस पुरुष को मार डालता है।

कुछ कहते, कादंबिनी नागकन्या है, अत्यन्य सुन्दर है और नागदेव उसका रक्षण करता है।

कुछ कहते, किसी ऋषि के शाप से यह मनुष्य योनि में आई है। यह थी तो देवलोक की देवी।

कुछ कहते, कादंबिनी के विषय में जो कुछ सुना जा रहा है, वह व्यर्थ है। वह एक मानव-कन्या है और अपना रक्षण करने में स्वयं समर्थ है।

इस प्रकार कादंबिनी के विषय में चमत्कारों, रूप और कला की अनेक बातें चर्चित हो रही थीं। वैशाली के चर-पुरुष केवल इतना ही मानते थे कि कादंबिनी एक नवयौवना सुन्दरी है। वह वैशाली के नवयुवकों के नव-यौवन को उल्लसित करने आ रही है।

आम्रपाली ने ये सब बातें सुनीं। उसने अपनी सखी माध्विका से कहा—"माध्विका! जहां रूप और कला के समक्ष मस्तक झुकते हैं, वहां रूप और कला की अप्रतिम कलाकृति का आना स्वाभाविक है। तू तो समझती है, मैं सगर्भा हूं। मैंने नृत्य का त्याग किया है। मैं लोगों से मिलती-जुलती भी नहीं। ऐसी स्थिति में कादंबिनी का आगमन मेरे लिए वरदान स्वरूप है।

३०. वह भी मरा

और···

कादंबिनी को वैशाली भेजने की पूर्ण तैयारी हो चुकी थी। मगध के कूटनीतिज्ञ-कलाकुशल महामन्त्री ने कादंबिनी को वहां वैशाली में क्या कुछ करना है, इसका पूर्ण विचार दे दिया था। उन्होंने यह भी कहा था—"पुत्रि! ये सब जोखिम भरे कार्य हैं। जोखिम के कार्यों में धैर्य रखना पड़ता है। यदि धैर्य न हो

तो वह कार्य बिगड़ जाता है। इतना ही नहीं, उस कार्य को करने वाला स्वयं संकट में फंस जाता है। तुझे सजगता से कार्य करना है। तेरा शरीर विषयुक्त है, इसे भूल जाना है। मैंने जिन-जिन व्यक्तियों के लिए कहा है ! बेटी, उन्हीं का तुझे निर्दयतापूर्वक सत्कार करना है। करुणा जीवन का मंगल धन है, किन्तु राजनीति के साथ इसका कोई मेल नहीं है। मृत्यु को देखकर रोना, घबराना, अवाक् हो जाना—ये तो सबके लिए होते हैं···किन्तु मौत को देखकर हंसना···मौत की अन्तिम छटपटाहट पर हंसना···यह असामान्य शक्ति का स्वरूप है। तुझे ऐसी शक्ति बनानी होगी।"

कादंबिनी बोली—"पूज्यश्री ! आपकी आज्ञा के अनुसार ही मैं कार्य करूंगी। मैंने सुना है कि वहां का चर विभाग अत्यन्त पटु है, जागरूक है।"

"हां, एक दिन ऐसा ही था, पर आज नहीं है। रूप और यौवन की आराधना करने वाले कर्त्तव्यच्युत हो जाते हैं। वहां यही स्थिति है। तू निश्चिन्तता से अपना काम करती रहना।"

कादंबिनी राजगृह से वैशाली आ गई।

और चौथे दिन कादंबिनी के नृत्योत्सव की घोषणा की गयो।

कादंबिनी जिस भवन में रहती थी, उस भवन में नृत्यमंच के निर्माण की कोई व्यवस्था नहीं थी। वहां से कुछ ही दूरी पर नृत्यशाला थी। उसको किराए पर लिया गया। वह सर्वोत्कृष्ट न होने पर भी धूम्रावरण, स्थिर-अस्थिर प्रकाश व्यवस्था, भव्य प्रेक्षागृह आदि से सज्जित थी। उसका स्वामी एक श्रेष्ठी था। उसने देवी कादंबिनी की रूप-माधुरी को प्राप्त करने की प्रच्छन्न अभिलाषा से यह प्रेक्षागृह दिया था।

रात्रि का पहला प्रहर पूरा होते-होते प्रेक्षकों की अपार भीड़ होने लगी और देखते-देखते सारा प्रेक्षागृह प्रेक्षकों से खचाखच भर गया।

कादंबिनी आज 'धीवरा उल्लंग' नृत्य प्रस्तुत करने वाली थी। वह मानती थी कि रूप और यौवन की आराधना करने वाली जनता की नयनतृषा उल्लंग नृत्य से ही बुझाई जा सकेगी।

धीवरा नृत्य ! मच्छीमार परिवार की मदमस्ती से भरी-पूरी नवयौवना के भयंकर मदोन्मत्तता को दर्शाने वाला नृत्य।

कादंबिनी भी सज्जित हो गई थी। उसने केवल मयूरपिच्छी से बना कमर-पट्टक धारण किया और श्याम कौशेय का कंचुकीबंध बांध रखा था। उसके साथ तीन अन्य नर्तकियां भी इसी वेश में तैयार थीं। एक नर्तकी ने धीवर का वेश धारण कर रखा था। उसने सिर पर लाल रस्सी की छोटी पगड़ी, छाती और पीठ को ढकने के लिए पीले रंग का कौशेय वस्त्र और श्वेत छोटी धोती पहन रखी थी।

सभी के अलंकार कौड़ियों, सीपियों और शंखों के थे। मात्र कादंबिनी ने

वज्र के कर्णफूल और वज्र की मुद्रिकाएं पहन रखी थीं।

कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

तीन बालाओं ने मंगल-गीत गाया। कंठ मधुर और मोहक था। सभी लोग कादंबिनी को देखने के लिए उत्सुक थे। अर्ध घटिका के बाद मंगल-गीत पूरा हुआ। धूम्रावरण में तीनों बालाएं अदृश्य हो गयीं और प्रेक्षकों ने देखा—विशाल सरोवर का सुरम्य तट। यह दृश्य अत्यन्त नयनरंजक था।

और तीन नवयौवना नर्तकियां मन्द-मन्द गति से सरोवर के तट की ओर चरणन्यास करती हुई और आतुर नयनों से इधर-उधर देखती हुई आगे बढ़ने लगीं। तीनों की वेशभूषा धीवर परिवार की मदोन्मत्त कन्याओं की थी। तीनों स्वस्थ, सुन्दर, सप्रमाण और गौरवर्ण वाली थीं···और रूपसज्जा से उनका सौन्दर्य और यौवन का उभार शतगुणित हो गया था।

कुछेक प्रेक्षक इस दुविधा में पड़ गए कि इन तीनों में कादंबिनी कौन होगी?

इतने में ही कादंबिनी हाथ में मद्य का भांड लेकर नृत्य भूमि में प्रविष्ट हुई। इसको देखते ही सारे प्रेक्षक स्तम्भित रह गए। रूपवती धीवरा को देखकर उनकी आंखें फटी की फटी रह गईं। उसमें रूप था, रूप की माधुरी थी और रूप का विलास था।

सबकी नजरें स्थिर थीं।

प्रेक्षक वर्ग में महाबलाधिकृत का पुत्र पद्मकेतु अपने मित्रों के साथ अगली पंक्ति में बैठा था। उसने कहा—"मित्र! इसमें पाली जैसे नयन नहीं है। पाली जैसी प्रशान्त माधुरी नहीं है, किन्तु यौवन का यह उन्माद पाली में भी नहीं है।"

मित्र ने कहा—"महाराज! मुझे तो यह पाली से भी सवाई लगती है। इसका साहचर्य···।"

इतने में ही धीवर युवक नृत्य मंच पर प्रकट हुआ। कादंबिनी मद्यभांड से प्याला भर-भरकर उसे मद्य पिला रही थी। दोनों के नयनों की, यौवन की और आवेश की मस्ती उभर रही थी।

इस दृश्य ने प्रेक्षकों के दिल को प्रकंपित कर डाला। सभी बेभान होने लगे।

रात्रि के चौथे प्रहर की अर्ध-घटिका बीत गयी थी। कादंबिनी का नृत्य अन्तिम चरण में था। लोग आतुर नयनों से नृत्य देख रहे थे। धीवरा मद्य और रूप के नशे में प्रमत्त बन गयी थी। उसके साथ का नौजवान भी यौवन-मदिरा का पान करने के लिए विह्वल हो रहा था। वह धीवरा को पकड़ने का बार-बार प्रयत्न कर रहा था और वह धीवरा सरककर आगे बढ़ जाती थी।

और अचानक धूम्रावरण प्रारम्भ हो गया।

नृत्य सम्पन्न हुआ।

लोग हृदय पर हाथ रखकर घर गए।

तीन दिन के बाद।

"कादंबिनी ने 'कामातुरा' नाम का अभिनव किया। वैशाली जन उसके वश में हो गये।

दोनों प्रकार के नृत्य देखने के पश्चात् कादंबिनी का सहवास पाने के लिए लोग उत्कंठित हुए। विशेषत: महाबलाधिकृत का पुत्र, चरनायक और धनुर्विद्या में निष्णात एक वीर—ये सब कादंबिनी को पाने के लिए पागल हो रहे थे।

एक दिन पद्मकेतु कादंबिनी के भवन पर आ पहुंचा। मुख्य परिचारिका ने उसका स्वागत किया और कादंबिनी के कक्ष में पहुंचा दिया।

औपचारिक बातचीत के पश्चात् कादंबिनी ने पूछा—"श्रीमन्! आप कुछ विचार में हैं?"

"पद्मकेतु बोला—"देवि! मैंने सुना है आपका रक्षण कोई यक्ष करता है। क्या यह सच है?"

"हां, प्रिय! पूर्वजन्म में मैं किसी यक्ष की पत्नी थी। मेरे प्रति मोह होने के कारण वह मेरी रक्षा करता है।"

"मतलब?"

"कोई मेरे साथ बलात्कार करने का प्रयत्न करे या मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे यौवन से खिलवाड़ करना चाहे तो वह यक्ष तत्काल उसको मार डालता है।"

"किन्तु आपकी सहमति से···"

बीच में ही कादंबिनी बोल उठी—"वहां मेरा यक्ष निरुपाय होता है।"

"मैं आश्वस्त हुआ। मैं एक आशा से आपके पास आया हूं।"

"यौवन यौवन की भाषा समझ जाता है···महाराज! आपकी प्रेमभरी दृष्टि मेरे प्राणों में विचित्र रस उत्पन्न कर रही है।"

"देवि! मैं जोर-जबरदस्ती करना नहीं चाहता···आपकी इच्छा के अनुकूल···।"

कादंबिनी ने कहा—"प्रिय! अपने मिलन का यह स्थान उचित नहीं है। बसन्त की बहार ··नीरव रजनी···जनमानस शून्य उपवन ही इसके लिए योग्य है।"

"प्रियतम! कल आप मुझे रात्रि के दूसरे प्रहर के बीतते-बीतते लेने आ जाना।"

"अच्छा—मैं अपना रथ लेकर आऊंगा।" पद्मकेतु ने कहा।

"नहीं, नहीं, नहीं, रथ नहीं। आप अपने अश्व पर ही आना। मैं अपने अश्व के साथ तैयार रहूंगी···आपको मेरी एक प्रार्थना स्वीकारनी होगी।" कादंबिनी ने कहा।

"प्रार्थना नहीं, आज्ञा प्रिये !" पद्मकेतु अत्यन्त उत्साहित होकर बोला।

"अपना यह मिलन नीरव और अव्यक्त रहना चाहिए। आपका कोई मित्र यदि साथ होगा या आप इस विषय की कुछ बात करेंगे और यदि मुझे उसकी खबर पड़ेगी तो···।" कादंबिनी ने कहा।

"नहीं, नहीं। अपना यह मिलन अपने दोनों के बीच ही स्मृति मात्र बना रहेगा···" पद्मकेतु ने कहा।

"प्रिय ! मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई···कल चाहे आप इस प्रथम मिलन की रस मधुर बात किसी को भी कहें···" कादंबिनी बोली।

और दूसरे दिन···।

रात्रि के दूसरे प्रहर की एकाध घटिका शेष थी। तब पद्मकेतु कादंबिनी के भवन के पास अश्वारूढ़ होकर आ पहुंचा।

कादंबिनी ने भी अपने श्वेत अश्व को तैयार कर रखा था। उसने पुरुष वेश धारण किया था। वह इसलिए कि किसी को यह आशंका न होने पाए कि कादंबिनी पद्मकेतु के साथ नैश भ्रमण के लिए गयी है।

दोनों तत्काल उपवन की ओर चले गए। दोनों के अश्व मन्द गति से चल रहे थे।

नीरव और निर्जन मार्ग पर आकर पद्मकेतु ने कहा—"देवि ! आपका पुरुष वेश समझ में नहीं आया।"

"आप महाबलाधिकृत के पुत्र हैं। कोई देख ले कि आप एक नर्तकी के साथ फिरते हैं, इसलिए···"

"ओह ! धन्य है तुम्हारी दीर्घदृष्टि।"

दोनों अश्व से नीचे उतरे।

कादंबिनी चन्द्रमा की ओर देखती हुई एक ओर खड़ी हो गयी।

"प्रिये ! क्या देख रही हो ?"

"चन्द्रमा का खण्डित यौवन।" कादंबिनी ने मधुर स्वर में कहा।

"खण्डित यौवन···!"

"हां, यह बेचारा खण्डित हो गया है। यह किसी के एकान्त को सह नहीं सकता।"

पद्मकेतु निकट आया। उसने कादंबिनी का हाथ पकड़ा। धैर्य का बांध टूट चुका था।

"पुरुष धैर्य के शत्रु होते हैं।" कादंबिनी ने कहा।

"हां, यह सच है।" कहते-कहते उसने कादंबिनी को बाहुपाश में जकड़ लिया और उसके अधर पर चुम्बन···।

और दूसरे ही क्षण भूमि पर टूटे वृक्ष की भांति निर्जीव होकर गिर पड़ा।

एक क्षण का बिलम्ब किए बिना कादंबिनी अपने अश्व पर आरूढ़ होकर जिस मार्ग से आई थी, उसी मार्ग से लौट गयी।

और सूर्योदय होते ही उपवन के माली ने पद्मकेतु का शव देखा और उसने अधिकारी को सूचना दी।

महाबलाधिकृत आए और पद्मकेतु के नीले शरीर को देख स्तम्भित रह गए।

३१. पहचान शेष थी

आचार्य जयकीर्ति कौन है, यह जानने के लिए चरनायक सुनन्द आम्रपाली के भवन पर जाने वाले थे। पर पद्मकेतु के आकस्मिक निधन के समाचार सुनकर वे सीधे महाबलाधिकृत के भवन पर पहुंचे।

महाबलाधिकृत अत्यन्त धैर्य संपन्न थे। पर एकाकी पुत्र पद्मकेतु के आकस्मिक अवसान पर उसका धैर्य छिन्न-भिन्न हो गया था और उसकी पत्नी का रुदन रुक नहीं रहा था।

सेनापति सिंह और अनेक अन्यान्य गणनायक भी वहां आ पहुंचे।

पद्मकेतु का निर्जीव शव एक कक्ष में रखा गया था।

अगदतंत्र का निष्णात वैद्य भी वहां आ पहुंचा। उसने शव को चारों ओर से देखा और गंभीर होकर बोला—"आर्य सुनंद! इस शव का परीक्षण कर मैं बहुत आश्चर्यचकित हूं। मृत्यु विष से हुई है पर इनको किसी ने विषपान कराया हो, ऐसा नहीं लगता। समग्र शरीर में कोई भी स्थल पर विष-जन्तु, प्राणी या सर्प के दंश का चिह्न नहीं है। फिर भी विष अत्यंत उग्र और भयंकर है। संभव है यह किसी विषधर का विष हो। पर···"

"पर क्या···?"

"यदि विषधर काटता तो कहीं न कहीं दंश का चिह्न तो रहता ही। पर वह नहीं है।"

"आश्चर्य! वैद्यराजजी! क्या आपको यह अनुमान नहीं होता कि किसी ने तीव्र विष का पान कराया है?"

"नहीं। विष का सीधा स्पर्श होता तो जीभ, दांत और गले का अमुक भाग पर उसका निशान रह जाता। परन्तु ऐसा, पूरे शरीर में कहीं नहीं मिला। हां, होंठ अत्यधिक लाल हैं।" वैद्यराज ने कहा।

"उष्ट्र विष···!"

तत्काल वैद्यराज बोला—"यह विष संसार भर के सभी विषों से अत्यधिक उग्र और प्रभावक होता है। सूई की नोंक पर टिके उतने विष के स्पर्शमात्र से

मृत्यु अवश्यंभावी है। किन्तु इस घटना में वैसे विष के प्रयोग का अनुमान नहीं किया जा सकता।"

"उष्ट्र विष के स्पर्श से मरने वाले का शरीर रक्ताभ बन जाता है।···किन्तु यह शव तो नीली झांई वाला है।"

आर्य सुनन्द विचार में पड़ गया। उसने पुनः वैद्यराज से पूछा—"क्या यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि किसी विषधर की फूंक से पद्मकेतु की मृत्यु हुई हो?"

वैद्यराज बोला—"आर्य सुनन्द! वातबल नाम की नाग जाति का एक नाग जैसा प्राणी होता है। वह किसी को काटता नहीं, केवल फूंक मारता है और उस फूंक के स्पर्श से आदमी की मृत्यु हो जाती है। पर, यहां ऐसा अनुमान नहीं किया जा सकता। क्योंकि उस फूंक से मरने वाले व्यक्ति का शरीर श्यामल बन जाता है। और वैसा प्राणी प्रायः कामरूप प्रदेश की झाड़ियों में ही क्वचित् प्राप्त होता है।"

फिर चरनायक ने महाबलाधिकृत से बातचीत की। महाबलाधिकृत ने इतना-सा कहा—"पद्मकेतु अपने साथियों के साथ कादंबिनी के भवन की ओर गया था और कुछ ही समय पश्चात् लौट आया था। पुनः भोजन आदि से निवृत्त होकर सायं अश्व पर आरूढ़ होकर कुमार भ्रमण के लिए निकला था। जाते-जाते रक्षकों से इतना ही कहा था कि मैं कुछ घूम-फिर कर अभी आ रहा हूं···और प्रातः उसका निर्जीव शव वहां मिला। इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं हो पाया है।"

पद्मकेतु की मृत्यु सर्पदंश से हुई है—यह बात चारों ओर फैल गई।

उसकी विधिपूर्वक अन्त्येष्टि कर सभी शोकमग्न हृदय से घर लौटे।

दूसरे दिन।

पद्मकेतु की मृत्यु ने चरनायक के मन में उथल-पुथल मचा दी। वे इसका रहस्योद्घाटन करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कादंबिनी से मिलने का विचार किया।

चरनायक सुनन्द कादंबिनी के भवन पर गए। परिचारिकाओं ने उनका स्वागत किया और एक सुन्दर कक्ष में आसन ग्रहण करने का अनुरोध किया।

कुछ ही क्षणों पश्चात् कादंबिनी ने कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा—"महाराज की जय हो। अभी आप इस समय में···?"

"देवि! एक करुण घटना घटित हो गई इसलिए···?"

"करुण घटना?"

"हां, देवि! परसों आपसे मुलाकात करने एक नवयुवक आया था?"

"हां, क्या वह कोई ठग था? उसने तो मुझे महाबलाधिकृत का पुत्र होने का परिचय दिया था।"

"वह परिचय सत्य था···और उसी रात्रि में संथागार के उपवन में उसकी मृत्यु हो गई।"

"मृत्यु ! असंभव ! महाराज ! मुझे स्मृति है कि वह नवजवान पूर्ण स्वस्थ और बलिष्ठ शरीर वाला था।"

चरनायक ने संक्षेप में सारी बात बताई। पर···उसका चित्त कादंबिनी के उभरते यौवन में रम रहा था। वह सोचने लगा—काश ! मुझे भी इसका सहवास मिल पाता। उसने मुसकराते हुए कादंबिनी से कहा—"देवि ! जन्म और मृत्यु संसार का चक्र है। जो जन्मता है वह मरता है और जो मरता है वह जन्म लेता है। जन्म के साथ मृत्यु का अविरल साहचर्य होता है। जिस क्षण में जन्म होता है, उसी क्षण से मृत्यु भी होने लग जाती है और एक दिन आता है कि व्यक्ति मृत्यु की गोद में सदा के लिए समा जाता है।"

"पद्मकेतु की मृत्यु रहस्यभरी है। भले हो···पर देवि···।"

"आप क्या कहना चाहते हैं, स्पष्ट करें।" कादंबिनी ने कहा। चरनायक क्षण भर मौन रहे और कादंबिनी के मदभरे नयनों को निहारते रहे। मन ही मन सोचा, ऐसी रूपवती नारी का सहवास ही स्वर्ग-सुख है। वे बोले—"देवि ! क्षमा करें, मैंने असमय में···।"

"नहीं श्रीमन् ! मुझे आनन्द आया। आप जैसे अतिथि घर पर आये, यह मेरा सौभाग्य है।"

"यह अतिथि कुछ वजनदार है।" चरनायक ने कहा।

"एक बार आप अतिथि बनकर देखें।" कादंबिनी ने कहा।

"एक दिन अवश्य ही मैं देवी का अतिथि बनूंगा।" चरनायक बोले।

पद्मकेतु की आकस्मिक मृत्यु का रहस्य उद्घाटित नहीं हुआ और तब चरनायक सुनन्द आचार्य जयकीर्ति का यथार्थ परिचय पाने के लिए आम्रपाली के सप्तभौम प्रासाद में आए।

बसन्त की मोहक संध्या। आम्रपाली एक कुंज में पुष्पशय्या पर लेट रही थी। देखने वाले को यही प्रतीति होती कि आम्रपाली स्वयं पुष्पों का एक ढेर है।

साथ में एक आसन पर बिंबिसार बैठा था और मंद ध्वनि से वीणा-वादन कर रहा था।

आम्रपाली राग का पान कर रही थी। और उसके नयन प्रियतम के बदन पर स्थिर थे।

इतने में ही एक परिचारिका ने आकर कहा—"देवि ! चरनायक आर्य सुनन्द आए हैं।"

आम्रपाली मौन रही। वह राग की ध्वनि से एक पल भी पृथग् रहना नहीं चाहती थी।

परिचारिका ने दो बार कहा, तीन बार कहा, पर···।

आम्रपाली फिर बोली—"मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, क्या उसका कोई प्रयोजन नहीं हैं ?"

"देवि ! परन्तु चरनायक···।"

"अच्छा, मैं अभी आती हूं। तू उनका पानक आदि से सत्कार कर।"

परिचारिका ने आर्य सुनन्द के समक्ष अमृत रस का बसंत पानक से भरा प्याला प्रस्तुत किया।

आर्य सुनन्द उसे धीरे-धीरे पीने लगे। वह पानक पूरा हो इतने में ही जिसके रूप-यौवन की माधुरी से समस्त दिशाएं प्रफुल्ल बन जाती थीं, वह वैशाली की जनपदकल्याणी आम्रपाली उस खण्ड में आई।

आर्य सुनन्द ने खड़े होकर आम्रपाली का अभिवादन किया।

आम्रपाली बोली—"आयुष्मन् ! प्रसन्न तो हैं न ?"

"देवि ! आपके दर्शन से किसका मन प्रसन्न नहीं होता ? आप कुशल तो हैं न ?"

"हां, आरोग्य ठीक है। विशेष प्रयोजन से नृत्याभिनय बंद किया है।"

"आपका विवाह···!"

आम्रपाली बीच में ही बोल पड़ी—"विवाह नहीं, मित्र ! जनपद-कल्याणी किसी की पत्नी नहीं बनती।"

"ओह ! यह तो मैं भूल ही गया। यथार्थ में आचार्य जयकीर्ति बहुत सौभाग्यशाली हैं···देवताओं के लिए भी दुर्लभ आप जैसी···।"

आम्रपाली ने हंसते हुए कहा—"नहीं आर्य ! जीवन में प्यार कब जन्मता है, कब उभरता है और कब किसके प्रति बरस पाता है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। आपके आगमन का प्रयोजन···?"

"मैंने आचार्य जयकीर्ति के वीणावादन के विषय में सुना है कि वे जब वीणा बजाते हैं तब राग स्वयं सजीव बन जाती है। मैं यह चमत्कार देखना चाहता हूं।" सुनन्द ने कहा।

"आचार्य एक मस्त और धुनी वीणावादक हैं। वीणा का संपूर्ण शास्त्र उनकी अंगुलियों में समाया हुआ है। किन्तु वे मेरे सिवाय और किसी के समक्ष वीणा-वादन नहीं करते।" आम्रपाली ने मधुर हास्य को बिखेरते हुए कहा।

'इसीलिए तो आपके सामने प्रार्थना करने आया हूं।"

"अच्छा तो मैं कभी आपको आमंत्रित करूंगी।"

"मैं धन्य हुआ।" कहकर चरनायक वहां से प्रस्थित हो गया।

३२. महान् धनुर्धर सुदाम

इधर कादंबिनी के जाल में एक और शिकार फंस गया। लिच्छवी युवकों को धनुर्विद्या में निष्णात करने वाला सुदाम शक्तिशाली योद्धा था। उसकी उम्र मात्र पैंतीस वर्ष की थी। वैशाली गणतंत्र के सैन्यबल में उसका स्थान महत्त्वपूर्ण था। वह महारथी के रूप में प्रसिद्ध था।

सुदाम धनुर्विद्या के गुप्त रहस्यों का जानकार था। उसमें एक साथ शताधिक बाण छोड़ने की शक्ति और कला थी। उसका बाहुबल भी इतना सशक्त था कि वह जिस वृक्ष के स्कन्ध में बाण गाड़ देता, उसे कोई भी सशक्त व्यक्ति हाथ से बाहर नहीं खींच सकता था।

वैशाली की गणसभा को सुदाम पर गर्व था, क्योंकि वैशाली की स्वायत्तता को बनाये रखने वाली सैन्यशक्ति का वह गुरु था।

वह सुदाम भी कादंबिनी के अभिनय और रूप छटा से आकर्षित हुआ था और आज वह कादंबिनी से साक्षात्कार करने गया था।

कादंबिनी ने जब मगध से वैशाली के लिए प्रस्थान किया था, तब मगध के महामंत्री ने उसे जो नाम बताये थे उनमें धनुर्धर सुदाम का नाम महत्त्वपूर्ण था, इसलिए कादंबिनी ने सुदाम का खूब आदरभाव पूर्वक सत्कार किया।

सुदाम ने आडी-अंवली बातें न कर स्पष्ट शब्दों में कहा—"देवि ! वैशाली में रूपवती नारियों की कमी नहीं है। तुम्हारे से अधिक रूपवाली स्त्रियां यहां हैं। पर कला, रूप और यौवन—इन तीनों का संगम दुर्लभ होता है। ये तीनों तुम्हारे में अप्रतिम हैं। ये तीनों तुम्हारे में अभिव्यक्त हैं। मैं तुम्हारा अभिनन्दन करने नहीं आया हूं किन्तु तुम्हारा सहवास प्राप्त करने आया हूं।"

"महाराज ! आप जैसे तेजस्वी पुरुषों का योग सौभाग्य से ही प्राप्त होता है···परन्तु···।"

"बोलो···मैं तुम्हें वह दूंगा जो तुम मांगोगी।"

यह सुन कादंबिनी हंस पड़ी। वह बोली—"आप धनुर्धर हैं, महारथी हैं इसलिए आप नहीं समझ सकते कि नारी की प्रसन्नता किसमें होती है। महाशय ! मूल्य से पदार्थ खरीदा जा सकता है। मैं तो आनन्द में विश्वास करती हूं, मूल्य में नहीं।"

"क्या···?" सुदाम ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"तेजस्वी पुरुष ! मैं अभी तक किसी पुरुष के संपर्क में नहीं आई हूं।" कादंबिनी ने कहा।

"सच कह रही हो ?"

"हां, यक्ष के भय से।"

"अरे ! ऐसे भय को तो मैं पैरों तले पीस डालता हूं···।"

"फिर भी मैं चाहती हूं कि अपना मिलन एकान्त और नीरव प्रदेश में···।"

"मेरे भवन में एकान्त नीरव रहेगा। मैं दास-दासियों को वहां से भेज दूंगा। तुम निसंकोच वहां आ जाना।"

"परंतु आपका भवन मैं नहीं जानती।"

"मैं लेने आऊंगा ! स्वर्ण रथ में···।"

"रथ नहीं···।" कादंबिनी ने कहा।

"तब ?"

"मुझे अश्वारोहण में आनन्द आता है। आप रात्रि के दूसरे प्रहर के अंतिम भाग में आएं। मैं भी गुप्त वेश में तैयार रहूंगी···।"

"अच्छा।" कहकर सुदाम अनेक मनोरथों को संजोये अपने भवन की ओर चल पड़ा।

वह यह नहीं जानता था कि आज की रात्रि का तीसरा प्रहर उसके जीवन का अंतिम प्रहर होगा।

वह बेचारा !

कादंबिनी के पास 'सुबुद्धि' नाम का श्वेत अश्व था। वह यथानाम तथागुण से सम्पन्न था। मगध के महामंत्री ने उसे वह अश्व विशेष प्रयोजन से ही दिया था। वह एक बार देखे हुए मार्ग को कभी नहीं भूलता था।

कादंबिनी ने तत्काल अपने वृद्ध प्रबंधक को बुलाकर कहा—"अपना सुबुद्धि अश्व महान् धनुर्धर सुदाम का भवन अभी देख आए, ऐसा प्रबंध करो।"

"क्यों ?"

"आज मैं वहां जाने वाली हूं। सुबुद्धि मुझे वहां सही-सलामत पहुंचा देगा।"

"जी" कहकर वृद्ध प्रबंधक ने तत्काल देवी की आज्ञा का पालन किया।

तड़फन की माधुरी का आनन्द लेने के लिए वैशाली का महान् धनुर्धर सुदाम अपने भवन पर गया और कादंबिनी के स्वागत के लिए अनेक कल्पनाएं करने लगा।

सबसे पहले उसने एक पलंग को शृंगारित किया और उस पर बिछाने के लिए फूलों की चादर का प्रबंध किया। भवन के समस्त दास-दासियों को रात्रि के प्रथम प्रहर में बाहर घूमने के लिए जाने की आज्ञा दे दी।

महारथी सुदाम कभी दास-दासियों को इस प्रकार मुक्त नहीं करता था। पर आज ये सभी मुक्ति का आनन्द मनाने के लिए उस आज्ञा का अभिनन्दन करने लगे।

संध्या हुई।

सुदाम के लिए एक-एक पल वर्ष जैसा लगने लगा। प्रतीक्षा का काल बहुत दीर्घ महसूस होता ही है।

रात्रि का दूसरा प्रहर चल रहा था।

सुदाम कादंबिनी को लेने उपवन के पिछले द्वार से निकला।

कादंबिनी तैयार थी।

उसके मनोहारी पुरुष-वेश को देखकर सुदाम चौंका। वह कुछ पूछे इससे पहले ही कादंबिनी बोल उठी—"यशस्विन्! आपकी कहीं निंदा न हो, इसलिए मैंने पुरुष-वेश धारण किया है।"

कादंबिनी सुदाम के साथ उसके भवन के पीछे वाले उपवन में पहुंची। चारों ओर सन्नाटा। उपवन के बाहर 'सावधान, सावधान' की आवाज यदा-कदा सुनाई दे रही थी। नीरव एकान्त।

दोनों अपने-अपने अश्वों से नीचे उतरे। अश्वों को एक वृक्ष के स्कन्ध से बांधा। सुदाम कादंबिनी के साथ अपने भवन में आया। वहां कोई नहीं था।

मदिरा का दौर चला।

सुदाम ने कादंबिनी को बाहुपाश में जकड़ लिया और···।

एक क्षण बीता।

दो क्षण बीते।

कुछ क्षण बीते।

बाहुपाश शिथिल हुआ। जकड़न ढीली पड़ी। आंखें बाहर आ गईं।

और सुदाम देखते-देखते धरती पर लुढक गया।

कादंबिनी ने उसकी अंतिम तड़फड़ाहट देखी।

सुदाम की काया नीलाभ बन गई थी। उसके मुंह से फेन निकल रहे थे। कादंबिनी ने पलंग पर बिछी हुई पुष्प की चादर को खींचकर उस निर्जीव शव पर डाल दी और पास में पड़े मैरेय के पात्र को उसके मुंह पर उंडेल दिया। वह शीघ्रता से अपने अश्व के पास आई और भवन की ओर चल पड़ी।

वह अपने भवन पर आई। दास-दासी जागृत थे। वह मौन-भाव से अपने कक्ष में जा सो गई। नींद नहीं आ रही थी। वह विचारों के द्वन्द्व में फंस गई। एक विचार आता है, जाता है। शृंखला टूटती ही नहीं।

आदमी अनर्थ करता है। करते समय वह प्रसन्न होता है। वह प्रसन्नता, कृत्रिम हो या असली, पर अंत में वह उसे शल्य की भांति चुभता रहता है। वह अपने कृत्य के लिए जीवन भर पश्चात्ताप की अग्नि में जलता रहता है।

कादंबिनी ने सोचा—'कैसी विडम्बना! लोगों की जीवन-लीला समाप्त कर, अपने जीवन की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करना, क्या यही जीवन है? इस प्रकार अभिशप्त यौवन का भार मुझे कब तक उठाना पड़ेगा? कब तक ऐसा

अभिनय कर लोगों के रक्त को चूसने का काम करना पड़ेगा ? क्या मैं एक राक्षसी से कम हूं ?"

'अरे ! मेरी काया का यह विष क्या कभी नहीं धुल पायेगा ?'

भयंकर विषधरों का विष भी उतरता है, मिटता है···और मेरे मुख-स्पर्श के विष का कोई उपशमन नहीं कर सकता ? कैसी विडंबना···।

कादंबिनी के सामने सुदाम का चेहरा···। आंखें डबडबा आयी। पर···

विष की तड़फन से भी विचारों की तड़फन गहरी होती है।

रात्रि के अंतिम प्रहर में कादंबिनी को नींद आई।

सूर्योदय हुआ। पर कादंबिनी अभी भी निद्राधीन थी।

इधर गणनायक सिंह सेनापति आचार्य जयकीर्ति की वास्तविक पहचान पाने, छद्म प्रयोजन को आगे कर, आम्रपाली के भवन की ओर प्रस्थित हो गये।

आम्रपाली का सुखद और विशाल सप्तभौम प्रासाद ! देव-रमणीय और नयनरंजक।

आम्रपाली अपने विश्राम-खंड में बैठी थी। वैद्यराज ने उसे ऊपर चढ़ने या नीचे उतरने की मनाही कर रखी थी।

गणनायक सिंह सेनापति वहां पहुंचे। आम्रपाली ने उन्हें माला अर्पित कर स्वर्ण के आसन पर बैठने का अनुरोध किया।

कुशलक्षेम पूछने के पश्चात् सिंह सेनापति ने कहा—"पुत्रि ! तू एक मालवीय आचार्य के प्रेम में फंसी है, ऐसा मैंने सुना है, और तू निकट भविष्य में माता होने वाली है, यह भी मुझे ज्ञात है। पुत्रि ! नगरवासी लोग आचार्य जयकीर्ति का वीणा-वादन सुनना चाहते हैं। उनके वीणावादन की चारों ओर प्रशंसा हो रही है।"

आम्रपाली ने सहज स्वरों में कहा—"एक कठिनाई है।"

"क्या ?"

"वे आज ही अपने मित्र के साथ आखेट के लिए गए हैं। लगभग एक सप्ताह के पश्चात् वे यहां आयेंगे, तब मैं उनसे पूछकर आपको संवाद प्रेषित कर दूंगी।"

गणनायक मुसकराकर वहां से चल दिए।

बिंबिसार को भवन में रहते अनेक महीने हो गये थे। वे यहां अपनी प्रियतमा के सहवास से परम प्रसन्न थे। एक दिन अचानक उनका एक प्रिय सहचर धनद उनको खोजते-खोजते वैशाली आ पहुंचा और नगर में बिंबिसार को खोजने लगा। वह सर्वत्र भटकता रहा, पर कहीं भी उसे बिंबिसार के निवास का पता नहीं लगा। एक दिन वह सायं नगर-भ्रमण के लिए पांथशाला से निकला और एक पनवाड़ी की दुकान पर पान खाने के बहाने गया। वहां भीड़ लगी हुई थी। लोग गपशप कर रहे थे। वार्ता के विविध प्रसंग चल रहे थे। एक व्यक्ति ने

कहा—"आम्रपाली सगर्भा है और उसका प्रियतम है एक वीणावादक जो अन्य राज्य का है। कितना सौभाग्यशाली है वह !" यह बात उसने सुनी और मन ही मन सोचा, हो न हो, वह वीणावादक ही मेरा मित्र बिंबिसार होना चाहिए। सम्भव है देश-निष्कासन के कारण छद्मनाम से वे यहां जनपदकल्याणी के अतिथि बन कर रह रहे हों और आम्रपाली उनके प्रेम में···।

वह येन-केन प्रकारेण सप्तभौम प्रासाद में पहुंचा और अपने प्रिय मित्र को उपवन के एक वृक्ष के नीचे देखा। बिंबिसार उस समय एक हरिण शावक के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। वह शावक उछल-कूद कर मन बहला रहा था। ज्यों ही मित्र ने बिंबिसार को देखा, वह बोल उठा—"जय हो, महाराज !" बिंबिसार भी उसे पहचान गये। वे बोले—"धनद···" फिर दोनों एकान्त में गए। विचार-विमर्श किया और छद्मवेश का सारा इतिवृत्त सुनाते हुए मृगया के लिए चलने का निश्चय कर दिया।

३३. राजकुमारी रजनीगंधा

उसी दिन बिंबिसार ने आम्रपाली की सहमति प्राप्त कर ली और फिर दोनों मित्र मालवीय वेश में आवश्यक सामग्री ले, दो अश्वों पर बैठ मृगया के लिए चल पड़े। बिंबिसार ने साथ में अपनी प्रिय वीणा और धनुष्य बाण ले लिया था।

चार-पांच योजन चलने के पश्चात् धनद ने बिंबिसार से कहा—"महाराज ! हम वैशाली से बिना कुछ खाए ही चल पड़े थे। भूख भी असह्य हो रही है। घोड़े भी थक गए होंगे। हम अब इस विशाल वृक्ष की सघन छाया में ठहरें और अल्पाहार कर, कुछ विश्राम कर फिर आगे बढ़ें। घोड़े भी कुछ पास में चर लेंगे। दोनों एक वृक्ष के नीचे ठहर गए। अल्पाहार किया और विश्राम कर पुनः आगे बढ़े। कुछ ही दूरी पर एक वन-प्रदेश आया। झाड़ियों के कारण अश्वों की गति कुछ धीमी हो गई। शिकार की टोह में वे आगे बढ़ते जा रहे थे। दोनों ही मार्ग से सर्वथा अपरिचित थे। आगे जाते ही धनद की नजर एक जंगली हाथी पर पड़ी। हाथी ने सूंड़ उठाकर भयंकर गर्जारव किया। धनद चीख उठा। मनुष्यों को देख वह हाथी आक्रामक मुद्रा में आ गया। वह कुछ ही पलों में झाड़ियों में अदृश्य हो गया। धनद और बिंबिसार ने समझा कि वह अन्य दिशा में चला गया है पर···

कुछ आगे बढ़कर ज्यों ही बिंबिसार ने पीछे देखा, उसे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वही हाथी तीव्र गति से उनकी ओर आ रहा है। दोनों ने अपने अश्वों की लगाम ढीली की और उन्हें सरपट दौड़ाते हुए आगे बढ़ गये। बिंबिसार चाहता था कि हाथी कहीं मैदान में आए। तब उसका शिकार सुलभ हो सकेगा। उसका घोड़ा पवन वेग से सरपट चला जा रहा था। धनद धरती

पर गिर पड़ा। वह उठकर अपने बचाव के लिए दौड़े, इतने में ही हाथी वहां आ पहुंचा और उसे अपनी सूंड़ से ऊपर उछाला और ज्यों ही वह नीचे गिरा, हाथी ने उसे पैरों तले रौंद डाला। बेचारा वहीं ढेर हो गया।

इतने क्षणों में बिंबिसार बहुत आगे चला गया था। घटित घटना का उसे ज्ञान नहीं था। उसने अपनी वीणा सम्भाली।

संध्या हो गयी।

आगे बढ़ना सरल नहीं था। अंधकार बढ़ता गया। हाथी अन्यत्र चला गया। साथी बिछुड़ गया। वह अपने अश्व को एक ओर बांध, स्वयं एक वृक्ष के पास रात बिताने सो गया। सोते ही गहरी नींद आ गयी।

रात का समय। सूचीभेद्य अंधकार। सघन झाड़ियां। डरावना वन। इतने में ही जिस वृक्ष के नीचे बिंबिसार सोया था, उसके कोटर से एक काला भुजंग निकला। वह मणिधर सर्प था। उसने मणि एक ओर रखी। सारा स्थल प्रकाशमय हो गया। भुजंग ने एक आदमी को सोते हुए देखा। वह निकट गया और उसके अंगूठे को डंक मारकर अन्य शिकार की खोज करने चला गया। अर्ध घटिका के बाद वह वहां आया और मणि को लेकर चला गया।

विषधर का विष तीव्र था। बिंबिसार मूर्च्छित हो गया, मरा नहीं।

सूर्योदय हुआ।

वन का गस्तीदल उधर से गुजरा। उसने बेहोश मानव को उठा पास में एक खण्डहर में रख दिया। वह पद्मावती देवी का मन्दिर था। प्रातःकाल के मन्द पवन की तरंगों से बिंबिसार को होश आया। उसने आंखें मलकर चारों ओर देखा। यह देखकर वह अवाक् रह गया कि उसका घोड़ा भी नहीं है और वह स्थान भी नहीं है, जहां वह सोया था।

उसने सामने देखा। देवी की मूर्ति बहुत भव्य थी। ऐसा लग रहा था मानो उस मूर्ति के निर्माता ने अपनी सारी कला उसी में उडेल दी है। बिंबिसार अर्ध-घटिका तक उस मूर्ति को एकटक निहारता रहा। दृष्टि की एकग्रता बढ़ी और वह तद्रूप हो गया। उसका अध्यवसाय विशिष्ट हुआ।

प्रतिमा की भव्यता उसके नयनों में समा गयी थी। पद्मावती देवी का वर्ण पीत था। कुर्कुट जाति का सर्प उसका वाहन था। उसके चार भुजाएं थी। बायीं दो भुजाओं में कमल और पाश थे और दायीं दो भुजाओं में फल और अंकुश थे। यह स्वरूप बिंबिसार के मन को भा गया। उसने एकाग्र मन से पद्मावती का ध्यान किया। फिर वीणावादन में तल्लीन हो गया। वीणा की मधुर ध्वनि की तरंगों से सारा प्रदेश तरंगित हो उठा। अर्ध घटिका बीत गयी।

इतने में ही एक आवाज आयी। बिंबिसार स्थिर बैठा था, मन शांत और

निश्चल था। आवाज प्रचण्ड होती गयी और अचानक वह अंधकारमय मन्दिर प्रकाश से भर गया। देवी अपने मूल रूप में प्रगट हुई।

बिंबिसार ने आंखें खोलीं। वह उठा और देवी को प्रणाम कर हाथ जोड़कर बैठ गया। देवी बोली—"वत्स ! मैं तेरी भक्ति से प्रसन्न हूं। तू मांग। तेरी मांग पूरी होगी।"

"माता ! मैं राह भटक गया हूं। मैं याचना करने नहीं आया। कुछ घटना घटी और मेरे पुण्य ने मुझे यहां ला पटका। मेरा सौभाग्य है कि मुझे माता के दर्शन हुए। मेरा जन्म धन्य हुआ। मातेश्वरी ! मुझे पुरुषार्थ में विश्वास है। दूसरों के सहारे पलना, मैंने नहीं सीखा। पर मां ! तुम्हारा अनादर करना नहीं चाहता। मांग कुछ भी नहीं है। तुम्हारी प्रसन्नता ही मेरी प्रसन्नता है। मां ! तुम प्रसन्न हो, प्रसन्न रहो।"

"वत्स ! नहीं ! तू नहीं मांगता, तेरी इच्छा है। मैं तुझे कुछ दूंगी। तू मेरे यहां से खाली हाथ नहीं जा सकेगा।"

"जैसी, कृपा मां !"

देवी ने उसे दो गुटिकाएं देते हुए कहा—"ये दो अमूल्य गुटिकाएं हैं। यह लाल गुटिका अदृश्यकारिणी है। इसको मुंह में रखते ही व्यक्ति अदृश्य हो जाता है। यह नीली गुटिका विषापहारक है। कितना ही तीव्र विष क्यों न हो, इस गुटिका से वह शांत हो जाता है।"

बिंबिसार की आंखों से हर्ष के आंसू निकल पड़े और उसने भावविभोर मुद्रा में मां का अभिवादन किया।

मां पद्मावती अदृश्य हो गयी।

वह गुटिकाओं को साथ ले आगे बढ़ा। जाते-जाते उसे बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं के शिखर दीख पड़े। उसका मन आश्वस्त हुआ। उसके पैरों में तेजी आ गयी।

भूख तीव्र थी। पर मन शांत था। वह चारों ओर देखता हुआ, नगर के प्रवेश-द्वार में प्रविष्ट हुआ। इधर-उधर देखा। कोई मनुष्य नहीं मिला। आगे बढ़ा, पर यह क्या, कहीं कोई मानव नहीं है। क्या यह देवनगरी है या राक्षस नगरी ? नगर का निर्माण भव्य है। बड़े-बड़े बाजार, बड़ी-बड़ी दुकानें, चौड़े रास्ते, पर सब शून्य। नीरव को चीरता हुआ वह और आगे बढ़ा। वह राजभवन तक पहुंच गया। वहां भी कोई रक्षक नहीं था। वह अन्दर गया। उसने जोर से पुकारा—"कोई है अन्दर ?"

कोई उत्तर नहीं आया। उसका कुतूहल बढ़ा और वह राजभवन की छठी मंजिल पर पहुंच गया। वहां उसने देखा कि एक कक्ष के बाहर सांकल लगी हुई है। उसके मन में जिज्ञासा हुई। उसने सांकल को एक ओर किया। द्वार को

खोलना चाहा, पर वह नहीं खुला। उसने जोर से द्वार पर धक्का लगाया और वह खुल गया।

अरे! यह क्या? वह कक्ष के भीतरी दृश्य को देखकर चौंक पड़ा। उसने देखा—एक षोडशी कन्या एक विशाल पर्यंक पर बैठी है। उसकी आंखें मुंदी हुई हैं। उसकी शारीरिक अवस्थिति से ऐसा लग रहा था कि वह ध्यान में लीन है।

बिंबिसार वहीं खड़ा रह गया। वह कुछ बोले, उससे पूर्व ही कन्या ने आंखें खोलीं और अपने सामने एक युवक को देखकर भयभीत हो गयी। उसने सोचा, हो न हो, यही राक्षस मुझे ठगने के लिए रूप-परिवर्तन कर आया है। वह भय से कांपने लगी। उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। वह मौन थी।

बिंबिसार बोला—"सुभगे! भय को दूर करो। मैं भक्षक नहीं रक्षक हूं। तुम मेरी जिज्ञासा को शांत करो। यह कैसा जनशून्य राजभवन! यह कैसी जन-विहीन नगरी? यहां बन्दी कन्यारत्न कैसी?"

कन्या का मन शांत हुआ। वह बोली—"प्रियदर्शन! आप पहले आसन ग्रहण करें। मैं संक्षेप में सारी बात बता देती हूं। मैं राजा कनकमणि की राज-कन्या हूं। मेरा मूल नाम रजनीगंधा है। मेरे तीन भाई-बहन हैं। बचपन में मैं उनके चपेटा मार देती थी। इसलिए मेरा प्यार का नाम 'चपेटा दीदी' हो गया। मेरा रूप और लावण्य मेरे लिए अभिशाप बन गया। एक राजा मेरे रूप से आकृष्ट हो, मेरे साथ विवाह करना चाहता था। मैंने इनकार किया। उसने अपनी पैशाचिक करतूतों से सारे नगर-वासियों को भयभीत कर डाला। वे सभी घर-बार छोड़कर भाग गए। नगरवासियों के पलायन से चिंतित होकर मेरे पिताश्री ने अपने मित्र देव को याद किया। वह आया। पिताश्री ने कहा—'देवानुप्रिय, मुझे इस संकट से उबारो।' राजन्! आक्रामक राजा के पास मेरे से अधिक शक्तिशाली देवों की शक्ति है। यदि आप अपनी सुरक्षा चाहते हैं तो अन्यत्र चले जाएं। मैं एक सुन्दर नगरी का निर्माण कर देता हूं। वहां उसकी पहुंच नहीं होगी।'

"मेरे पिताश्री ने देव की बात मान ली। उसने इस नगर का निर्माण किया। हम सब वहां सुख से रह रहे थे। पर···एक बार एक राक्षस ने मेरे रूप और यौवन पर मुग्ध होकर कहा—'कन्ये! मैं तुझे मानवीय सुखों से ऊपर उठाकर दैविक सुख प्रदान करूंगा। तू मेरे साथ विवाह कर ले।'

'दुष्ट! मैं तुझे फूटी आंख से भी देखना नहीं चाहती। विवाह की बात करते तुझे लज्जा नहीं आती? कहां मैं और कहां तू? कितना बीभत्स है तू? चला जा, मेरी आंखों के सामने मत रह।'

"उसने अट्टहास किया और मुझे मेरे कक्ष से उठाकर अपने नगर में यहां ला बन्दी बना दिया।

"उसने कहा—मैं तुझे दस दिन का समय देता हूं। इस अवधि में तू सोच-समझकर अपना निर्णय ले। ग्यारहवें दिन मैं तेरे साथ विवाह कर लूंगा।'"

इतना कह वह कन्या रोने लगी। वह बोली—"वह यहां प्रतिदिन निश्चित समय पर आता है और मेरे सामने अपना संकल्प दोहराता है और कुछ क्षणों तक वह ध्यान कर चला जाता है। आज दस दिन पूरे हो रहे हैं। कल वह मेरे साथ बलात् विवाह करेगा। मैं चिंतित हूं। प्रतिदिन नमस्कार महामन्त्र का जाप करती हूं और इस दुष्ट के चंगुल से मुक्त होने की भावना करती हूं।"

बिंबिसार बोला—"कन्ये! तुम अभय बनो। क्या तुम उसके कुछ रहस्य को भी जानती हो?"

"नहीं, मैं उस दुष्ट से बात करना भी नहीं चाहती। जब वह मेरे समक्ष आता है तब मैं आंखें बन्द कर ध्यानस्थ हो जाती हूं।"

"सुभगे! आज एक काम करना। जब वह आए तब तुम मुसकराकर कहना, 'वीरवर! कल मैं आपकी अर्द्धांगिनी बन जाऊंगी। आप पराक्रमी हैं, वीर हैं। पर आप तो पूरा समय बाहर ही बिताते हैं। पीछे से कोई दूसरा राक्षस मुझे उत्पीड़ित करेगा तो···? मुझे भय है कि वह तुम्हें मारकर मुझे उठा ले जाएगा तब मेरी क्या गति होगी?'···आगे भी तुम बात ही बात में यह जानने का प्रयत्न करना कि उसकी मौत कैसे हो सकती है? वह प्रेम में अंधा बना हुआ, तुम्हें सब कुछ बता देगा, फिर मैं उसको यमलोक पहुंचा दूंगा।"

इतने में ही अट्टहास सुनाई दिया। कन्या बोली—"दुष्ट आ रहा है। आप शीघ्रता करें, कहीं छुप जाएं।"

बिंबिसार के पास अदृश्यकारिणी गुटिका थी। उसने गुटिका को मुंह में लिया और अदृश्य हो गया।

राक्षस ने आते ही कहा—"कहां है वह दुष्ट! मुझे मनुष्य की गंध आ रही है।"

कन्या बोली—"कैसी बातें करते हैं। आपके रहते यहां मनुष्य! मनुष्य तो क्या, पक्षी भी नहीं आ सकता। आप यहां बैठें। कल मेरे साथ आपका विवाह होगा। मुझे आज प्रसन्नता है कि मैं इस बन्दीखाने से छूटकर आपकी रानी बनूंगी। पर···यदि कोई दूसरा राक्षस···"

बीच में ही वह बोल उठा—"कौन होता है दूसरा राक्षस! मेरी शक्ति अपार है। मुझे कोई जीत नहीं सकता। मुझे कोई मार नहीं सकता।"

"परन्तु यहां कोई अमर तो नहीं रहता। मरना सबको पड़ता है।" कन्या ने कहा।

"भोली हो तुम। मेरे पर किसी दूसरे के शस्त्र का असर नहीं होता। सारे शस्त्र बेकार हैं। मेरा खड्ग ही मेरी मौत कर सकता है। मैं इसे कभी अपने से

अलग नहीं रखता। तू देखती है, यह सदा मेरे हाथ में ही रहता है। केवल ध्यान काल में कुछ क्षणों के लिए मैं इसे अलग रखता हूं। सोते समय भी यह मेरे सिरहाने ही रखा रहता है।"

"आप महान् हैं। कल का मुहूर्त्त टलने न पाए। सूर्योदय से चार घटिका के पश्चात् विवाह का मुहूर्त्त है। आप ध्यान रखें। आप विद्या की आराधना उससे पूर्व ही कर लें।" कन्या ने मीठी वाणी में कहा।

"ओह! यह कैसा परिवर्तन। जो कन्या मुझे आंख की किरकिरी समझती थी, वह आज मेरी पत्नी बनने में अपना सौभाग्य मानती है।" राक्षस ने मन ही मन सोचा और अदृश्य होकर चला गया।

उसके चले जाने पर बिंबिसार ने अदृश्य गुटिका को मुंह से निकाला और कन्या से कहा—"राजकुमारी! अब तुम निश्चिन्त रहो। मैंने सारी बातें सुन ली हैं। कल राक्षस का अन्तिम दिन है।"

राजकुमारी बहुत प्रसन्न हुई।

बिंबिसार खण्डहर नगर को देखने चला गया।

दूसरे दिन।

निश्चित समय पर राक्षस विवाह की सारी तैयारी कर वहां आ पहुंचा। उसने राजकुमारी से कहा—"पाणिग्रहण से पूर्व मैं तेरा स्पर्श नहीं करूंगा। ये ले, बहुमूल्य रत्नजटित आभूषण और वस्त्रालंकर। अब मैं अपने इष्ट का स्मरण करता हूं। तू भी अपने इष्ट का स्मरण कर ले।"

बिंबिसार तैयार था ही। वह अदृश्य था। ज्यों ही राक्षस खड्ग रखकर ध्यान करने बैठा। बिंबिसार ने एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना उस खड्ग को उठाकर उस राक्षस का सिर धड़ से अलग कर दिया।

एक भयंकर आवाज!

उस राक्षस की निर्जीव काया वृक्ष की टूटी शाखा की भांति धरती पर पड़ी थी।

राजकुमारी आगे बढ़ी और बिंबिसार के चरणों में लुढ़क गयी। उसने विवाह का प्रस्ताव रखा, पर बिंबिसार ने उसे समझा-बुझाकर, अस्वीकार कर दिया और उस राजकुमारी रजनीगंधा को उसके माता-पिता के पास पहुंचा दिया।

३४. वास्तविक परिचय

बिंबिसार को आम्रपाली से विदा हुए पांच दिन हो गए थे। वह मन ही मन सोच रही थी, आखेट खेलना जोखिम भरा कार्य है। न जाने किस ओर गए हैं! काश,

मैं उन्हें जाने की स्वीकृति नहीं देती। मेरी स्वीकृति के बिना वे नहीं जाते, यह मुझे पूरा विश्वास है। पर अब क्या हो ?

उसे अपने वराह के आखेट की स्मृति हो आयी। उस स्मृति मात्र से वह सिहर उठी। ओह ! कैसा भयंकर था वह वराह ! मैं स्वयं उसके चंगुल में थी। मुझसे मौत का फासला केवल दो हाथ का। यदि उस समय आचार्य जयकीर्ति ने उस वराह को धराशायी न कर दिया होता, तो आज···।

चिन्तन चलता रहा। स्मृति के चलचित्र एक-एक उभर रहे थे। कभी वह कांप उठती और कभी वह प्रसन्न हो जाती।

दूसरे ही क्षण उसने सोचा, यदि मैं मृगया के लिए उस समय नहीं जाती तो आचार्य जयकीर्ति का परिचय कैसे होता ? कैसे होता यह प्रणय प्रसंग ! कैसे होता स्वर्गीय सुख का प्रणयन और कैसे होता प्रतिबिम्ब का निर्माण···ओह···!

आज अब वे कहां हैं ? सात दिन का कह गए थे, आज पांच दिन हो गए हैं। क्या किसी जंगली जानवर ने···? नहीं, नहीं, वे महान धनुर्धर हैं। वे शब्दवेधी विद्या से परिपूर्ण हैं। उन्होंने उस दिन वराह के पदचाप की मन्दध्वनि से सावधान होकर उस ध्वनि की दिशा में बाण छोड़ा और वह अदृश्य वराह मौत के मुंह में चला गया।

चलो, कोई बात नहीं। मेरा मन कह रहा है कि वे सकुशल परसों लौट आएंगे।

सगर्भा प्रियतमा आम्रपाली का चित्त प्रियतम के बिना उन्मना हो रहा था। स्त्रियों के लिए मातृत्व सहज होता है, पर उसमें प्रसन्नता और आनन्द बनाए रखना प्रियतम के बिना नहीं होता।

सातवां दिन।

आज आम्रपाली अत्यन्त प्रसन्न थी। उसकी काया का कण-कण आनन्द से सराबोर हो रहा था। उसका आनन तेजस्वी हो रहा था और आंखों की चमक मानो दो चन्द्रमाओं की प्रतीति करा रही थी।

उसने मन ही मन सोचा, अभी-अभी प्रियतम आएंगे और मैं उन्हें मीठा उपालम्भ दूंगी और तब वे···।

और उसी समय परिचारिका माध्विका ने आम्रपाली के कक्ष में प्रवेश किया।

आम्रपाली अपने प्रियतम के विचारों में खोयी हुई थी। पदचाप सुनकर उसके विचारों की शृंखला टूटी। अपने दरवाजे की ओर देखा। माध्विका ने कहा—"देवि ! महाराज आ गए। वे स्नानागार में गए हैं। अभी-अभी वे इस विशिष्ट कक्ष में आएंगे। जाते-जाते वे कह गए हैं कि देवी को यदि कष्ट न हो तो इस कक्ष में आ जाए और यदि न आ सके तो मैं वहीं चला आऊंगा।

देवी आम्रपाली का हृदय बांसों उछलने लगा। स्त्री के लिए सर्वस्व होता है प्रियतम। उसका आगमन और वह भी प्रतीक्षा के पश्चात् जीवन में विशेष आनन्द भर देता है। देवी आम्रपाली आनन्दविभोर हो उठी। वह अवाक् रह गयी।

माध्विका ने कहा—"देवि !···"

"अरे, चल मैं वहीं आती हूं।"

माध्विका के साथ आम्रपाली मन्द-मन्द गति से बढ़ी। गति मन्द थी, पर मन की त्वरा बहुत थी।

जब आम्रपाली उस कक्ष में पहुंची तब तक बिंबिसार नहा-धोकर आ पहुंचे थे। वे आम्रपाली को देखते ही आसन से उठे और पूछा—"देवि ! प्रसन्न तो हो ? कुशल-क्षेम तो है ?"

आम्रपाली अवाक् थी। उसकी आंखें हर्ष के आंसुओं से डबडबा आयीं। वह आते ही प्रियतम के चरणों में लुढ़क गयी और आंसुओं के मोतियों से उनके चरण पखारे।

बिंबसार ने आम्रपाली को हाथों से उठाया और कहा—"प्रिये ! जो वादा किया था उसके अनुसार आ पहुंचा हूं।"

"अब···।"

आम्रपाली मौन थी। वह अपना मस्तक प्रियतम के वक्षस्थल पर टिका कर बोली—"आपको मैंने स्वेच्छा से मृगया के लिए विदा दी थी। पर···मैं नहीं जानती थी कि विरह की व्यथा कितनी विकराल होती है। मुझे यह ज्ञात नहीं था कि इस नाजुक अवस्था में प्रियतम ही अपनी प्रिया को आनन्दित रख सकते हैं। खैर, अब मैं कभी आपको यहां से···"

और उसी समय वसन्तगृह के प्रांगण में एक रथ आकर रुका। उसमें से सिंह सेनापति उतर रहे थे।

परिचारिकाओं ने उनका स्वागत किया और उन्हें आम्रपाली के कक्ष तक पहुंचा दिया। आम्रपाली दूर से गणनायक को आते देख अपने आसन से उठी और निकट आते ही हाथ जोड़कर बोली—"पधारो, आपका स्वागत है।"

"पुत्रि ! कुशल तो है न ?"

"हां, पिताश्री !"

दोनों कक्ष में गए। स्वर्ण आसन पर गणनायक को बिठाकर आम्रपाली ने कहा—"बापू ! क्या आज्ञा है ?"

"पुत्रि ! क्या आचार्य जयकीर्ति आखेट से आ गए ?"

"पिताजी अभी-अभी आए हैं। पर जनता के समक्ष वीणावादन करना, यह उनके लिए अशक्य है।"

"पुत्रि ! ऐसे समर्थ वीणावादक को सभाक्षोभ होता ही नहीं । और इस गणतन्त्र के गण केवल वीणावादन ही सुनना नहीं चाहते···"

"तो ?"

"वे यह जानना चाहते हैं कि जनपदकल्याणी ने जिसे प्रियतम माना है वह पुरुष कैसा है ? वह कितना सुन्दर और आकर्षक होगा ? यह तमन्ना स्वाभाविक है । तू मेरा ही उदाहरण ले···एक पिता ने अपनी कन्या के प्रियतम को अभी तक देखा ही नहीं । कोई मुझे पूछे तो मैं क्या जवाब दूं ।"

आम्रपाली यह सब सुनकर चौंक उठीं ।

गणनायक कुछ पूछे, उससे पूर्व ही बिंबिसार उस कक्ष में आ पहुंचे । प्रियतम को उस कक्ष में आते देखते ही आम्रपाली का आनन चमक-दमक से भर गया ।

बिंबिसार को देखते ही सिंह सेनापति की आंखें चार हो गयीं । सुन्दर, बलिष्ठ, तेजोमय और यौवन की ऊर्मियों से भरा-पूरा शरीर । उसने सोचा, यह कौन होगा ? क्या आचार्य जयकीर्ति ? नहीं, नहीं, वह तो ब्राह्मण है और फिर ऐसी काया ब्राह्मण की हो नहीं सकती ।

बिंबिसार निकट आया और उसने हाथ जोड़कर गणनायक का अभिवादन किया ।

आम्रपाली अपने मन में उभरे भय को लज्जा के आवरण से छुपाती हुई बोली—"बापू ! आप जिसको याद कर रहे थे, वे···"

सिंहनायक ने वेधक दृष्टि से बिंबिसार की ओर देखकर कहा—"आचार्य ! आपको देखकर मेरे नयन तृप्त हो गए···मेरी कन्या ने जीवन साथी चुनने में अपनी बुद्धि का उचित नियोजन किया है ।"

बिंबिसार ने प्रियतमा की ओर देखकर कहा—"महापुरुष का परिचय···"

आप वैशाली गणतन्त्र के महानायक सिंह सेनापति हैं···मेरे पितातुल्य हैं ।" आम्रपाली ने कहा ।

"मैं धन्य हुआ ।" बिंबिसार बोला ।

"आचार्य ! एकाध सप्ताह के पश्चात् जनसभा का आयोजन होगा । नियम ऐसा है कि जब गणसभा जुड़ती है तब पहले दिन जनपदकल्याणी के नृत्य-संगीत से कार्य प्रारम्भ होता है । अभी आम्रपाली नृत्य-संगीत नहीं कर सकेगी । इसलिए हम गणसभा का प्रारम्भ आपके वीणावादन से करना चाहते हैं ।"

"आपका कहना उचित है । पर मेरी कठिनाई है कि मैं जनता के समक्ष वीणावादन कर नहीं सकता ।" जयकीर्ति ने कहा ।

"परन्तु कलाकार कभी जनता के समक्ष आने में भयभीत नहीं होता । आप कलाकार हैं, मालवीय है ।" कहकर गणनायक हंस पड़े ।

बिंबिसार ने मन-ही-मन सोचा—"इस महापुरुष के समक्ष स्पष्टता हो जाए

तो सदा के लिए निर्भयता आ जाएगी और फिर लुक-छिप कर रहने की नौबत नहीं आएगी।"

वह बोला—"गणनायक जी ! आपकी बात सत्य है। कलाकार को क्षोभ नहीं होता, पर दुर्भाग्य है कि मैं न कलाकार हूं, न आचार्य हूं और न मालवीय हूं। मैं तो मात्र वीणावादक हूं। केवल वीणा का प्रेमी।"

ये शब्द सुनते ही आम्रपाली का मन वज्र-प्रहार से आहत-सा हो गया। उसके आनन पर भय और आशंका की रेखाएं उभर आयीं। सिंह सेनापति अवाक् रह गए। उन्होंने कहा—"आचार्य ! आप मेरा उपहास तो नहीं कर रहे हैं? यहां सर्वत्र यही बात प्रचारित है कि आप मालव देश के निष्णात आचार्य हैं।"

"महात्मन् ! मैं आप जैसे सुयोग्य और पिता तुल्य व्यक्ति के समक्ष असत्य कहना नहीं चाहता। मैंने देवी आम्रपाली को अपना छद्मनाम से ही परिचय दिया था।"

"प्रियतम···!" आम्रपाली आश्चर्य भरे स्वरों में बोली।

बिंबिसार ने आम्रपाली की ओर देखकर कहा—"प्रिये ! भय का कोई कारण नहीं है। मैं न कोई गुप्तचर हूं और न कोई राजपुरुष···।'

बिंबिसार का वाक्य पूरा हो, उससे पूर्व ही आम्रपाली की परिचारिका माध्विका खंड में प्रविष्ट होकर सिंह सेनापति से बोली—"आचार्य सुनन्द एक महत्त्वपूर्ण संदेश लेकर आए हैं। वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

सिंह सेनापति वहां से उठे, चरनायक सुनन्द के पास आकर पूछा—"क्यों सुनन्द ! अकस्मात् कैसे आना हुआ ? क्या कोई अघटित घटित हुआ ?"

"महाराज ! वैशाली गणतन्त्र को असहनीय झटका लगा है। हमारे धनुर्धर आचार्य सुदाम की मृत्यु हो गई है।"

"ओह !···किसने कहा ?" सेनापति ने पूछा।

"महाराज ! मैं उनकी प्राणहीन काया को स्वयं देखकर आया हूं। इनकी मृत्यु भी पद्मकेतु के समान ही हुई है।"

"मतलब ! संथागार के उपवन में।"

"नहीं, उन्हीं के भवन में।"

"आश्चर्य ! आश्चर्य ! चलो हम चलते हैं। इतना कहकर सिंह सेनापति ने एक परिचारिका को बुलाकर कहा—"देवी को कहना कि मैं एक आवश्यक कार्य के लिए जा रहा हूं। फिर कभी आऊंगा।"

इतना कहकर सिंह सेनापति रथ में बैठ गए।

सुनन्द अग्रसर हुआ।

गणनायक का रथ गतिमान हुआ।

कभी-कभी अधूरी बात बीच में रह जाती है। वीणावादक आचार्य के परिचय की बात अधूरी रह गयी।

सुदाम की मृत्यु के समक्ष वैशाली पर बिजली गिर पड़ी। दूसरे ही दिन सारा गणतन्त्र दुःखी हो गया। सभी को यह आश्चर्य हो रहा था कि मृत्यु का कोई कारण स्पष्ट रूप से बाहर नहीं आया'''कोई समझ नहीं पाया कि मृत्यु कैसे हुई ?

सिंह सेनापति और चरनायक सुनन्द ने इस मृत्यु के रहस्य को अनावृत करने का भरसक प्रयत्न किया पर मृत्यु का भेद वैसा का वैसा अज्ञात ही रहा। मात्र इतना ही ज्ञात हो सका था कि रात्रि में धनुर्धर सुदाम ने अपने समस्त दास-दासियों को अन्यत्र भेजा था और आज ही अपने शयन-कक्ष में एक पुष्प-शय्या का निर्माण कराया था। उसी पुष्प-शय्या पर धनुर्धर का निर्जीव शरीर मिला था। वह वहां कैसे मरा ? उसके शरीर वस्त्रों पर मैरेय के दाग लगे थे, तो क्या किसी ने उस पर मैरेय उडेला था ? पर दूसरे किसी व्यक्ति के भवन में आने के चिह्न प्राप्त नहीं थे। समस्या उलझती जा रही थी।

सुदाम की मृत्यु की गुत्थी सुलझते चार दिन बीत गए और पांचवें दिन एक भयंकर घटना और घटित हुई।

वैशाली का महान रथपति वीरसेन का शव एक उपवन में प्राप्त हुआ। उसका अश्व एक वृक्ष से बंधा हुआ था। उपवन में एक यक्ष मन्दिर था। लोगों की यक्ष पर अपार श्रद्धा थी। वे मानते थे कि समस्त वैशाली का संरक्षण इस यक्ष द्वारा होता है।

रथपति वीरसेन चालीस वर्ष की उम्र का था। उसके भवन में उसकी सात पत्नियां थीं। फिर भी वह एक बार कादंबिनी की ओर आकर्षित हुआ और अन्त में प्राण गंवा बैठा।

एक समान तीन व्यक्तियों की एक ही प्रकार की मृत्यु से सुनन्द घबरा गया।

रथपति वीरसेन वैशाली की रथसेना का कुशल नायक था। उनके पास एक हजार रथों की सेना थी और रथयुद्ध में वह बेजोड़ माना जाता था।

सुदाम जैसे महान धनुर्धर के अभाव का घाव अभी हरा ही था कि उस पर एक और भयंकर आघात लगा। वैशाली की शक्तिशाली सेना का महान रथपति काल-कलवित हो गया।

चरनायक सुनन्द ने सूक्ष्मता से वीरसेन के शव का निरीक्षण किया। उसके शरीर पर कोई जहरीले प्राणी के दंश का चिह्न नहीं मिला और न कोई विष-पान कराए जाने की निशानी ही मिली। फिर भी मृत्यु विष से हुई है, यह निश्चित हो गया।

सबसे आश्चर्यकारी बात तो यह थी कि यक्ष के उपवन में वीरसेन के साथ कोई दूसरा आया हो, ऐसा चिह्न भी नहीं मिला। मृत्यु की रात्रि के अन्तिम प्रहर में अनेक भवन के दास-दासियों ने उन्हें देखा था। वे एक अश्व पर बैठकर बाहर निकले थे। किसी को कोई सूचना नहीं दी थी। अपनी एक अतिप्रिय पत्नी को उन्होंने इतना-सा कहा था—"आज सम्भव है कि मैं विलम्ब से आऊं। एक मित्र के आवास में संगीत की बैठक है। उसमें मुझे जाना है।"

इसके अतिरिक्त और कोई बात ज्ञात नहीं हो सकी थी। वीरसेन के जितने मित्र थे, उनसे ज्ञात हुआ कि संगीत की ऐसी कोई बैठक थी ही नहीं।

इस प्रकार सुनन्द मृत्यु की समस्या को सुलझा नहीं पाया। वह सिंह सेनापति के पास गया। वे बोले—"सुनन्द! तीनों व्यक्तियों की मृत्यु का प्रकार समान है। तीनों की मृत्यु विष के प्रभाव से हुई है। तीनों की मृत्यु से हमारे राज्य की अपूरणीय क्षति हुई है।"

"हां, महाराज!"

"सम्भव है, वैशाली गणतन्त्र के शत्रु की यह चाल हो, षड्यन्त्र हो।"

"परन्तु नगरी में किसी शत्रु के आगमन की बात चर-विभाग के पास नहीं पहुंची है।" सुनन्द ने कहा।

सेनापति बोला—"मगध का महामन्त्री बहुत चालाक है। सम्भव है उसके गुप्तचर इस नगर में हों। चन्द्रप्रद्योत भी ऐसी हरकतें कर सकता है।"

"मगध से कोई अनजान व्यक्ति यहां आए हों, ऐसा नहीं लगता। अभी-अभी कादंबिनी यहां आई है। मैंने उसके यहां पूरी जांच-पड़ताल की है, पर मुझे कोई शंकास्पद व्यक्ति नहीं मिला?" चरनायक ने कहा।

"कादंबिनी में इतना साहस नहीं हो सकता, यह स्पष्ट है, और वह मगध की नहीं, गांधार की है।"

"आचार्य जयकीर्ति···?"

"मैं स्वयं उनसे मिला था। वे निर्दोष लगते हैं। अभी उनका पूरा परिचय प्राप्त नहीं हो सका है। मैं आज रात को पुनः उनसे मिलने जाऊंगा।" सिंह सेनापति ने कहा।

सन्ध्या का समय।

सप्तभौम प्रासाद दीपमालिकाओं से जगमगा उठा।

रात्रि का प्रथम प्रहर पूरा हो, उससे पूर्व ही गणनायक का रथ सप्तभौम प्रासाद के वसन्तगृह के प्रांगण में आ पहुंचा।

सिंह सेनापति के आगमन की बात सुनकर आम्रपाली के मन में भय उभर

आया। यदि बिंबिसार अपना असली परिचय दे देंगे तो···वह सिहर उठी। वह यही चाहती थी कि अधूरी बात का सिलसिला चले ही नहीं।

सिंह सेनापति ने बिंबिसार से बात करते हुए कहा—"आचार्य! हमारे वैशाली गणराज्य के चार स्तम्भ ढह पड़े। उनकी मृत्यु ने एक समस्या पैदा कर दी है। उन सबकी मृत्यु विष से हुई है। परन्तु अभी तक उसका पूरा रहस्योद्घाटन नहीं हो पाया है।"

बिंबिसार बोला—"इस विषय की पूरी जानकारी के लिए आप किसी विष वैद्य को बुलाएं। चम्पा नगरी में एक निष्णात विष-वैद्य रहते हैं···।"

"हां, गोपाल स्वामी नाम के एक प्रसिद्ध विष-वैद्य हैं। मैंने उन्हें बुला भेजा है।"

"अब आप अपनी अधूरी बात आगे बढ़ाएं।" गणनायक ने कहा।

बिंबिसार बोला—"उस दिन आपने मेरा परिचय पाना चाहा और आपने यह कहा था कि मैं मालवीय नहीं हूं। आपने ठीक कहा। आपने कुछ दिन पूर्व सुना होगा कि मगधेश्वर ने अपने एक पुत्र को राजाज्ञा की रक्षा के लिए निर्वासित किया था।"

"हां, मैंने सुना था और साथ-साथ यह भी सुना था कि उन्होंने अपने प्रिय पुत्र श्रेणिक को निर्वासित किया है।"

"पूज्यश्री! मैं ही वह बदनसीब श्रेणिक महाबिंब वीणा बजाता हूं। इसलिए मेरा अपर नाम है—बिंबिसार।" श्रेणिक ने कहा।

"ओह! आप हैं मगध के युवराज श्रेणिक बिंबिसार।" आश्चर्य भरी दृष्टि से गणनायक ने उसे देखा और आसन से उठ खड़े हुए।

बिंबिसार भी आसन से उठा और उसने गणनायक के चरणों का स्पर्श किया तब गणनायक ने उसके सिर पर हाथ रख कर आम्रपाली से कहा—"पुत्रि! तू भाग्यवती है।"

सिंह सेनापति परिचय प्राप्त कर वहां से अपने घर की ओर आ गए। उनका मन विचारों से आन्दोलित हो उठा।

३५. वैशाली में हलचल

गणनायक सिंह सेनापति ने अष्टकुल के प्रतिनिधियों और विशिष्ट राजपुरुषों के समक्ष आचार्य जयकीर्ति के छद्मवेश का परिचय देते हुए कहा—"वे दिखने में निर्दोष और विनयी लगते हैं। उनसे बातचीत करने पर यह प्रतीत होता है कि उन्हें कामकाज के-साथ कुछ भी लेना-देना नहीं है। किन्तु अभी-अभी वैशाली में जो मृत्यु-लीला हुई है, उसे देखते हुए कई शंकाएं उभर आती हैं।"

कुमार शीलभद्र ने कहा—"चार पुरुष सदा निर्दोष-से प्रतीत होते हैं। यह

भी गुप्तचरी का एक गुर है। रहस्यमय मृत्यु का कारण कुछ भी हो किन्तु गणतन्त्र की जनपदकल्याणी एक शत्रुराज्य के युवराज की अंकशायिनी बने, यह किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। हमारे गौरव के लिए यह प्रसंग अत्यन्त लांछन रूप है।"

अष्टकुल के एक विशिष्ट महाराज नंदीवर्धन ने शीलभद्र के कथन का समर्थन करते हुए कहा—"यह प्रश्न ऐसा है कि जनपदकल्याणी को यहां बुलाकर समझाना चाहिए जिससे राई पर्वत न बने अथवा किसी प्रकार का संघर्ष न हो।

सिंह सेनापति बोला—"देवी आम्रपाली सगर्भा हैं। उनको भी यह परिचय अभी कुछ ही दिन पूर्व मिला है। मैं उनसे मिलकर इस विषय का निचोड़ निकालूंगा। परन्तु रहस्यमय मृत्यु के पीछे कोई षड्यन्त्र हो और उसमें श्रेणिक बिंबिसार का हाथ हो तो···।"

बीच में ही महाबलाधिकृत बोले—"तो वैशाली की धरती पर स्थित सप्तभूमि प्रासाद की दीवारें बिंबिसार के रक्त से रंग जाएंगी और बिंबिसार का मस्तक सप्तभूमि प्रासाद की एक शोभा वस्तु होगा।"

सभा विसर्जित कर गणनायक सिंह सेनापति ने आम्रपाली को एक संदेश भेजा कि रात्रि के प्रथम प्रहर के पश्चात् वे एक महत्त्वपूर्ण विचार करने के लिए सप्तभूमि प्रासाद में आएंगे।

किन्तु इस सन्देश के मिलने के पूर्व ही आचार्य जयकीर्ति छद्मवेशी शत्रु हैं। यह बात सम्पूर्ण नगरी में फैल गयी, क्योंकि जो बात चार कानों से आगे बढ़ जाती है, वह शीघ्र ही सर्वत्र प्रसारित हो जाती है।

किसी भी वस्तु के प्रति घृणा पैदा करना सहज सरल होता है, पर ममता, मानवता और संवेदना प्रकट करना बहुत कठिन होता है।

आम्रपाली को गणनायक का संदेश प्राप्त हो गया। उसने अपने प्रियतम बिंबिसार से कहा—"प्रिय! नगर में यही चर्चा हो रही है कि आप छद्मवेशी शत्रु हैं। अभी-अभी धनंजय नगर-भ्रमण कर आया है। यदि आप अपना परिचय नहीं देते तो···मेरी इस स्थिति में आपका वियोग होगा तो···।"

बीच में ही बिंबिसार ने आम्रपाली के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"प्रिये! चिन्ता की कोई बात नहीं है। हमारा मिलन किसी से खंडित नहीं होगा।"

आम्रपाली मौन रही और प्रियतम के वक्षस्थल पर मस्तक टिका कर खड़ी हो गयी।

बिंबिसार सोचता रहा कि नारी केवल रूप और सौन्दर्य से ही महान् नहीं होती, वह श्रद्धा और समर्पण से महान् होती है।

इधर आम्रपाली इस प्रकार मानसिक उलझन का अनुभव कर रही थी और उधर कादंबिनी के भवन में भी एक बात चर्चित हो रही थी।

भवन का वृद्ध प्रबन्धक, जो मगध के महामन्त्री का अपना व्यक्ति था, वह कादंबिनी के साथ खास खंड में बैठा था और उससे एक बात की चर्चा कर रहा था।

वृद्ध प्रबन्धक यह नहीं जानता था कि कादंबिनी स्वयं एक विष-कन्या है··· वह मात्र इतना ही जानता था कि देवी ऐसे विष का प्रयोग करने में निपुण हैं, जिस विष की पहचान कोई नहीं कर सकता और इसीलिए महामन्त्री ने इसको यहां नियोजित किया है।

उसने कादंबिनी से कहा—"देवि ! वैशाली की विचित्र परिस्थिति बन गई है। अब हमें कुछ दिन मौन ही रहना होगा।"

"आपकी बात सही है। मैंने अभी एक बात सुनी है कि अंगदेश के प्रख्यात विषशास्त्री आचार्य गोपालस्वामी को यहां बुलवाया गया है।"

"हां, मैंने भी यह बात सुनी है। वे यहां रहें तब तक हमें सावधान रहना होगा···उनके यहां रहते किसी की मृत्यु होगी तो परीक्षण करने पर सम्भव है, विष की पहचान हो जाए।"

"ठीक है···वैद्य विष की पहचान कर सकता है, पर वह विषदाता की पहचान नहीं कर सकता। हमें इस प्रकार घबराने की आवश्यकता नहीं है। महामन्त्री की सूचना के अनुसार कोई शिकार मिल जाए तो हमें छोड़ना नहीं है, क्योंकि हमें शीघ्र ही अपना कार्य पूरा कर वैशाली से प्रस्थान कर देना है।"

कादंबिनी ने मुसकराकर कहा—"चाचा ! वैशाली का चर-विभाग कितना ही चतुर क्यों न हो, वह कुछ भी पता नहीं लगा पाएगा। शिकारी सदा नये-उपायों से शिकार करना जानता है। उसे नया मार्ग स्वतः मिल जाता है। आप देखते रहें···कल एक भव्य शिकार स्वतः चलकर यहां आएगा। वह वैशाली के युवकों का नेता है, गणतन्त्र के एक राजकुल का कुमार है और गणसभा का वर्चस्वी सदस्य है।"

"वह कौन है ?"

"वह है कुमार शीलभद्र !" कादंबिनी ने हंसते-हंसते कहा।

वृद्ध प्रबंधक आश्चर्य की दृष्टि से कादंबिनी की ओर देखने लगा।

कादंबिनी बोली—"इस प्रकार यदि शिकार सहज प्राप्त होता हो तो उसका स्वागत करना ही चाहिए, क्योंकि विपत्ति आने से पूर्व ही कार्य संपन्न कर चलते बनना ही श्रेयस्कर होता है। आचार्य गोपालस्वामी आएंगे तो मैं स्वयं उनसे मिलने जाऊंगी।"

"आप ?"

"हां, क्या मैं विषशास्त्र में निष्णात नहीं हूं ? आचार्य के साथ चर्चा करूंगी।" हंसते-हंसते कादंबिनी ने कहा।

"परन्तु···?"

"भय का कोई कारण नहीं है, चाचा ! गोपालस्वामी एक वैद्य हैं, देव नहीं।" कादंबिनी ने कहा।

"फिर सावधानी बरतने वाला सदा सुखी होता है। एकाध सप्ताह तक धैर्य रखा जा सके तो उत्तम है।" वृद्ध प्रबंधक ने समतापूर्वक कहा।

"अच्छा, परन्तु कल आनेवाले अतिथि का तो स्वागत करना ही होगा, क्योंकि मैंने उसको आमंत्रित कर दिया है।"

वृद्ध प्रबंधक कुछ नहीं बोला···वह सोच में पड़ गया। दो क्षणों के बाद उसने प्रश्न किया—"स्थान कौन-सा होगा ?"

"अभी तो स्थान का निश्चय नहीं किया है परन्तु एक सुन्दर विचार उभरा है। कल मैं आनेवाले माननीय अतिथि के साथ जल-विहार करने जाऊंगी।"

वृद्ध प्रबंधक अवाक् बन गया। वह आश्चर्यभरी नजरों से कादंबिनी की ओर देखकर सोचने लगा, महामंत्री ने जिस पर इतना विश्वास किया है, इतनी भारी जिम्मेवारी दी है, वह भले ही अवस्था में छोटी हो, परन्तु गजब की बुद्धिमती है। वैशाली के पास बहनेवाली नदी जल-विहार के लिए उपयुक्त है। परन्तु वहां से अकेले यहां भवन तक आना जोखिम भरा कार्य है। यह विचार आते ही प्रबंधक ने पूछा—"देवि ! इतनी दूरी से भवन तक आना तो···।"

बीच में ही कादंबिनी ने कहा—"अपना जो चतुर अश्व है, वह मुझे संभाल लेगा। आप पूर्ण रूप से निश्चिन्त रहें। मैं ऐसी योजना बनाऊंगी कि किसी को संशय भी नहीं होने पाएगा और चरनायक को षड्यन्त्र की भनक भी नहीं मिलेगी।"

वृद्ध प्रबंधक ने उठते-उठते कहा—"देवी ! वास्तव में ही आपकी बुद्धि और दृष्टि में अपूर्व तेज है, सूझबूझ है।"

वृद्ध प्रबंधक चला गया।

रात्रि का प्रथम प्रहर चल रहा था। सिंह सेनापति अपने रथ पर आरूढ़ होकर सप्तभूमि प्रासाद की ओर प्रस्थित हो गया।

परन्तु वे वहां पहुंचे, उससे पूर्व ही सप्तभौम प्रासाद के पास लगभग डेढ़ हजार से अधिक युवक एकत्रित होकर धूम मचा रहे थे। वे नारे लगा रहे थे—"वैशाली के शत्रु को बाहर निकालो।"···"मगध के दस्यु को दिखाओ।" "छद्मवेशी को छुपाओ मत, प्रकट करो···।"

उनके नारों में रोष था। चारों ओर उनकी आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

सिंह सेनापति यह देखकर विस्मय से भर गए। उन्होंने सोचा, जो बात अभी मर्यादा में थी, वह इस प्रकार प्रसारित कैसे हो गई! उन्होंने युवकों को समझाया और उनको आश्वासन दिया कि सप्तभूमि प्रासाद में यदि वैशाली का शत्रु छुपा होगा और वैशाली के अमंगल का षड्यंत्र करता होगा तो आप निश्चित मानें कि घटिका के छठे भाग में उसका मस्तक वैशाली की वीरभूमि पर लुढ़क जाएगा। मैं इस विषय में पूरी जांच करने का वादा करता हूं।"

भीड़ तितर-बितर हो गई।

सिंह सेनापति का रथ सप्तभूमि प्रासाद में प्रविष्ट हुआ।

बिंबिसार और आम्रपाली ने भावभरा स्वागत किया।

अभी कुछ ही समय पूर्व वैशाली के युवकों ने सप्तभूमि प्रासाद के बाहर जो धूम मचाई थी, और जनपदकल्याणी के गौरव पर जो धूल डाली थी, उससे आम्रपाली रोष से लबालब भर गई।

अंतर का रोष नयन और वदन से बाहर प्रकट होता ही है।

आम्रपाली का सदाबहार आनन भी आज रोष के कारण लाल हो रहा था और आंखों में मानो बिजली कड़क रही थी।

गणनायक ने कहा—"पुत्रि! बापू को क्षमा करना। मुझे तुम्हारे आनंद के बीच आना पड़ रहा है। पर क्या करूं? मुझे अपना कर्त्तव्य निभाना होता है।"

आम्रपाली बोली—"बापू! आप स्वयं आ गए, यह अच्छा ही हुआ, अन्यथा मैं आती।"

"क्यों?"

"जनपदकल्याणी के सड़े-गले पद गौरव को फेंक देने···।"

गणनायक ये शब्द सुनकर अवाक् रह गए। दो क्षण मौन रहकर बोले—"क्यों बेटी? तेरा कथन मुझे···।"

"गणतंत्र की नियमावली तो आप जानते ही हैं···जनपदकल्याणी का अपमान कोई छोटी बात नहीं है···कोई भी वैशालिक जनपदकल्याणी के गौरव पर धूल नहीं डाल सकता।"

"हुआ क्या है?"

"आपने स्वयं अभी-अभी देखा है। वैशाली के युवकों ने यहां आकर क्या-क्या नहीं किया? वे ऐसा क्यों कर रहे थे? मेरा गुनाह क्या था? मुझे अधिकार प्राप्त है कि मैं अपने जीवन को स्वतंत्र रूप से जीऊं, तो फिर उसके बीच कोई क्यों बाधक बनता है?···फिर भी वैशालिकों ने···?

"पूज्यश्री! मैं आपसे पूछना चाहती हूं जिस दिन वैशाली के युवकों की

एकता के लिए मैंने सारे अरमानों को धूल में मिला दिया था, उस समय गणसभा के बीच आपने क्या-क्या वचन नहीं दिए थे ? मेरे पद-गौरव का चित्रांकन कितने नयनरंजक रंगों से किया गया था। और आज वैशाली के नवजवान जनपदकल्याणी को नगरनारी या वारवधु मानते हैं ? वे क्या मुझे अपनी काम-वासना की पूर्ति का साधन मानते हैं ? मैं यह सब क्यों सहन करूं !" आम्रपाली ने कहा।

प्रियतमा के ये शब्द सुनकर बिंबिसार अवाक् रह गया। गणनायक तो आम्रपाली को बिंबिसार से निवृत्त होने के लिए समझाने आए थे, पर आम्रपाली ने एक नया प्रश्न उपस्थित कर डाला। दो-चार क्षण मौन रहकर गणनायक बोले—"बेटी ! भीड़ में सदा गडरिया प्रवाह होती है। लोगों का यह स्वरूप आज का नहीं, सदा-सदा का रहा है। लोगों का रोष तेरे पर नहीं, पर···।"

"पर क्या ?"

"पुत्रि ! आज जो मृत्यु का सिलसिला चल रहा है, उसमें विरोधी राज्य का हाथ है, ऐसा लोगों को मानना पड़ रहा है। और आज युवराज···।"

"पूज्यश्री ! जनपदकल्याणी वैशाली गणतंत्र की रक्षा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। उसने मंगलपुष्करणी में स्नान किया है। उसने समग्र वैशाली का विश्वास प्राप्त किया है। ऐसी जनपदकल्याणी वैशाली का विनाश चाहे या करे, यह बात गले नहीं उतरती। वह अपने यहां षड्यंत्रकारी को आश्रय दे, यह कैसे हो सकता है ?"

गणनायक बोले—"मुझे संशय नहीं है, किन्तु गणसभा के अन्यान्य सदस्यों को संशय है और वे बिंबिसार को इस षड्यंत्र का नायक मानते हैं।"

"आप क्या मानते हैं ?"

"यदि मैं इन्हें षड्यंत्रकारी मानता तो यहां आता ही नहीं। परंतु महा-बलाधिकृत आदि उच्च पदस्थ सभी व्यक्ति बिंबिसार के प्रति संशयशील हैं, इसलिए पुत्रि !···" गणनायक कहते-कहते रुक गया।

"आगे कहें, आज्ञा दें, मार्ग सुझाएं, हिचकें नहीं।" आम्रपाली ने कहा।

बिंबिसार सारी बातें ध्यान से सुन रहा था।

"यदि मेरे पर संशय है तो क्या आप यही मार्ग बताएंगे कि मैं वैशाली छोड़ कर चला जाऊं ?" बिंबिसार ने कहा।

"आपने मेरा मन पढ़ लिया।" कहकर सिंहनायक हंस पड़े।

"किन्तु ऐसा होना अशक्य है। अन्याय और असत्य को सहना मेरे लिए शक्य नहीं है। मेरे स्वामी किसी भी प्रकार से इस षड्यंत्र में शामिल नहीं हैं।" आम्रपाली ने रोष भरे स्वरों में कहा।

"पाली ! तुम नहीं जानती। युवराज की अनुपस्थिति में भी यदि कोई मृत्यु

की घटनाएं होंगी तो लोगों का संशय काफूर हो जाएगा। फिर उनके यहां आने में कोई बाधा नहीं होगी। यह एक व्यावहारिक समाधान है समस्या का।" गणनायक बोले।

प्रियतम का वियोग !

"नहीं, नहीं, एक क्षण के लिए भी सह नहीं सकूंगी। चित्त की प्रसन्नता यदि लुप्त हो जाती है तो फिर जीवन ही क्या ?···फिर भी बापू ! मैं इस विषय में विचार करूंगी और कल ही मैं अपना निर्णय बता दूंगी।" आम्रपाली ने कहा।

सिंहनायक वहां से विदा हो गए।

दूसरे दिन।

आम्रपाली ने प्रातः होते-होते अपनी परिचारिका माधविका के साथ एक संदेश गणनायक को भेज दिया। गणनायक उस समय पूजागृह में जाने वाले ही थे कि दासी ने वह संदेश का पत्र उनके हाथ में दे दिया। उसमें लिखा था—'मेरे प्रियतम संपूर्ण रूप से निर्दोष हैं। निर्दोष को दोषी की आशंका से कुछ समय के लिए भी दूर करना, यह मेरा और उनका—दोनों का अपमान है। केवल अनुमान के आधार पर किसी को दोषी मानकर उसको अपराध के कटघरे में खड़ा करना महान् अन्याय है। इसलिए मैं अपने प्रियतम का त्याग कभी नहीं कर सकूंगी। यह मुझे प्राप्त अधिकार है। इसका मैं आज प्रयोग करती हूं।'

आम्रपाली का संदेश पढ़कर गणनायक चिंतित हो गए। उन्होंने समस्या के समाधान के लिए आज रात्रि में अपने ही भवन में एक गोष्ठी का आयोजन किया। उसमें अष्टकुल के अग्रणीय व्यक्तियों तथा महाबलाधिकृत, चरनायक, कुमार शीलभद्र आदि को पृथक्-पृथक् निमंत्रण भी भेज दिए।

कुमार शीलभद्र तो आज रात्रि में कादंबिनी से मिलने जाने वाला था। आज मध्याह्न के पश्चात् कादंबिनी के साथ नैश-भ्रमण की योजना बनाने वाला था। परंतु सिंह सेनापति के निमंत्रण के कारण उसे कादंबिनी से मिलने का दिन बदलना पड़ा। उसने कादंबिनी को कहला दिया—"आज महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए रुकना पड़ा है। कल मिलन होगा।"

कादंबिनी का यह शिकार आज छिटक गया। परंतु इस संदेश से कादंबिनी का चित्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वह जानती थी कि रूप और यौवन का प्यासा रूप और यौवन की धधकती ज्वाला में आज नहीं तो कल अवश्य ही जलकर भस्म हो जाएगा।

अष्टकुल के गणमान्य व्यक्ति सिंह सेनापति के यहां एकत्रित हुए और उसी विषय पर गंभीर चर्चाएं चलीं। सभी का एक ही अभिप्राय था कि जब तक मूल

षड्यंत्रकारी का पता न चले तब तक संदेहास्पद व्यक्ति बिंबिसार के विषय में कुछ न कुछ सोचना ही पड़ेगा। और जनता के रोष को शांत करना होगा।

सिंह सेनापति आम्रपाली से मिलने पुनः सप्तभूमि प्रासाद में गए। उन्होंने बिंबिसार और आम्रपाली से अनेक प्रकार से विचार-विमर्श किया। बात ही बात में बिंबिसार बोले—"पूज्यश्री ! आप मुझे अपने भवन में नजरबंद कर रखें। फिर आप सही दोषी की खोज करें।"

"निर्दोष को कारागार का बंदी नहीं बनाया जा सकता···निर्दोष को किसी भी प्रकार की यातना नहीं दी जा सकती। यदि ऐसा होता है तो न्याय देवता का हृदय फट जाएगा।" आम्रपाली ने कहा।

गणनायक ने कहा—"पाली ! तुम जो बात कहती हो वह सच है···परन्तु इससे भी बड़ी हानि यह हो सकती है कि मगध के युवराज को नजरबंद किया गया है, उन्हें कारावास में रखा गया है। यह बात छिपी नहीं रह सकती। जब यह बात राजगृह में जाएगी तो अकारण ही युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हो जाएगी। इसलिए मैंने जो उपाय बताया है कि युवराज को अभी यहां नहीं रहना चाहिए, यह उत्तम मार्ग है।"

गणनायक ने और भी अनेक प्रकार से आम्रपाली को समझाया और दूसरे दिन पर बात छोड़कर चले गए।

दूसरे दिन।

आम्रपाली और बिंबिसार—दोनों ने उसी चर्चा को विविध पहलुओं से चर्चित किया और अंत में एक निर्णय पर पहुंचे।

आम्रपाली ने माध्विका के साथ एक संदेश गणनायक के पास भेजा। उसमें लिखा था—'वैशाली के कल्याण का संरक्षण मेरा प्रथम कर्त्तव्य है। इसी को क्रियान्वित करने के लिए मैं आप द्वारा निर्दिष्ट मध्यम मार्ग का अवलंबन लेकर अपने प्राणप्रिय प्रियतम को कुछ दिनों के लिए वैशाली से बाहर भेज रही हूं। किन्तु वे अत्यंत निर्दोष हैं। यह बात आपको मूल दोषी को पकड़ कर सिद्ध करनी होगी।'

जब यह संदेश सिंह सेनापति को मिला तब वे अत्यंत आनंदित हुए। उन्होंने प्रत्युत्तर में एक पत्र लिखा—'पाली ! सचमुच तुमने उदारता और बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि अब मैं निश्चिन्तता से सही अपराधी की खोज कर लूंगा। मेरा अंतर्मन उन्हें कभी दोषी मानने के लिए तैयार नहीं है। तुम एकाध सप्ताह में ही उन्हें अन्यत्र विदा कर देना। उनका प्रस्थान अत्यन्त गुप्त रहे, यह ध्यान रखना है। आज गणसभा में विशिष्ट सदस्य एकत्रित होंगे, उस समय मैं अन्य कोई भी चर्चा न करते हुए गणतंत्र के गौरव के लिए

तुमने जो त्याग और बलिदान किया है, उसी को उभार कर रखूंगा। तुम्हारे प्रति मेरे मन में जो मान और श्रद्धा थी वह इस घटना से सहस्रगुना बढ़ी है।'

माध्विका ने गणनायक का पत्र आम्रपाली को दिया।

आम्रपाली और बिंबिसार ने वह पत्र पढ़ा। बिंबिसार बोला—"प्रिये! तेरे त्याग का यह यशोगान बन जाएगा···।"

आम्रपाली की आंखों से आंसू टपक पड़े। वह सकरुण स्वर में बोली—"त्याग का यशोगान! लोगों को क्या पता कि संसार के सारे यशोगान अरमानों की राख पर ही लिखे जाते हैं।"

३६. शीलभद्र की ईर्ष्या

रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त हो, उससे पूर्व ही अष्टकुल के गणश्रेष्ठ और आगेवान् व्यक्ति एक बार और गणनायक सिंह के भवन पर एकत्रित हो गए।

सिंह सेनापति ने सबका यथायोग्य स्वागत किया और अपने भवन के एक विशाल खंड में सबको बिठाया। ग्रीष्मऋतु का उत्तरकाल चल रहा था। ऊष्मा का वातावरण था। पर गणनायक के खंड में वातायन के द्वारा पवन का निर्गमन-आगमन हो रहा था। खंड कुछ शीतल हो रहा था।

सबके अन्त में कुमार शीलभद्र आया और गणनायक तथा अन्यान्य गण सदस्यों को प्रणाम कर अपने लिए निर्धारित आसन पर बैठ गया।

गणनायक ने कहा—"अब चर्चा प्रारंभ की जाए।"

कुमार शीलभद्र बोला—"महाराज! आज सबसे महत्त्व की चर्चा है मगध के युवराज का···मैंने आज नगरवासियों से जो सुना है उससे लगता है कि इस प्रश्न का समाधान शीघ्र ही नहीं निकाला गया तो संभव है जनपदकल्याणी के गौरव की परवाह किए बिना ही लोग सप्तभूमि प्रासाद पर आक्रमण कर दें।"

गणनायक ने कहा—"कुमार! आपका कथन यथार्थ है। मैं कल ही आम्रपाली और बिंबिसार से मिला था। मैंने उनके साथ विविध प्रकार से चर्चाएं की हैं। मैंने अपनी दृष्टि से युवराज को परखा है, परीक्षा की है। मुझे यह विश्वास हो गया कि बिंबिसार इस षड्यंत्र से परे हैं। और वे इससे सर्वथा अजान हैं। युवराज कहते हैं कि वे कभी सप्तभूमि प्रासाद से बाहर नहीं निकले और न कोई बाहर का आदमी उनसे मिलने आया है। बिंबिसार के इस कथन का समर्थन आम्रपाली करती है। वैशाली के राजपुरुषों की मौत का गुप्त चक्र चल रहा है। इसमें युवराज सर्वथा लिप्त नहीं हैं। मुझे इसका पूरा विश्वास है।"

शीलभद्र ने तत्काल आवेश में कहा—"श्रीमन्! आपने बिंबिसार को सर्वथा निर्दोष माना है। इसका प्रमाण क्या है?"

गणनायक बोले—"कुमारश्री! अनुभव सबसे बड़ा प्रमाण होता है। दोषी

व्यक्ति का चेहरा स्वयं उसके दुष्ट कृत्य की झलक दे जाता है। वह कितना ही चालाक क्यों न हो, कितनी ही निपुणता से वह चालाकी क्यों न करे, वह अपनी चालाकी के जाल में फंस जाता है।

"दूसरी बात है कि आम्रपाली वैशाली के कल्याण की प्रतिज्ञा ले चुकी है। वह अपने प्रियतम को निर्दोष मानती है। वह कहती है—मैं वैशाली के शत्रु को कभी आश्रय नहीं दे सकती। फिर भी यदि पुष्ट प्रमाणों से यह प्रमाणित किया जाए कि युवराज बिंबिसार इस षड्यंत्र के मुखिया हैं तो मैं स्वयं उन्हें संथागार के वधस्तंभ पर ले आऊंगी और मैं कभी उनके वध का प्रतिरोध नहीं करूंगी। ये कितने वजनदार शब्द हैं। मैंने बिंबिसार से पूछा—उन्होंने मुक्त मन से कहा था। जब तक यथार्थ गुनहगार न पकड़ा जाए तब तक आप मुझे कारागार में डाल दें। किन्तु कुमारश्री ! मुझे उनका यह अनुरोध उचित नहीं लगा।"

"क्यों ?" युवराज को कारागार में डाल ही देना चाहिए।" महाबलाधिकृत ने कहा।

तत्काल सिंहनायक बोले—"किस आधार पर हम उन्हें कारावास में डालें। षड्यंत्र से बिंबिसार जुड़े हुए हैं, यह हम अभी प्रमाणित नहीं कर सके हैं। बिंबिसार मगध के युवराज होने के साथ-साथ जनपदकल्याणी आम्रपाली के प्रियतम भी हैं। उन पर केवल आशंका से दोष मढ़ना, कहां तक उचित हो सकता है। और युवराज को कारावास में डालने का परिणाम क्या होगा, क्या आपने कभी इसकी कल्पना की है ?"

सभी अवाक् होकर सिंहनायक की ओर देखने लगे। महाराज नंदीवर्धन ने कहा—"उसका परिणाम अत्यन्त दुःखद होगा। पहली बात तो यह होगी कि निर्दोष को दण्डित न करने की अपनी न्यायनीति कलंकित हो जाएगी···और दूसरी ओर मगधेश्वर को वैशाली से युद्ध करने का बहाना मिल जाएगा···इसलिए सेनापति महोदय ! हमें बिंबिसार को बंदी नहीं बनाना चाहिए।"

सिंहनायक ने प्रसन्न स्वरों में कहा—"महाराज ! आपने जो कहा, वह सच है। मगधेश्वर इस बहाने अवश्य ही वैशाली को रौंदने का प्रयास करेंगे ! हमें जब तक पूरे प्रमाण न मिलें तब तक किसी भी प्रकार अपमानजनक कदम नहीं उठाना चाहिए।"

शीलभद्र बोल उठा—"मैं गणनायक को यह विश्वास दिलाना नहीं चाहता कि हमारा सैन्यबल मगधेश्वर के अरमानों को धूल में मिलाने में समर्थ है। मैं यह भी नहीं चाहता कि अकारण ही युद्ध का वातावरण बने। परन्तु जनता में प्रतिदिन आक्रोश बढ़ता जा रहा है। यहां के लोग यह कभी सहन नहीं कर सकते कि जनपदकल्याणी का प्रियतम कोई मागध हो। यदि आम्रपाली इस परदेशी प्रियतम को अपने भवन में रखेगी तो जनता का आक्रोश कभी समाप्त नहीं होगा।

ऐसी स्थिति में जनता कब क्या कर डाले, यह कहा नहीं जा सकता।"

गणनायक बोले—"कुमारश्री ! आपका कथन प्रासंगिक और समयोचित है। जनपदकल्याणी भी बहुत बुद्धिमती है। उसी ने इस प्रश्न का उचित समाधान खोज निकाला है···"

"समाधान क्या है ?" शीलभद्र ने पूछा।

"वैशाली के कल्याण के लिए तथा सही गुनहगार को खोज निकालने के लिए जनपदकल्याणी आम्रपाली अपने प्रियतम का त्याग करने के लिए तैयार हुई है।" सिंहनायक ने बलपूर्वक यह बात कही।

सभी सदस्यों के मन पर इसका असर हुआ। सभी बोल उठे—"जनपद-कल्याणी वास्तव में ही जनपदकल्याणी है···उसका निर्णय सर्वोत्तम है।"

सिंहनायक बोले—"मैंने आम्रपाली को यह संदेश भी दिया है कि एकाध सप्ताह में ही बिंबिसार को वैशाली की सीमा से बाहर भेज दिया जाए।"

सभी ने सिंहसेनापति के निर्णय का समर्थन किया। शीलभद्र ने भी कोई विरोध नहीं किया। किन्तु उसके मन में ईर्ष्या की एक चिनगारी जल रही थी, वह धधक उठी। उसके मन में आम्रपाली को अपनी बनाने का एक मनोरथ पल रहा था। और यह मनोरथ आखेट के षड्यंत्र में टूट गया था। उसके बाद वह और प्रयत्न करे, उससे पूर्व ही आम्रपाली आचार्य जयकीर्ति के वेश में आए हुए बिंबिसार की अंकशायिनी बन चुकी थी।

शीलभद्र को यह गहरी चोट लगी, फिर भी वह इस विषय में कुछ कर सकने में असमर्थ था। इसलिए वह मन मारकर बैठ गया था।

जब बिंबिसार का रहस्य खुला और यह आशंका हुई कि वह षड्यंत्र से जुड़ा हुआ है तब शीलभद्र को प्रतिशोध लेने का मौका मिल गया। उसी ने अपने साथियों द्वारा बिंबिसार के विरुद्ध विरोध का बवंडर पैदा किया था।

उसे यह आशा नहीं थी कि यह प्रश्न इतनी सहजता से सुलझ जाएगा। वह चाहता था, छोटा-सा युद्ध और बिंबिसार का वध। किन्तु सिंह सेनापति के प्रयत्न से यह विवाद ऐसे ही समाहित हो गया।

आम्रपाली से सम्बन्धित बिंबिसार का प्रश्न समाहित हो गया। सभी सेनापति के भवन से प्रसन्न चित्त होकर बाहर आए। शीलभद्र भी वहां से विदा हुआ। परन्तु उसके मन में हर्ष नहीं था। बिंबिसार ऐसे ही वहां से निकल जाए, यह भी उसे इष्ट नहीं था। यह भी सच था कि जब तक बिंबिसार जीवित रहेगा, तब तक आम्रपाली को अपनी नहीं बनाया जा सकता। इसलिए यह येन-केन-प्रकारेण बिंबिसार को नष्ट करना चाहता था।

शीलभद्र वहां से रवाना होकर अपने भवन की ओर न जाकर एक मित्र के घर पहुंचा। अपने मित्र को अचानक आया देख, मित्र असमंजस में पड़ गया। वह

उठा और मैरेय से स्वागत करते हुए बोला—"मित्र ! कैसे आना हुआ ?"

"बंधुवर ! गणनायक अपने कार्य में सफल हो गए···किन्तु अपना कार्य अधूरा ही रह जाएगा।" शीलभद्र ने कहा।

"क्या हुआ ?"

"एकाध सप्ताह में आम्रपाली अपने प्रियतम को विदा कर देगी।"

"सदा के लिए ?"

"ऐसा कोई खुलासा नहीं हुआ है। किन्तु दो-चार महीनों के लिए तो होगा ही।"

मित्र बोला—"कुमारश्री ! बिंबिसार सदा-सदा के लिए दूर हो जाना चाहिए। वह पुनः वैशाली में आए ही नहीं, ऐसा कोई उपाय करना चाहिए।"

"ठीक है···किन्तु यह कार्य जनता ही कर सकती है और कोई नहीं कर सकता।" शीलभद्र बोला।

मित्र सोच में पड़ गया···दो क्षण मौन रहकर वह बोला—"हूं···तो कल रात्रि में मैं अपने स्थान पर सबको बुला लूंगा···आप भी आएं···हम सब मिलकर बिंबिसार को समझ लेंगे।"

शीलभद्र विचारमग्न हो गया। उसे कल रात कादंबिनी से मिलना था···। कोई बात नहीं···पहले इस समस्या का समाधान करके फिर कादंबिनी से मिल लूंगा···यह सोचकर बोला—"ठीक है, मैं कल रात्रि के प्रथम प्रहर के आसपास आ जाऊंगा। अन्यान्य सभी साथियों को एकत्रित करने की जिम्मेवारी तुम्हारी होगी।"

"आप निश्चिन्त रहें।" मित्र ने हंसकर कहा।

और मैरेय का पान कर शीलभद्र अपने भवन की ओर चल पड़ा।

रात भर वह करवटें बदलता रहा। कादंबिनी उसके मानस-पटल से ओझल नहीं हो रही थी। और बिंबिसार को कैसे नष्ट किया जाए, यह योजना भी उसके समस्त ज्ञानतंतुओं को झंकृत कर रही थी। इन सब विचारों की उधेड़बुन में शीलभद्र की सारी रात बीती। जब वह प्रातःकाल शय्या से उठा, तब उसने दो विचार निश्चित किए थे···एक विचार तो यह था कि मध्याह्न के पश्चात् कादंबिनी से मिलने जाना है और दूसरा विचार था बिंबिसार को नष्ट करने के लिए आकस्मिक ढंग से सप्तभूमि प्रासाद पर सशस्त्र आक्रमण किया जाए और बिंबिसार को सदा-सदा के लिए सुला दिया जाए।

इस प्रकार निर्णय होने पर विचारों की उधेड़बुन समाप्त हो गई। विचारों की उथल-पुथल तब ही मिटती है जब वे निर्णयात्मक बनते हैं।

निश्चित समय पर शीलभद्र कादंबिनी के भवन पर पहुंचा। परिचारिका ने उसका यथायोग्य स्वागत किया और एक विशिष्ट खंड में बिठाकर ग्रीष्मपानक

का पात्र उपहृत किया।

कुछ ही क्षणों के पश्चात् मीठी मुसकान से वातावरण को मुखरित करती हुई और यौवन की ऊष्माप्रेरक तरंगों से पूरे वातावरण को तरंगित करती हुई कादंबिनी उस खंड में प्रविष्ट हुई।

कादंबिनी को देखते ही शीलभद्र आसन से उठा। उससे पूर्व उसने कादंबिनी को नृत्य में देखा था और तब से ही उससे मिलने की लालसा उसमें समा गई थी। आज कादंबिनी को साक्षात् देखकर उसने सोचा कि कादंबिनी नृत्यांगना के वेश में जितनी मादक लगती थी, उससे सौ गुना मादक वह स्वाभाविक वेश में लग रही है। वह बोला—"देवी की जय हो।"

कादंबिनी ने मुसकराते हुए कहा—"आयुष्मान् की जय-विजय हो।"

शीलभद्र अपने आसन पर बैठते हुए बोला—"आज रात को दोनों के मिलन का···"

बीच में ही कादंबिनी बोल उठी—"प्रिय! आज तो मुझे क्षमा ही मांगनी पड़ेगी···"

"क्यों?"

"आज रात्रि में मुझे नृत्य करना है।"

"बहुत अच्छा, मुझे भी आज रात्रि में दूसरा काम है, यह कहने के लिए ही मैं आया हूं···दो-तीन दिन बाद जो रात तुमको अनुकूल हो···।"

"प्रिय! आज सोमवार है···बुधवार अथवा शुक्रवार जो भी आपको अनुकूल हो, वही मेरे लिए अनुकूल रहेगा।" कादंबिनी ने मुसकरा कर कहा।

एक परिचारिका मैरेय के दो पात्र लेकर आई। उसने एक पात्र शीलभद्र के हाथ में दिया और दूसरा पात्र कादंबिनी को सौंपा।

मैरेयपान करते हुए शीलभद्र बोला—"देवि! शुक्रवार उत्तम है···मैं भी तब तक एक चिन्ता से निवृत्त हो जाऊंगा···आपके सत्कार के लिए मेरा भवन···।"

"प्रिय! सत्कार नहीं, मिलन कहें···मस्ती कहें···दो यौवनों की एक सरस कविता कहें···सत्कार भवन में शोभित हो सकता है पर मिलन तो जहां मुक्ति हो, आनंद हो, नीरवता हो वहीं शोभित होता है।" कादंबिनी ने मैरेय का एक घूंट मात्र लेकर पात्र को पास में पड़ी त्रिपदी पर रख दिया।

"ओह! देवि! आपने मिलन की सुन्दर कल्पना की है···आप जहां कहेंगी, वहां हम चलेंगे···।"

"मैं तो वैशाली प्रदेश से परिचित नहीं हूं। यहां आने के पश्चात् मैं तो भवन से बाहर भी नहीं निकली हूं। मैंने सुना है कि वैशाली के पास एक नदी है।"

"हां, बहुत सुन्दर नदी।"

"तो हम जलविहार करने निकलेंगे। यौवन और काम को जल से प्रेरणा

मिलती है, उत्तेजना मिलती है।"

"बहुत सुन्दर विचार···"

"तो शुक्रवार की रात्रि के प्रथम प्रहर के बीत जाने पर आप एकाकी यहां···।"

"एकाकी ?"

"आपने मुक्त मस्ती का आनंद नहीं लूटा है, ऐसा प्रतीत होता है।" कादंबिनी तिरछी नजरों से शीलभद्र की ओर देखती हुई बोली।

"वाह देवि ! आपका मन अत्यन्त रस भरपूर है परन्तु···"

"क्या ? बिना हिचक के कहें।"

"जल-क्रीड़ा से हम वापस कब लौटेंगे ?"

"जब आप चाहेंगे तब। प्रेमीजन की रातें दीर्घ नहीं होतीं···। परन्तु गत रात्रि की भांति आपके बदले आपका संदेश मिलेगा तो···।"

"देवि ! क्षमा मांग लेता हूं···कल एक महत्त्वपूर्ण कार्य आ गया था···अब ऐसा नहीं होगा···शुक्रवार की रात्रि में मैं अपना रथ लेकर···।"

बीच में ही कादंबिनी बोल उठी—"रथ नहीं···।"

"तब ?" शीलभद्र कादंबिनी की ओर एकटक देखता रहा।

"प्रिय ! आपकी प्रतिष्ठा अजोड़ है। यदि कोई देखेगा कि आप जैसा महान् व्यक्ति मेरी जैसी तुच्छ नर्तकी के साथ निशाभ्रमण के लिए निकला है तो मुझे लज्जा से मर जाना पड़ेगा···रथ पर नहीं, आप अकेले ही अपने अश्व पर चढ़कर आएं।···मैं भी अपने अश्व के साथ तैयार रहूंगी।"

दो क्षण सोचकर शीलभद्र बोला—"देवि ! आपकी दृष्टि बहुत गहरी है··· आप जैसा चाहेंगी वैसा ही होगा।"

यह चर्चा और अधिक लम्बी हो, उससे पूर्व ही लक्ष्मी परिचारिका खण्ड में प्रवेश कर कादंबिनी की ओर देखकर बोली—"देवि ! नृत्याचार्य आपकी प्रतीक्षा में बहुत समय से बैठे हैं।"

"ओह !" कहकर कादंबिनी अपने आसन से उठी और शीलभद्र की ओर देखकर बोली—"प्रियतम ! क्षमा करें···मुझे नृत्य की तैयारी करनी है···।"

शीलभद्र उठ खड़ा हुआ।

कादंबिनी ने कहा—"मेरा नृत्याभिनय देखने आज रात आप···।"

"यह मीठा निमन्त्रण मस्ती के अभिनय के अमानत में रखता हूं।" कहकर शीलभद्र कादंबिनी के पास आ गया।

कादंबिनी उसके कपोल पर हल्की-सी थापी देती हुई बोली—"आप तो रसावतार हैं।"

इतना कहकर वह कटाक्ष फेंकती हुई अपनी परिचारिका लक्ष्मी के साथ वहां

से चली गई।

३७. राग चन्द्रनंदिनी

रात्रि के द्वितीय प्रहर की अंतिम घटिका।

वसन्तगृह के सामने वाले उद्यान में एक लतामंडप में देवी आम्रपाली का नर्तकीवृन्द और आठ-दस परिचारिकाएं बैठी थीं। वहां एक मसृण गद्दी बिछी हुई थी। उस पर अभी कोई नहीं बैठा था।

मंडप के सामने वाले भाग में देवी आम्रपाली की वाद्यकार मंडली बैठी थी। वहां भी एक मसृण गद्दी अभी तक रिक्त ही थी। उसके पास महार्बिब वीणा पड़ी थी और धनंजय एक ओर बैठा था।

सभी देवी आम्रपाली और युवराज के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

आज की यह गोष्ठी आम्रपाली की भावना को साकार करने के लिए आयोजित की गई थी। क्योंकि सभी वाद्यकार और कलाकार युवराज बिंबिसार का वीणावादन सुनने के लिए तरस रहे थे।

देवी आम्रपाली ने सभी की इच्छा को जानकर अपने स्वामी से यह बात कही थी और बिंबिसार ने स्वीकृति दे दी थी, क्योंकि एक सप्ताह के भीतर उन्हें वैशाली तथा प्रियतमा और इस भवन के सुमधुर संस्मरणों को छोड़कर दूर-दूर चला जाना था।

उन्हें किस ओर जाना है, यह निर्णय उन्होंने धनंजय के साथ बैठकर कर लिया था। उन्होंने यह निश्चय किया था कि उज्जैनी एक सुन्दर, समृद्ध और कलाप्रिय नगरी है। वहां का राजा अति उग्र और प्रतापी होने पर भी वहां के नागरिक कलाप्रिय हैं। वहां दो-तीन महीने रहा जा सकेगा और नयी-नयी बातें भी जानी जा सकेंगी।

इस प्रकार बिंबिसार ने उत्तर भारत से कहीं दूर जाने का निश्चय किया था। अभी तक उन्होंने अपना यह अभिप्राय प्रियतमा को नहीं बताया था। वे यही चाहते थे कि विदाई के समय ही वे अपनी प्रियतमा को यह बात बताएंगे। बिंबिसार जानते थे कि आम्रपाली इतनी दूर जाने की बात मानेगी नहीं। वह वैशाली के निकट ही रहने की बात पसन्द करेगी। इसलिए अपना निर्णय विदाई के समय ही ज्ञात कराने की बात सोची थी।

धनंजय ने यहां के ये सारे समाचार महाराज प्रसेनजित को भेज दिए थे। वह निश्चिन्त था।

रात का दूसरा प्रहर बीत गया। इतने में ही बिंबिसार, आम्रपाली और माध्विका—तीनों लतामंडप में प्रविष्ट हुईं। वहां बैठे सभी लोगों ने खड़े होकर

उनका अभिवादन किया। सभी अपने-अपने आसन पर बैठ गए।

आचार्य इलावर्धन मृदंग का साथ देने के लिए बिंबिसार के दाहिनी ओर बैठ गए। बिंबिसार ने मन ही मन देवी वीणापाणि का स्मरण कर वीणा हाथ में ली। स्वरमेल प्रारम्भ किया। कुछ ही क्षणों में स्वरमेल सध गया। आचार्य इलावर्धन ने भी मृदंग का स्वरमेल किया।

आम्रपाली स्थिर नजरों से अपने प्राणाधिक प्रियतम की ओर देख रही थी। उसने मन ही मन सोचा, एक ही सप्ताह के भीतर प्रियतम को यहां से जाना पड़ेगा। प्रेम, रंग, ऊर्मि, भावना, आनन्द, परिहास और जीवन का सौरभ चूर-चूर हो जाएगा।

इन विचारों के कारण उसका चन्द्रानन मुरझा रहा था।

आज भी वह प्रफुल्ल नहीं थी। चिन्तारूपी निस्तेजता उसकी आंखों और वदन पर उभर रही थी। देखने पर लगता था कि आम्रपाली किसी रोग के कारण निस्तेज हो रही है।

नारी जब मां बनती है तब उसकी काया में एक तेज उभरता है। नये जीव के उदरस्थ होने पर काया का रंग निखर उठता है।

फिर भी आम्रपाली चिन्ता के कारण निस्तेज दीख रही थी।

चिन्ता मनुष्य के तेज को लील जाती है।

मृदंग का स्वरमेल हो गया।

आम्रपाली के वीणावादक आचार्य पद्मनाभ ने पूछा—"महाराज! किस राग की आराधना करनी है?"

बिंबिसार ने कहा—"राग नहीं, आचार्य! रागिनी के सामने तो देखें··· देवी के नयनों में और वदन में चिन्ता उभरती-सी नजर आ रही है।"

सभी ने देवी की ओर देखा। ओह! शतदल कमल जैसे वदन पर क्या हो रहा है?

मृदंगवादक ने कहा—"देवी के चित्त को रागमोहिनी अवश्य ही प्रसन्न करेगी।"

बिंबिसार बोले—"मैं चंद्रनंदिनी राग की आराधना करूंगा।"

"चंद्रनंदिनी?" आचार्य पद्मनाभ ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"हां, आचार्य! भगवती पार्वती के विषाद को दूर करने के लिए भगवान् शंकर ने चंद्रनंदिनी राग का निर्माण किया था। चंद्रनंदिनी के स्पर्श के बिना चंद्रानना का विषाद दूर नहीं हो सकता।" कहकर बिंबिसार ने आम्रपाली की ओर देखा। आम्रपाली कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में यह भावना आ रही थी कि हृदय को झकझोरने वाली वियोग की वेदना भरी रागिनी यदि छेड़ी जाती है तो वह उत्तम है।

बिंबिसार ने वीणा पर स्वरान्दोलन प्रारम्भ किया।

सप्तभूमि प्रासाद के वसंतगृह में इस प्रकार चंद्रनंदिनी राग की आराधना हो रही थी और नगरी के पूर्वांचल में स्थित एक मकान में एक हजार लिच्छवी युवक अपने नेता शीलभद्र को सुनने के लिए एकत्रित हुए थे। शीलभद्र के तूफानी प्रवचन से सभी युवकों के हृदय में आग लग गई और उस आग में मगध के युवराज बिंबिसार को भस्मसात् करने की उत्कट लालसा उभर आई। लिच्छवी युवक बार-बार चिल्ला रहे थे—"बिंबिसार का वध करो। जनपदकल्याणी को शत्रु के शिकंजे से मुक्त करो। वैशाली के कलंक को धो डालो।"

जिसके लिए ये नारे लगाए जा रहे थे, वह बिंबिसार वीणावादन में मस्त बन रहा था। चंद्रनंदिनी राग सारे वातावरण में नया उल्लास, नयी प्रेरणा, सौरभ और जीवन की माधुरी बिछा रहा था।

वहां के सभी उपस्थित जन बिंबिसार के वीणावादन को सुनकर अपने आपको धन्य-धन्य अनुभव कर रहे थे।

चिन्ता से निस्तेज बनी हुई आम्रपाली चन्द्रनन्दिनी के स्वर-स्पर्श से धीरे-धीरे प्रसन्न और प्रफुल्ल बन रही थी।

हृदय का स्पर्श करने वाला राग अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहता।

चंद्रनंदिनी राग से पार्वती का विषाद दूर हुआ था। आज आम्रपाली का विषाद घुल रहा था। रागिनी जीवन के परम आनन्द का स्वरूप व्यक्त कर रही थी और एक ही संदेश दे रही थी—चिन्ता, निराशा, शोक और दर्द—ये सभी मानवीय मन से सृष्ट ज्वालाएं हैं। प्रेम, आनन्द, समर्पण और उल्लास ये ही जीवन की परम शांति के सूत्र हैं।

रागिनी आम्रपाली के अन्तर् में आकर कह रही थी—"अरे, तू तो पूर्व भारत की अलबेली अप्सरा है, अलबेली नृत्यांगना और अलबेली चिर-यौवना है। तेरी मदभरी मस्ती संसार की एक माधुरी है। तुझे कोई दर्द नहीं है, कोई वेदना नहीं है। तू स्वयं आशा और आनन्द की प्रतिमा है···तू अपनी प्रफुल्लता से अपने स्वामी को धन्य बना। इसके पाथेय में दर्द मत उंडेल। उसमें आशा के अमृत डाल। वियोग से क्यों कांप रही है? वियोग तो प्रेमियों का तप है, मूल्यांकन का नाप है···।"

जैसे-जैसे रागिनी खिलती गई, वैसे-वैसे आम्रपाली के वदन पर स्वाभाविक श्री दिव्य होने लगी।

चंद्रनंदिनी राग की आराधना करते-करते एक प्रहर बीत गया। चौथा प्रहर प्रारम्भ हुआ। रागिनी कब पूरी होगी, यह कल्पना किसी को नहीं हो सकती थी···सभी उस राग में तन्मय हो गए थे।

बिंबिसार मात्र दो ग्राम पर ही क्रीड़ा करते थे। वे जानते थे कि तीन ग्रामों

पर यदि रागिनी को चढ़ाया जाएगा तब आम्रपाली अपनी सगर्भावस्था का भान भूलकर नृत्य करने के लिए खड़ी हो जाएगी। इस भय से वे वीणा पर केवल दो ग्राम का ही स्पर्श कर रहे थे।

इधर जीवन की यह सौरभ महक रही थी और उधर लिच्छवी युवक शीलभद्र के नेतृत्व में एकत्रित होकर चिनगारियां उछाल रहे थे।

वहां यह विचार हो रहा था कि बिंबिसार को कैसे खत्म किया जाए। कोई कहता किसी बहाने बिंबिसार को भवन से बाहर बुलाकर उसके मस्तक को धड़ से अलग कर दिया जाए।

ये विविध विचार सुनकर शीलभद्र ने कहा—"मित्रो ! याद रखो, लिच्छवी युवक सदा आमने-सामने होकर ही दो हाथ दिखाते हैं···इसलिए कपट से बिंबिसार को मारना हमारे लिए शोभास्पद नहीं है।"

"कुमारश्री ! आप ही हमारे मार्गदर्शक हैं। आप ही हमें उपाय बताएं।" एक लिच्छवी युवक ने कहा।

शीलभद्र बोला—"आज सोमवार है। शुक्रवार के प्रातःकाल दो हजार व्यक्तियों को सप्तभूमि प्रासाद में अचानक घुसकर बिंबिसार को ललकारना चाहिए।"

सबको यह उपाय उचित लगा।

शीलभद्र ने सारी योजना अपने साथियों को समझा दी।

सभा विसर्जित हुई।

इधर सप्तभूमि प्रासाद में चंद्रनंदिनी रागिनी अपने पूर्ण यौवन में महाबिंब वीणा पर थिरक रही थी।

आम्रपाली अत्यन्त प्रसन्न थी।

राग आत्मा की प्रेरणा है। राग का असर मन पर हुए बिना नहीं रहता।

आम्रपाली उस समय अलबेली रानी के समान लग रही थी। उसके नयनों में मस्ती थी। वदन पर उल्लास था। अपने को महान् प्रियतम मिले हैं, यह गर्व उसे झकझोर रहा था।

परन्तु वह नहीं जानती थी कि मोहपीड़ित कुमार शीलभद्र शुक्रवार के प्रातःकाल सप्तभूमि प्रासाद पर आक्रमण कर उसके प्रियतम से रक्त से सारे प्रासाद को रंग कर अपनी आग को ठंडा करेगा।

बिंबिसार को भी इसकी कल्पना नहीं थी।

बिंबिसार अपनी प्रिया के नयनों की मस्ती देखकर अति प्रसन्न सो रहा था।

बिंबिसार ने चंद्रनंदिनी राग को सम्पन्न किया।

और उसी समय आचार्य इलावर्धन ने मृदंग को एक ओर रखकर बिंबिसार के चरणों में झुककर कहा—"महाराज ! आपका साथ दे सकूं, ऐसी स्थिति में मैं

नहीं रहा। राग ने मेरे मन को परवश कर डाला है।"

आम्रपाली अपने आसन से उठी और स्वामी के चरणों में नत होकर बोली—"स्वामी ! मेरा सारा विषाद अस्त हो गया है···।"

"प्रिये ! जहां आनन्द और जीवन है, जहां ज्ञान और प्रेम है वहां विषाद का अस्तित्व ही कैसे रह सकता है ?"

ग्रीष्म का उत्तरकाल चल रहा था। फिर भी वातावरण सौम्य और स्निग्ध था।

३८. आशा का दीप (१)

दूसरे दिन।

बिंबिसार ने प्रियतमा का हाथ पकड़कर कहा—"पाली ! मेरे प्रस्थान का शुभ दिन कौन-सा निश्चित किया है ?"

'मैंने एक ज्योतिषी को बुला भेजा है। वे अभी-अभी आते ही होंगे। माध्विका उन्हें लेने गई है।" आम्रपाली ने कहा।

"वे वृद्ध नैमित्तक ?"

"नहीं, ये तो ब्राह्मण कुंडग्राम के एक आचार्य हैं···वे कहीं नहीं जाते। पर मेरे बुलाने पर वे अवश्य आएंगे। मेरे पिता उनके परम मित्र थे। आचार्य भी मुझे कन्यातुल्य ही मानते हैं।"

दोनों के बीच यह वार्तालाप चल ही रहा था। इतने में ही माध्विका खंड में आई और बोली—"देवी की जय हो···"

"क्या हुआ ? आचार्य कब आएंगे ?"

"देवि ! आपका संदेश सुनकर आचार्य मेरे साथ आने के लिए तैयार हो गए। मैं उन्हें साथ लेकर आई हूं।"

"क्या वे बाहर खड़े हैं ?"

"नहीं अतिथिगृह में उनका स्वागत कर मैं आपको यह समाचार देने आई हूं। आप जैसी आज्ञा करेंगी वैसी ही मैं उनकी व्यवस्था कर दूंगी।" माध्विका ने कहा।

"आचार्य को यहीं ले आओ। एक दासी को कहना कि वह स्वर्ण का आसन यहां रख जाए।"

"जी।" कहकर माध्विका चली गई।

कुछ ही क्षणों में एक दासी उस खंड में स्वर्ण का आसन रखकर चली गई··· और माध्विका भी आचार्य देवानन्द के साथ खंड में प्रविष्ट हुई।

बिंबिसार और आम्रपाली ने खड़े होकर नमस्कार किया। आचार्य ने आशीर्वाद दिया।

आचार्य देवानन्द सत्तर वर्ष के थे। किन्तु शरीर स्वस्थ, सशक्त और सुन्दर था।

आम्रपाली ने अत्यन्त आदर के साथ आचार्य को आसन पर बिठाया। आचार्य ने पूछा—"पुत्रि ! कुशल तो हो न ?"

"आपके आशीर्वाद से सब कुशल है।" कहकर आम्रपाली ने आचार्य का चरण-स्पर्श किया। बिंबिसार ने भी आचार्य का चरण-स्पर्श किया।

बिंबिसार की ओर देखते हुए आचार्य ने आम्रपाली से पूछा—"भाग्यशाली का परिचय···?"

"मेरे स्वामी हैं···मगध के युवराज श्रेणिक बिंबिसार···" आम्रपाली ने विनम्र स्वरों में कहा।

आम्रपाली और बिंबिसार ने आचार्य की पुष्पों से पूजा की···दोनों ने पुष्पमाला भी आचार्य को पहनायी।

आचार्य ने पूछा—"बोल बेटी ! इस वृद्ध को क्यों याद किया ?"

आम्रपाली ने कहा—"मेरे स्वामी को बाहर जाना है। प्रस्थान का शुभ मूहूर्त्त आप निकालकर दें।"

"बस, इतना ही काम है ? तुझे कोई प्रश्न नहीं पूछना है ?" देवानन्दाचार्य ने कहा।

बिंबिसार बोले—"महात्मन् ! मेरी प्रिया सगर्भा है। एक वृद्ध नैमित्तिक ने कुछ संशयभरी बात कही थी···किन्तु वृद्ध दायण कुछ और ही कह रहा है। यदि आप इस विषय में कुछ कहें तो मेरा चित्त प्रसन्न होगा।"

देवानन्दाचार्य दोनों की ओर देखकर बोले—"पुत्रि ! उत्तम समाचार। भगवान् नटेश्वर तेरी सारी कामनाएं पूर्ण करेंगे।"

फिर आचार्य ने गणित कर कुंडली बनाई और युवराज के प्रस्थान के विषय में भी सोच लिया।

एकाध घटिका तक मन-ही-मन विचार-विमर्श कर आचार्य ने कहा—"आज गुरुवार है···अगले सोमवार को अच्छा दिन है···प्रातःकाल प्रथम प्रहर की दूसरी घटिका के इक्कीस पल पूरे होते-होते भवन से बाहर निकलना है और पश्चिम दिशा की ओर जाना है। यह मुहूर्त्त सर्वोत्तम, कार्यसिद्धिदायक और सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।"

"महात्मन् ! आप कृपा कर देवी के विषय में कुछ कहें।" बिंबिसार ने कहा।

आचार्य प्रश्नकुंडली की ओर देखते रहे। फिर आम्रपाली की ओर देखकर गम्भीर स्वरों में बोले—"पुत्रि ! तुझे कन्यारत्न की प्राप्ति होगी यह निश्चित है, और वह कन्या अत्यन्त रूपवती, संस्कारी और स्वस्थ होगी। किन्तु उसे मातृवियोग सहना पड़ेगा···कन्या के जन्म के पश्चात् यदि तू पचहत्तरवें दिन

कन्या का मुख देखेगी तो तेरी मृत्यु होगी। अथवा तुझे किसी-न-किसी रोग से आक्रान्त होना होगा। कन्या के जन्म के दो मास बीतने पर तुझे कन्या का त्याग करना होगा और जब तक कन्या सोलह वर्ष की नहीं हो जाएगी तब तक तू उसे देख नहीं पाए, ऐसी व्यवस्था भी करनी होगी।"

"ओह !" कहकर आम्रपाली अत्यन्त निराश हो गयी।

देवानन्दाचार्य बोले—"बेटी ! यदि गणित में मात्र एक अंश का अन्तर आ जाता तो तेरी कुक्षि से राजसिंहासन पर बैठने वाला महान् पुत्र जन्म लेता। मुझे प्रतीत होता है कि वृद्ध नैमित्तिक ने इस एक अंश के संशय के आधार पर कुछ स्पष्ट न कहा हो।"

"आचार्यदेव ! क्या आपने गणित का ठीक परीक्षण कर लिया ?" बिंबिसार ने पूछा।

"हां, महाराज ! मैंने तीन बार उसकी तपास कर ली है। मैंने जो भविष्य-फल कहा है, उसमें तनिक भी संशय नहीं है। इस प्रश्नगणित के विश्वास के लिए मैं ताडपत्र पर भविष्यफल लिखकर अभी दूंगा। कन्या कैसी होगी, यह सारा मैं उसमें बताऊंगा। पर शर्त एक ही है कि कन्या के जन्म के पश्चात् ही उसे पढ़ना होगा···।"

"क्यों, महाराज ?"

"तभी आपको मेरे कथन पर विश्वास होगा।"

ऐसा विचित्र भविष्यफल सुनकर आम्रपाली अत्यन्त हताश हो गयी।

बिंबिसार ने पूछा—"पिता को कन्यामुखदर्शन से कोई दोष तो नहीं लगेगा ?"

"नहीं, महाराज ! परन्तु जब आप पुनः देवी आम्रपाली से मिलेंगे तब आपकी कन्या यहां नहीं मिलेगी और आप अपनी कन्या को पूर्ण यौवन अवस्था में ही देख पाएंगे।" देवानन्द ने स्पष्ट कहा।

युवराज बिंबिसार और आम्रपाली—दोनों कुछ क्षणों के लिए विषण्ण हो गए। फिर उन्होंने स्वर्ण-मुद्राएं भेंट स्वरूप देकर आचार्य को विदाई दी।

आचार्य के जाने के पश्चात् बिंबिसार ने आम्रपाली से कहा—"पाली ! भविष्यवाणी की चिन्ता मन में नहीं रखनी चाहिए।"

"महाराज ! आचार्य देवानन्द ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड आचार्य हैं। इनका कथन कभी अन्यथा नहीं होता।" आम्रपाली ने कहा।

बिंबिसार ने प्रियतमा की निराशा को मिटाने के लिए इस बात को छोड़कर अन्य चर्चा प्रारम्भ की।

गुरुवार की रात्रि का अन्तिम प्रहर चल रहा था।

आम्रपाली और बिंबिसार—दोनों दो मसृण शय्या पर निद्राधीन थे। मन्द-मन्द समीर प्रवहमान था।

प्रातःकाल हुआ। शुक्रवार का सूर्य उदित हुआ।

आम्रपाली हड़बड़ाकर उठी। प्रासाद में भारी कलरव हो रहा था। बिंबिसार भी जाग गया। धनंजय बिंबिसार का धनुष-बाण लेकर वहां आ पहुंचा। वह बोला—"महाराज! युवकों ने सप्तभूमि प्रासाद पर सशस्त्र आक्रमण कर डाला है। देवी के रक्षक आक्रमणकारियों को बाहर निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं। दो हजार से भी अधिक लिच्छवी युवक हैं। अब कुछ ही समय में प्रासाद में प्रवेश कर जाएंगे।"

"मुझे भी यही संशय था।" कहकर आम्रपाली ने बिंबिसार का हाथ पकड़कर कहा—"महाराज! आप और धनंजय सुरक्षित रूप से बाहर निकल जाएं। सप्तभूमि प्रासाद में एक भूगर्भ-मार्ग है। उससे आप नगर के बाहर पहुंच जाएंगे। अष्टकुल के विशिष्ट व्यक्तियों तथा मेरे अतिरिक्त इस मार्ग की किसी को जानकारी नहीं है।"

बिंबिसार कुछ कहे, उससे पूर्व ही पांच-सात दासियां दौड़ी-दौड़ी आयीं। उनमें माध्विका भी थी। वह बोली—"देवि! लोग महाराज का वध करने के लिए आक्रमण कर रहे हैं। प्रासाद के रक्षकों के अथक प्रतिरोध के उपरांत भी कुछेक लिच्छवी युवक प्रासाद में घुस आए हैं। और आप वसंतगृह में हैं, यह सोचकर वे उसी ओर गए हैं।"

"माध्विका! भवन के पिछले भाग में तो कोई नहीं गया है न?"

"नहीं, देवि!···परन्तु कुछ ही समय में सारा प्रासाद उनसे घिर जाएगा, ऐसी सम्भावना है।"

आम्रपाली ने स्वस्थ स्वरों में कहा—"कोई बात नहीं है···तू जा और पिछली सोपानश्रेणी का द्वार खोल···मैं महाराजा को साथ लेकर अभी आती हूं। किसी भी उपाय से दो अश्व लेकर राघव पश्चिमी द्वार पर पहुंच जाए।"

"जी।" कहकर माध्विका चली गयी।

विचार करने का अवकाश नहीं था। आम्रपाली अपने खंड में गयी। एक पेटिका से उसने एक लम्बी चाबी निकाली और बिना विलम्ब किए वह बिंबिसार और धनंजय को साथ ले पिछली सोपानश्रेणी की ओर चल दी।

प्रासाद के नीचे भयंकर कलरव हो रहा था···'बिंबिसार को पकड़ो··· मारो···वैशाली के शत्रु का नाश करो···' ऐसी आवाजें आ रही थीं।

आम्रपाली भूगर्भ-गृह के पास आयी। उसने अपनी चाबी से द्वार खोला। सभी ने भीतर प्रवेश किया। भूगर्भ का द्वार पुनः बन्द कर दिया। उस खंड में भयंकर अंधकार था। दीपमालिका नहीं थी। फिर भी एक दीवार के पास

पहुंचकर आम्रपाली बोली—"स्वामिन्! अब आप निर्भय रहें···यही गुप्तमार्ग है। मशाल या दीपक नहीं है, इसलिए अंधकार में ही हमें चलना होगा।"

"प्रिये! इतना सब करने से तो आमने-सामने मुझे लड़ने दे।"

"महाराज! अभी तो आपको मेरी प्रार्थना माननी ही होगी।"

"तेरी जैसी इच्छा।" बिंबिसार ने कहा।

और आम्रपाली ने उस सघन अंधकार के बीच भी दीवार में लगी गुप्त-कल की खोज कर ली और कुछ ही क्षणों में वह दीवार एक ओर खिसक गयी।

आम्रपाली बोली—"प्राणेश! मेरे कंधे पर हाथ रखकर चलें। हमें सौ सोपान नीचे उतरना होगा।"

बिंबिसार ने प्रियतमा के कंधे पर हाथ रखा और धनंजय ने बिंबिसार के कंधे पर हाथ रखा।

आम्रपाली गुप्तमार्ग में प्रविष्ट हुई।

अंधकार सघन था···फिर भी आशा का दीप नयनों में तेज भर रहा था।

३९. आशा का दीप (२)

सप्तभूमि प्रासाद से निकलने वाला भूगर्भ मार्ग स्वच्छ और सुन्दर था, पर वह अंधकार से व्याप्त था। क्योंकि उतावली के कारण मशाल या दीपक की व्यवस्था वहां नहीं हो सकी थी। बिंबिसार ने प्रवास के अन्य साधन भी साथ नहीं लिये थे। बिंबिसार और धनंजय जिन कपड़ों में थे, उसी वेश में वे निकल पड़े थे।

महाबिंब वीणा भी भवन में ही रह गयी थी। रत्नाभरण की पेटिका भी शयनकक्ष में पड़ी थी। केवल धनुष-बाण दोनों के पास थे। इसके अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था।

माध्विका ने राघव को दो अश्व पश्चिम द्वार पर ले जाने की सूचना दे दी थी। लिच्छवी युवक भिन्न-भिन्न टोलियों में सप्तभूमि प्रासाद में घुस गए थे और वे बिंबिसार की खोज में लगे थे।

चार-छः युवक माध्विका को पहचानते थे। उन्होंने माध्विका को घेरकर पूछा—"वैशाली का शत्रु बिंबिसार कहां है?"

माध्विका बोली—"युवराज बिंबिसार और देवी आम्रपाली नगरी की दक्षिण दिशा में भ्रमण के लिए गए हैं।"

"ओह, वे कब लौटेंगे?"

"मैं कैसे बता सकती हूं। दोनों जल-विहार करेंगे, आखेट करेंगे, सम्भव है वे दिन के अन्तिम प्रहर में लौट आएंगे।"

एक युवक ने पूछा—"वे भवन में नहीं हैं, यह तू सच कह रही है न?"

"मैं क्यों असत्य बोलू। फिर भी आप भवन में शांतिपूर्वक खोज कर सकते

हैं। किन्तु आपको यह खयाल अवश्य रखना चाहिए था कि यह भवन जनपद-कल्याणी का है। उसके गौरव पर इस प्रकार प्रहार करना शोभास्पद नहीं है।"

"तू बहुत सयानी मत बन। हम वैशाली के शत्रु के लिए यहां आए हैं, देवी का अपमान करने के लिए नहीं। देवी के गौरव की रक्षा करने तथा देवी को शत्रु के पंजे से छुड़ाने के लिए यहां आए हैं।"

चर्चा आगे बढ़े, इससे पूर्व ही भवन के प्रांगण में 'हा', 'हू', 'ह' की आवाजें प्रचंड हो गयीं।

गणनायक सिंह सेनापति को आक्रमण के समाचार मिल गए थे। वे तत्काल वहां आ पहुंचे। उन्होंने सिंह गर्जना करते हुए आक्रमणकारी युवकों से कहा—"मैं आप लोगों को एक घटिका का समय देता हूं। इसके भीतर-भीतर आप सब बाहर निकल जाएं···नहीं तो मुझे आपके रक्त से इस धरती को कलंकित करना पड़ेगा।"

लिच्छवी युवकों ने सिंह सेनापति का जयकार किया।

सिंह सेनापति के आदेश का उल्लंघन करने की किसी में हिम्मत नहीं थी। सभी लिच्छवी युवक सेनापति के रथ के चारों ओर एकत्रित होने लगे। गणनायक के सैनिक चारों ओर घूम रहे थे।

इधर आम्रपाली दोनों को साथ ले भूगर्भ-गृह में धीरे-धीरे चल रही थी। अंधकार था, पर अंधकार में चलने की अभ्यस्त हो चुकी थीं आंखें।

चलते-चलते आम्रपाली ने कहा—"स्वामिन्! यह भूगर्भ-मार्ग लगभग एक कोश जितना लम्बा है। नगरी के बाहर पश्चिम द्वार के सामने एक उपवन है··· वह उपवन भी सप्तभूमि प्रासाद का ही है ··उपवन में एक यक्ष मन्दिर है। यह मार्ग यक्ष मन्दिर के भीतर के गर्भस्थान में निकलेगा···"

धनंजय ने पूछा—"देवि! वह उपवन सूना है क्या?"

"हां, मात्र वहां चार-पांच परिवार रहते हैं। इसी उपवन से फूल मेरे यहां आते हैं।" फिर आम्रपाली ने बिंबिसार से कहा—"पश्चिम के द्वार पर मेरा सेवक दो घोड़ों को लेकर आएगा। आप दोनों अश्व उससे ले लें···ओह! एक आवश्यक कार्य तो रह ही गया···"

"कौन-सा कार्य प्रिये!"

"आपके अलंकारों की पेटिका···आपका पाथेय···मार्ग में व्यय-योग्य धनराशि···।"

"प्राणप्रिये! इनकी कोई आवश्यकता नहीं है। पेटिका को तुम मेरी स्मृति रूप में रख लेना। उसमें मेरे पितश्री द्वारा प्रदत्त एक रत्नहार है। उसको तुम सावधानी से रखना। पाथेय तो हम जहां कहीं से भी ले लेंगे···।"

"नहीं, आप यक्ष मन्दिर में रुकें। माध्विका सब साधन लेकर आ जाएगी।"

"ठीक है, पाली ! मैं तेरी भावना का तिरस्कार भी करना नहीं चाहता।"

"धन्य हुई।" कहकर आम्रपाली ने पूछा—"आप कहां स्थिर होंगे ?"

"प्रिये ! अभी स्थान का निश्चय तो नहीं किया है। पर मेरा विचार उज्जैनी जाने का है।"

"उज्जैनी···इतनी दूर ? नहीं, नहीं, आप वैशाली के बाहर ही किसी प्रदेश में रहें तो···।"

भूगर्भ-मार्ग पर चलते-चलते बिंबिसार ने कहा—"प्रिये ! तेरे हृदय को किसी भी प्रकार का दुःख न हो इसकी सम्भाल रखना है। चिन्ता और शोक का प्रभाव भावी पीढ़ी पर पड़ता है। इसलिए सतत आनन्दित रहना, प्रसन्न रहना।"

आम्रपाली मौन रही। चलते-चलते उसने अपने उत्तरीय के अंचल से आंखें पोंछी।

बिंबिसार ने कहा—"प्रिये ! तुमने मेरी मंजूषा भेजने के लिए कहा था, परन्तु मेरी इच्छा के प्रति तुमने ध्यान नहीं दिया···"

"आपकी इच्छा मैं समझ गयी। पेटिका में जो रत्नहार है वह मैं ले लूंगी।"

उत्तर में बिंबिसार ने आम्रपाली का कंधा दबाया।

विरह की वेदना के बीच भी आम्रपाली का मन क्षण भर के लिए प्रफुल्लित हो गया।

तीनों तेजी से चल रहे थे।

एक घटिका और बीत गयी।

आम्रपाली ने मौन भंग कर कहा—"महाराज ! अब हम यक्ष मन्दिर के पास आ गए हैं।"

बाहर निकलने का गुप्त द्वार आ गया। आम्रपाली ने अपने साथ वाली चाबी से द्वार खोला। चाबी का स्पर्श होते ही एक छोटा-सा छेद खुला। उसमें एक लोह का चक्का था। आम्रपाली ने उस चक्के को दस-बारह बार घुमाया और सबके देखते-देखते दीवार में एक मनुष्य आसानी से निकल सके उतना छिद्र हो गया।

तीनों बाहर आ गए।

विदा करते समय आम्रपाली बिंबिसार से लिपट गयी। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर अविरल रुदन के वेग ने उसकी वाणी को रोक दिया। वह बोल नहीं सकी।

बिंबिसार ने आम्रपाली का गाढ आलिंगन कर, चुंबन देते हुए कहा—"प्रिये ! तू अब शीघ्र ही भवन में चली जा। मेरी चिन्ता मत करना।"

"आपके पुनः दर्शन···" कहते-कहते आम्रपाली सुबकने लगी।

बिंबिसार बोला—"पाली ! मिलन का मूल्य विरह से ही आंका जा सकता

है। यह विरह हमारे लिए ऐसा तप बन जाएगा कि आगे का मिलन स्थायी हो जाएगा। इस समय तो मैं···"

आम्रपाली सजल नयनों से प्रश्नभरी दृष्टि से प्रियतम की ओर देख लगी।

बिंबिसार ने कहा—"यह बंधन नरक जैसा है। मैं लौटकर तुझे इस बंधन से छुड़ाऊंगा···मैं तुझे अपने साथ ले जाऊंगा।"

आम्रपाली कुछ नहीं बोल सकी। वह नीचे झुकी। उसने दोनों हाथों से स्वामी के चरण स्पर्श किए।

उस समय आम्रपाली की अविरल अश्रुधारा से बिंबिसार के चरण गीले हो रहे थे।

बिंबिसार अभी तक अपने हृदय को थामे हुए था···अब उसका हृदय पिघल गया। उसके नयन भी सजल हो गए। दो आंसू कपोल पर लुढ़क गए। उसने आम्रपाली को उठाया, प्रेमभरा चुंबन ले, बिना कुछ शब्द कहे, मन्दिर के गर्भ-गृह में चला गया।

आम्रपाली दो क्षण स्थिर खड़ी रही। उसके चेहरे को देखकर लग रहा था कि उसका सर्वस्व लुट गया है। आम्रपाली ने उत्तरीय से आंसू पोंछे और वह लम्बा निःश्वास छोड़कर उसी गुप्तद्वार से भवन की ओर चली गयी।

यक्ष मन्दिर के गर्भगृह से बिंबिसार और धनंजय दोनों बाहर के मंडप में आए।

और वे माध्विका के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

पिउ को विदाई दे आम्रपाली दो घटिका के पश्चात् भवन में पहुंची।

गुप्तमार्ग वाले खंड को खोलकर जब आम्रपाली बाहर निकली तब उसने देखा कि भवन में किसी प्रकार का कलरव नहीं है। सभी लोग बिखर गए हैं··· अचानक यह कैसे हो गया?

इस प्रकार सोचती हुई आम्रपाली सोपानश्रेणी चढ़ने लगी···वहां प्रतीक्षारत माध्विका सामने आयी और नमन कर बोली—"देवि! क्या हुआ?"

"मेरा कार्य पूरा हो गया है···तेरा कार्य शेष है···राघव अश्व लेकर तो गया ही होगा?"

"हां···।"

"सभी लिच्छवी लौट गए हैं?"

"हां, देवि! गणनायक स्वयं पधारे थे। उनके आदेश से ही सारे लिच्छवी युवक बिखरे थे। मैंने भी एक असत्य बात प्रसारित की थी।"

"असत्य बात?"

"हां, देवि ! आप और महाराज नैशभ्रमण के लिए गए हैं। वहां जल-विहार करेंगे, मृगया खेलेंगे, फिर भवन में लौटेंगे। यह बात मैंने कही थी।"

"उत्तम ! तू गणनायक से मिली थी ?"

"हां, मैंने उनको भी यही बात कही।" माध्विका ने कहा।

"अच्छा, भवन में कोई लिच्छवी है ?"

"नहीं, किन्तु भवन के बाहर कुछ युवक इधर-उधर चौकसी कर रहे हैं।"

"अच्छा···महाराज यक्ष मन्दिर में रुके हैं। तुझे कुछ सामग्री लेकर जाना है। पश्चिम द्वार पर खड़े राघव से कहना कि वह उद्यान में चला जाए। वहां से महाराज बाहर-बाहर आगे चले जाएंगे।"

"जी।" कहकर माध्विका देवी के साथ-साथ गयी।

आम्रपाली ने सबसे पहले एक रथ तैयार करने की आज्ञा दी। फिर बिंबिसार की मंजूषा से रत्नहार निकालकर गले में पहना। उसमें हजार स्वर्ण मुद्राएं और अपनी स्मृति स्वरूप एक नीलम रखा। पाथेय, वस्त्र आदि दूसरी मंजूषा में रखे। इस प्रकार सारी आवश्यक सामग्री तैयार करवाकर माध्विका को उद्यान की ओर रवाना कर दिया।

चालीस-पचास लिच्छवी युवक भवन के सामने पहरा देते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। भवन के पिछले भाग में मात्र चार-पांच युवक थे। ज्योंही माध्विका का रथ बाहर निकला उन युवकों के मन में संदेह हुआ और वे रथ के पीछे पड़ गए।

रथ में बैठी हुई माध्विका ने देखा कि चार युवक रथ के पीछे-पीछे आ रहे हैं। परन्तु चारों के पास कोई वाहन नहीं था।

इसलिए माध्विका ने रथिक से रथ को तीव्र गति से उद्यान में ले जाने के लिए कहा।

शत्रु पकड़ में नहीं आया, यह जानकर लगभग सौ युवक नगर की दक्षिणी दिशा में गए।

और इधर···।

शीलभद्र एक भवन में बैठा-बैठा क्षण-क्षण के समाचार एकत्रित कर रहा था। सुखद समाचार न मिलने के कारण उसकी अकुलाहट बढ़ रही थी। वह इसी आशा में वहां बैठा था कि बिंबिसार की मृत्यु का समाचार अब मिले, तब मिले। किन्तु जब उसने यह सुना कि आम्रपाली और बिंबिसार दक्षिण दिशा में भ्रमण के लिए गए हैं, उसकी आशा पर तुषारापात हो गया। उसी ने सौ युवकों को दक्षिण दिशा में भेजा था।

अब वह इस समाचार की प्रतीक्षा कर रहा था कि दक्षिण दिशा में गया हुआ बिंबिसार लिच्छवी युवकों के शस्त्र से परधाम पहुंच गया होगा।

माध्विका पश्चिम दरवाजे से यक्ष मन्दिर के पास पहुंची तब उसने देखा कि राघव दो अश्वों को थामे वहां खड़ा है। माध्विका ने संकेत से उसे उद्यान की ओर आने के लिए कहा और वह अपने रथ को उद्यान में ले गई।

रथ का पीछा करने वाले चार लिच्छवी युवक बहुत-बहुत दूर रह गए थे।

जब वे पश्चिम द्वार से बाहर निकले तब माध्विका अपने रथ के साथ भवन की ओर लौट रही थी। रथ में राघव भी बैठा था।

बिंबिसार और धनंजय क्षण मात्र का भी विलंब किए बिना अश्व पर आरूढ़ होकर उज्जैनी के मार्ग पर प्रस्थित हो गए।

४०. अभिशाप का बोझ

मध्यरात्रि का सुखद क्षण।

दो अश्वारोही वैशाली के दक्षिण की ओर के वनपथ पर धीरे-धीरे बढ़ रहे थे।

दोनों अश्वारोही पुरुषवेश में थे। एक का मस्तक खुला था। उसके केश हवा के झोंकों से हिलडुल रहे थे।

दूसरे अश्वारोही के मस्तक पर पगड़ी बंधी हुई थी। उसका चेहरा अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर लग रहा था। उसके केश दिख नहीं रहे थे। क्योंकि गहरे गुलाबी रंग की पगड़ी से उसके कान भी ढंक गए थे।

दोनों अश्वारोही नगरी से लगभग तीन कोश दूर आ गए थे। वनपथ शून्य और नीरव था। वह अंधकार से व्याप्त था। ग्रीष्मकाल का अन्त होने के कारण आकाश में बादल इधर-उधर घूम रहे थे। सभी का यह अनुमान था कि वर्षा के आगमन में अभी एक पक्ष का समय शेष है।

वनपथ संकीर्ण था, इसलिए दोनों अश्व एक-दूसरे के पीछे-पीछे चल रहे थे।

पीछे चल रहे अश्वारोही ने कहा—"प्रियतम! आज आप अत्यन्त विचारमग्न से लग रहे हैं!" यह कहने वाले का स्वर कोमल और मधुर था।

आगे चलने वाले अश्वारोही ने कहा—"प्रिये! ऐसा अनुमान तुमने किस आधार पर किया?"

"आपके मौन के आधार पर।"

"तेरी कल्पना सत्य है। आज मेरी एक योजना निष्फल हो गई···मेरा ही नहीं, किन्तु समग्र वैशाली का शत्रु हमारे गाल पर चांटा मारकर छिटक गया।"

"वैशाली का शत्रु? महाराज! ऐसा दुष्ट कौन था?" नारीकण्ठ ने प्रश्न किया।

"महाराज प्रसेनजित का युवराज बिंबिसार।" पुरुषकंठ ने कहा।

"प्रियतम! वह यहां कहां से आ गया? मैंने राजगृह में सुना था कि

महाराजा प्रसेनजित ने उसे देश-निष्कासन दे दिया था।" नारीकंठ ने आश्चर्य के साथ कहा।

ये दोनों अश्वारोही और कोई नहीं, कुमार शीलभद्र और देवी कादंबिनी थी। नैशभ्रमण, जलविहार और यौवन की मस्ती का आनंद लेने के लिए शीलभद्र का यह पूर्व निर्धारित उपक्रम था। शीलभद्र आज अत्यन्त निराश हो गया था, क्योंकि वह बिंबिसार को न पकड़ ही सका और न मार ही सका। मध्याह्न तक उसने काफी दौड़धूप की। फिर उसे यह ज्ञात हुआ कि बिंबिसार अपने साथी के साथ छिटक गया है। सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी आम्रपाली को अपनी बनाने की उसकी भावना आज पुनः नष्ट हो गई थी। इस प्रकार अत्यन्त निराशा से ग्रस्त शीलभद्र मन को शांत करने के लिए नैश-भ्रमण के लिए निकल पड़ा था। पूर्व योजना के अनुसार वह देवी कादंबिनी को लेकर इस वन-प्रदेश में आया था। वह बोला—"प्रिये! मगधेश्वर ने अपने पुत्र को निर्वासित नहीं किया था, परन्तु उन्होंने एक नाटक खेला है। उन्होंने अपने युवराज को वैशाली के संभ्रान्त पुरुषों का नाश करने के लिए षड्यंत्रकारियों का नेता बनाकर यहां भेजा था।"

"षड्यंत्र?"

"हां, भयंकर षड्यंत्र! इस षड्यन्त्र में हमारे राज्य के तीन स्तंभ धराशायी हो गए। वैशाली का गुप्तचर विभाग अत्यन्त जागरूक है। षड्यन्त्र का पता लग गया और वह नालायक यहां से पलायन कर गया।"

कादंबिनी मन-ही-मन हंसी। वह बोली—"महाराज! क्या वह दुष्ट गुप्तवेश में यहां रह रहा था?"

"हां, उस दुष्ट ने हमारे गौरव को खंडित कर डाला। वह हमारी जनपद-कल्याणी का प्रियतम बनकर उसी के साथ रह रहा था।" शीलभद्र ने कहा।

"मैंने तो सुना था कि देवी आम्रपाली बहुत चतुर है।"

"वह चतुर और बुद्धिमती भी है, किन्तु मोह अंधा होता है।"

"सच कहा आपने प्रियतम! मोह मनुष्य को अंधा बना देता है। किन्तु महाराज! हम इस प्रकार कहां तक चलते रहेंगे।" कादंबिनी ने चतुराई से प्रसंग बदल डाला।

"प्रिये! अब हमें बहुत दूर नहीं चलना है। नदी के किनारे एक सुन्दर उपवन है। पहले हम वहां चलेंगे, फिर जल-विहार करेंगे"। शीलभद्र ने कादंबिनी की ओर मुंहकर कहा।

"तो हम कुछ शीघ्रता करें", कादंबिनी बोली।

"क्यों?"

"मीठी मध्यरात्रि की मीठी मस्ती।"

"ओह···कहकर शीलभद्र ने अपने घोड़े को एड़ी लगाई।"

लगभग अर्द्ध घटिका में दोनों नदी के तट पर स्थित सुरम्य उपवन में आ पहुंचे। यह उपवन अत्यन्त प्राकृत था। रमणीय और मनमोहक था। वैशाली के शैलानी यहां यदा-कदा आते और मौज-मस्ती कर चले जाते।

शीलभद्र अपने अश्व को चारों ओर से बृहद् वृक्षों से घिरे चौक में ले आया। बादल बिखर चुके थे और अर्द्धचन्द्र का स्निग्ध प्रकाश नयनरंजक लग रहा था।

दोनों अश्वों को रोक वे नीचे उतर गए। शीलभद्र ने कहा—'प्रिये! मैं तुम्हारी कल्पनाशक्ति को दाद देता हूं। यौवन के मिलन के लिए ऐसी रात्रि, ऐसा एकान्त, ऐसी नीरवता और···"

बीच में ही कादंबिनी बोल बठी। "आप जैसे यौवन साथी···"

"नहीं-नहीं, तेरे जैसी मदभरी मदिराक्षी", कहकर शीलभद्र ने अपने अश्व को एक वृक्ष से बांधा। कादंबिनी ने भी अपने सुबुद्धि अश्व को वृक्ष की डाली से बांध दिया।

कादंबिनी बोली—"क्या मदिरापान की व्यवस्था है?"

"प्रिये! क्षमा करना···हड़बड़ी में भूल गया।" कहकर शीलभद्र ने कादंबिनी का हाथ पकड़ा।

कादंबिनी बोली—"क्षणभर बाद। मैं थोड़ा···"

"ओह! बाद!" शीलभद्र ने कहा। उसने देखा कादंबिनी अपनी पगड़ी उतार रही है।

कादंबिनी ने अपनी पाग उतार कर अपने अश्व की पीठ पर रख दी। फिर कौशेय का उत्तरीय भी उतार डाला शीलभद्र ने देखा, एक मदभरी सुन्दरी।

शीलभद्र मुग्ध नयनों से देखता रहा।

वह बेचारा शीलभद्र क्या जाने कि यह रूप और यौवन उसका काल बनकर आया है और आज की रात उसकी अंतिम रात्रि है।

शीलभद्र बोला—"प्रिये! मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी?"

"प्रार्थना क्यों, आज्ञा कहें।"

"मैं तुझे निरावरण···।"

तत्काल कादंबिनी बोल उठी—"तब तो धैर्य का बांध टूट जाएगा।"

"धैर्य तो अभी चला गया है, अब मैं एक क्षण का भी धैर्य नहीं रख सकता"—कहकर शीलभद्र ने कादबिनी में समा जाने का प्रयत्न किया।

परन्तु···।

दूसरे ही क्षण शीलभद्र का बाहुपाश शिथिल होने लगा···उसकी आंखें विकृत हो गईं···उसकी काया कांपने लगी···।

मात्र कुछ ही क्षणों में शीलभद्र का सारा शरीर अकथनीय खिंचाव का अनुभव करने लगा और शीलभद्र तत्काल भूमि पर गिर पड़ा।

वासना विलीन हो गई।

आशा नष्ट हो गई।

यौवन की उत्ताल तरंगें समाहित हो गईं।

कादंबिनी दो क्षणों तक शीलभद्र के निर्जीव शरीर को देखती रही।

शीलभद्र के मुंह से फेन निकल रहे थे···आंखें भयानक हो गई थीं···शरीर ठंडा पड़ चुका था। कादंबिनी ने चारों ओर देखा···कोई नजर नहीं आया··· थोड़ी ही दूरी पर दो अश्व शांत खड़े थे।

गगन में चांद निर्विकार दृष्टि से धरती की ओर देख रहा था।

कादंबिनी तत्काल मुड़ी। उसने सोचा, शीलभद्र को उठाकर उसके अश्व पर रख दिया जाए··किन्तु उसमें इतनी शक्ति नहीं थी। वह अपने अश्व के पास आई और उस पर पड़ी अपनी पगड़ी पुनः शिर पर रखी, उत्तरीय को ओढा और कुछ भी न हुआ हो, इस स्वस्थ मन के साथ वह अपने अश्व पर बैठ गई।

चतुर सुबुद्धि अश्व तत्काल वहां से मुड़ा···।

शीलभद्र का अश्व हिनहिनाने लगा।

किन्तु उसको बंधन-मुक्त कौन करे ?

कादंबिनी ने नगरी में जाने की सु-व्यवस्था कर रखी थी। नगरी के मुख्य द्वार से जाने का उसने निश्चय किया था किन्तु सूर्योदय के बाद और अपनी दासियों के साथ···।

नगरी के बाहर वाले यक्ष-मंदिर के पास प्रातःकाल कादंबिनी की दासियां उपस्थित हो जाने वाली थीं।

कादंबिनी जब यक्ष मंदिर में पहुंची तब उसकी दासियां एक रथ के साथ वहां पहुंच गई थीं।

कादंबिनी ने यक्ष-मंदिर में जाकर अपनी पाग दूर रखी और मानो वह यक्ष की पूजा करने के लिए ही आई हो, इस भावना के साथ वह वहां बैठ गई।

मुख्य दासी ने नैवेद्य का थाल लाकर यक्ष के सामने रख दिया।

यक्ष का पुजारी नगर में रहता था। वह भी आ गया। उसने कादंबिनी को आशीर्वाद दिया। कादंबिनी ने दस स्वर्णमुद्राएं यक्ष की पेटिका में डालीं।

सूर्योदय होते ही उसने रथ में बैठकर नगर में प्रवेश किया।

द्वारपाल ने देखा कि प्रातःकाल जो लोग यक्ष की पूजा करने गए थे वे लोग लौटकर आ रहे हैं।

कादंबिनी ने इस बात की बहुत ही सावचेती रखी थी कि किसी को किसी प्रकार का संशय न हो। वह भवन में आ पहुंची।

भवन में पहुंचते ही वह अन्यत्र न जाकर सीधी स्नानगृह में चली गई।

जब कभी भी वह स्नान करने जाती तब कोई भी परिचारिका वहां नहीं रह सकती थी।

तैल-मर्दन, उबटन, स्नान, अंगप्रोंछन आदि सभी क्रियाएं वह स्वयं करती। पहने हुए सभी वस्त्र वह स्वयं अपने हाथों से धोती। वह सभी अलंकार निकालकर जल से भरे पात्र में रख देती।

यह सावचेती उसके लिए अत्यन्त आवश्यक थी। क्योंकि वह चाहती थी कि भवन की दास-दासियां भी यह जानने न पाएं कि वह विषकन्या है। महामंत्री ने यह सावधानी बरतने के लिए कहा था और कादंबिनी इसमें पूर्ण जागरूक थी।

स्नानगृह में जाने के पश्चात् उसने सारे अलंकार एक जलपात्र में रखे। उसने सभी वस्त्र पखारे।

और···।

स्नानगृह में रखे हुए एक आदमकद दर्पण की ओर उसकी दृष्टि गई।

यह मानवीय स्वभाव है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं को दूसरों से अधिक सुन्दर मानता है। कादंबिनी पूर्ण यौवन में प्रवेश कर चुकी थी···उसके प्राणों में उभरती हुई नारी किसी के चरण-कमल में यौवन को बिछाने के लिए तड़फड़ा रही थी।

परन्तु···।

आचार्य अग्निपुत्र का प्रयोग उसके जीवन का अभिशाप बन चुका था। आशा, भावना और ऊर्मियां उसमें उन्मज्जन कर रही थीं। फिर भी वह विषवल्ली बन चुकी थी।

अरे, वह किसी को चुंबन दान भी नहीं कर सकती थी। इस अभिशाप का अंत कब कैसे होगा?

कल आधी रात के समय जो बीता, उससे उसका कलेजा कांप उठा। कितना मधुर था वह क्षण! परन्तु उसकी काया में छिपी हुई अग्नि ने क्षण भर में मधुरता को जलाकर राख कर डाला।

दर्पण में अपनी निरावरण काया को देखकर कादंबिनी स्नानकार्य को भूल गई। अभिशाप का यह बोझ कब तक ढोना पड़ेगा?

सुन्दर पुरुष की बात एक ओर रहने दें···परन्तु वह किसी सुन्दर बालक को प्रेम से उठाकर हृदय से भी नहीं लगा सकती थी। उसका चुंबन भी नहीं ले सकती थी।

उसने सोचा, उसी के पाप का यह कटु विपाक है। पूर्वजन्म में उसने कोई भयंकर पाप किया है। अन्यथा, इस यौवन वय में अपने अन्तःकरण में ऊर्मियों को सुलगती हुई देखने का समय कैसे आता?

ऊर्मियों को सुलगती देखना, यह वेदना अकथ्य होती है।

लगभग अर्धघटिका पर्यन्त विचारों में डूबती-इतराती कादंबिनी अन्त में रो पड़ी और उसके मन में एक विचार उभरा—इस प्रकार जीने से तो आत्महत्या कर मर जाना ही अच्छा है।

परन्तु आत्महत्या करने से क्या सिद्ध होगा? इससे काया के अणु-अणु में व्याप्त विष क्या धुल जाएगा? नहीं, कभी नहीं।

इस प्रकार विचार करते-करते उसने तेल-मर्दन किया।

प्रत्येक अंग-प्रत्यंग उसका टूटन अनुभव कर रहा था।

परन्तु कोई उपाय नहीं था।

लगभग दो घटिका के पश्चात् वह स्नानादि कार्य से निवृत्त होकर अपने खंड में गई।···एक दासी दूध का पात्र रख गई। दूसरी दासी मुखवास रख गई।

इतने में ही वृद्ध प्रबंधक वहां आया और भीतर आने की आज्ञा मांगी। कादंबिनी ने आंख के इशारे से भीतर आने की आज्ञा दी।

वृद्ध प्रबंधक भीतर आकर बोला—"देवि! एक समाचार मिला है। हमें बहुत सावधान रहना है।"

कादंबिनी ने प्रश्न भरी दृष्टि से प्रबंधक की ओर देखा।

वृद्ध प्रबंधक ने कहा—'चंपा नगरी के विषवैद्य गोपालस्वामी कल यहां आ "पहुंचे हैं।"

"किसने बताया?"

"हमारे चरपुरुषों ने।"

"वे कहां ठहरे हैं?"

"अभी तो वे गणतंत्र के अतिथिगृह में ठहरे हैं···संभव है नगरी के बाहर ही कहीं ठहरेंगे।"

"कोई बात नहीं है।" कादंबिनी ने आश्वस्तभाव से कहा।

"आपके नैशभ्रमण का परिणाम?"

"जो परिणाम आना था, वह आ गया।" कादंबिनी ने कहा और दूध का पात्र हाथ में लिया।

वृद्ध प्रबंधक ने जाने की आज्ञा मांगी।

कादंबिनी बोली—"चिन्ता की कोई बात नहीं है···कुछ भी न हुआ हो, यही भाव आपको बनाए रखना है।"

वृद्ध प्रबंधक चला गया।

दुग्धपान करते-करते कादंबिनी के मन में एक विचार उभरा कि विषवैद्य गोपालस्वामी से मिलना है और इस अभिशाप से मुक्त हुआ जा सकता है या नहीं, यह जानना है।

४१. मृत्यु का रहस्य

मध्याह्न बीत चुका था।

कल प्रियतम को विदाई देते समय आम्रपाली कुछ उत्साह में थी। किन्तु आज वह पूर्ण रूप से टूट चुकी थी।

कल वह भोजन भी नहीं कर सकी। आज भी भोजन की रुचि नहीं थी।

प्रिय व्यक्ति का वियोग हृदय पर आघातकारक होता ही है।

प्रियतम को बचाने के प्रयत्न में कल वह अत्यन्त उत्साहित थी किन्तु बिंबिसार के जाने के बाद तथा माध्विका के यह समाचार सुनाने के बाद कि महाराज सही-सलामत रूप से यहां से प्रस्थित हो चुके हैं, आम्रपाली का दिल वेदना से भर गया।

आज प्रातः जब उसकी संरक्षिका ने सगर्भावस्था में इस प्रकार चिन्तातुर रहना या लंघन करना हितकारक नहीं होता, यह समझाया तब उसने कुछ दूध लिया और एक आम खाया।

पर उसके अन्तर् में उत्पन्न विषाद दूर नहीं हो सका।

सिंह सेनापति आम्रपाली से मिलने आए। आम्रपाली ने कृत्रिम प्रसन्नता से उनके साथ बातचीत की। उसने कहा—"भवन पर जब लिच्छवियों का आक्रमण हुआ तब माध्विका ने एक रक्षक के साथ बिंबिसार को समाचार भेजे और तत्काल मेरे स्वामी अपने अनुचर को साथ ले यहां से निकल गए।"

सिंह सेनापति को यह समाचार उचित लगा। फिर भी उन्होंने पूछा—"पुत्रि! मैंने सुना था कि आज दिन के प्रथम प्रहर में माध्विका यक्ष मंदिर में गई थी।"

"हां, सच है। मेरे स्वामी योगक्षेम पूर्वक यहां से निकल गए, इस उपलक्ष में यक्ष को भोग चढ़ाने गई थी।"

इस बात में गणनायक को संदेह नहीं हुआ। वे बोले—"पुत्रि! बहुत ही अच्छा हुआ। मगध के युवराज को कोई आंच आ जाती तो संघर्ष अवश्यंभावी बन जाता।"

इसके प्रत्युत्तर में आम्रपाली के मन में अनेक विचार उठ रहे थे। फिर भी वह मन पर नियंत्रण कर इतना मात्र बोली—"महाराज! लिच्छवी युवकों के इस दुष्ट बर्ताव से मेरे मन पर भारी आघात लगा है। मेरे स्वामी दो दिन बाद यहां से जाने वाले ही थे। मैंने आपको वचन भी दिया था। फिर भी यह भयंकर आक्रमण कैसे हुआ? क्या जनपदकल्याणी के गौरव की यही मर्यादा है?"

सिंह सेनापति ने आम्रपाली के सम्मुख इस अप्रिय घटना के प्रति अपना खेद प्रकट किया और कहा—"इस आक्रमण के पीछे किसका हाथ था, इसकी खोज करायी जाएगी।"

आम्रपाली और बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर उसने मौन रहना ही श्रेयस्कर समझा। वह मौन रही।

प्रियतम के बिना एक रात बीतने के बाद वह जान गई कि वियोग की वेदना कितनी असह्य होती है। उसको न भोजन के प्रति और न किसी भी प्रकार के आमोद-प्रमोद के प्रति रस था। मानो एक व्यक्ति के चले जाने पर सैकड़ों दास-दासियों से सुशोभित और इन्द्रपुरी जैसा वह भवन भयंकर खंडहर जैसा प्रतीत होता था।

भवन के वाद्यकारों ने देवी के चित्त को प्रसन्न रखने के लिए प्रातःकाल सुमधुर रागिनी प्रवाहित की थी।

परन्तु···

आम्रपाली का मन उज्जयिनी के पथ पर दौड़ रहा था। उन्होंने रात्रि कहां बिताई होगी? मार्ग में कोई संकट तो नहीं आया होगा? लिच्छवियों के घुड़सवार तो पीछे नहीं लगे होंगे? वैशाली से उज्जयिनी का मार्ग भयंकर है। बीच में एक सिंहपल्ली नामक छोटा गांव है। वहां लुटेरे बसते हैं। वहां से गुजरने वाले प्रत्येक पथिक को विपत्ति का सामना करना ही पड़ता है। तो क्या उनको भी···?

इस प्रकार के अनेक विचार उसकी मनोवेदना को बढ़ा रहे थे।

प्रिय वस्तु का वियोगकाल अत्यन्त विषम होता है।

आम्रपाली के लिए तो अब बिंबिसार के संदेश को प्राप्त करना ही प्रिय संयोग था। वह संदेश कब आए? किसके साथ आए?

इस प्रकार के अनेक प्रश्न उसके मन में उभरते और बिना समाहित हुए ही नये प्रश्नों के अंबार के नीचे दब जाते।

मध्याह्न बीत गया।

आम्रपाली आंखें बंद कर शय्या पर पड़ी थी। इतने में ही माध्विका ने कक्ष में प्रवेश कर कहा—"देवी! अत्यन्त खराब समाचार प्राप्त हुए हैं···।"

"क्या महाराज का कोई संदेश आया है?"

"नहीं, देवि!···नदी के तट वाले उपवन में एक भयंकर···।"

"क्या हुआ?"

"कुमार शीलभद्र मौत का शिकार हो गया है।"

"कैसे? क्या?"

"देवि! अभी-अभी समाचार प्राप्त हुआ है। आज प्रातः एक कठियारा उपवन की ओर गया था। वहां एक अश्व हिनहिना रहा था। वह कुतूहलवश निकट गया। वहां एक मनुष्य निर्जीव पड़ा था। वह कठियारा घबरा गया। वह उसी अश्व पर बैठकर नगरी में आया···उसकी बात सुनकर चरनायक और

अनेक सिपाही खोज करने गए। उन्होंने देखा, वह निर्जीव शव और कोई नहीं, शीलभद्र का शरीर था।

"ओह! समझ में नहीं आ रहा है कि यह विचित्र मौत कहां से आती है। ऐसा भयंकर षड्यंत्र कौन चला रहा है? यह तो अच्छा हुआ कि महाराज कल प्रातः ही यहां से चले गए, अन्यथा···?" कहती-कहती आम्रपाली विचारमग्न हो गई।

"कुमार शीलभद्र!" इतना कहकर आम्रपाली पुनः शय्या पर लेट गई।

नगरी के दक्षिण दिशा में नदी के तट के पास वाले उपवन में लोगों की भीड़-सी लग रही थी।

जैसे-जैसे लोगों को समाचार मिलता गया वैसे-वैसे शीलभद्र के वयस्य और मित्र अपने-अपने कामकाज छोड़कर उपवन की ओर भागे जा रहे थे। उन्हें अपने प्रिय नेता के अंतिम दर्शन करने थे।

सैकड़ों लिच्छवी युवक उपवन के बाहर खड़े-खड़े यह जानने के लिए आतुर हो रहे थे कि भीतर क्या हो रहा है?

चम्पा नगरी के विषवैद्य गोपालस्वामी ने कुमार शीलभद्र के शव का पूरा परीक्षण कर लिया था। और उन्होंने एक स्वर्णपात्र में शीलभद्र के मुंह से निकलने वाले झाग ले लिये थे।

परीक्षण पूरा हो जाने पर गोपालस्वामी खड़े हुए और बोले—"अब कुमारश्री के शव को अग्नि संस्कार के लिए ले जाया जा सकता है।"

सिंह सेनापति ने गोपालस्वामी से पूछा—"आपको क्या लगता है?"

"मुझे बहुत कुछ कहना है···परन्तु यह सारी चर्चा मैं भवन पर करूंगा। इससे पूर्व मैं मरने वाले के मुंह से निकलने वाले फेन का रासायनिक परीक्षण कर लेना चाहता हूं। आप कुमारश्री के शव की व्यवस्था में जुटे रहें। मैं अपने स्थान पर जाता हूं।" कहकर भारत के सर्वश्रेष्ठ विष-निष्णात गोपालस्वामी अपने रथ की ओर चल पड़े।

शीलभद्र के पिताश्री, भाई आदि बन्धुजन वहां आए थे। उन्होंने यहीं से श्मशान भूमि में जाने का निश्चय किया था।

शव-परीक्षण के पश्चात् जनता उपवन में गई और अपने प्रिय नेता के निर्जीव शरीर को देखकर फूट-फूट कर रोने लगी।

सभी के मन में एक ही प्रश्न घूम रहा था कि ऐसे समर्थ व्यक्ति की मृत्यु कैसे हुई?

गुप्तचर विभाग को कोई नया तथ्य प्राप्त नहीं हुआ। चरनायक ने केवल यह जाना कि कुमार शीलभद्र सप्तभूमि प्रासाद पर आक्रमण करवाने में मुखिया था। उसका एक मात्र उद्देश्य था कि बिंबिसार को जीवित पड़कना अथवा मार

डालना। उसने यह सब कुछ वैशाली के गौरव की सुरक्षा के लिए किया था। बिंबिसार और आम्रपाली नैशभ्रमण के लिए इस ओर आए हैं, यह जानकर उसने शताधिक पुरुषों को यहां भेजा था। यहां उन्हें कोई नहीं मिला। मध्याह्न के पश्चात् उसको ये समाचार मिल गए थे कि बिंबिसार अपने साथी के साथ यहां से निकल गए हैं। इससे वह बहुत निराश हुआ। संध्या तक वह अपने भवन में ही था। फिर वह भ्रमण करने के बहाने अश्वारूढ़ होकर निकल गया था।

चरनायक को यह भी ज्ञात हुआ कि शीलभद्र रात्रि के प्रथम प्रहर के पश्चात् अपने किसी नवयुवक साथी के साथ नगरी के दक्षिण द्वार से बाहर निकला था। दोनों अश्वों पर आरूढ़ थे। द्वार-रक्षक ने दोनों को देखा। परन्तु उसने शीलभद्र के साथी को पहचाना नहीं।

वह नवजवान साथी कौन होगा? चरनायक ने यह जानने का भी पूरा प्रयत्न किया कि साथी का अश्व कैसा था? उसने द्वारपाल से पूछा। परन्तु कुछ भी अता-पता नहीं लगा।

चरनायक ने इस गुत्थी को सुलझाने के लिए और भी बहुविध प्रयोग किए, पर सब व्यर्थ। वह गुत्थी को सुलझाते-सुलझाते और अधिक उलझता गया।

सिंह सेनापति भी इस मृत्यु से बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा, बिना किसी चिह्न के यह मृत्यु कैसे घटित होती है? न तो विषाक्त प्राणी का दंश कहीं नजर आता है और न विष दिए जाने की कोई बात दीखती है? फिर मृत्यु होती कैसे है? चारों मौतें समान हुई हैं। मारने वाला कौन है—इसका कुछ भी पता नहीं लगता। यदि यह कोई षड्यंत्र है तो वैशाली राज्य का दुर्भाग्य है···इससे वैशाली की शक्ति खंड-खंड हो गई है···वैशाली की रीढ़ टूट चुकी है···वैशाली की स्वायत्तता खतरे में पड़ गई है।

विषविद्या विशारद गोपालस्वामी अपने स्थान पर आए और अपने शिष्य को कुछेक वस्तुएं लाने नगरी में भेजा।

फिर वे स्नान आदि से निवृत्ति होकर खोज में लग गए।

रात्रि का दूसरा प्रहर पूरा हो रहा था। गोपालस्वामी अपने खंड से बाहर निकले। वे प्रसन्न दीख रहे थे।

उन्होंने आते ही बाहर बैठे शिष्यों से पूछा—"कोई आया था?"

"कुछ समय पूर्व ही गणनायक आए थे।"

"क्या कुछ कहा था?"

"हां, वे आपका निर्णय जानने के लिए अत्यन्त आतुर हैं।"

"उनको यह समाचार भेज दो कि मृत्यु का रहस्य ज्ञात हुआ है। कल मैं उनसे मिलूंगा, अभी नहीं।"

"जी।" कहकर शिष्य चला गया।

४२. पलायन का षड्यंत्र

चरनायक सुनंद, मिहिर महाली, दूसरे तीन गणनायक और नगररक्षक सूर्योदय के तत्काल बाद सिंह सेनापति के भवन पर आ गए। सिंह सेनापति भी उपासना से निवृत्त हो गए थे। सभी गोपालस्वामी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

शीलभद्र की मृत्यु के विषय में चर्चा चल रही थी। चरनायक ने कहा—"नदी किनारे पर स्थित उपवन में अश्वों के पदचिह्न मिले थे। पदचिह्न का ज्ञाता राजपुरुष पदचिह्न देखने गया, तब वहां अनेक अश्वों के पदचिह्न मंडित हो चुके थे। क्योंकि कुमारश्री के अंतिम दर्शन करने के लिए अनेक व्यक्ति वहां आ गए थे। इसके अतिरिक्त बात यह थी कि आम्रपाली के कथनानुसार बिंबिसार वैशाली से दूर चले गए थे। मुझे यह संशय था कि वे यहीं कहीं छुपकर षड्यंत्र का संचालन कर रहे हैं, परन्तु वे उज्जयनी के रास्ते पर हैं, यह समाचार सीमा-रक्षक ने दिए हैं।"

सिंह सेनापति ने कहा—"सुनंद ! बिंबिसार मुझे अत्यन्त निर्दोष लगे हैं। लोगों के हृदय में यदि रोष नहीं जागा होता तो मैं उन्हें सप्तभूमि प्रासाद में ही रहने देता। परन्तु यह उचित ही रहा। अब सच्चा गुनहगार कौन है, इसकी खोज आसानी से हो सकेगी।"

महाबलाधिकृत मिहिर महाली कुछ कहे, इससे पूर्व ही गोपालस्वामी ने कक्ष में प्रवेश किया। सभी ने खड़े होकर विषनिष्णात वैद्य का अभिवादन किया।

कुशल समाचार पूछने के पश्चात् सिंहनायक ने कहा—"वैद्यराज ! इस मृत्यु के रहस्य का उद्घाटन अब आप ही कर सकते हैं।"

गोपालस्वामी बोले—"मृत्यु का रहस्य तो हाथ लग गया है। परन्तु षड्यंत्रकारी कौन होगा, इसे जानना मेरा विषय नहीं है।"

सिंहनायक बोले—"आप उचित कहते हैं। मृत्यु का भेद प्राप्त हो जाने पर हम सही रास्ते से खोज कर सकेंगे।"

"अब मैं अपनी खोज के आधार पर जो तथ्य ज्ञात हुआ है, वह आपके समक्ष प्रकट करता हूं।" कहकर गोपालस्वामी ने दो क्षण तक आंखें बन्द कर लीं। फिर वे धीरे से बोले—"महानुभावो ! कुमार शीलभद्र की मृत्यु विष के स्पर्श से हुई है। यह स्पर्श केवल उनके होंठों पर हुआ है···इसके आधार पर दो कल्पनाएं की जा सकती हैं। एक तो यह कि कुमार ने किसी विषाक्त वस्तु का चुंबन किया हो अथवा विषकन्या का चुंबन किया हो। इसके सिवाय मुझे दूसरा कोई कारण नजर नहीं आता। यदि वे कोई विषाक्त वस्तु को चूमते तो उस वस्तु के खंड यहां होते। मुझे उनके पास से ऐसी कोई वस्तु प्राप्त नहीं हुई है। और जैसा चरनायक ने मुझे बताया, उन पूर्ववर्ती तीनों मौतों में भी ऐसी वस्तु प्राप्त नहीं हो पाई थी। दूसरी बात है, चारों मृत्यु के समय दो-दो अश्वों के पदचिह्न मिले हैं। इससे यह

फलित होता है कि मरने वाले के साथ कोई न कोई दूसरा व्यक्ति अवश्य ही होना चाहिए। और मेरा निश्चय है कि वह दूसरा व्यक्ति विषकन्या ही होना चाहिए।"

"विषकन्या ?"

"हां, शास्त्र के अनुसार दो प्रकार की विषकन्याओं का निर्माण किया जा सकता है। एक की योनि में विष होता है। दूसरी के मुख में या गाढ़ स्पर्श में विष होता है। प्रथम प्रकार की विषकन्याओं का निर्माण अनेक राज्यों में होता है। किन्तु दूसरे प्रकार की विषकन्या के निर्माण का प्रयत्न किसी ने किया हो, ऐसा मेरे सुनने में नहीं आया। फिर भी चारों व्यक्तियों के मरने की परीक्षा करने पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है, किसी ने स्पर्शमात्र से प्राण-हरण करने वाली अति भयंकर विषकन्या का निर्माण किया हो।"

सभी गहरे चिन्तन में लग गए। ऐसी विषकन्या वैशाली में कैसे आई ? कहां से आई ? कौन है ? आदि प्रश्न सभी के मन में उभरने लगे।

सिंहनायक ने पूछा—"वैद्यराज ! स्पर्श से मार देने वाली विषकन्या के विषय में तो हमने कभी सुना ही नहीं।"

"मैंने केवल शास्त्रों में पढ़ा है, परन्तु किसी ने ऐसी विषकन्या का निर्माण किया हो, ऐसा नही सुना है। क्योंकि ऐसी विषकन्या का निर्माण अत्यन्त दुष्कर होता है। पांच-दस कन्याओं की मृत्यु होने के पश्चात् ही एकाध कन्या विषकन्या बन सकती है।" गोपालस्वामी ने कहा।

चरनायक ने पूछा—"वैद्यराज ! क्या आप यह निश्चयपूर्वक कहते हैं कि यह मृत्यु विषकन्या से ही हुई है ?"

"हां, क्योंकि मरने वाले के मुख से जो फेन निकले थे, उनका रासायनिक विश्लेषण करने पर यही प्रतीत हुआ कि किसी भी भयंकर से भयंकर जहरीले प्राणी के विष से भी वह विष तीव्र, भयंकर और सद्योघाती है। मैंने कुमार शीलभद्र के शव का अनेक प्रकार से परीक्षण किया था। उनके अधरों पर ही विष का प्रभाव मुझे प्रतीत हुआ। उनके अधर सूख गए थे। अन्यत्र कहीं विकृति नहीं थी। चुंबन के बिना ऐसा होना संभव नहीं है। और पुरुष सदा स्त्री के प्रति आकृष्ट होता रहा है। इसलिए वैशाली में अभी-अभी जो चार-चार व्यक्तियों की मृत्यु हुई है, उसका मूलकारण विषकन्या ही होनी चाहिए, ऐसा मेरा निश्चय है।" वैद्यराजजी ने स्पष्टता से कहा।

चरनायक ने पुनः पूछा—"विषकन्या को कैसे पहचाना जाए ?"

"यही अत्यन्त कठिन है। विषकन्या अन्य स्त्रियों जैसी ही दिखलाई देती है। उसके नयन और बदन में कोई विशेषता नहीं होती। उसे पहचाने का एक ही उपाय है।" कहकर गोपालस्वामी मौन हो गए। सभी उनकी ओर देखने लगे।

कुछ क्षणों पश्चात् गोपालस्वामी बोले—"वैसी स्त्री को कितना ही भयंकर विषधर क्यों न डसे, वह सर्प मर जाता है, स्त्री का कुछ नहीं बिगड़ता। कभी-कभी सर्प मूर्च्छित हो जाता है। शशक, हिरण, बकरी आदि प्राणियों का यदि विष-कन्या स्पर्श भी करती है, चुंबन लेती है तो वे प्राणी तत्काल मर जाते हैं।"

सभी विचारमग्न हो गए। वैशाली एक विशाल नगरी है। उसमें विषकन्या की खोज कैसे की जाए? विषकन्या इधर-उधर फिरती तो नहीं है। वह गुप्त ही रहती है। इसलिए संभव है उसको कहीं छुपाकर रखा होगा। वह गुप्तस्थान कौन-सा है? कहां है?

सभी को विचारमग्न देखकर गोपालस्वामी बोले—"गणनायकजी! यदि आपको और कुछ विशेष नहीं पूछना हो तो मैं अपने स्थान पर चला जाऊं।"

"जरूर···आपने यहां आकर हमारे पर उपकार किया है। आप चाहें तो आपके रहने की व्यवस्था नगर के बाहर किसी उद्यान में की जा सकती है।"

"नहीं, नहीं, मैं तो अतिथिगृह में रह लूंगा।" कहकर गोपालस्वामी खड़े हुए।

सभी ने उनको भावभीनी विदाई दी।

एक सेवक उनको पहुंचाने अतिथिगृह की ओर गया।

गोपालस्वामी के जाने के बाद महाबलाधिकृत ने प्रश्न रखा—"वैद्यराज की बात में कुछ तथ्य अवश्य है। परन्तु विषकन्या की खोज कैसे की जाए?"

चरनायक सुनंद ने कहा—"मेरे मन में एक विचार आता है। गुप्तचरों की अंतिम खोज के अनुसार बिंबिसार और उसका साथी वैशाली की सीमा को छोड़कर आगे चले गए हैं। परन्तु वैद्यराज की बात सुनने के बाद यह अनुमान होता है कि बिंबिसार इस षड्यंत्र में संलग्न थे और यह बात विषकन्या के प्रश्न से सिद्ध होती है।"

"कैसे?" सिंह सेनापति ने पूछा।

"मेरा सद्यस्क अनुमान यह है कि मगध के युवराज बिंबिसार इसी षड्यंत्र के साथ यहां आए थे और विषकन्या के साथ नगर में घुस गए। देवी आम्रपाली उनमें आसक्त हुई और इससे बिंबिसार को रहने का सुरक्षित स्थान और षड्यंत्र को क्रियान्वित करने का अपूर्व और निर्भीक अवसर प्राप्त हो गया। कुछ दिन तक वैशाली की राज्य-व्यवस्था के निरीक्षण में लगे रहे। जब सब कुछ उन्हें ज्ञात हो गया तब उन्होंने अपने षड्यंत्र को गतिमान किया। कुमार शीलभद्र सप्तभूमि प्रासाद पर आक्रमण करेगा, यह बात उन्हें पहले ज्ञात हो गई होगी, इसलिए उन्होंने शीलभद्र को समाप्त करने की बात आम्रपाली को समझाकर स्वयं यहां से भाग गए···और फिर गुप्तवेश में रहने वाले उनके साथी शीलभद्र का नामो-निशान मिटाने में सफल हो गए।"

सभी गहरे विचारों में डूब गए।

सिंहनायक ने कहा—"सुनंद ! तुम्हारा अनुमान कितना यथार्थ है, मैं नहीं कह सकता। परन्तु एक प्रश्न खड़ा होता है कि अमुक-अमुक व्यक्तियों के पास विषकन्या को भेजने का मार्ग क्या बना होगा ? बिंबिसार के जाने के पश्चात् वह विषकन्या जो अत्यन्त अपरिचित है, शीलभद्र के पास कैसे गई होगी ? हम सब शीलभद्र को जानते हैं। वह ऐसा क्षुद्र तो था ही नहीं कि अपरिचित स्त्री के प्रति आसक्त हो जाए ?"

महाबलाधिकृत ने पूछा—"वैद्यराज के अभिमत के अनुसार यह कार्य विष-कन्या द्वारा संपादित हुआ है, क्या यह सही है ?"

"हां, इसमें कोई संदेह नहीं है।" गणनायक ने कहा।

"तो फिर हमें उसको खोजने का प्रयत्न करना चाहिए, शीलभद्र के पास वह कैसे पहुंची होगी अथवा उसको किसने वहां भेजा होगा, यह प्रश्न बाद का है। सुनंद का अनुमान व्यर्थ नहीं है। क्योंकि मगधेश्वर प्रसेनजित वर्षों से यह आशा लिये बैठे हैं कि वैशाली को अपने राज्य में मिला लिया जाए। यह आशा सहजता से फलित नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने इस षड्यंत्र के द्वारा अपने राज्य के महामूल्यवान् रत्नों को नष्ट करने की बात सोची हो। ऐसा होने पर ही वैशाली पर विजय पाई जा सकती है, अन्यथा नहीं। इस दृष्टि से देखने पर बिंबिसार जैसे चालाक युवराज को यह काम सौंपा होगा। इसलिए वे अपने साथी के साथ छिटक गए हैं। किन्तु उनका षड्यंत्र तो यही रहा है। उनके षड्यंत्र का मुख्य घटक है विषकन्या। संभवतः उसको कहीं गुप्त रखा है। सप्तभूमि प्रासाद में वह रह रही हो, यह भी अमुमान किया जा सकता है। हमें अब विषकन्या की ही खोज करनी चाहिए।"

महाबलाधिकृत के इन विचारों से सभी सहमत हो गए और यह निर्णय किया गया कि सिंह सेनापति स्वयं आम्रपाली से जाकर मिलें और कुछ रहस्य ज्ञात करें।

सिंहनायक ने आश्चर्य के साथ कहा—"अरे ! एक बात तो हम भूल ही गए। राजगृह से एक नर्तकी यहां आई हुई है···।"

तत्काल सुनंद बीच में ही बोल उठा—"हां, देवी कादंबिनी यहां आई हुई है। वह नर्तकी है। यदा-कदा नर्तन का आयोजन भी होता रहता है। मैं उससे दो बार मिल चुका हूं। वह मगध की नहीं, गांधार की है। राजगृह में रानी त्रैलोक्यसुन्दरी के एक राजकुमार को सर्प ने काट खाया तब वहां राज्य में शोक मनाया गया था। इसीलिए कादंबिनी यहां आई है। वह नवयुवती है। मुझे वह सर्वथा निर्दोष लगती है, क्योंकि वह लोगों से संपर्क रखती है। वह दास-दासियों के बीच रहती है। कोई-कोई युवक उससे मिलता है। कोई भी विषकन्या इस

प्रकार प्रकट रूप में रह नहीं सकती।"

सुनंद की बात सबको यथार्थ लगी। फिर भी सिंहनायक ने कहा—"मैं आज ही जनपदकल्याणी से मिलूंगा और सुनंद की शंका की खोज करूंगा किन्तु हमें कादंबिनी पर दृष्टि तो रखनी ही चाहिए।"

"इसका मैं स्वयं प्रबन्ध कर लूंगा।" सुनंद ने कहा।

फिर सभी अपने-अपने स्थान पर चले गए।"

सिंह सेनापति ने अपने दूत के द्वारा आम्रपाली को संदेश भेजा और कहलवाया कि आज सायं वे सप्तभूमि प्रासाद पर आएंगे।

प्रातःकाल की यह चर्चा गुप्त नहीं रह सकी।

सिंहनायक के भवन में दो-चार दास उस समय खंड के बाहर खड़े थे। उन्होंने भीतर की चर्चा ध्यान से सुनी।

दास-दासियों के हृदय में ऐसी बातें टिकती नहीं। ये बातें दस कानों तक पहुंचीं और उन्होंने सारा वृत्तान्त कादंबिनी को कह सुनाया।

यह वृत्तान्त सुनकर कादंबिनी गम्भीर विचारों में फंस गयी। फिर भी उसने कहा—"हमें घबराना नहीं चाहिए। अब ये सभी विषकन्या के चक्कर में फंस जाएंगे।"

वृद्ध नियामक चला गया।

कादंबिनी ने मन-ही-मन गोपालस्वामी के अनुमान को दाद दी। उसके मन में एक नयी आशा जागी। यदि ऐसे महान् वैद्य मुझे विषमुक्त कर दें तो फिर अभिशाप की अग्नि में कोई नहीं जलेगा। गोपाल स्वामी से कैसे मिला जाए? यदि मैं अपनी दुःखभरी कथा उनको यहां सुनाऊं तो निश्चित है मुझे वैशाली के कारावास की हवा खानी पड़ेगी।

तो···?

दूसरा विचार भी आया···कदाचित् वैशाली के चर विभाग को यहां की शंका हो और विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दे तब क्या हो? अथवा रूपमुग्ध कोई युवक मिलने आए और चुम्बन के लिए प्रयत्न करे तब तो सारा भेद प्रकट हो जाएगा।

नहीं···नहीं···।

वैशाली का चर विभाग कोई प्रयत्न करे, उससे पूर्व ही अपनी सुरक्षा की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

इस प्रकार वह अनेक विचारों में निमग्न हो गयी और उस समय मुख्य परिचारिका लक्ष्मी दीदी कमरे में प्रविष्ट हुई। उसने कादंबिनी को विचारमग्न देखकर कहा—"देवि! किसी गम्भीर विचार में हैं?"

"हां, लक्ष्मी ! अब हमें सावचेत रहना चाहिए। नगरी में जो चर्चा हो रही है, तूने सुनी होगी ?"

"हां, देवि ! इसीलिए तो आपके पास आयी हूं।"

"हमें क्या करना चाहिए ?"

"मंत्रीश्वर के पास दूत भेजें···।"

"इसमें बहुत समय लगेगा। कदाचित् उसके लौटने से पूर्व ही हम फंस जाएं।"

"परन्तु, आप विषकन्या तो हैं नहीं।"

"फिर भी विष प्रयोग तो करती ही हूं। बाहर से आने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर। वे लोग हमारे पर नजर रखें तो हम यहां से छिटक नहीं पाएंगी।"

"तो···"

"धीरे-धीरे हम सबको यहां से पलायन कर जाना चाहिए। सबसे पहले मैं पुरुषवेश में एक संरक्षक के साथ यहां से चली जाऊंगी। फिर तुम सब यहां से धीरे-धीरे निकल जाना।"

लक्ष्मी दीदी विचार करने लगी।

कादंबिनी ने कहा—"यहां से छिटक जाने का एक उपाय सूझ रहा है। कल मैं प्रातःकाल यक्ष मन्दिर में जाऊंगी। वहां से मैं पुरुषवेश में निकल जाऊंगी। साथ में एक रक्षक आएगा। तुम सब यक्ष मन्दिर लौट आना। दूसरे दिन तुम प्रातः पुनः यक्ष मन्दिर में आना और चिल्ला-चिल्लाकर कहना कि मुझे और सुभद्रा को कोई बलपूर्वक उठा ले गया है। यह बात नगर-रक्षक तक पहुंचानी है। मेरा तो उनको अता-पता मिलेगा ही नहीं। इसलिए एकाध सप्ताह के पश्चात् तुम सभी राजगृह नगरी में आ जाना।"

लक्ष्मी के चेहरे पर हर्ष की रेखा खिंच गई। उसने कहा—"देवि ! आपकी बुद्धि-शक्ति बेजोड़ है।

"तो तू सारी तैयारी कर। सुवर्ण मुद्राओं की दो थैलियां हैं। एक मैं साथ में रखूंगी। शेष तुम ही अपने साथ ले आना।"

"जी" कहकर लक्ष्मी दीदी वहां से चली गई।

कादंबिनी ने इस योजना के साथ-साथ अपनी मुक्ति का भी विचार कर लिया था। स्वयं ने चम्पा नगरी जाने का संकल्प किया था और शेष सभी राजगृह पहुंचें, ऐसा अभिप्राय व्यक्त किया था। स्वयं का संकल्प किसी को नहीं बताया था।

४३. नयी चिन्ता

बिंबिसार वैशाली के विनाश के लिए नियोजित षड्यन्त्र का नायक है, यह बात

सिंह सेनापति को यथार्थ नहीं लग रही थी। फिर भी वे अपरान्ह में आम्रपाली से मिलने के लिए उसके भवन में गए।

आम्रपाली को देखते ही उनका मन दर्द से भर गया। उन्होंने देखा कि आम्रपाली के चेहरे पर मानो समग्र विश्व की वेदना एकीभूत हो गई हो।

चिन्ता से रूप और तेज निःसत्व हो जाता है।

सिंहनायक ने पूछा—"पुत्रि ! कुछ अस्वस्थता है ?"

किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी वह बोली—"बापू ! क्षमा करें···मन अस्वस्थ था, इसलिए मैं आपके प्रति मेरे कर्तव्य को भी भूल गयी।···विराजें···।"

"मन की अस्वस्थता क्यों ? युवराज के कोई समाचार मिले ?" कह कर गणनायक एक आसन पर बैठे।

"कोई समाचार नहीं मिला है। इसलिए अतिवेदना हो रही है।" कहकर आम्रपाली एक आसन पर बैठ गयी।

"तब मैं ही तुझे उनके समाचार सुना दूं।···युवराज वैशाली की सीमा को पार कर आगे चले गए हैं। यहां के चर विभाग को ये समाचार कल रात्रि में ही प्राप्त हुए हैं।"

"ओह, यह सुनकर मेरा मन स्वस्थ हुआ है। वे कुशल तो हैं न ?"

"हां, पुत्रि ! युवराज अपने साथी के साथ कुशल हैं। तू निश्चिन्त रह। मुझे प्रतीत होता है कि वे कहीं स्थिर होने के पश्चात् तुझे सन्देश भेजेंगे।"

"महाराज ! आपकी बात सुनकर मन कुछ स्वस्थ हुआ। युवराज को यहां से अचानक जाना पड़ा है। प्रवास में उपयोगी सामग्री भी उनके पास नहीं है। इससे मेरा मन भारी वेदना अनुभव कर रहा था। अब आपके कथन से मेरा मन कुछ शान्त हुआ है।"

आम्रपाली का चेहरा प्रफुल्लित हो गया था।

सिंहनायक ने कहा—"पुत्रि ! तूने कुमार शीलभद्र की मृत्यु के विषय में कुछ सुना है ?"

"हां, यह बात सुनकर मेरे हृदय पर बहुत आघात लगा। वे युवकों के कुशल नेता थे। वे वास्तव में वैशाली गणतन्त्र के एक जागृत नवजवान थे।" आम्रपाली ने शोक व्यक्त करते हुए कहा।

"पाली ! इस प्रकार हमारे चार व्यक्ति मृत्यु प्राप्त कर चुके हैं। चम्पा नगरी के विषवैद्य गोपालस्वामी ने इस मृत्यु का रहस्य बताया है।"

"अच्छा···।"

"किसी विषकन्या के स्पर्श से चारों की मृत्यु हुई है, ऐसी संभावना उन्होंने व्यक्त की है।

"विषकन्या ! इस नगरी में विषकन्या कहां से आयी ? ऐसा तो मैंने कभी नहीं सुना ?" आम्रपाली ने आश्चर्य के साथ कहा।

"गोपालस्वामी ने पूर्ण परीक्षण कर अपना अनुमान व्यक्त किया है··· परन्तु इसमें एक कठिनाई है।"

आम्रपाली प्रश्न भरी नजरों से सिंहनायक की ओर देखने लगी।

सिंहनायक ने कहा—'पुत्रि ! तुझे यह ज्ञात ही है कि यहां के कुछेक आगेवान व्यक्ति बिंबिसार के प्रति शंकित हैं।

"हां, इस निर्मूल आशंका के कारण ही तो जनपदकल्याणी को भयंकर अपमान सहन करना पड़ा···पागल व्यक्तियों ने सप्तभूमि प्रासाद पर आक्रमण कर उसके गौरव पर पानी फेर डाला···यह बात मैं कैसे भूल सकती हूं।"

"कुमार शीलभद्र की मृत्यु से यह आशंका और भी सघन बन गई है।"

"किन्तु बिंबिसार तो यहां थे ही नहीं।"

गणनायक बोले—"मैं युवराज को सम्पूर्ण निर्दोष मानता हूं, किन्तु यहां के कुछेक व्यक्ति उनके प्रति शंकित हैं···"

आम्रपाली सारी बात सुनकर आश्चर्यचकित रह गई।

गणनायक ने कहा—"सुनन्द तो यहां तक कहता है कि बिंबिसार स्वयं अपने साथ एक विषकन्या को लाए थे और उसको कहीं गुप्त स्थान में रखा है। पुत्रि ! तू इस बात को मन में मत लाना।···मैं इसीलिए तेरे पास आया हूं।"

"सुनन्द के अनुमान का आधार क्या है ? क्या उसके पास ऐसा कोई प्रमाण है कि युवराज इस षड्यन्त्र में संलग्न हैं ?" आम्रपाली ने प्रश्न किया।

"पुत्रि ! सुनन्द के संशय का आधार है योजनापूर्वक नैशभ्रमण और शीलभद्र की मृत्यु।"

आम्रपाली अपने आसन से उठी और दो-चार कदम आगे बढ़कर रुक गई। फिर सिंहनायक के सामने देखकर बोली—"आप मेरे पूज्य हैं। आप मुझ से क्या जानना चाहते हैं ?"

इस स्पष्ट प्रश्न से सिंहनायक दो क्षण स्थिर हो गए। फिर वे बोले—"बिंबिसार के साथ कोई दासी अथवा अन्य रूप में रहने वाली कोई विषकन्या नगरी में आई हो और इस सम्बन्ध में कुछ जानती हो तो···।"

बीच में ही आम्रपाली बोल पड़ी—"इसका फलित यही है कि आपको भी मेरे प्रति कोई शंका है ?"

"नहीं, पुत्रि ! मैं तो अन्यान्य व्यक्तियों के संशय को दूर करने के निश्चय से ही यहां आया हूं।"

"तो आपको एक महत्त्व का कार्य करना होगा।" कहकर आम्रपाली एक आसन पर बैठ गई।

"बोल···"

"आपको चरनायक सुनंद की कोई अच्छे वैद्य से चिकित्सा करवानी चाहिए। यह खोज करानी चाहिए कि क्या उसके ज्ञानतन्तुओं में कोई विकृति तो नहीं आ गई है? मैं मानती हूं कि चरनायक सुनंद केवल बुद्धिहीन ही नहीं, अज्ञानी भी है। महाराज बिंबिसार के साथ मेरा मिलन आकस्मिक हुआ था। जब हम यहां आए तब वे अकेले ही थे। जहां वे पहाड़ी पर भूतियागृह में थे, उस समय वहां भी उनका कोई साथी नहीं था। वहां उन्होंने एक सन्देश लिखकर छोड़ा था—"मैं वैशाली जा रहा हूं। तू पांथशाला में आ जाना" फिर हम गीत-संगीत में सब कुछ भूल गए। बहुत दिनों के बाद महाराजा का एक साथी धनंजय मेरे भवन पर आया। दोनों कभी भी प्रासाद के बाहर नहीं जाते थे। कभी-कभी धनंजय जब ऊब जाता तब नगरी में जाता था। महाराज के साथ और कोई था ही नहीं। नगरी में अन्यत्र भी उनका कोई आदमी नहीं था। मैं उनमें तन्मय बन गई। वे मेरे में तन्मय बन गए। दोनों का तादात्म्य अपूर्व था। वे किसी षड्यन्त्र के साथ यहां नहीं आए थे। वैशाली में वे केवल चार-छह दिन ही रुकने वाले थे। वे राक्षसराज शंबुक के वन में फंस गए थे। उन्होंने संगीत के द्वारा राक्षसराज की कन्या का रोग दूर किया और वे शंबुक के मित्र बन गए। राक्षसराज ने प्रसन्न होकर उनको एक रत्नाहार भेंट किया। वह आज भी मेरे पास है। राक्षसराज ने कुछ स्वर्ण भी दिया था। उन्होंने लोक-मेला में उस स्वर्ण को याचकों में बांट डाला। लोक-मेला में वे एक सेठ के अतिथि बने थे। उस सेठ को माध्विका भी जानती है। आप उससे पूछें कि बिंबिसार के साथ क्या कोई दासी या स्त्री थी? अब रही नैशभ्रमण की बात। बापू! उनकी सुरक्षा के लिए मैंने आज तक सत्य बात छुपा रखी है। सप्तभूमि प्रासाद पर आक्रमण होने से पूर्व उनमें कोई संशय नहीं था। वे दो दिन में यहां से जाने ही वाले थे। जब आक्रमण हुआ तब वे सामना करने के लिए तैयार हुए। मैंने उनको रोका और भूगर्भ मार्ग द्वारा बाहर के उपवन में पहुंचा दिया। इस अन्तराल में पागल बने हुए लिच्छवी युवक प्रासाद में खोजबीन कर रहे थे। माध्विका ने नैशभ्रमण की कृत्रिम बात प्रचारित की और उससे खोजबीन करने वाले भ्रमित हो गए। उस समय आप प्रासाद पर आए और आक्रमणकारियों को भगा डाला। किसी को भी पता न लगे इसलिए माध्विका ने आपको भी यही बात कही।

"ओह···।"

"सुनिए! वैशाली का विनाश कोई विषकन्या नहीं करेगी। चरनायक सुनंद जैसे बुद्धिहीन व्यक्तियों द्वारा ही विनाश होगा। मेरी सूचना के अनुसार

माध्विका ने जो अश्व पूर्वीय द्वार पर भेज दिए थे···उतावल में महाराज साथ में कुछ भी नहीं ले सके थे। इसलिए मेरे आग्रह से वे यक्ष मन्दिर में रुके और माध्विका प्रवास योग्य सामग्री रथ में डालकर वहां गई। चार लिच्छवी युवकों ने माध्विका को रथ में जाते हुए देख लिया था। उन्होंने रथ का पीछा किया। पर रथ द्रुतगति से चल रहा था और वे सब वाहन-विहीन थे। इसलिए उनको बहुत पीछे छोड़कर माध्विका वहां पहुंच गयी। मेरे स्वामी उपवन से ही उज्जयिनी के मार्ग पर प्रस्थित हो गए। सुनंद मानता है कि शीलभद्र की मृत्यु में मेरे स्वामी का हाथ है। महाराज! कल्पना के घोड़े कितने ही दौड़ाए जा सकते हैं। उससे तथ्य प्राप्त नहीं होता। अब रही विषकन्या की बात। महाराज, राज्य का कर्तव्य है कि वह विषकन्या की खोज करे। यह उचित भी है। परन्तु निकम्मी कल्पना कर निर्दोष को दोषी ठहराने के लिए प्रयत्न करना अपनी मूर्खता ही साबित करनी है।"

सिंहनायक खड़े हो गए। वे आम्रपाली के निकट गए। उसके मस्तक पर वे हाथ रखकर बोले—"पुत्रि! उस दिन यदि तू मुझे यह बात बता देती तो···?"

"तो मेरे स्वामी वैशाली की सीमा पार नहीं कर पाते। लिच्छवी संगाम के लिए पर्वत से अटल हैं। किन्तु बुद्धि का अभाव भी उतने ही अनुपात में है। यदि लिच्छवियों में शक्ति के साथ-साथ बुद्धि भी होती तो वैशाली की एक ही कन्या को जनपदकल्याणी न बनना पड़ता।" आम्रपाली ने कहा।

सिंह सेनापति आम्रपाली को धीरज बंधाकर विदा हुए। वे तो मानते ही थे कि बिंबिसार निर्दोष है और आम्रपाली की सारी बात सुनकर उनका मानना और अधिक पुष्ट हो गया। वे निश्चिन्त इस बात से थे कि मगध के युवराज इस षड्यन्त्र में लिप्त नहीं हैं। उन्हें केवल चिन्ता यह थी कि षड्यन्त्र का संचालक कौन है और उसे कैसे पकड़ा जा सकता है।

रात्रि के प्रथम प्रहर के पश्चात् महाबलाधिकृत, चरनायक तथा अन्य राज्याधिकारी गणनायक के यहां एकत्रित हुए।

गणनायक सिंह सेनापति ने आम्रपाली के साथ हुई बातचीत पूर्णरूप से उन्हें बताई। फिर उन्होंने चरनायक को उद्दिष्ट कर कहा—"सुनंद! एक बार भटकाव का मार्ग ले लेने पर फिर सही मार्ग मिलना कठिन हो जाता है। यदि विषकन्या की खोज करनी है और मूल षड्यन्त्र को पकड़ना है तो फिर खोज की दिशा बदलनी होगी···पूर्वाग्रहों से ग्रस्त मानस सत्य की खोज नहीं कर सकता।"

सुनंद यह सब सुनकर निष्प्रभ हो गया। महाबलाधिकृत और अन्य राज्याधिकारी भी अवाक् रह गए।

फिर इस विषय की महत्त्वपूर्ण चर्चा कर षड्यन्त्रकारियों की खोज करने के लिए उपाय निर्धारित किए।

सभी रात्रि के तीसरे प्रहर में अपने-अपने घर चले गए।

बुद्धिमती कादंबिनी अत्यन्त सावचेत थी। उसने अपनी निर्धारित योजना को क्रियान्वित करने का निश्चय कर डाला।

दूसरे दिन प्रातः वह यक्ष मन्दिर में गयी और एक रक्षक को साथ ले वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गयी। उसने साथ में पर्याप्त स्वर्ण भी ले लिया था।

वृद्ध नियामक तथा मुख्य परिचारिका लक्ष्मी ने यही माना कि कादंबिनी राजगृह की ओर गयी है। किन्तु कादंबिनी ने चम्पा नगरी पहुंचने का ही निर्णय किया था। और वह उसी ओर चल पड़ी थी।

एक रात सुखपूर्वक बीत गई।

दूसरे दिन लक्ष्मी पुनः भवन की दासियों के साथ यक्ष मन्दिर में आ गयी।

कादंबिनी द्वारा निर्मित योजना के अनुसार दो-तीन घटिका बीत जाने पर लक्ष्मी ने चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया और साथ वाले सभी रोते-चिल्लाते दक्षिण द्वार की ओर दौड़े···लक्ष्मी ने सफल अभिनय के साथ यह बताया कि अभी-अभी दो अश्वारोही युवक देवी कादंबिनी का अपहरण कर गए हैं। लक्ष्मी ने द्वार-रक्षकों के समक्ष यह शिकायत रोते-चिल्लाते की।

सभी नगर-रक्षक के भवन पर तत्काल आए। उस समय नगर-रक्षक कहीं बाहर जाने की तैयारी कर रहे थे। वहां पहुंचकर वृद्ध नियामक ने तथा लक्ष्मी दीदी ने कादंबिनी के अपहरण की घटना नगर-रक्षक के समक्ष रखी और कहा—"श्रीमन्! हम तो दिन-दहाड़े लुट गए। अब हमारा रक्षक कौन होगा? हमारी देवी अब हमें कब मिलेंगी?"

अभी तो नगर-रक्षक विषकन्या को पकड़ने तथा षड्यन्त्रकारी की खोज करने का अभियान आज से शुरू करने वाले थे।

वहां यह एक नया उत्पात सामने आ गया।

नगर-रक्षक ने सोचा—'देवी कादंबिनी का अपहरण करने वाला है कौन?'

दोनों को आश्वस्त कर नगर-रक्षक ने घटना का पूरा विवरण जानना चाहा। लक्ष्मी दीदी ने इतना मात्र कहा—"देवी कादंबिनी ने यक्ष-मन्दिर पर नैवद्य चढ़ाने का सप्त दिवसीय व्रत ग्रहण किया था। दूसरे दिन वे मन्दिर में गयीं। हम सब उनके साथ थे। देवी ने नैवेद्य का थाल चढ़ाया···नमस्कार कर मन्दिर से बाहर निकलीं। उस समय दो अश्वारोही युवक आए और देवी का बलपूर्वक अपहरण कर दक्षिण की ओर भाग गए। कृपावतार! इस परायी धरती पर अब हमारा क्या होगा? अब आप किसी भी उपाय से देवी कादंबिनी को दुष्टों के पंजों से छुड़ाएं।

नगर-रक्षक के सामने नयी चिन्ता खड़ी हो गयी।

४४. वासना की चिनगारी

वैशाली के रक्षक, चरनायक सुनंद तथा अन्यान्य रक्षाधिकारियों ने देवी कादंबिनी की खोज-पडताल के लिए चार दिन तक वैशाली और उसके आसपास के प्रदेश का चप्पा-चप्पा छान डाला। परन्तु कहीं भी, कुछ भी वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सका। देवी कादंबिनी का कुछ भी अता-पता नहीं मिला।

जहां रूप होता है और रूप को भोगने की भूख होती है, वहां ऐसी घटनाएं घटित होती ही रहती हैं। किन्तु वैशाली में ऐसा कभी नहीं हुआ था। स्त्री और पुरुष प्रेम में बंधकर कहीं पलायन कर जाएं, यह संभव था। किन्तु इस प्रकार कोई नारी का अपहरण कर ले, यह अपूर्व घटना थी। इस घटना से वैशाली के गणतंत्र-संचालक लज्जा का अनुभव कर रहे थे।

चरनायक ने लक्ष्मी से इस प्रसंग में अनेक प्रश्न किए। किन्तु लक्ष्मी विशेष कुछ भी नहीं बता सकी। उसने इतना-सा कहा—"अपहरणकर्ता युवक थे। वे कभी देवी से मिलने आए हों, ऐसा संभव नहीं लगता। यह संभव है कि वे कभी देवी का नृत्य देखने आए हों।"

चरनायक ने फिर पूछा—"देवी से मिलने और कौन-कौन आते थे?"

"महाराज! आज तक केवल पन्द्रह बीस व्यक्ति आए होंगे···कुछ दिन पूर्व राजकुमार जैसा एक व्यक्ति आया था और उसने देवी से प्रेम की भिक्षा मांगी थी।"

"उनका नाम जानती हो?"

"नहीं, महाराज!"

"तो क्या देवी ने कुमार की इच्छा पूरी की थी?"

लक्ष्मी ने स्वाभाविक संकोच का अनुभव किया।

चरनायक ने कहा—"कदाचित्···।"

"देवी मात्र आलिंगन ही देती थीं। वे मानती थीं कि नर्तकी को अपने शरीर का सौष्ठव बनाए रखना चाहिए। उसे कभी विषयतृप्ति का साधन नहीं बनना चाहिए।" लक्ष्मी ने कहा।

"बहुत अच्छा। क्या तुम देवी के संपर्क में आने वालों के कुछेक नाम बता सकती हो?"

"कैसे बताऊं? मिलने-जुलने के लिए आने वालों में कोई दूसरी बार आया हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। क्योंकि देवी किसी की शारीरिक भूख किसी भी मूल्य पर मिटाने के पक्ष में नहीं थीं। फिर हम यहां से सर्वथा अपरिचित हैं। हम किसी को कैसे जान सकते हैं।"

चरनायक को कुछ भी रहस्य नहीं मिला।

इधर देवी कादंबिनी एक प्रौढ़ रक्षक के साथ प्रवास करती-करती चंपा नगरी के निकट पहुंच गई थी। वहां से चंपा मात्र दस कोश दूर थी!

कादंबिनी अपनी मुक्ति के प्रति आश्वस्त हो गई। उसने मन-ही-मन यह निश्चय किया था कि वैद्यराज आएं, तब तक चंपा में ही रुकना चाहिए। वह स्वयं चंपा की ही थी। उसका पालन-पोषण करने वाली माता वहीं वेश्यावृत्ति करती थी। इसलिए उसके लिए यह अनिवार्य हो गया था कि वह चंपानगरी में पुरुषवेश में ही रह सकेगी। यदि वैद्यराज उसे विषमुक्त नहीं कर पाएंगे तो वह राजगृह लौट जाएगी। इस प्रकार कादंबिनी ने मन-ही-मन निश्चय कर रखा था।

उसके साथ वाला रक्षक राजगृह का था। और देवी इस प्रकार चंपा में रहे, यह जानकर उसे आश्चर्य अवश्य हुआ। कादंबिनी ने उसके मन को पढ़ लिया और उसको यह समझाया कि जब तक महामंत्री की आज्ञा न आए तब तक चंपा नगरी में ही रहना है।

रक्षक प्रौढ़ था···लगभग पचास वर्ष का। उसका शरीर सशक्त था। चार दिन के सतत प्रवास से भी वह श्रमित नहीं हुआ था। किन्तु पुरुषवेशधारिणी कादंबिनी के सहवास से उसके मन में भोग की लिप्सा जाग गई थी।

यौवन सबको आकर्षित करता है···युवा हो, वृद्ध हो या प्रौढ़ हो। सभी मादक यौवन को देखकर अपना भान भूल जाते हैं।

कितना मादक और खतरनाक होता है रूप और यौवन! साठ-साठ हजार वर्ष तक तपस्या कर शरीर को जीर्णशीर्ण बना देने वाले विश्वामित्र भी देवी मेनका के रूप-यौवन में फंस गए। मेनका का सौन्दर्य उनके हृदय के दरवाजों को तोड़कर भीतर प्रविष्ट हो गया।

यह बेचारा रक्षक! देवी कादंबिनी के रूप की मदिरा में इतना उन्मत्त हो गया कि उसके सहवास की योजना बनाने लग गया।

चंपा नगरी यहां से दस कोश दूर थी। अश्व भी श्रान्त हो गए थे। और कादंबिनी भी इस चतुर्दिवसीय निरंतर प्रवास से थककर चूर हो गई थी।

एक क्षुद्र पल्ली थी। वहां रात बिताने का निश्चय किया। वहां एक छोटी-सी पांथशाला भी थी।

कादंबिनी के रक्षक ने अश्वों के लिए चारे-पानी की व्यवस्था की। उसने एक घर से रोटी और दूध भी ले लिया। कादंबिनी ने वैशाली से चलते समय कोई पाथेय नहीं लिया था।

पांथशाला का व्यवस्थापक एक वृद्ध व्यक्ति था। वह वहीं रहता था। उसने दो पुरानी चारपाई और दो गादी-तकिए भी उन्हें दे दिए थे।

पांथशाला मे दीपमालिका की कोई व्यवस्था नहीं थी। क्योंकि कभी-कभार

ही यहां कोई प्रवासी रात भर रहता था। इसलिए तेल का दीपक ही आवश्यकता-वश जलाया जाता था।

प्रौढ़ रक्षक का नाम सुरनंद था। उसने पांथशाला की चारों कोठरियों को देखा और एक कोठरी पसंद कर उसमें कादंबिनी के सोने की व्यवस्था कर दी। स्वयं के सोने की व्यवस्था उसने बाहर ही की।

दीपक का प्रकाश मंद था। सुरनंद पानी का घड़ा भर लाया। दोनों ने दूध-रोटी का ब्यालु किया।

कादंबिनी के सामने एक बड़ी कठिनाई यह थी कि जो पुरुषवेश उसने पहन रखा था, उसको बदलने के लिए उसके पास कोई दूसरा वेश नहीं था। उसके पास चम्पा में रहने योग्य पर्याप्त धन था। उसके पास कुछ अलंकार भी थे। ये सब वस्तुएं उसने अपने पास ही रखी थीं।

कादंबिनी ने अपनी शय्या पर बैठते-बैठते कहा—"सुरनंद! देख, हमें जल्दी उठकर यहां से प्रस्थान कर देना है।"

"जी!" सुरनंद ने अपने मंच पर बैठे-बैठे ही कहा।

कादंबिनी अपनी कोठरी में गई। उसने देखा, वहां वातायन का नामोनिशान नहीं था। हवा के बिना नींद कैसे आएगी? वह पुनः बाहर आई, बोली—"सुरनंद! इस कोठरी में वातायन तो है ही नहीं।"

"मैं पहले ही देख चुका हूं। किसी भी कोठरी में वातायन नहीं है।"

"तब तो गर्मी में झुलसना पड़ेगा।"

"आपको यदि एतराज न हो तो आप बाहर सो जाएं और मैं भीतर सो जाऊंगा।"

"नहीं, मैं द्वार खुला रखकर भीतर ही सो जाऊंगी", कहकर कादंबिनी कोठरी में चली गई।

सुरनंद ने सोचा—कल हम चंपा पहुंच जाएंगे। इस रूपवती नर्तकी को भोगने का वहां अवसर नहीं मिलेगा···यह स्थल बड़ा उपयुक्त है···पांथशाला में कोई पथिक भी नहीं है। वृद्ध संचालक बाहर सोता है···यदि आज का अवसर चूक जाऊंगा तो फिर ऐसा अवसर कभी हाथ नहीं लगेगा।

यह सोचकर वह अपनी शय्या पर करवटें बदलने लगा।

जो रूप की ज्वालाओं से घिरा रहता है उसे नींद नहीं आती। जो काम की आंधी में फंस जाते हैं, उनकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है।

सुरनंद को यह ज्ञात नहीं था कि जिस रूप-यौवन पर वह चार दिनों से पागल हो रहा है वह रूप नहीं, भयंकर विष है। सर्प काटता है तो उसका इलाज किया जा सकता है, उस विष को दूर किया जा सकता है परन्तु इस नारी के रोम-रोम में व्याप्त विष तो मौत ही देता है।

सुरनंद तो इतना ही जानता था कि कादंबिनी एक रूपवती नर्तकी है और मगधेश्वर के प्रयोजन से वह वैशाली में आई है। उसके कार्य में कोई विघ्न उपस्थित हुआ है, इसलिए यह वहां से छिटक कर आ गई है।

कोठरी की शय्या पर सोती हुई कादंबिनी कुछ और ही सोच रही थी। वह एक नूतन आशा के गीत गूंथ रही थी। यदि काया में व्याप्त विष दूर हो जाए तो किसी नगरी में जाकर सुन्दर युवक को जीवन-साथी बनाकर रूप और यौवन को धन्य बनाना। किसी पुरुष के चरणों में सर्वस्व का अर्पण कर नारी-जीवन का सौभाग्य प्राप्त करना।

आशा के ऐसे सुन्दर गीत के मध्य मन को पिरोने वाली कादंबिनी को यह कल्पना भी नहीं थी कि बाहर सोया हुआ सुरनंद विषयानंद की कल्पनाओं में उन्मज्जन-निमज्जन कर रहा है।

शय्या मृदु हो या कठोर, स्थान कैसा भी क्यों न हो, किन्तु शरीर की थकावट व्यक्ति को निद्रा की गोद में ला बिठाती है।

कादंबिनी आशा के गीत में खोए जा रही थी। परन्तु काया की विश्रान्ति नींद को बुला रही थी।

एकाध घटिका के पश्चात् कादंबिनी का आशा-गीत स्वप्नलोक में समा गया। थकावट ने देह को निद्राधीन कर डाला। कुछ ही समय में कादंबिनी सघन निद्रा में चली गई।

सुरनंद पचास वर्ष का था। घर में पत्नी थी, सात बच्चे थे। उसने प्रथम वय में अनेक क्रिडाएं की थीं। किन्तु राख के नीचे दबी हुई अग्नि कब भभक जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। उसकी दबी हुई काम-लालसा की ज्वाला भभक उठी।

सुरनंद धीरे से उठा। और कोठरी में दीपक को देखा। कोठरी में मंद-मंद प्रकाश था और कादंबिनी गाढ़ निद्रा में सो रही थी।

वह पुन: अपनी खाट पर आ गया। उसने मन-ही-मन सोचा—मैं कादंबिनी के पास जाऊं और यदि वह चिल्ला उठे तो संभव है कठिनाई पैदा हो जाएगी। फिर मैं क्या कर पाऊंगा?

तत्काल उसे एक उपाय सूझा। उसने शय्या के नीचे रखी हुई अपनी कटारी बाहर निकाली···उसने मन-ही-मन निर्णय किया कि यदि कादंबिनी आनाकानी करेगी या चिल्लाएगी तो कटारी उसकी छाती में घुसेड़ दूंगा और उसके पास जो धन-माल है उसको लेकर भाग जाऊंगा।

वह खड़ा हुआ। उसने पुन: कादंबिनी की ओर देखा। कादंबिनी गाढ़ निद्रा में सो रही थी।

खुली कटारी को वह हाथ में लेकर कोठरी में गया। धीरे से उसने द्वार बंद किया और कादंबिनी की शय्या के पास जाकर दो क्षण तक वहां खड़ा रह गया।

उस मंद प्रकाश में भी कादंबिनी का निद्राधीन शरीर बहुत ही आकर्षक लग रहा था।

सुरनंद के मन में इस नवयौवना नारी के यौवन को भोगने की लालसा तीव्रतम हो चुकी थी। उसने धीरे से कहा—"देवि!"

कादंबिनी आशाओं के स्वप्निल संसार में खो चुकी थी।

सुरनंद ने दूसरी बार आवाज लगाई और कादंबिनी के उन्नत उरोजों का स्पर्श किया।

कादंबिनी हड़बड़ा कर उठ बैठी। उसने देखा सुरनंद था। वह कुछ भी नहीं समझ पाई कि सुरनंद भीतर क्यों आया होगा? उसने कहा—"क्यों?"

"देवि! इस ओर देखें···मेरे हाथ में कटार है···यदि आप चिल्लाएंगी तो मेरी कटार आपका काम तमाम कर देगी।"

"अरे! तुझे यह क्या सूझा? तुझे क्या चाहिए?"

"मुझे अपनी इच्छा पूरी करनी है···तुम्हारे यौवन का आनंद लेना है।"

कादंबिनी स्थिर रही, घबराई नहीं। इस परिस्थिति में भी उसने मुसकरा कर कहा—"सुरनंद! क्या तुमने कभी अपनी उम्र का भी ख्याल किया है?"

"काया वृद्ध होती है, मन कभी वृद्ध नहीं होता···तुम मेरी इच्छा को स्वीकार करो, अन्यथा···।"

कादंबिनी खड़ी हो गई और प्रसन्नता का अभिनय करती हुई बोली—"सुरनंद! तेरी इच्छा को पूरी करने में मुझे किसी भी प्रकार की अड़चन नहीं है। मैं एक नर्तकी हूं। नर्तकी को अपने रूप को कभी-कभी व्यावसायिक भी करना होता है। परन्तु तू जानता है कि पूर्वजन्म का मेरा पति अदृश्य रहकर मेरा रक्षण करता है।"

"यह सब मनगढंत बातें हैं···ऐसा कभी हो नहीं सकता।"

कादंबिनी ने सोच लिया कि कामातुर सुरनंद किसी भी उपाय से समझ नहीं सकेगा। वह बोली—"सुरनंद! कटार नीचे रख दे···अपनी इच्छा पूरी कर, आ, मेरे पास बैठ जा।"

सुरनंद हाथ में कटारी थामे ही कादंबिनी के पास बैठ गया। कादंबिनी ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"पगले! यौवन का सत्कार करने वाला व्यक्ति कटारी के बल पर कुछ भी नहीं पा सकता।" कहकर उसने सुरनंद का आलिंगन किया। सुरनंद के हृदय में दबी हुई आग भभक उठी। उसने कटारी को एक ओर रख वही किया जो पूर्ववर्ती रूप-शलभों ने किया था।

भोग से भभकी हुई आग वैसी की वैसी रह गई। दूसरे ही क्षण सुरनंद का बाहुपाश शिथिल हुआ।···उसकी आंखें फटी की फटी रह गईं। और वह धरती

पर धड़ाम से गिर गया। उसके मुंह से नीले रंग के फेन निकलने लगे। वह निष्प्राण हो गया।

कादंबिनी ने दो क्षणों तक सुरनंद की निर्जीव काया की ओर देखा···फिर अपना सामान और सुरनंद का कटार लेकर बाहर आ गई।

कोठरी में जलते हुए दीपक को उसने बुझा डाला और बाहर सुरनंद की खाट पर निश्चिन्त होकर सो गई।

प्रातःकाल के प्रथम चरण में उसने अपना पुरुषवेश ठीक किया। मस्तक पर पगड़ी रखी और पांथशाला के रक्षक को जगाकर कहा—"बापू ! मेरे साथी को किसी जहरीले जानवर ने काट खाया है। तुम चलो और देखो तो सही।"

वृद्ध रक्षक कादंबिनी के साथ गया और दूसरे दीपक के प्रकाश में सुरनंद को देखकर बोला—"महाराज ! आपका साथी तो मर गया लगता है। इसके मुंह से झाग निकल रहे हैं···निश्चित ही किसी विषधर ने डंक मारा है।"

"हाय राम ! अब मैं क्या करूंगा; इस अनजाने प्रदेश में···!"

वृद्ध ने कहा—"आप चिन्ता न करें, मैं सारी व्यवस्था कर दूंगा।"

"किन्तु आप एक काम करें। इस गांव में कोई विष उतारने वाला है ? यदि है तो आप उसे बुलाएं।" पुरुष वेशधारी कादंबिनी ने कहा।

"महाराज ! यहां तो कोई नहीं है···चंपा नगरी में अनेक वैद्य हैं।"

"अच्छा तो आप एक काम करें···मेरे साथी के शव को सावचेती से संभाल कर रखें···मैं चंपा नगरी से किसी वैद्य को ले आता हूं···।"

"किन्तु इसकी नाड़ी तो बंद हो गई है।"

"मैंने सुना है कि जिसको सर्प काट खाता है, उसके प्राण ब्रह्मरंध्र में तीन दिन तक अटके रहते हैं···।"

"आप जाएं। मैं आपके साथी की सार संभाल रखूंगा।" वृद्ध रक्षक ने कहा।

कादंबिनी ने अपना अश्व तैयार किया। सुरनंद के पास जो एक पोशाक थी, उसे साथ में ले लिया। बीस स्वर्ण मुद्राएं पांथशाला के रक्षक को दी और कहा—"मैं सांझ तक लौट आऊंगा, तब तक आप मेरे साथी को संभाले रहें। फिर देख लूंगा।"

कादंबिनी अपने अश्व पर बैठकर चंपा नगरी की ओर चल दी।

जिस कोठरी में सुरनंद का निर्जीव शरीर पड़ा था उस कोठरी का द्वार बंद कर रक्षक अपनी खाट के पास गया।

उस बेचारे को यह ज्ञात नहीं था कि इस मौत के पीछे वासना की चिनगारी धधक रही थी। इस मौत का कारण कोई विषधर नहीं किन्तु विषकन्या का दंश है।

४५. शंका का निवारण

जैसे-जैसे चंपा नगरी निकट होती गई, कादंबिनी के मन की उमस बढ़ती गई। चंपा नगरी बहुत भव्य है। किसी भी पांथशाला में ठहरा जा सकता है। किन्तु परिचित व्यक्ति अधिक हैं। यदि किसी ने पहचान लिया तो क्या होगा? यदि पुरुषवेश का रहस्य प्रकट हो जाए तो···? और स्नान तथा भोजन में यह अभिशाप कैसे सुरक्षित रखा जाए?

इस प्रकार अनेक विचारों के झंझावात में फंसी हुई कादंबिनी चंपा नगरी के परिसर में आ पहुंची। उसका हृदय हिलोरें लेने लगा। अभी तो कुछ समय पूर्व ही माता के भवन का त्याग किया था···और यदि अधिक काल भी बीता हो तो भी क्या? जहां बाल्यकाल बीता हो वह स्थान आकर्षित करता ही है। ससुराल के सुखों के मध्य रहने वाली नारी वृद्ध हो जाने पर भी अपने पीहर के संस्मरणों को नहीं भुला सकती। कादंबिनी के हृदय में चंपा के मधुर संस्मरण, अपनी प्रिय सखियों के साथ की गई क्रीडाएं, चंपा का बाजार आदि उभरने लगे। उसने कुछ समय के लिए अपने अश्व को रोका। अब कहां जाए, यह प्रश्न उसके मन को मथने लगा।

कठिनाई स्वयं मार्ग का निर्माण करती है। कादंबिनी को भी एक मार्ग मिल गया। नगर के बाहर छोटे-बड़े अनेक उपवन हैं। वहां के व्यवस्थापक पथिकों के ठहरने की व्यवस्था भी करते हैं। यही उचित होगा कि मैं भी किसी उपवन में जाकर ही ठहरूं। आरामिक से मिलकर व्यवस्था करूं।

यह सोचकर उसने अपने अश्व को एक मार्ग पर मोड़ा। लगभग एकाध घटिका के पश्चात् वह एक आरामिक की झोंपड़ी के पास आ पहुंची।

आरामिक की पत्नी घर में थी। उसने इस विदेशी दीखने वाले युवक का सत्कार किया और बोली—'महाराज! क्या आज्ञा है?"

"मैं उज्जयिनी से आ रहा हूं। मुझे यहां के महान् वैद्य गोपालस्वामी से मिलना है। किन्तु यहां पहुंचने के पश्चात् मुझे ज्ञात हुआ कि वे बाहर गए हुए हैं। इसलिए वे लौटकर यहां आएं तब तक मुझे यहीं कहीं ठहरना है···यदि मेरे रहने के लिए आप यहां एक अलग कुटीर दे देंगे तो जो किराया होगा, वह देकर मैं यहां रह जाऊंगा···।"

"आपका शुभ नाम?"

"संगीतकार निर्मलदेव।" कादंबिनी ने अश्व पर बैठे-बैठे ही कहा।

"सामने दो खंड वाला एक कुटीर है···उसका प्रतिदिन का किराया है बीस पदक···इसके अतिरिक्त यदि आप स्नान-भोजन की व्यवस्था भी चाहेंगे तो उसका अतिरिक्त व्यय देना होगा।"

"अच्छा, मैं आपको अधिक प्रसन्न करूंगा।" कादंबिनी ने आनंदपूर्वक कहा।

फिर आरामिक की पत्नी उन्हें एक कुटीर के पास ले गई।

कादंबिनी अश्व से नीचे उतरी। कुटीर देखा। उसके दो खंड थे। एक स्नान-गृह भी था। उसमें हवा और प्रकाश प्रचुर था। कादंबिनी को वह कुटीर अच्छा लगा। वह बोली—"मांजी! वर्षाकाल प्रारंभ होने ही वाला है···इसलिए इस कुटीर में···।"

"कुछ भी बाधा नहीं आएगी। आपके सोने-बिछौने के लिए भी यहां व्यवस्था है।"

"मेरे अश्व के लिए···?"

"मेरे कुटीर के पीछे एक बाड़ा है। दो-तीन अश्व एक साथ रह सकें, ऐसा छप्पर भी है।"

"क्या मेरे प्रयोजन के लिए कोई सेवक भी मिल सकेगा?"

"हां, महाराज! मेरी कन्या और मेरा पुत्र—दोनों आपके कार्य के लिए योग्य हैं।"

"तो ठीक है। अब स्नान और भोजन-पानी की व्यवस्था कर दो।"

"आप आराम से बैठें। मैं अभी व्यवस्था किए देती हूं।" कहकर आरामिका की पत्नी व्यवस्था करने के लिए वहां से चल दी।

एकाध घटिका में सारी व्यवस्था हो गई। सोने के लिए खाट, बिछौना, जलपात्र आदि आ गए। आरामिका की चौदह वर्ष की कन्या ने स्नान-जल की व्यवस्था कर दी।

कादंबिनी कुछ सोच ही रही थी कि आरामिका की पुत्री ने आकर कहा—"महाराज! स्नानगृह में सारी सामग्री रख दी है।"

"तेरा नाम क्या है?" कादंबिनी ने पूछा।

"श्यामा···आपको अभ्यंग करना हो तो मेरा भाई···।"

"नहीं, श्यामा! मैं स्वयं कर लूंगा।"

कादंबिनी कुटीर का द्वार बंद कर स्नानगृह में गई। सारे वस्त्र उतारे और उनको एक ताम्र की कुंडी में पखारे। फिर शरीर पर तेल मर्दन, उबटन आदि कर आनंदपूर्वक स्नान किया। गत आठ दिनों में उसने स्नान नहीं किया था। इसलिए उसने अपनी सघन केशराशि भी स्वच्छ की। फिर अंग-लुंछन से शरीर को पोंछा और बालों को भी पोंछ कर खुल्ला कर दिया।

उसने सुरनंद के कपड़ों में से एक धोती निकाल कर पहन ली। फिर अंगरखा पहना।

इतने समय में आरामिका की पत्नी दो-तीन बार आ गई। कुटीर का द्वार बंद होने के कारण वह चली गई। भोजन तैयार हो चुका था।

लगभग चार घटिका के बाद कादंबिनी ने अपना जूडा बांधा और किसी को कल्पना भी न हो, इस प्रकार उस पर एक कपड़ा लपेटा।

वहां दर्पण नहीं था, परन्तु उसको यह विश्वास था कि कोई भी उसको स्त्री रूप में नहीं पहचान पायेगा।

मन में कोई संशय नहीं था। इसलिए कुटीर का द्वार खोला। भूख लग गई थी। दस कोश का प्रवास किया था। साथी मृत्यु का कवल बन गया था। प्रातःकाल कुछ भी खाया नहीं था। दूध भी नहीं पीया था। और शरीर में व्याप्त विष भूख को अधिक उग्र कर रहा था।

इतने में ही श्यामा आकर बोली—"महाराज! आपको स्नान करने में बहुत समय लगा। भोजन तैयार है। यहां लाऊं या आप वहां आएंगे?"

"यहीं ले आ।"

कुछ ही समय में श्यामा भोजन की थाली लेकर आ गई।

सूर्य अस्ताचल की ओर चला गया था।

सुरनंद के शव को पांथशाला में छोड़ा था। सांझ होते-होते वहां के वृद्ध संचालक के मन में गहरी चिंता होने लगी। वैद्य को बुलाने के लिए गया हुआ नवजवान अभी तक नहीं लौटा। क्या मार्ग में किसी ने उसको लूट लिया? क्या वह मार्ग भूल कर अन्यत्र चला गया? उस बेचारे का क्या हुआ होगा?

उसने अपने गांव के चार-छह व्यक्तियों को एकत्रित किया। सबने सुरनंद की निर्जीव काया को देखकर कहा—"अब इसमें कुछ नहीं है। बेचारा किसी भयंकर विषधर का भोग बना है।"

सभी मिलकर शव को श्मशान ले गए और उसका अग्नि-संस्कार कर बोले—"बेचारा परदेशी मार्ग में ही मर गया।"

सुरनंद का अश्व तथा सारा सामान एक दिन प्रतीक्षा करने के पश्चात् किसी सुपात्र ब्राह्मण को दान में देना निश्चय किया गया।

इधर वैशाली में चरनायक सुनंद ने विषकन्या की खोज में रात-दिन एक कर डाला। किन्तु कहीं भी उसका अता-पता नहीं लगा।

गोपालस्वामी भी वर्षा के प्रारंभ होने के पूर्व ही चंपा नगरी की ओर प्रस्थान करने की तैयारी करने लगे।

गणनायक सिंह ने गोपालस्वामी का आभार माना और उन्हें पुष्कल द्रव्य से पुरस्कृत किया।

दूसरी ओर, कादंबिनी के वृद्ध नियामक और लक्ष्मी परिचारिका ने नगर-रक्षक के चरणों में लुठकर स्वयं को सकुशल राजगृह पहुंचाने के लिए प्रबंध करने

की प्रार्थना की। लक्ष्मी ने कहा—"देवी कादंबिनी की प्रतीक्षा में हम यहां कब तक रहेंगे? हमारे पास धन नहीं है और देवी कादंबिनी का क्या हुआ है, यह भी जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।"

नगररक्षक भी उनको आश्वासन कब तक दे? उसने सोचा, या तो कादंबिनी ने किसी नवयुवक के साथ घर बसा लिया होगा अथवा किसी ने उसे बलात् अपने घर में रख छोड़ा होगा।

इसलिए उसने कादंबिनी के सभी मनुष्यों के प्रवास का प्रबन्ध कर डाला।

जिस दिन विषवैद्य गोपालस्वामी चंपानगरी की ओर प्रस्थित हुए, उसी दिन कादंबिनी के सभी व्यक्तियों का समूह राजगृह की ओर रवाना हो गया।

विषकन्या की खोज व्यर्थ हुई—यह दुःख वैशाली के चर-विभाग के मन में शल्य की तरह चुभ रहा था।

कुमार बिंबिसार इस षड्यंत्र में संलग्न नहीं है, यह विश्वास सबको हो चुका था। परन्तु इस षड्यंत्र के पीछे कौन है—यह प्रश्न जटिल हो रहा था।

पूर्व भारत में वैशाली के चर-विभाग की अपूर्व ख्याति थी। किन्तु इस प्रश्न के कारण उसकी कीर्ति मंद हो गई थी।

सिंह सेनापति को यह असफलता शल्य की भांति चुभने लगी। उन्होंने आर्य सुनंद से कहा भी था—"विषकन्या का पता नहीं लगा, यह बात सही जा सकती है···परन्तु षड्यन्त्र का कुछ भी पता नहीं लगना हमारे लिए शर्म की बात है। मुझे लगता है कि आम्रपाली का कथन सत्य है कि वैशाली की नयी पीढ़ी विलास और प्रमोद में इतनी पागल बन गई है कि अपनी स्वतंत्रता को टिकाए नहीं रख सकती। सुनंद! वैशाली के गणतंत्र को हिला देने वाले षड्यंत्रकारी को हम पकड़ नहीं सके, तो फिर हम शत्रु की अन्यान्य चालों का मुकाबला कैसे कर पाएंगे? देवी आम्रपाली इतनी उग्र हो गई हैं कि वे कहती हैं कि ऐसे निर्वीर्य चर-विभाग का अंत ही श्रेयस्कर है। अपनी नगरी से एक नर्तकी का अपहरण हो और अपहरणकर्ता का पता ही न लगे, क्या यह छोटी बात है? वह तो नर्तकी थी। आज यदि कोई कुलवधू का भी अपहरण कर ले, या किसी कन्या को उठा ले जाए तो क्या राजतंत्र ऐसे ही निष्फल प्रयास करेगा? राजतंत्र को सदा सजग ही रहना चाहिए। यदि सजगता मिटती है, सक्रियता खत्म होती है तो राजतंत्र अपने आप धूल में मिल जाता है।"

सुनंद बोला—"महाराज! मुझे अत्यन्त दुःख होता है। लज्जा से मेरा मस्तक झुक जाता है। षड्यन्त्रकारी की जांच में मैंने कोई कसर नहीं रखी। नगरी का एक भी स्थान ऐसा नहीं बचा जिसका मैंने निरीक्षण न किया हो। परन्तु मुझे सफलता नहीं मिली। अंतिम खोज में एक नयी बात सामने आई है।"

"कौन-सी बात?"

"जिस रात्रि में शीलभद्र की मृत्यु हुई, उस रात्रि में प्रथम प्रहर के समय शीलभद्र और कादंबिनी को भवन के बाहर जाते हुए एक पथिक ने देखा था।"

सिंहनायक चौंके। तत्काल वे बोले—"यह बात तुमने कब सुनी?"

"कल रात्रि में···।"

"फिर क्या हुआ?"

"किसको पूछें? क्योंकि दो दिन पूर्व ही कादंबिनी के सभी स्त्री-पुरुष राजगृह की ओर चले गए।"

सिंह सेनापति मौन हो गए। वे विचार करने लगे। घड़ी भर मौन रहने के बाद बोले—"सुनंद! तुम्हारी भारी पराजय हुई।"

सुनंद आश्चर्यभरी दृष्टि से गणनायक की ओर देखता रहा।

गणनायक बोले—"महाबलाधिकृत के एकाकी पुत्र की भी जिस रात मृत्यु हुई थी, उसी रात को वह कादंबिनी से मिलने गया था। इसकी खोज भी तुमने की थी?"

"हां, महाराज!"

"तो फिर देवी कादंबिनी ही इस षड्यंत्र की मुख्य चाबी होनी चाहिए। मरने वाले मरने से पूर्व इससे मिलते रहे हैं, यह बात स्वयंसिद्ध है। फिर कादंबिनी के अपहरण की घटना भी कृत्रिम होनी चाहिए और यह उसके छिटकने की योजना मात्र है। क्योंकि इतनी खोजबीन करने पर भी उसके अपहरण का कोई चिह्न नहीं मिला, इसलिए मैं मानता हूं कि उसका अपहरण नहीं हुआ। वह इस बहाने पलायन कर गई। मैंने इस नर्तकी को कभी देखा नहीं, किन्तु अब मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि वह अपनी रूप-ज्वाला में यहां के विशिष्ट व्यक्तियों को भस्मसात् करने के लिए ही यहां आई थी और वह तीव्र बुद्धिमती भी होनी चाहिए। वह यहां रही। किसी को भी शंका नहीं हुई। वह अपने सभी स्त्री-पुरुषों को भी सही-सलामत ढंग से खींच ले गई।"

"महाराज!" आश्चर्य के साथ सुनंद खड़ा हो गया।

"क्यों?"

"मैं अभी अपने व्यक्तियों को राजगृह भेजता हूं।"

"क्यों? किसलिए? अब वह हस्तगत नहीं होगी। क्या मेरा यह अनुमान तुम्हें उचित लगता है?"

"हां, महाराज! अब मुझे सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है।"

सिंह सेनापति ने कहा—"हमारा प्रयास इसलिए निष्फल हुआ कि हमारे मन में वैरवृत्ति तीव्र थी। बिंबिसार के प्रति तेरे मन में शंका क्यों जन्मी? यही तो कारण था कि वह मगध का युवराज था और वह जनपदकल्याणी का प्रियतम बन गया था। जनपदकल्याणी किसी को भी अपना प्रियतम बना सकती है, परन्तु

ईर्ष्या आदमी को भटका देती है। तुम बिंबिसार को ही दोषी मानने लगे। इसलिए तुम सब खोज में भटक गए। विपरीत मार्ग में चलते रहे। विषकन्या आबाद रह गई और वह निर्भयतापूर्वक अपना काम करती रही। यदि आचार्य गोपालस्वामी विषकन्या की बात नहीं करते, तो हमारे अन्य अनेक स्तम्भ ढह जाते।"

सुनंद नीची दृष्टि किए जमीन कुरेदने लगा।

सिंह सेनापति ने कहा—"सुनंद ! आज ही तू आम्रपाली के पास जा, उससे क्षमा मांग ले। मात्र तेरी मूर्खता के कारण ही आम्रपाली को बहुत सहना पड़ा है। प्रियतम का वियोग नारी में अकथ्य वेदना पैदा करता है। अब तो बिंबिसार भी उज्जयिनी पहुंच गए होंगे। तू आज ही देवी से मिलकर यह स्पष्ट रूप से कह कि बिंबिसार निर्दोष हैं।"

"जी !" कहकर सुनंद खड़ा हुआ।

बिंबिसार और धनंजय उज्जयिनी से बीस कोस की दूरी पर स्थित एक छोटी नगरी में पहुंच गए थे।

बिंबिसार का प्रवास अत्यन्त सुखद और निर्बाध रहा। मार्गगत बाधाओं की जो आशंका थी, वे बाधाएं आयी ही नहीं। बिंबिसार उज्जयिनी पहुंचने के बाद आम्रपाली को संदेश भेजने का विचार कर रहे थे।

उन्हें तो यह पता ही नहीं था कि जिस आशंका के कारण उन्हें वैशाली छोड़नी पड़ी है, उस शंका का निवारण हो चुका है।

४६. वैशाली को छोड़ने के पश्चात्

विरहिणी नारी के समक्ष जब प्रियतम के आगमन का संदेश आता है तब उसके प्राणों में आशा का एक फूल खिलता है मिलन-माधुरी का स्वप्न उभरता है।

आकाश में मेघ उमड़ आए। विरहिणी पृथ्वी को बिजली की चमक-दमक द्वारा यह संदेश मिल गया। पृथ्वी के मन में प्रियतम मेघ से मिलने की आशा नृत्य करने लगी।

वर्षा का प्रारम्भ हो गया। समग्र पूर्व भारत में वर्षा होने लगी। गगन प्रसन्न था। मेघ आनन्दित था। पृथ्वी भी अत्यन्त प्रसन्न थी। परन्तु विरह-वेदना में सब सुखों को भूल जाने वाली आम्रपाली को अभी तक अपने प्रियतम का संदेश प्राप्त नहीं हुआ था। युवराज के संदेशों की वह आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी। कल ही तो चरनायक सुनंद आम्रपाली से क्षमा मांगने गया था और उसने कहा था—"युवराज बिंबिसार सर्वथा निर्दोष हैं···वे सप्तभूमि प्रासाद में ससम्मान रह सकते हैं।"

इस बात को सुनकर आम्रपाली का हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ था। उसने मन-ही-मन यह भी सोचा कि किसी संदेशवाहक को भेजकर युवराज को यहां बुला लिया जाए। तत्काल ही दूसरे क्षण उसने सोचा, वे उज्जयिनी गए हैं या आस-पास की किसी नगरी में पहुंचे हैं, यह कहना कठिन है। इसलिए यही अच्छा होगा कि जब उनका कोई संदेशवाहक यहां आएगा तब उसके साथ अपनी मनोभावना भी कहलवा दूंगी।

बिंबिसार और धनंजय—दोनों सुखपूर्वक उज्जयिनी पहुंच गए। दोनों एक पांथशाला में ठहरे और बिंबिसार ने सबसे पहले अपनी प्राण-प्यारी आम्रपाली को संदेश भेजने का कार्य किया।

धनंजय ने ऐसे एक व्यक्ति को खोज निकाला था जो त्वरा से वैशाली जाए और महाराज का संदेश आम्रपाली को दे और आम्रपाली का संदेश लेकर आ जाए। उस व्यक्ति के पास एक तीव्रगामी ऊंट था, इसलिए त्वरा से जाने-आने में कोई कठिनाई यहीं थी।

बिंबिसार ने दो ताम्रपत्रों पर प्रियतमा को प्रथम संदेश लिखा था। इसमें प्रवास का सारा वृत्तान्त और अपने मन की बात लिख डाली थी।

मार्ग में वर्षा आए और ताम्रपत्र भीग न जाए इसलिए उसको एक तांबे की नली में डालकर उस व्यक्ति को सौंपा था।

दो दिन विश्राम कर तीसरे दिन धनंजय और बिंबिसार नगरी का निरीक्षण करने निकले। दोनों ने आनर्त देश के मध्यमवर्गीय व्यापारी का वेश बनाया था। इस वेश के लिए आवश्यक सामग्री धनंजय बाजार से ले आया था और यहां दो-चार मास रहना पड़े, इसलिए वणिक्-वेश में रहना ही निश्चय किया था। नगरी भव्य और समृद्ध थी। लोग सुखी और उदार थे। नगरी का मुख्य बाजार विशाल और विस्तृत था।

दोनों मुख्य बाजार से निकले। दोनों ने देखा कि उज्जयिनी बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र है। व्यापार बहुत समृद्ध है। विविध वेशधारी व्यक्ति दुकानों पर क्रय-विक्रय में लीन थे। स्त्रियां भी खरीददारी करती थीं। दो-दो व्यक्ति बैठ सकें, ऐसी अनेक प्रकार की शिविकाएं बाजार में आ-जा रही थीं। दोनों बाजार की रौनक देखते-देखते धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। उन्होंने देखा, एक सुखपाल सामने से आ रहा है। वे दोनों एक ओर खड़े हो गए। उस सुखपाल को उठाने वाले पुरुष नहीं, गांधार देश की श्यामवर्ण वाली आठ सशक्त स्त्रियां थीं। आगे-पीछे सशस्त्र रक्षक-दल चल रहा था। सुखपाल बन्द था। एक स्थान पर जालीदार बारी थी। सुखपाल में कौन है, यह बाहर से दिखाई नहीं देता था।...

दोनों उस सुखपाल को देखते रहे।

अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि सुखपाल को देखकर लोग 'देवी की जय हो' यह हर्षध्वनि कर रहे थे।

बिंबिसार ने कहा—"आश्चर्य ! स्त्रियां इस प्रकार सुखपाल को उठाती हैं, यह पहली बार देखा···क्या कोई राजमहिषी है ?"

सुखपाल स्वर्ण का था। उसमें जटित रत्नराशि झिलमिल-झिलमिल कर रही थी। धनंजय बार-बार सुखपाल की ओर देख रहा था। वह बोला—"राजमहिषी इस प्रकार बाहर निकले, यह सम्भव नहीं है।"

जहां बिंबिसार और धनंजय खड़े थे वहां से सुखपाल आगे बढ़ गया। धनंजय ने एक नागरिक से प्रश्न किया—"महाशय ! क्या इस सुखपाल में राजमहिषी बैठी थीं ?"

"नहीं, राजमहिषी तो प्रासाद से बाहर निकलतीं ही नहीं···आप परदेशी-से लगते हैं, क्यों ?"

"हां, महाशय ! हम आनर्त देश के व्यापारी हैं।" बिंबिसार ने कहा।

"अच्छा, तो फिर आप कैसे जानेंगे ? इस सुखपाल में देवी कामप्रभा थी।"

"देवी कामप्रभा ?"

"हां, उज्जयिनी की श्रेष्ठ नर्तकी और नवजवान राजा चंद्रप्रद्योत की स्वप्न-माधुरी !" कहकर नागरिक चलता बना।

धनंजय ने बिंबिसार की ओर देखकर कहा—"स्वामिन् ! यह तो कोई नयी नर्तकी लगती है। मैंने वसंतप्रभा नर्तकी के विषय में तो सुना था।"

"चलो।" कहकर बिंबिसार आगे बढ़ा।

भोजन की व्यवस्था पांथशाला में ही की गई थी। वहां एक ब्राह्मण शुद्ध और सात्त्विक भोजन तैयार करता था। दोनों ने वहां भोजन किया और विश्राम करने के लिए अपने खण्ड में आ गए। विश्राम करते-करते धनंजय ने कहा—"महाराज ! एक प्रार्थना करना चाहता हूं।"

"मित्र ! मैंने तेरा मन परख लिया है। घर छोड़े एक वर्ष हो रहा है।"

"महाराज···!"

"क्या मेरा अनुमान गलत है ?"

"नहीं, किन्तु आपने यह अनुमान किया कैसे ?"

बिंबिसार ने हंसते हुए कहा—"धनंजय ! मन की बात सदा आंख में उभर-कर आ जाती है। तू राजगृही जा। अपने परिवार के साथ कम-से-कम एक मास तक रह···यह उचित भी है। क्योंकि घरवाली भी तो···।"

"नहीं, महाराज ! ऐसी कोई बात नहीं है।"

"धनंजय ! सबका मन एक-सा होता है। विरह की व्यथा सभी स्त्री-पुरुषों में एक मनोभाव पैदा करती है। वह छटपटाहट जब तक नहीं मिटती तब तक

अन्यान्य सभी सुख पानी पर लकीर की भांति क्षणिक होते हैं।"

परन्तु आपको इस प्रकार अकेला छोड़कर जाना···।"

बीच में ही बिंबिसार ने कहा—"तू मुझे किसी जंगल में तो नहीं छोड़ रहा है? यह महानगरी है। यह पांथशाला भी अच्छी है। अभी मेरा कोई मुख्य प्रयोजन भी नहीं है। तू जा। दो मास के भीतर-भीतर लौट आना।"

धनंजय का मन पीछे हटा। महाराज को अकेला छोड़कर जाने के बदले तो मन की उत्ताल ऊर्मियों को शांत करना अच्छा है, ऐसा उसे लगा। वह बोला—"नहीं, महाराज! जब आप वैशाली जाएंगे तो मैं भी घर हो आऊंगा।"

"वैशाली जाना होगा भी या नहीं, यह निश्चित नहीं है। लिच्छवी जिसे शत्रु मानते हैं, उसे वे कभी आश्रय नहीं देंगे। मेरे मन में उनके प्रति कोई शत्रु-भाव नहीं है। किन्तु मैं आम्रपाली का प्रियतम हूं, यह बात उन सबके लिए असह्य है। इसलिए मैं अपने प्रथम यौवन के मंगलगीत आम्रपाली के पास कब जा पाऊंगा, यह सब अंधकार में है।

"धनंजय! मैं सबसे पहले कहीं स्थिर हो जाना चाहता हूं। राजगृही का राज्य मुझे मिले या न मिले यह कोई विशेष बात नहीं है। मैं अपने पुरुषार्थ से ऐसी स्थिति का निर्माण करना चाहता हूं कि मैं देवी आम्रपाली को गौरवपूर्वक अपने पास रख सकूं। लिच्छवियों ने उस पर असह्य अत्याचार किया है। जो नारी किसी राजकुल की कुलवधू बनने का स्वप्न संजो रही थी और यही नारी-जीवन का गौरव है, उस नारी को लिच्छवियों ने क्रूरतापूर्वक जनपदकल्याणी बनाया। मैं देवी आम्रपाली को उन विलासी लिच्छवियों के जाल से मुक्त कराना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि अभी मैं निःसहाय हूं। किन्तु मेरी श्रद्धा कभी बांझ नहीं है। मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा हूं। वर्षा ऋतु के पूर्ण होने पर मैं शंबुकराज से मिलूंगा। उसके सहयोग से मैं अवश्य ही कुछ कर पाऊंगा।"

धनंजय मौन रहा। बिंबिसार के उत्तम विचारों के प्रति वह नत था।

बिंबिसार ने कहा—"इसीलिए तू जा और अपने परिवार की देखभाल कर आ। हमें जो कुछ करना है, वह वर्षा ऋतु के बाद ही करना है। मेरी चिन्ता मत करना। मैं तुझे यहीं मिलूंगा।"

और ऐसा ही हुआ।

तीन दिन बाद धनंजय अपने अश्व पर वहां से विदा हुआ। जाते-जाते उसने बिंबिसार के लिए एक दास की व्यवस्था कर दी थी। वह वैशाली होकर जाना चाहता था, परन्तु बिंबिसार ने कहा—"नहीं, धनंजय! तेरा वैशाली जाना अभी उचित नहीं है। यदि वर्षा भयंकर रूप धारण कर ले तो तेरे प्रवास में व्याघात आ जाएगा। इससे तो सीधे मार्ग से जाना उचित है। रास्ते में केवल दो-तीन नदियां आएंगी। उन्हें पार करना अधिक कठिन नहीं है।"

इसलिए धनंजय ने राजगृही का सीधा मार्ग लिया।

चंपा के विषवैद्य गोपालस्वामी सातवें दिन चंपा पहुंचे। उनका आश्रम नगरी की पश्चिम दिशा में एक कोश दूर था। गोपालस्वामी के आगमन पर उनके शिष्य बहुत आनन्दित हुए।

कादंबिनी राहुल को भेजकर प्रतिदिन यह ज्ञात कराती थी कि विषवैद्य आए हैं या नहीं। कल ही राहुल ने वैद्यराज के आगमन की सूचना कादंबिनी को दी थी।

इस समाचार से प्रसन्न होकर पुरुषवेशधारिणी कादंबिनी ने राहुल को एक स्वर्णमुद्रा पारितोषक रूप में दी। राहुल बहुत खुश हुआ। कादंबिनी ने कहा—"राहुल! कल मैं उनसे मिलने जाऊंगा।"

"महाराज! मैं आपको वैद्यराज के आश्रम में ले जाऊंगा। आप कब जाएंगे?"

"सूर्योदय से पूर्व ही।"

"ठीक है। मैं तैयार रहूंगा।" कहकर राहुल स्वर्णमुद्रा को देखता-देखता चला गया।

गोपालस्वामी के आगमन का समाचार सुनकर कादंबिनी बहुत प्रसन्न हुई। उसके मन में अनेक विचार आने लगे। वैद्यराजजी के समक्ष किस प्रकार बात करनी है? वे मेरा कार्य स्वीकार करेंगे या नहीं? क्या मैं उनको अपनी सारी बात बता दूंगी? चार व्यक्तियों की मृत्यु का रहस्य भी क्या उनको बताना पड़ेगा? इस प्रकार के अनेक प्रश्न उसके मन में उभर रहे थे।

कादंबिनी का पूरा दिन इन विचारों की उधेड़बुन में बीत गया। रात में भी नींद नहीं आई। उसने श्यामा को प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही वहां से जाने की बात बता दी थी, इसलिए श्यामा ने पूरी व्यवस्था पहले ही कर दी। कादंबिनी स्नान आदि से निवृत्त होकर तैयार हो गई।

कादंबिनी अपने सुभद्र अश्व पर बैठकर यहां से चली। राहुल उसके पास-पास चलने लगा।

वर्षा के कारण चारों ओर पानी भर गया था। मार्ग में कीचड़ भी बहुत था। किन्तु राहुल कादंबिनी को एक पगडण्डी के मार्ग से आश्रम की ओर ले गया।

गोपालस्वामी का आश्रम अनेक वर्षों से चंपा में ही था। किन्तु कादंबिनी का वहां जाने का कभी प्रसंग बना ही नहीं, इसलिए दूर से ही आश्रम को देखकर वह चौंकी।

आश्रम के चारों ओर एक उपवन था। वह उपवन विविध प्रकार के वृक्ष, गुल्म और लताओं से सुशोभित था।

राहुल आश्रम के द्वार पर आया। उसने कंटीले बाड़ से बने द्वार को हटाया। दोनों अन्दर प्रविष्ट हुए।

उपवन के मध्य में चालीस-पचास कुटीर थे। उपवन में यत्र-तत्र कुछ पुरुष विविध कार्यों में संलग्न थे।

अश्वारोही नौजवान को आते देखकर एक तरुण पुरुष सामने आया। वह कुछ पूछे उससे पहले ही राहुल ने कहा—"ये आनर्त देश के संगीतकार हैं। वैद्यजी के दर्शन करने आए हैं। कल ही पता चला कि वैद्यबापा आ गए हैं, तो उनसे मिलने यहां आए हैं।"

तरुण शिष्य ने कादंबिनी के तेजस्वी और सुकुमार वदन को देखा और स्वागत करते हुए बोला—"पधारो। गुरुदेव अभी पूजा-पाठ में बैठे हैं। कुछ ही समय में वे निवृत्त हो जाएंगे। आप मेरे साथ आएं।"

कादंबिनी अश्व से नीचे उतरी और अश्व की लगाम राहुल को थमाती हुई बोली—"राहुल! तू यहीं रहा। मैं गुरुदेव से मिलकर आती हूं।"

राहुल ने मस्तक नमाया।

कादंबिनी तरुण शिष्य के पीछे-पीछे चल पड़ी।

दस-बारह कुटीर के पश्चात् वह तरुण शिष्य कादंबिनी को एक विशाल और सुन्दर-स्वच्छ कुटीर में ले गया। वहां जाकर वह बोला—"श्रीमन्! आप यहां आसन पर विराजें। गुरुदेव यहीं पधारेंगे।"

कादंबिनी एक काष्ठासन पर बैठ गई। तरुण शिष्य चला गया।

४७. श्यामा का मन

पुरुषवेशधारिणी कादंबिनी नीरव, स्वच्छ और सुन्दर कुटीर में वैद्यराज गोपालस्वामी की प्रतीक्षा करती हुई एक काष्ठासन पर बैठ गई।

सूर्योदय हो चुका था।

कादंबिनी गोपालस्वामी से बातचीत करने की मन-ही-मन योजना बना रही थी। उसने सोचा, कैसे उनसे बात करूं? वह ठीक है कि वैद्य और माता के समक्ष कोई भी बात गुप्त नहीं रखनी चाहिए। इसलिए मुझे भी निःसंकोच रूप से अपनी सारी बात वैद्यजी के समक्ष रख देनी चाहिए।

विचारों में एक घटिका बीत गई। परन्तु उसे समय का भान नहीं रहा। मनुष्य जब विचारों की उधेड़बुन में लगता है तब समय अल्प होता चला जाता है।

विचार एक ऐसा तन्त्र है जो मनुष्य को प्रसन्न और आनन्दित भी बनाता है तो उसे पीड़ित, व्यथित और पागल भी बना डालता है।

अचानक उसके कानों में खड़ाऊं के पदचाप की ध्वनि पड़ी। उसने चौंककर

द्वार की ओर देखा कि एक वयोवृद्ध, गंभीर, प्रशांत और सौम्य पुरुष भीतर प्रवेश कर रहे हैं। उसके पीछे वह तरुण शिष्य भी है।

ये स्वयं वैद्यराज होंगे, ऐसा सोचकर कादंबिनी आसन से उठी और दोनों हाथ जोड़कर गोपालस्वामी की ओर देखती रही। गोपालस्वामी ने आगंतुक के सुकुमार चेहरे को देखा, आश्चर्य का अनुभव करते हुए वे निकट आए और आशीर्वाद देते हुए बोले—"संगीतकार सुकुमार तो हो सकते हैं, परन्तु इतने तरुण नहीं हो सकते। आप आसन पर बैठें और कहें कि आपने इस वृद्ध को क्यों याद किया है?" यह कहकर गोपालस्वामी अपने आसन पर बैठ गए। कादंबिनी भी अपने आसन पर बैठ गई। उसने एक बार गोपालस्वामी की ओर तथा बाद में तरुण शिष्य की ओर देखा।

गोपालस्वामी ने पूछा—"आपका शुभ नाम?"

'निर्मलदेव···मैं आपको एक गुप्त बात कहने आया हूं। यदि···"

····"समझा।" कहकर गोपालस्वामी ने शिष्य की ओर देखा। शिष्य प्रणाम कर खण्ड से बाहर निकल गया।

कादंबिनी बोली—"गुरुदेव! मैं पुरुष नहीं, स्त्री हूं।"

"मुझे भी संशय तो हुआ था, किन्तु संशय को व्यक्त करना उचित नहीं लगा। तेरा नाम···।"

"कादंबिनी···।"

"उत्तम नाम! पुत्रि! तुझे जो कुछ कहना है वह निःसंकोच भाव से कह। तेरा देश?"

"देश का पता नहीं···इतना जानती हूं कि मेरा लालन-पालन इसी नगरी मे हुआ है। मैं छोटी से बड़ी यहीं हुई हूं।"

"अच्छा, तब तो तू हमारे गांव की ही कन्या है। बोल, जो कुछ कहना है स्पष्ट कह।"

कादंबिनी ने अपनी पूरी रामकहानी सुनाई—कैसे वह चंपा नगरी के वेश्या के यहां पली-पुसी और कैसे वह विषकन्या बनी। राजगृही में ही रानी त्रैलोक्य-सुन्दरी का एकाकी पुत्र पहला शिकार बना। फिर वह वैशाली आयी। चार प्रमुख व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा। ये सारी बातें उसने विस्तार से बतायीं। फिर मैं वैशाली से चंपा नगरी में आई। रास्ते में रक्षक की नीति बिगड़ी और वह भी मौत का शिकार बना।' यह सब बताकर वह बोली—"गुरुदेव! मेरे जीवन की यह करुण कहानी है। वैशाली में आप आए। उसी समय से आपसे मिलने की मेरी इच्छा प्रबल हुई। वहां आपसे मिलना उचित नहीं था। इसलिए मैं आठ-दस दिन पहले यहां आ गई। मेरी इच्छा यह है कि आप जैसे समर्थ महापुरुष ही मेरी काया मे व्याप्त विष को दूर कर सकते हैं। आप ही मुझे इस

भयंकर अभिशाप से मुक्त कर सकते हैं। इसी एक आशा को संजोकर मैं आपके चरणों में आई हूं।"

गोपालस्वामी ने सारी बात शांति से सुनी। वे विचारों में डूब गए। लगभग अर्ध घटिका के मौन के पश्चात् कादंबिनी ने पूछा—"कृपालु! क्या मैं विषमुक्त हो सकूंगी?"

गोपालस्वामी ने गंभीर होकर कहा—"अवश्य ही हो सकोगी।"

ये शब्द सुनते ही कादंबिनी अपने आसन से उठी और गोपालस्वामी के चरणों में लेट गई। गोपालस्वामी ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"पुत्रि! तू अवश्य ही विषमुक्त हो सकेगी। प्रयोग दुष्कर है। कदाचित्···"

"क्या?"

"मृत्यु भी हो सकती है।"

"मैं मृत्यु को सहर्ष स्वीकार करूंगी। इस अभिशप्त जीवन से मौत मुझे अच्छी लगेगी।" कादंबिनी ने भावभीने स्वर में कहा।

"अपना दायां हाथ लम्बा कर।" आचार्य ने कहा।

कादंबिनी ने दायां हाथ लम्बा किया। गोपालस्वामी ने नाड़ी-परीक्षण करना प्रारम्भ किया। लगभग अर्ध घटिका तक वे नाड़ी-परीक्षण करते रहे। उस समय उनकी आंखें बन्द थीं। ऐसा लग रहा था मानो वे नाड़ी के माध्यम से शरीर में प्रवेश कर दोष की खोज कर रहे हैं।

अर्ध घटिका के बाद उन्होंने आंखें खोलीं और प्रसन्न मुद्रा में कहा—"पुत्रि! जो मौत से नहीं डरता वह जीवन का स्वामी बन जाता है। आचार्य अग्निपुत्र समर्थ वैज्ञानिक हैं। उन्होंने तेरे पर अपूर्व प्रयोग किया है, इस प्रकार की विष-कन्या का निर्माण कोई नहीं कर सकता···किन्तु तेरी काया में व्याप्त विष को अवश्य ही दूर किया जा सकता है। परन्तु···।"

"क्या?"

"कम-से-कम तीन मास तो तुझे यहां रहना ही होगा। पहले मैं तेरी काया पर पंच कर्म का प्रयोग करूंगा ··फिर विष का निवारण करूंगा···तुझे इस आश्रम में ही रहना होगा। यहां कोई स्त्री नहीं है, फिर भी मैं सारी व्यवस्था कर दूंगा।"

"आप कहेंगे तो मैं पुरुषवेश में ही रह जाऊंगी।"

"नहीं, ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रयोगकाल में तेरा लिंग छुपा नहीं रह पाएगा। तू कल प्रथम प्रहर की एक घटिका के बाद यहां आ जाना। मैं तेरे लिए सारी व्यवस्था कर रखूंगा। चार-छह दिन बाद किसी शुभमुहूर्त्त में मैं तेरे पर प्रयोग प्रारम्भ करूंगा।"

"आपके इस आश्वासन से मैं धन्य बन गई। मैं कल ही यहां आश्रम में आ जाऊंगी।"

"आश्रम जीवन अत्यन्त कठोर है।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"पथ्य भी बहुत कठोर है।"

"मैं उसका पालन करूंगी।"

"और तू मुझे क्या दे सकेगी?" वृद्ध आचार्य ने हंसते हुए कहा।

कादंबिनी बोली—"मेरे पास कुछ स्वर्ण हैं। थोड़े अलंकार भी हैं। वे सब···।"

बीच में ही आचार्य बोले—"पुत्रि! स्वर्ण तो यहां ढेर सारा पड़ा है, क्योंकि मैं मिट्टी और स्वर्ण में कोई भेद नहीं करता। अलंकारों का हम फक्कड़ करें ही क्या? मैं तो तेरे से किसी बहुमूल्य वस्तु की इच्छा करता हूं।"

कादंबिनी निराश हो गई। वह दबे स्वर में बोली—"गुरुदेव! मेरे पास और कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं है। आप अपनी पुत्री पर उपकार करते हैं, यह मानकर···।"

बीच में ही गोपालस्वामी प्रसन्न स्वर में बोल पड़े—"कादंबिनी! प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में कीमती वस्तु होती ही है। तू विषमुक्त बनकर भी यदि विष-कन्या ही बनी रहेगी तो मेरा प्रयत्न व्यर्थ जाएगा।"

"गुरुदेव!"

आचार्य बोले—"तेरा नाड़ी-परीक्षण करने के पश्चात् मुझे यह आत्म-विश्वास हो गया है कि तू विषमुक्त बन सकेगी। उस समय तेरे हृदय में दबी उमंगें उछलने लगेंगी। तेरी मृत्यु भी नहीं होगी। प्रयोग सहने की शक्ति भी तेरे में है। परन्तु प्रयोग पूरा होने के पश्चात् तुझे नये जीवन में प्रवेश करना होगा। तुझे अतीत को भूलना होगा। मेरी दक्षिणा के रूप में तुझे एक वचन देना होगा।"

"आज ही मैं वचनबद्ध होने के लिए तैयार हूं।"

"वेश्यावृत्ति से सदा तुझे दूर रहना होगा। जो नारी विलास और वैभव की लालसा से गृहीजीवन से दूर रहती है, वह नारी समाज के लिए विषकन्या के समान ही है। विषमुक्त होने के पश्चात् तुझे किसी परिवार की कुलवधू बनना होगा अथवा जीवन भर ब्रह्मचारिणी रहना होगा। क्या तू यह वचन दे सकेगी?"

हर्षभरी मुद्रा में कादंबिनी ने गुरु-चरणों का स्पर्श किया और हाथ जोड़कर बोली—"गुरुदेव! आपकी आज्ञा के अनुसार आज ही प्रतिज्ञाबद्ध हो जाती हूं कि मैं किसी भी आकर्षण के वशीभूत होकर नारी-धर्म का त्याग नहीं करूंगी। मैं किसी सभ्य परिवार की कुलवधू बनूंगी अथवा ब्रह्मचारिणी रहूंगी।"

"पुत्रि! आज मुझे अग्रिम दक्षिणा मिल गई और वह भी सर्वोत्तम। अब तू जा। कल आ जाना।" गोपालस्वामी ने प्रसन्नता से कहा।

कादंबिनी ने चरणरज मस्तक पर चढ़ाई और वहां से विदा हो गयी।

आश्रम में आने से पूर्व कादंबिनी के मन में अनेक विचार आए थे और वह इन विचारों से भारी बन गई थी। वहां से जाते समय उसका मन निर्भार बन गया था। उसे सबसे आश्चर्यकारी बात यह लगी कि वैशाली में हुई चार व्यक्तियों की मृत्यु के विषय में आचार्य ने कुछ नहीं पूछा। कैसे महान् पुरुष है ?

राहुल प्रतीक्षा करते-करते थक गया था। संगीतकार को आते देख वह खड़ा हो गया और अश्व को सामने ला खड़ा कर दिया। वह बोला—'महाराज ! बहुत समय लगा ?"

"क्या तू थक गया ?"

"नहीं।"

"तो अब हम बाजार में होकर चलेंगे।"

"अभी ?"

"हां, कुछ वस्त्र खरीदने हैं।"

तब तो हम मध्याह्न में बाजार जाए तो ठीक रहेगा, महाराज !"

"अच्छा।" कहकर कादंबिनी अश्व पर बैठ गयी।

दोनों वहां से चले।

उद्यान में पहुंचने के बाद भोजन आदि से निवृत्त होकर कादंबिनी ने कुछ विश्राम किया। मध्याह्न के बाद वह श्यामा और राहुल को साथ लेकर चम्पा के बाजार में गयी।

सबसे पहले उसने श्यामा के लिए वस्त्र खरीदे। फिर राहुल के लिए दो धोतियां और दो उत्तरीय तथा अन्यान्य वस्त्र खरीदे। दोनों भाई-बहनों की खुशी हृदय में समा नहीं रही थी। क्योंकि उन्होंने कभी ऐसे उत्तम और मूल्यवान् वस्त्र नहीं पहने थे।

फिर कादंबिनी ने अपने लिए स्त्रियोचित वस्त्र खरीदे। इस खरीदी को देखकर श्यामा आश्चर्य में पड़ गई। उसने सोचा, क्या महाराज अपनी किसी प्रियतमा के लिए वस्त्र खरीद रहे हैं ? संगीतकार महाराज का मन क्या इस नगरी की किसी सुन्दरी ने बांध लिया है ?

परन्तु ऐसी बात कैसे पूछी जाए ?

अंगराग की सामग्री तथा अन्यान्य वस्तुएं खरीद कर वे सब जब अपने स्थान पर आए तब तक सूर्यास्त हो चुका था। वर्षा प्रारम्भ होने वाली थी।

कादंबिनी ने आकाश की ओर देखा। प्रियतमा पृथ्वी के साथ क्रीड़ा करने का इच्छुक मेघ अपनी पूर्व तैयारी में लग रहा था।

कादंबिनी ने कल्पना कर ली कि आज रात में गाज-बीज के साथ वर्षा प्रारम्भ हो जाएगी। मेघ की सवारी आ पहुंचेगी।

भले ही आए। एक नहीं बारह प्रकार के मेघ भी एक साथ आ जाएं तो

क्या ? अब उसको कोई भय नहीं था। नूतन जीवन की आशा को कोई भी मेघ नहीं ढांक सकता, नहीं रोक सकता।

संगीतकार ने राहुल और श्यामा को वस्त्र दे दिए। यह देखकर उनकी माता बहुत प्रसन्न हुई और मन-ही-मन इस उदार अथिति के कल्याण की भावना करने लगी। आज उसने उमंग भरे मन से रसोई बनाई···।

किन्तु भोजन का थाल ढक कर जब श्यामा अतिथिगृह के कुटीर में आई तब वर्षा ने रौद्र रूप धारण कर लिया था···अपने घर से यहां पहुंचते-पहुंचते श्यामा के सारे वस्त्र भीग गए।

यौवन में चरणन्यास करने वाली श्यामा के सशक्त शरीर की ओर दृष्टि कर कादंबिनी बोली—"श्यामा ! तू तो भीग गई है···इतनी जल्दी क्या थी ?"

"महाराज ! भोजन के थाल में वर्षा की एक बूद भी नहीं गिरने दी।"

"अरे पगली ! भोजन का थाल भीग जाता तो मुझे इतनी चिन्ता नहीं होती। अब तू जल्दी ही घर जा और वस्त्र बदल ले। भीग कर यहां पुनः मत आना ?"

"महाराज ! मुझे बरसात बहुत प्रिय लगती है। भीगने में मुझे बहुत आनंद आता है···आपको और कोई वस्तु की जरूरत···।"

"नहीं श्यामा। मुझे किसी वस्तु की जरूरत नहीं है। ये बर्तन मैं एक ओर रख दूंगा। प्रातःकाल ले जाना और देख, राहुल को बता देना कि मुझे कल प्रातः यहां से आश्रम के लिए प्रस्थान करना है।"

"बरसात नहीं रुकेगी तो ?"

"तो भी जाना ही है ? कल से मैं वहीं आश्रम में रहूंगा। जिस कार्य से मैं इतनी दूरी से आया हूं, उसको मुझे प्रारम्भ करना है।" कादंबिनी ने स्वाभाविक स्वरों में कहा।

ये शब्द सुनते ही ही श्यामा के हृदय पर गहरी चोट लगी। वह अवाक् बनकर पुरुषवेशधारिणी की ओर देखती रही। उसने मन-ही-मन सोचा, क्या महाराज की कोई प्रियतमा आश्रम में रहती है ? ओह, वह भारी स्वरों में बोली—"फिर आप यहां नहीं आएंगे ?"

"नहीं श्यामा, अपना कार्य पूरा होते ही मैं यहां से चला जाऊंगा···पर अब तू जा···तेरे सारे वस्त्र भीगे हुए हैं···मैं भोजन कर लूंगा। मेरी चिन्ता मत करना।"

श्यामा यौवन में प्रवेश कर चुकी थी। इस अल्पकालीन संसर्ग से उसके मन में इस तरुण के प्रति अव्यक्त आकर्षण पैदा हो गया था। वह स्वयं एक गरीब आरामिक की कन्या थी। अपने मन की बात वह प्रकट नहीं कर सकती थी। परिस्थिति, संकोच और लज्जा ये स्त्री के मनोभावों को मन में ही दबाकर

रखते हैं। कल महाराज यहां से चले जाएंगे और फिर लौटकर नहीं आएंगे, यह सुनकर उसका मन प्रहत हो गया, वह कुछ भी नहीं कह सकी। वह धरती की ओर दृष्टि गड़ाकर खड़ी की खड़ी रही।

"अच्छा तो तू मेरी चादर ओढ़कर चली जा···।" कादंबिनी ने कहा।

"नहीं महाराज ! मुझे बरसात का कोई भय नहीं है।"

"तो तू इस प्रकार अन्यमनस्क क्यों खड़ी है ?"

"महाराज ! क्या आपके दर्शन पुनः नहीं होंगे ?"

इस प्रकार से कादंबिनी ने श्यामा का मन पढ़ डाला। उसके मनोभावों को वह पहचान गयी। वह गम्भीर स्वरों में बोली—"पगली ! मेरा कार्य सफल हो जाने पर मैं तेरे से मिलने आऊंगा। तेरे लिए एक सुन्दर माला लाऊंगा···और तू यह मत समझना कि मैं तेरे मनोभावों को नहीं जान सका हूं···तू कल प्रातः जरूर आना। मैं तुझे एक रहस्य बताऊंगा।"

संशय भरे मन के साथ श्यामा चली गयी।

कादंबिनी भोजन करने बैठी। आज उसे भूख भी तीव्र लगी थी। आज की भोजन सामग्री भी रोज की अपेक्षा उत्तम थी। भोजन करते-करते भी वह श्यामा के उद्वेलित हृदय की भावनाओं को याद कर रही थी। इसलिए उसने श्यामा को प्रातःकाल बुलाया था।

वह विचारों के आवर्त में फंसकर शय्या पर सो गई।

वर्षा गहरी हो रही थी। ठंडी हवा वातायन से कुटीर में आ रही थी। कादंबिनी अपने नूतन जीवन के आशामय चित्रों की कल्पना करती-करती निद्राधीन हो गयी।

आशा के सुकोमल फूलों की शय्या में जब व्यक्ति सो जाता है तब उसकी नींद भी रसमय बन जाती है।

सूर्योदय से पूर्व ही श्यामा स्नान आदि के लिए गरम और ठंडे पानी की व्यवस्था कर गई थी। कुटीर का द्वार भीतर से बन्द था। उसने द्वार को खटखटाया।

कादंबिनी सुनहले स्वप्निल संसार से जागी। उसने द्वार खोला। सामने ही श्यामा खड़ी थी। श्यामा के वदन को देखकर कादंबिनी समझ गई थी कि इसने रात भर नींद नहीं ली है। इसने पूरी रात मनोमंथन में बितायी है।

श्यामा बोली—"स्नान के लिए जल ले आयी हूं।"

"तेरी चपलता मुझे सदा याद रहेगी। आज मैं तुझे एक बात बताने वाला हूं—"तेरे पर मुझे विश्वास है, श्यामा ! तू किसी को यह बात मत बताना। क्यों, किसी को नहीं कहेगी न ?"

"ठीक है, महाराज !"

"तो अन्दर आ।"

श्यामा धड़कते हृदय से खंड में गई।

"श्यामा ! तेरे निर्मल प्रेम को मैं नहीं भूल सकूंगा···किन्तु खेद यह है कि मैं भी तेरी जैसी ही एक नारी हूं।" कहती हुई कादंबिनी ने अपना कंचुकीबंध खोला। श्यामा ने कादंबिनी के उन्नत उरोजों की ओर देखा। वह चौंकी।

"महाराज···!"

"श्यामा, मैं तेरी बड़ी बहन हूं। परन्तु तू इस बात को मन में ही रखना। मेरा कार्य पूर्ण होने पर मैं तेरे से अवश्य मिलूंगी।"

श्यामा अवाक् बन गयी थी।

४८. कौन होगी वह अनिंद्य सुन्दरी

धनंजय को उज्जयिनी छोड़े आठ दिन हो गए थे। बिंबिसार को अकेलापन अखरने लगा। वह सवेरे से सांझ तक नगरी में ही घूमने लगा। नगरी जैसे व्यापार में समृद्ध थी, वैसे ही रंगीली भी थी। वहां का मुख्य बाजार प्रातःकाल खुलता और सूर्यास्त से पूर्व बन्द हो जाता। वहां का सारा व्यापार जैनियों के हाथ में था। जैन दिन के अस्त होने से पूर्व अपने-अपने घर चले जाते और भोजन से निवृत्त हो जाते। वे प्रायः रात्रि में भोजन नहीं करते। भोजन करने के पश्चात् कुछ इधर-उधर की बातें कर प्रायः जैन लोग प्रतिक्रमण में लग जाते। परन्तु जैनेतर लोगों की दुकानें रात्रि के प्रथम प्रहर तक खुली रहतीं।

रात्रि के प्रथम प्रहर के बाद इस रंगभरी नगरी की रौनक नगरी की पूर्व दिशा में स्थित रंगबाजार में खिल उठती थी। यह रंगबाजार नित्य नूतन यौवन के मद से छलक उठता था और नगरी के रंगीले युवक और प्रौढ़ व्यक्ति यहां घूमने आते थे। इस बाजार के तीन विभाग थे। एक विभाग में नर्तकियां रहती थीं। दूसरे विभाग में संगीत करने वाली नारियां रहती थीं और तीसरे विभाग में गणिकाएं और वारयोषिताएं रहती थीं।

कोई युवक नृत्य की, कोई संगति की और कोई शरीर की आग बुझाने के लिए अपने-अपने अनुकूल स्थानों पर पहुंचते और यह महफिल रात्रि के तीसरे प्रहर के अन्त तक चलती रहती।

बिंबिसार को ऐसे बाजार में जाना इष्ट नहीं था, इसलिए वे नगरी के अन्यान्य स्थानों में भ्रमण कर पान्थशाला में आ जाते, किन्तु सिप्रा नदी के आकर्षण से उनका मन तरंगित होता रहता था। इसलिए प्रातःकाल ही वे अपने दास को साथ लेकर सिप्रा की ओर चल पड़ते थे।

सिप्रा के किनारे दो भव्य जिनालय और दस भव्य शिवालय थे। बिंबिसार कभी जिनालय में और कभी शिवालय में जाते रहते थे।

दो दिनों से वर्षा हो रही थी। कल रात्रि में पुरजोर वर्षा हुई थी। प्रातः बिंबिसार ने सेवक से कहा—"मेरे वस्त्र साथ में ले ले।"

सेवक इस आज्ञा का प्रयोजन समझ चुका था। उसने विनम्रता से प्रार्थना की—"महाराज ! अभी वर्षा रुकी नहीं है और सिप्रा नदी भी आज तरंगित है।'

बिंबिसार बोले—"सिप्रा में स्नान का आनन्द तो उसकी तरंगित अवस्था में ही आता है···वर्षा भले हो, कोई बात नहीं है।"

"जैसी आज्ञा···।"

"कपड़ें और छत्र भी साथ में ले लेना"—कहकर बिंबिसार सिप्रा-स्नान के लिए तैयारी करने लगे। उन्होंने साथ में कुछ रौप्य मुद्राएं भी ले लीं क्योंकि स्नान करने के पश्चात् वे वहां खड़े ब्राह्मणों अथवा याचकों को दस-प्रन्द्रह रौप्य मुद्राओं का दान ना चाहते थे।

सेवक ने बिंबिसार के कपड़े लिये और श्वेत कौशेय का छत्र भी ले लिया।

सिप्रा के चन्द्रघाट पर आकर बिंबिसार ने देखा कि नदी के सारे घाट पानी में डूब गए हैं। अति तीव्र प्रवाह से मानो सिप्रा का यौवन मदोन्मत्त हो रहा था।

स्नान के लिए आने वाले लोग किनारे पर खड़े-खड़े स्नान करने लगे। भीतर जाने का कोई साहस नहीं कर रहा था। साहस कैसे करे ? नदी का प्रवाह तूफानी था। जिस प्रकार तूफानी यौवन का धक्का असह्य होता है वैसे ही तूफानी जल-प्रवाह में गिरना भी अशक्य हो जाता है।

बिंबिसार ने सिप्रा नदी में कूदने का निश्चय किया। बिंबिसार स्नान के लिए नदी में कूदे, उससे पूर्व ही उनके कानों में यह आवाज टकराई—"देवी की जय हो।"

बिंबिसार ने मुड़कर देखा, गांधार की आठ सशक्त स्त्रियां एक शिविका को उठाकर ला रही थीं और वहां पर खड़े चार-छह ब्राह्मण देवी की जय बोल रहे थे।

बिंबिसार ने यह भी देखा कि पालकी से एक गौरवर्ण हाथ बाहर निकला और कुछेक रौप्य मुद्राएं ब्राह्मणों की ओर फेंकी।

जहां बिंबिसार खड़ा था, पालकी उससे कुछ दूर जाकर रुकी।

बिंबिसार ने मन में सोचा, मैं स्वयं इस घाट पर खड़ा हूं इसलिए सम्भव है स्नान के लिए आई हुई रमणी संकोच करेगी···क्या करूं ? अन्य घाट पर जाऊं या शीघ्रता से स्नान कर लौट जाऊं ?

बिंबिसार कुछ निर्णय ले, इससे पूर्व ही पास वाले घाट से कोलाहल सुनाई देने लगा। लोग चिल्ला रहे थे···बचाओ···बचाओ···बेचारी वृद्धा लड़खड़ाकर नदी के प्रवाह में गिर पड़ी है···हाय···हाय !···बचाओ···बचाओ···।

चिल्लाते सभी थे, परन्तु तूफानी सिप्रा में कूदकर वृद्धा को बचाने का साहस किसी में नहीं था।

बिंबिसार ने सिप्रा की ओर दृष्टि की···पूर के प्रवाह में कोई बह रहा है ऐसा प्रतीत हुआ···उन्होंने कुछ भी विचार किए बिना ही उसी क्षण उफनती नदी में छलांग लगा दी।

घाट पर चन्द्रप्रद्योत नृपति की प्रिय नर्तकी कामप्रभा आई थी···उसने पालकी की जाली को हटाकर उस साहसिक व्यक्ति की ओर देखा। उसके अतिरिक्त पालकी उठाने वाली गंधारियां, अन्यान्य दास-दासियां भी बिंबिसार की ओर देखने लगीं।

बिंबिसार का सेवक हांफता-हांफता किनारे के पास आया और 'महाराज! महाराज!' चिल्लाने लगा।

कामप्रभा ने एक परिचारिका को निकट बुलाकर कहा—"तू उस सेवक के पास जा और उससे पूछ कि इस तूफानी प्रवाह में कूद पड़ने वाला तरुण पुरुष कौन है?"

परिचारिका तत्काल बिंबिसार के सेवक के पास पहुंची और बोली—"इस उफनती नदी के प्रवाह में झंझापात करने वाला पुरुष कौन है?"

"मेरे स्वामी हैं···अरे रे···अब उनका क्या होगा? इस प्रवाह में अब वे कहीं नजर नहीं आ रहे हैं। हाय! अब क्या होगा?"

दासी ने कहा—"तेरे स्वामी का क्या नाम है?"

"जयकीर्ति।"

"वे कहां रहते हैं?"

सेवक ने पांथशाला का नाम बताया। दासी को आश्चर्य हुआ। वह लौटकर आई। कामप्रभा नर्तकी सिप्रा की उत्ताल तरंगों को देख रही थी। अकस्मात् लोगों ने हर्ष ध्वनि की। कामप्रभा भी वर्षा की परवाह किए बिना पालकी से बाहर निकली और पुलकित मन से सिप्रा के जल-प्रवाह की ओर देखने लगी।

उसने देखा, एक सुन्दर तरुण किसी को उठाकर, पूर्ण श्रमित होकर, घाट की ओर तैरता हुआ आ रहा है।

आसपास के सभी घाटों से हर्षनाद होने लगा।

कोई कहता—शाबास नौजवान! धन्य है तेरी जननी को। कोई कहता—शाबास मित्र! शाबाश!

बिंबिसार नदी-प्रवाह में डूबती वृद्धा को बहुत प्रयत्नपूर्वक उठाकर घाट की ओर आ रहे थे। प्रवाह का वेग बहुत तीव्र था। बिंबिसार उस तीव्रता के प्रतिकूल तैरकर आ रहे थे और लोगों के आश्चर्य के साथ वे चन्द्रघाट की दूसरी ओर आए

हुए कृष्णघाट पर आ पहुंचे। किनारे पर खड़े एक ब्राह्मण ने बिंबिसार का हाथ पकड़ा।

बिंबिसार बहुत थक चुके थे। फिर भी उन्होंने वृद्धा के अकड़े हुए शरीर को लोगों को सौंप स्वयं किनारे पर आ गए।

वृद्धा की काया में प्राण-संचरण अभी भी हो रहा था। वह बेहोश थी। दो-चार व्यक्ति वृद्धा के पेट में भरे पानी को निकालने की चेष्टा करने लगे।

बिंबिसार का सेवक दामोदर चन्द्रघाट से दौड़ता हुआ इधर आ रहा था।

रूप, यौवन और कला की रानी कामप्रभा एक ध्यान से कृष्णघाट की ओर देख रही थी। किन्तु वह तरुण दिखाई नहीं दे रहा था।

बिंबिसार घाट के अन्तिम सोपान पर बैठ गए थे। उनके आसपास चार-छह व्यक्ति खड़े थे और बिंबिसार की स्वर्णिम काया को मसल रहे थे।

इधर बृद्धा ने आंखें खोलीं। उसने चारों ओर देखा···जिस घाट पर वह लड़खड़ा कर गिर पड़ी थी वहां से चलकर साथ वाली स्त्रियां इस कृष्णघाट पर आ पहुंचीं।

वृद्धा साठ वर्ष की थी···उसका जीवन-दीप बुझते-बुझते जल उठा था।

बिंबिसार स्वस्थ हो गए। वे खड़े हुए। लोग उनका परिचय पाने के लिए उतावले हो रहे थे।

बिंबिसार बोले—"मेरा नाम जयकीर्ति है···मैं मगध का वणिक हूं···यहां व्यवसाय करने आया हूं।"

दामोदर वहां आ चुका था।

वर्षा हो रही थी। उसका वेग धीमा पड़ गया था किन्तु वस्त्रों को बदला जा सके वैसा स्थान नहीं था।

बिंबिसार ने दामोदर से कहा—"दामू! चल, हम सामने वाले शिवालय में चलें।"

दोनों वहां से चल पड़े।

दामोदर के हाथ में छत्र था···किंतु बिंबिसार ने छत्र का प्रयोग नहीं किया। वे तो स्वयं पूरे भीग चुके थे।

चंद्रघाट पर खड़ी कामप्रभा ने अपनी मुख्य परिचारिका को बुलाकर कहा—"प्रीति! आज सायं तू पूर्वीय पांथशाला में जाना और जयकीर्ति को बुला लाना। उसके साहस को मैं पुरस्कृत करना चाहती हूं।"

"जी।" कहकर प्रीति ने मस्तक नमाया।

फिर कामप्रभा ने सिप्रा के किनारे स्नान किया। स्नान करते समय उसका मन उस नौजवान की सशक्त काया में उलझ गया था।

बिंबिसार ने शिवालय की एक छोटी धर्मशाला में वस्त्र बदले, फिर दामोदर से कहा—"दामू ! मैं यहां बैठा हूं, तू नहाकर जल्दी आ ।"

"महाराज ! मुझे तो वर्षा ने पूरा नहला दिया है ।"

"पगले ! छत्र के नीचे खड़े रहकर कोई नहाता है क्या ? जा···। गंगा के किनारे आकर बिना स्नान किए लौट जाना, मन्दभाग्य कहलाता है । जा, मैं यहीं बैठा हूं ।"

बिंबिसार के भीगे वस्त्र लेकर वह वहां से चला गया ।

वर्षा का वेग धीमा था, परन्तु आकाश में बादलों का उमड़-घुमड़ पूर्ववत् था ।

बिंबिसार ने आकाश की ओर देखा ।

और प्रियतमा आम्रपाली की स्मृति मेघमंडित बादलों के बीच मनोभाव में उमड़ पड़ी । संदेशवाहक पहुंच गया होगा । पत्र पढ़कर प्रियतमा आनन्दमग्न हो गयी होगी···अब तो उसका संदेश भी आ गया होगा ।

ओह, वर्षा के सुनहले अंधकार में देवी आम्रपाली के नयन बिजली की भांति तेजस्वी दीख पड़ते थे···कितना माधुर्य···कितना प्रेम···कितनी भावना···।

देवी आम्रपाली की कल्पना में बिंबिसार स्थान और समय भूल गए । दामोदर ने आकर कहा—"महाराज ! पधारें ।" उसी समय बिंबिसार को पता लगा कि वे सिप्रा के किनारे पर स्थित एक धर्मशाला में हैं और अभी प्रियतमा की स्मृति में भान भूले हुए हैं ।

दोनों पांथशाल की ओर चले ।

दो दिन पूर्व जब बिंबिसार भव्य बाजार को देखने गए थे, तब उन्हें पता चला था कि वहां एक भव्य पार्श्वनाथ का जिनालय है । उसमें स्थित प्रतिमा चमत्कारी और भव्य है । प्रतिमा के मस्तक पर यदाकदा स्वतः पुष्पवृष्टि होती है ।

वे उस मन्दिर की टोह में निकले । उन्हें पता लगा कि अमुक स्थान पर चिंतामणि पार्श्वनाथ का प्रख्यात मन्दिर है । वे उस स्थान पर गए और एक ओर खड़े हो गए । इतने में ही उनके कानों में घंटानाद की ध्वनि टकराई···

प्रासाद के मुख्य द्वार से एक सोलह वर्ष की सुन्दरी बाहर निकल रही थी । उसके पीछे एक सखी हाथ में खाली थाल लेकर बतियाती हुई आ रही थी ।

बिंबिसार अवाक् निस्पंद और अचल होकर अनिन्द्य तरुणी की ओर देख रहे थे ।

वह तरुणी निकट आयी···उसकी दृष्टि भी बिंबिसार की ओर गई ।

बिंबिसार के नयन स्वतः नीचे हो गए ।

सुन्दरी पास से आगे बढ़ गयी ।

यह अनिन्द्य सुन्दरी कौन होगी ?

४९. कामप्रभा के भवन में

बहुत बार ऐसा होता है कि आंख के सामने आनेवाली वस्तु केवल पलकों में नहीं रहती, हृदय में उतर जाती है और हृदय में हलचल पैदा कर देती है।

आम्रपाली के प्रणय-बंधन से धन्य बने हुए बिंबिसार श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मन्दिर के द्वार मे निकलती हुई उस अनिन्द्य सुन्दरी को देखकर अवश बन गए थे।

यह तरुणी कौन होगी, इस प्रश्न का उत्तर उन्हें प्राप्त नहीं था। क्योंकि सुन्दरी तो चली गयी थी और बिंबिसार उसके रूप-लावण्य में उलझकर वहीं-के-वहीं खड़े रह गए थे। तरुणी के अदृश्य हो जाने पर उन्हें भान हुआ, अरे! यह देवकन्या कौन होगी?

परायी कन्या या परायी नारी के विषय में पूछताछ करना उचित नहीं लगता···। एक निःश्वास छोड़ते हुए बिंबिसार मन्दिर में गए।

आज उनका मन तरुणी को देखने के पश्चात् खो गया था।

वास्तव में पुरुषों की सबसे बड़ी पामरता यही है। देवी आम्रपाली जैसी अलबेली सुन्दरी का स्वामी होने पर भी आज उनके चित्त को एक अनजान तरुणी अवश कर गयी थी।

पुरुषों के हृदय कितने ही कठोर क्यों न हों, वे कमजोर होते हैं, अस्थिर और चंचल होते हैं। उनके प्यार की पलकें नये-नये रंगों को उभारती रहती हैं··· वे एक क्षण में एक नारी को दिल दे बैठते हैं और दूसरे क्षण किसी दूसरी सुन्दरी के चरणों में स्वयं को न्यौछावर कर देते हैं। वे एक को वचन देते हैं कि आज से तू ही मेरी सह-पथिक है, तेरे सिवाय दूसरी कोई मेरे चित्त में स्थान नहीं पा सकती। वही पुरुष दूसरे ही क्षण अन्य नारी को इससे भी भारी वचन दे बैठता है।

वाह रे पुरुष!

बिंबिसार उस अनिन्द्य तरुणी के विषय में सोचते-सोचते पांथशाला में पहुंचे, उस समय वैशाली गया हुआ संदेशवाहक आ पहुंचा।

प्रियतमा के संदेश को लाने वाले संदेशवाहक को देखते ही बिंबिसार की स्मृति से वह तरुणी ओझल हो गयी।···चित्त प्रसन्न हो गया। संदेशवाहक ने आम्रपाली द्वारा प्रदत्त संदेश की नलिका बिंबिसार को सौंप दी।

प्रिया का सन्देश! वह सन्देश जिसकी सतत चाह हृदय को झकझोरती थी।

बिंबिसार ने संदेशवाहक को पांच स्वर्णमुद्राएं दीं···वह वहां से विदा होने प्रस्थित हुआ। बिंबिसार ने उसे पुनः बुलाकर कहा—"सुन!"

"जी···क्या आज्ञा है ?"

"दो दिन तव विश्राम कर तू लौट सकेगा ?"

"हां, महाराज !"

"अच्छा दो दिन बाद आकर मुझसे मिलना।" कहकर बिंबिसार ने उस नलिका को खोलना प्रारम्भ किया।

सन्देशवाहक नमन कर चला गया।

दामोदर बोला—"महाराज ! भोजन का थाल आ गया है।"

"अभी आ रहा हूं।" कहकर बिंबिसार ने प्रियतमा द्वारा लिखा पत्र नलिका से बाहर निकाला।

मोती जैसे स्वच्छ अक्षर !

उसने पत्र पढ़ लिया···पुनः पढ़ा···आम्रपाली ने लिखा था—"प्राणवल्लभ ! प्राणों से भी अधिक प्राणेश्वर ! मेरी आशाओं के अमृत, चरणों में आम्रपाली का नमन !

विरह की अग्नि से शुष्क और रसहीन बनी हुई पृथ्वी जैसे मेघ की आशा में आकाश के सामने भान भूलकर देखती रहती है, वैसे ही मैं भी आपके संदेश की प्रतीक्षा कर रही थी।

पृथ्वी के लिए जैसे ग्रीष्म ऋतु अत्यन्त दुःखकारक होता है वैसे ही आपका वियोगकाल मेरे लिए उतना ही दुःखदायक हो गया है। ऐसे परिताप वाले समय में आपका पत्र प्राप्त होना, मेरे प्राणों में नया अमृत भरना है।

प्राणेश ! वियोगिनी नारी का अभिनय मैंने अनेक बार किया है। परन्तु वियोगिनी नारी की आन्तरिक अनुभूति की वेदना को तो मैंने आपसे विमुक्त होने के पश्चात् ही भोगा है। कितनी भयंकर वेदना ! इस वेदना को न कवि अपने काव्य में अभिव्यक्ति दे पाता है और न अनुभवी व्यक्ति अपने इस वेदनामय अनुभव को शब्दों में उतार पाता है। तो मैं कैसे उसको दिखाऊं ? यदि हृदय भेजा जा सकता तो मैं इस संदेशवाहक के साथ वेदना से आप्लावित अपना हृदय बाहर निकालकर भेज देती और तब आप मेरी अन्तर् व्यथा को देख पाते···परन्तु लाचार हूं।

आप उज्जयिनी पहुंच गए हैं और दीपमालिका तक वहीं रहेंगे, यह ज्ञात हुआ, परन्तु आप यहां आ सकते हैं। षड्यंत्र का पता लग गया है। आप सर्वथा निर्दोष हैं, यह सबको निश्चय हो चुका है। आपके जाने के पश्चात् शीलभद्र की मृत्यु हुई और यह कार्य किसी विषकन्या का ही था···विषकन्या कौन है, इसका पता नहीं लग पाया है···परन्तु वह अपना कार्य कर यहां से पलायन कर गयी, ऐसा माना जाता है। आपके लिए वैशाली निष्कंटक बन गयी है। आप शीघ्र यहां

आ जाएं। मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही हूं। आप विलम्ब किए बिना अपनी प्रियतमा के आंसू पोंछने अवश्य ही पधार जाएं।

स्वामिन्! मैं स्वस्थ हूं···केवल आपके वियोग से सहज उभरनेवाली उदासी को भोग रही हूं। आप स्वस्थ हैं, यह जानकर परम प्रसन्नता का अनुभव होता है। किन्तु आपके भोजन आदि की व्यवस्था कैसे होती होगी? पांथशाला में रहना, भोजनशाला में भोजन करना, वणिक् के रूप में फिरना, यह सब आपको कैसे अनुकूल रहता होगा? अब इन सारी व्यथाओं का अन्त आ गया है। आपकी दासी रजनीगंधा को देखने शीघ्र पधारें।

आप तो जानते हैं कि आपकी स्मृति मेरे उदर में सुरक्षित है। वैद्यराज का औषध प्रयोग भी चल रहा है। सभी परिकर मुझे प्रसन्न रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु आपका वियोग मेरे मन को व्यथित कर डालता है। वह मथ देता है मेरी सारी आशाओं को। आप ही व्यथाओं को दूर कर सकते हैं।

वर्षा का समय है, इसलिए आप अश्व पर नहीं, रथ लेकर आएं।

आपकी महार्बिब वीणा मेरे शयनकक्ष में रखी है···अनेक बार उस वीणा को देखकर हृदय भर आता है। जिस वीणा पर नाचनेवाली आपकी कला ने मिलन माधुरी का साक्षात् कराया था, वह वीणा आपके बिना वियोगिनी नारी की तरह मौन-रुदन कर रही है।

प्रियतम! उस वीणा की तरह ही आपकी प्रियतमा की परिस्थिति है···न स्वर है, न रस है, न आनन्द है, न ऊर्मि है और न काव्य है···।

बस, अब आप यहां आ जाएं। मुरझाई वल्ली को संजीवन करने आप शीघ्र पधारें। मेरा एक-एक क्षण युग जैसा बीत रहा है।"

बिंबिसार ने पत्र को एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा, तीन बार पढ़ा···पर मन तृप्त नहीं हुआ।

दामोदर ने दूसरी बार आकर कहा—"महाराज! भोजन ठण्डा हो गया है।"

"ओह!" कहकर बिंबिसार खड़े हुए। प्रिया का प्रेम-पत्र पुनः नलिका में डाला और उसे अपने सिरहाने के पास रखकर भोजन करने गए।

भोजन ठण्डा हो गया था, परन्तु आज भूख तीव्र लगी थी और प्रिया के संदेश से हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था।

भोजन से निवृत्त होकर, वे आठ-दस बार इधर-उधर घूमे और सोचते रहे···प्रिया को क्या लिखूं···क्या अभी वहां जाऊं···नहीं, नहीं लिच्छवियों में असहनशीलता बहुत है···मैं निष्क्रिय रहकर सप्तभूमि प्रासाद में कितने समय तक रह सकता हूं? वियोग की व्यथा जितनी वह सहन कर रही है, उतनी ही मुझे भी सहनी है। परन्तु देवी आम्रपाली के पास तभी जाना उचित होगा जब

मैं अपने पुरुषार्थ के बल पर उसे लाकर अपनी हृदय-रानी के रूप मैं अपने ही भवन में रख सकूं। जनपदकल्याणी के पद-गौरव को पैरों से रौंदकर आम्रपाली बिंबिसार की अर्द्धांगिनी बने—यही उसके लिए तथा मेरे लिए गौरवास्पद होगा।

इधर-उधर टहलते समय उनके मन में इस प्रकार के अनेक विचार आ-जा रहे थे। उसके बाद उन्होंने पुनः पत्र पढ़ा···शय्या पर लेटे-लेटे।

आज बाजार में जाने की इच्छा नहीं हुई। पत्र का उत्तर क्या दिया जाए, यह विचार उनके लिए मुख्य बना। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि दीपमालिका के बाद कहीं-न-कहीं स्थिर हो जाना है, पुरुषार्थ करना है और फिर अति सम्मान के साथ आम्रपाली और नूतन अतिथि को लाना है···।

संध्या हो गयी।

वर्षा पुनः गाजबीज के साथ प्रारम्भ हुई।

और उसी समय एक रथ पांथशाला में प्रविष्ट हुआ।

रथ को देखते ही पांथशाला का व्यवस्थापक वर्षा के बीच दौड़कर रथ के पास पहुंचा। क्योंकि वह देवी कामप्रभा के रथ और सारथि—दोनों से परिचित था।

रथ में प्रीतिमति बैठी थी। पांथशाला के संचालक ने नमस्कार कर पूछा—"क्या आज्ञा है?"

प्रीतिमति बोली—"जयकीर्ति नाम वाले कोई परदेसी व्यक्ति यहां ठहरे हैं?"

"हां, देवि···ऊपर की मंजिल के कमरे में ठहरे हैं···क्या कोई काम है?"

हां, अत्यन्त महत्त्व का कार्य है···मुझे उनके पास ले चलो।" प्रीतिमती ने कहा।

"देवि! आप वर्षा में भीग जाएंगी···मैं ही उनको बुला लाता हूं।"

"नहीं, मुझे ही जाना चाहिए।" कहकर प्रीतिमती रथ से नीचे उतरी। एक दास भी छत्र लेकर नीचे उतरा।

बिंबिसार अपनी शय्या पर बैठे थे। आज प्रातः जिस अनिन्द्य सुन्दरी तरुणी को देखा था, वह उनके चित्त को मथ रही थी। उसने सोचा, पूर्व भारत में देवी आम्रपाली से अधिक सुन्दर कोई नारी नहीं है, किन्तु यह तरुणी तो आम्रपाली से भी रूप-माधुरी में सवाई है···वह कौन होगी? वह किसकी कन्या है? एक बार देख लेने पर आंखों से दूर क्यों नहीं होती?

इतने में दामोदर आकर बोला—"महाराज! आपसे मिलने कोई देवी आयी हैं।"

"देवी ?" बिंबिसार के नयनों में आश्चर्य उभरा। ऐसे बरसते पानी में और मेरे जैसे अपरिचित व्यक्ति से मिलने कौन आए ?

वे खड़े हो गए···पांथशाला का प्रबंधक प्रीतिमती को साथ ले खंड में प्रविष्ट हुआ और बोला—"महाराज ! महादेवी कामप्रभा की मुख्य परिचारिका आपसे मिलने आई है।"

"मुझसे मिलने ?"

"जी हां···"

"जयकीर्ति आपका ही नाम है न ?" प्रीतिमती ने मस्तक नमाकर कहा।

"हां, क्या आज्ञा है ?" बिंबिसार ने प्रश्न किया।

खंड में बिठाने लायक कोई दूसरा आसन नहीं था। दामोदर ने प्रीतिमती को पहचान लिया, क्योंकि आज प्रातः सिप्रा नदी के तट पर इसी बहन ने उससे पूछताछ की थी। परन्तु वह कुछ भी नहीं बोला···खंड से बाहर चला गया। प्रबन्धक भी नमस्कार कर बाहर निकल गया।

प्रीतिमती खड़ी ही रही। उसने कहा—"सेठजी ! आज प्रातः आपने एक वृद्धा के प्राण बचाए थे···आपने अपने प्राणों को जोखिम में डालकर भी यह कार्य किया···महादेवी कामप्रभा उस समय वहीं थीं। आपके इस साहस को देखकर देवी ने आपको लिवाने मुझे भेजा है।"

"महादेवी कामप्रभा ! देवि ! मैं इस नगरी से सर्वथा अपरिचित हूं, इसलिए···।"

बीच में प्रीतिमती ने कहा।

"महादेवी आप जैसे साहसिक का अभिनंदन करना चाहती हैं···मैं रथ लेकर आई हूं···आप मेरे साथ ही चलें···।"

बिंबिसार द्विविधा में पड़ गए। एक अपरिचित स्त्री के पास क्यों जाया जाए ? मैंने ऐसा कौन-सा साहसिक कार्य कर डाला, जिसका अभिनंदन हो ? कर्त्तव्य का क्या पुरस्कार···?

बिंबिसार को विचारमग्न देखकर प्रीतिमती बोली—"आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मैं स्वयं आपको यहां पहुंचा दूंगी।"

"ओह ! तब तो ऐसी महान् नारी के पास मेरे जैसा छोटा आदमी जा ही नहीं सकता। मुझे क्षमा करें।" बिंबिसार ने कहा।

"आप किसी प्रकार का संकोच न करें। मेरे साथ चलें।"

बिंबिसार प्रीतिमती के साथ गए।

दामोदर पांथशाला में रुका रहा।

वर्षा हो रही थी। रथ एक घटिका में देवी कामप्रभा के विशाल भवन के प्रांगण में आ पहुंचा।

प्रीतिमती रथ से नीचे उतरी और बोली—"भीतर पधारें।"

एक सेवक छत्र लेकर आ गया था। एक परिचारिका प्रीतिमती से आकर बोली—"महादेवी अपने शृंगारकक्ष में अतिथिदेव की प्रतीक्षा कर रही हैं। आप आयुष्मान् को वहीं ले जाएं।"

प्रीतिमती ने दासी से कहा—"जा, महादेवी को खबर दे कि मैं अतिथि को वहीं ला रही हूं।"

परिचारिका तीव्र गति से चली गई।

प्रीतिमती जयकीर्ति को आदरपूर्वक ऊपर जाने वाले सोपानश्रेणी की ओर ले गई।

बिंबिसार ने देखा, मकान तो अत्यन्त भव्य और रमणीय है, सुन्दर है, आंख की पलकों में समाने वाला है, परन्तु वैशाली के सप्तभूमि प्रासाद जैसी इसमें शोभा नहीं है।

ऊपर पहुंचते ही बिंबिसार को किसी खंड से वीणावादन की आवाज सुनाई दी···वीणा का वह बेसुरा स्वर बिंबिसार के चित्त को व्यथित कर रहा था। उन्होंने सोचा, कौन कर रहा है वीणा का अनादर?

कलाकार कभी भी कला का दोष सहन नहीं कर सकता। बिंबिसार ने प्रीतिमती से पूछा—"बहन! वीणा कौन बजा रहा है?"

वह बोली—"वीणावादक आर्य सुप्रभ आए हों, ऐसा प्रतीत होता है।"

इतने में ही शृंगारकक्ष आ गया। एक पुष्पमाला हाथ में थामे कामप्रभा द्वार पर ही खड़ी थी।

बिंबिसार ने देखा, देवी में रूप है, यौवन है, मस्ती है किन्तु जीवन की सौरभ नहीं है।

बिंबिसार ने कामप्रभा को हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

कामप्रभा ने बिंबिसार के गले में माला पहनाते हुए कहा—"आपका स्वागत कर आज मैं धन्य हुई···अंदर पधारें।"

बिंबिसार कामप्रभा के पीछे-पीछे शृंगार-कक्ष में गए।

५०. मन की मन में रह गई

कामप्रभा का शृंगार-कक्ष अत्यन्त स्वच्छ, सुन्दर और यौवन-विलास की सामग्री से भरा-पूरा था।

कामप्रभा ने बिंबिसार को एक आसन पर बैठने की प्रार्थना की। वे आसन पर बैठते-बैठते बोले—"देवि! मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति का इतना सम्मान··।"

बीच में ही कामप्रभा ने मीठे स्वरों में कहा—"श्रीमन्! आपको सामान्य मानने वालों को मैं बुद्धिमान नहीं कह सकती। आप छद्मवेशी हैं, यह मानते

हुए भी मैं आप पर कोई आरोप लगाना नहीं चाहती···किन्तु आप उच्च कुलोत्पन्न हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। आज प्रातः जीवन और जीवन की सारी आशाओं की होड़ लगाकर एक वृद्धा नारी के प्राणों को बचाने वाला व्यक्ति कभी सामान्य नहीं हो सकता। आपका भव्य ललाट, विराट् वक्षस्थल, तेजस्वी नयन और गंभीर मुखाकृति—ये असामान्य व्यक्ति के परिचायक हैं।

बिंबिसार ये शब्द सुनकर चौंके। यह नारी कितनी चतुर है? मात्र आकृति से परख कर सकने में समर्थ है। वे गंभीर मुद्रा में विनीत स्वरों से बोले—"देवि! जिसकी आंखों में अमृत हो वह सबको उत्तम ही देखती है। मैं उच्च कुलोत्पन्न हूं आपका यह अनुमान सही है। परन्तु कर्म की गति विचित्र है। कर्मों का मारा मैं इस नगरी में आया हूं। मैंने आज प्रातः ऐसा कोई कार्य नहीं किया है, जिसकी प्रशंसा की जाए। मैं मगध के एक गांव में रहता था, गंगा में तैरने का अभ्यास बचपन से ही था। मैंने आज केवल अपना कर्त्तव्य निभाया है।"

"आपके माता-पिता?"

"माता नहीं है, पिताश्री विद्यमान् हैं। पारिवारिक क्लेश के लिए मुझे घर छोड़ना पड़ा है।"

कामप्रभा दो क्षण स्थिर दृष्टि से देखती रही, फिर बोली—"आपकी पत्नी···?"

बिंबिसार मौन रहा।

कामप्रभा कुछ और प्रश्न करे, उससे पूर्व ही परिचारिकाओं ने भोजन के दो थाल ला उसी कक्ष में रख दिए।

सामान्य बातचीत करते-करते दोनों ने भोजन कर लिया।

मुखवास आदि से निवृत्त होने के बाद कामप्रभा ने कहा—"श्रीमन्! आपके सम्मान के लिए मेरे कलाकार आपको मनोरंजन देना चाहते हैं। परन्तु उससे पूर्व···?"

"क्या?"

"आप मैरेय, सीधु, वारुणी, आसव···जो कोई प्रिय हो, वह···?"

"क्षमा चाहता हूं। मैं मादक द्रव्य का सेवन नहीं करता।"

"आप पार्श्वगच्छीय हैं?"

"नहीं देवि! मेरी मातुश्री जैन दर्शन की उपासिका थीं।"

कामप्रभा बिंबिसार का सत्कार करना नहीं चाहती थी, वह तो और कुछ चाहती थी···वह यौवन की छलकती मादकता को और अधिक उग्र बनाना चाहती थी। प्रातः सिप्रा नदी के पास बिंबिसार को देखते ही कामप्रभा का अन्तर्मन बोल उठा था—"ऐसा पुरुष भाग्यवती को ही प्राप्त हो सकता है।"

इतने में ही प्रीतिमती ने खंड में प्रवेश कर कहा—"महादेवि ! उस विशिष्ट खंड में सारी व्यवस्थाएं कर दी गई हैं।"

"चलो, हम चलें।" कहकर कामप्रभा उठी और बिंबिसार के साथ उस विशिष्ट खंड में आई।

कामप्रभा ने संकेत से वाद्यकारों को आज्ञा दी।

वाद्य बजने लगे।

वीणा, स्वरसप्त, काष्ठवाद्य, काष्ठतरंग, बंसरी, वेणु, चर्मवाद्य आदि वाद्यों से कल्याण की स्वरावली प्रारंभ हुई।

बिंबिसार स्वयं एक समर्थ वीणावादक थे। वे प्रत्येक राग को तरंगित करने में सिद्धहस्त थे। उनका वीणावादन अद्भुत् और बेजोड़ था। परन्तु यहां वे वणिक् जयकीर्ति बनकर आए थे, आचार्य जयकीर्ति बनकर नहीं।

वीणा पर कल्याण की स्वर लहरी थिरकने लगी···किन्तु बिंबिसार के मन को कुछ खटक रहा था। वीणा का एकाध तार दुर्मेल दिखा रहा था। यह अन्य कोई श्रोता पकड़ नहीं सकता था।

कलाकार सब कुछ सहन कर सकता है, पर कला की विकृति सह नहीं सकता।

सभी प्रसन्न चित्त थे। केवल बिंबिसार का मन अकुलाहट अनुभव कर रहा था। एकाध घटिका बीतने पर बिंबिसार की अकुलाहट असह्य हो गई। उन्होंने वाद्यकारों के समक्ष हाथ जोड़ कर कहा—"आप क्षमा करें, अन्यथा न मानें। वीणा का मध्यम तार स्वर में नहीं है।"

"मध्यम तार···?"

उज्जयिनी का समर्थ वीणावादक आर्य सुप्रभ आश्चर्यचकित रह गया।

कामप्रभा चौंकी। उसने मन-ही-मन सोचा, गांव का यह वणिक् कहीं परिहास तो नहीं कर रहा है?

आर्य सुप्रभ ने तत्काल वीणा का मध्यम तार संभाला···परदेशी अतिथि की बात यथार्थ लगी। उसने अत्यन्त भावना भरे स्वरों में कहा—"श्रीमन् ! आपकी बात सही है···मात्र एक अंश का अन्तर रह गया। मुझे लगता है आप श्रीमान् का अनुभव···।"

बीच में बिंबिसार ने कहा—"आचार्य, आप जैसा अनुभव तो है नहीं, मात्र सामान्य परिचय है।"

"सामान्य परिचय से इतना सूक्ष्म ज्ञान हो नहीं सकता।" कहकर आर्य सुप्रभ ने तार को ठीक करना चाहा। परन्तु प्रयत्न सफल नहीं हो सका।

कामप्रभा अत्यन्त आश्चर्य का अनुभव कर रही थी। वह अवाक् बनकर बिंबिसार की ओर देखने लगी।

बिंबिसार ने आचार्य से कहा—"आप मुझे दें।"

आर्य सुप्रभ ने वीणा बिंबिसार को दी। उन्होंने उसका सूक्ष्म निरीक्षण कर, उसमें जो एक पतला धागा समा गया था, उसको निकाला और वीणा को स्वस्थ कर आर्य सुप्रभ को सौंपते हुए कहा—"अब ठीक है।"

आचार्य ने कहा—"मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे ?"

बिंबिसार ने सुप्रभ की ओर प्रसन्न दृष्टि से देखा।

आचार्य सुप्रभ बोले—"आपकी दृष्टि, आपकी अंगुलियां और आपकी आंखें कलाकार होने की साक्षी देती हैं। आप हमारे पर कृपा कर वीणा हाथ में लें।"

बिंबिसार अपनी परिस्थिति भूल-से गए। वे महीनों से वीणा-वादन न कर पाए थे। वीणावादन की भावना उभरी। उन्होंने आचार्य सुप्रभ से वीणा ली और कहा—"आचार्य! कल्याण की आराधना अभी अधूरी रही है, उसे ही पूरा करूं।"

"जैसा आप चाहें।" कहकर आचार्य सुप्रभ अपने आसन पर बैठ गए।

बिंबिसार ने वीणा को मस्तक से लगा नमस्कार किया और स्वर तरंगित किए।

कल्याण की आराधना प्रारंभ हुई।

सारे वाद्यकार प्रसन्नचित्त होकर घटिका पर्यन्त परदेसी अतिथि की ओर देखते रहे। फिर वे वीणा-वादन का साथ देने लगे।

कामप्रभा मुग्ध नेत्रों से बिंबिसार की ओर देखती रही। उसके मन में अनेक कल्पनाएं आ रही थीं। एक गांव के वणिक्-पुत्र ने कला की ऐसी साधना कब की होगी ? इसने यह कला कहां और किससे सीखी है ? उज्जयिनी के सर्वश्रेष्ठ वीणावादक आर्य सुप्रभ के वीणा-वादन में दोष निकालने वाले इस परदेसी की कला का कहना ही क्या ? यह कितना महान् है ? जो व्यक्ति प्रातः अपने जीवन को खतरे में डालकर वृद्धा के प्राण बचाने में तत्पर हुआ, वही व्यक्ति अभी वीणा-वादन कर रहा है। कौन है यह ?

कल्याणराग पूर्ण चन्द्रमा की भांति खिल रहा था। मृदंगवादक आज स्वयं को धन्य मान रहा था। और सुप्रभ ने जान लिया था कि कल्याणराग का इतना सूक्ष्म स्वरूप अन्यत्र सुनने को कभी नहीं मिला।

राग उत्तरोत्तर सूक्ष्म बनता जा रहा था। तीन घटिकाएं बीत गईं···इतना समय कब कैसे बीता किसी को भान ही नहीं रहा।

देवी कामप्रभा का हृदय नृत्य करने के लिए बार-बार छटपटा रहा था। उसे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि उसने अनेक वीणावादकों को सुना है, परन्तु ऐसी स्वरमाधुरी को तरंगित करनेवाला कलाकार आज तक उसने नहीं देखा। यह

कौन होगा ? मुझे क्या, कोई भी क्यों न हो···? ऐसे स्वस्थ और सुन्दर पुरुष के चरणों में यौवन को न्योछावर करना नारी के लिए महान् गौरव है। ऐसे पुरुष के सहवास से रूप, यौवन और समर्पण खिल उठता है···जीवन धन्य बन जाता है।

बिंबिसार ने कल्याण राग की आराधना को हृदयवेधक आन्दोलन के साथ पूरा किया।

सभी स्तब्ध रह गए।

आचार्य सुप्रभ ने कहा—"धन्य साधना ! श्रीमन् ! आज हम सब धन्य हो गए। जीवन में प्रथम बार यह लाभ प्राप्त हुआ है।" यह कहकर सुप्रभ बिंबिसार को नमस्कार करने आगे बढ़ा। बिंबिसार ने तत्काल खड़े होकर कहा—"आचार्य ! मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति को लज्जित न करें।"

यह कहते हुए आचार्य सुप्रभ को गले लगा लिया।

फिर बिंबिसार बोले—"आचार्य ! अब आप बजाएं।"

आचार्य ने कहा—"नहीं, श्रीमन् ! कल्याण राग का स्वरूप अभी भी वातावरण को आन्दोलित कर रहा है···और राग के इस सूक्ष्म स्वरूप को सुनने के पश्चात् मेरी अंगुलियां अब वीणा पर तरंगित नहीं हो सकेंगी।"

कामप्रभा बोली—"आचार्य ! आपका विचार मुझे यथार्थ लगता है। इस वादन के पश्चात् दूसरे किसी का वादन शोभित नहीं होगा।" फिर उसने बिंबिसार की ओर नजर कर कहा—"प्रिय जयकीर्ति ! एक बार और आप वीणा धारण करें। सभी की इच्छा, सभी का मन और सभी की दृष्टि आपके प्रति स्थिर हो रही है।"

बिंबिसार ने वीणा हाथ में लेकर कामप्रभा से पूछा—"देवि ! आपको जो राग इष्ट हो, वह बताएं।"

कामप्रभा बोली—"श्रीमन् ! वर्षा ऋतु में मुझे 'हिंडोल' राग अत्यन्त प्रिय है।"

तत्काल बिंबिसार ने वीणा पर हिंडोल राग को आंदोलित किया और कुछ ही समय में वह राग सारे वातावरण में तरंगित हो गया।

यदि यह वीणा महार्घ होती तो बिंबिसार और अधिक चमत्कार पैदा कर देता। परन्तु यह वीणा पुष्पवीणा थी। फिर भी अपनी सधी अंगुलियों से बिंबिसार ने उस पर हिंडोल राग को नचाना प्रारंभ किया।

सभी उस राग में लवलीन हो रहे थे।

जब हिंडोल राग समाप्त हुआ तब प्रातःकाल होने ही वाला था।

समय या काल का भान कलाकार को रहता ही नहीं।

हिंडोल राग की संपन्नता होते ही कामप्रभा खड़ी हुई और बोली—"प्रिय जयकीर्ति ! आपका परिचय···आपकी कला और आपका···।"

बीच में ही बिंबिसार हंसते-हंसते बोले—"देवि ! आपके उदार हृदय से मैं परिचित हो गया हूं । वास्तव में मैं आज धन्य बन गया ।"

इस प्रकार बातें कर बिंबिसार खड़े हुए और कामप्रभा से बोले—"देवि ! इतना विलंब होगा, ऐसी कल्पना नहीं की···अब मुझे विदा करें ।"

"नहीं, प्रिय ! अब तो आपको यहीं रहना होगा । अभी तो मैंने आपका सत्कार किया ही नहीं है ।"

"देवि ! आपने आज जो मेरा सत्कार किया है, वह मेरे लिए प्रेरणारूप है । इससे और अधिक सत्कार क्या···? मुझे सिप्रा के तट पर भी जाना है ।"

"मैं भी जाऊंगी···मेरे साथ ही चलें ।"

"क्षमा करें । फिर कभी आऊंगा ।" बिंबिसार ने विनम्रता से कहा ।

"कब आएंगे ?"

"मैं तो यहां निकम्मा हूं । जब चाहूंगा तब आ जाऊंगा ।"

कामप्रभा बिंबिसार को रोकना चाहती थी···परन्तु वह वैसा कर नहीं सकी ।

वर्षा भी शांत हो गई थी ।

कामप्रभा के रथ में बैठकर बिंबिसार प्रस्थित हुए ।

पक्षिगण प्रातःकाल का संगीत गा रहे थे ।

और कामप्रभा के मन की बात मन में ही रह गई थी ।

५१. आकस्मिक योग

कामप्रभा के भवन से निकलकर बिंबिसार सीधा पांथशाला में गया और दामोदर को साथ ले शीघ्र ही सिप्रा नदी के तट पर पहुंच गया ।

सूर्योदय हो चुका था ।

सारी रात वर्षा पड़ने के कारण सिप्रा नदी भी नवयौवना नारी के अधीर हृदय की भांति बन गयी थी ।

बिंबिसार एक निकट के घाट पर स्नान आदि से निवृत्त होकर दामोदर के साथ रवाना हो गया । उसके मानस-पटल पर उस अनिन्द्य सुन्दरी की छवि बार-बार उभर रही थी ।

बाजार में आने के पश्चात् बिंबिसार ने दामोदर को पांथशाला की ओर भेज दिया और स्वयं चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मन्दिर की ओर चल पड़ा ।

कल मन्दिर के मुख्य द्वार पर जिस अनिन्द्य तरुणी को देखा था आज वह वहां नहीं थी···हो भी कैसे ? क्योंकि आज वह स्वयं जल्दी आ गया था।

उसने सोचा—मन्दिर में जाकर खोजना चाहिए। तत्काल उसका अन्तर्मन बोल उठा, उपासना-गृह में किसी भी नारी को देखने जाना महान् दोष है। किसी भी उपासना स्थान में चित्त केवल अपने इष्ट की ओर ही लगा रहना चाहिए। यदि चित्त वहां भी चचल होता है तो वह बहुत बड़ा अपराध है।

नहीं, नहीं, नहीं···तो क्या बाहर खड़ा रहूं ? नहीं, यह भी उचित नहीं है। क्योंकि मैं एक परदेसी हूं। इस प्रकार खड़ा रहूंगा तो लोगों के मन में संशय हो सकता है। इससे तो अच्छा है मन्दिर के भीतर जाऊं, तन्मय होकर पार्श्वप्रभु का ध्यान धरूं···मन को उसमें लगाऊं और तन्मय हो जाऊं।

ऐसा निश्चय कर वह मन्दिर के भीतर गया।

जिस तरुणी को वह देखने आया था, वह तरुणी भगवान् पार्श्व की स्तुति कर रही थी।

बिंबिसार की दृष्टि स्तवन कर रही उस तरुणी पर पड़ी।

"ओह ! यह तो वही है।" इतना विचार मन में आया, परन्तु वह वहां नहीं रहा। तत्काल बाहर आ गया। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। मन उस तरुणी में उलझा हुआ था। उसने मुड़कर देखा, तरुणी मन्दिर से बाहर निकल रही थी।

बिंबिसार वहीं खड़ा हो गया। तरुणी उसके पास से गुजरी और उसने बिंबिसार को देखा। एक क्षण के लिए दोनों की दृष्टि मिली। बिंबिसार ने सोचा, नारी का क्या समग्र माधुर्य आंखों में ही बसता है ?

तरुणी आगे बढ़ी और अपने भवन में चली गयी।

बिंबिसार विचारों की उलझन में उलझा रहा। जब वह थक गया तब एक दुकान के कोने पर जाकर बैठ गया। उस दुकान पर माल खरीदने वाले आ-जा रहे थे। एक अधेड़ उम्र का सेठ गद्दी पर बैठा था। नौकर ग्राहकों को सम्भाल रहे थे।

सेठ धनदत्त को आज अत्यधिक आश्चर्य हो रहा था कि इतनी बिक्री पिछले बारह महीनों में नहीं हुई थी···एक वर्ष पूर्व उसकी यह दुकान मुख्य दुकान मानी जाती थी। आर्थिक दृष्टि से विपन्नता आने पर व्यापार भी कम हो गया और सेठ उत्साहहीन होकर बैठ गया। व्यापार भी धीरे-धीरे कम होता गया।

परन्तु आज···।

सेठ सोच रहा था। उसकी दृष्टि एक ओर बैठे बिंबिसार पर गयी।

उसने सोचा, यह कोई भी क्यों न हो, पर है यह अवश्य पुण्यशाली। इसके चरण पड़ने से मेरी दुकान में ग्राहकों की भीड़ लग गयी। अभी भी ग्राहकों का

तांता-सा लग रहा है। पहले ऐसा नहीं था। उसने बिंबिसार से पूछा—"भाई! कहां के हो?"

"मगध का।" बिंबिसार ने कहा।

"आपका नाम?"

"जयकीर्ति।"

"कौन हैं?"

"वणिक् हूं।"

"वणिक!" धनदत्त के मन में सहधर्मी भाव उभरा। उसने पूछा—"किसी प्रयोजन से यहां आए हैं?"

"नहीं, केवल व्यवसाय के लिए निकला हूं। कितने ही दिनों से व्यवसाय मिल नहीं रहा है, इसलिए भटक रहा हूं। थक गया हूं, इसलिए यहां विश्राम लेने बैठा···यदि आपको आपत्ति न हो तो···।"

"अरे! आप ऊपर आएं···मेरे पास बैठें···" कहकर धनदत्त ने बिंबिसार को जबरन अपने पास गद्दी पर बैठाया।

बिंबिसार को तो वहीं बैठना था। वह तरुणी की टोह में था।

दुकान पर ग्राहकों की भीड़ जमने लगी।

धनदत्त की श्रद्धा पुष्ट होने लगी। उसको यह निश्चय हो गया कि जयकीर्ति के चरणों का ही यह प्रभाव है। उसने मन-ही-मन सोचा, क्या ही अच्छा हो, यदि यह यहीं रह जाए।

सांझ होने को थी।

ग्राहकों की भीड़ बढ़ रही थी।

परन्तु सेठ कभी रात्रिभोजन नहीं करता था। रात्रिभोजन को वह निन्दनीय मानता था, पाप-प्रवृत्ति मानता था।

धनदत्त जयकीर्ति को साथ ले ब्यालू करने अपने घर की ओर प्रस्थित हुआ। चलते-चलते धनदत्त ने कहा—"सेठ जयकीर्ति! आप व्यवसाय खोज रहे हैं और मैं आप जैसा उत्तम साथी खोज रहा हूं। आप मेरे साथ व्यवसाय करें। मैं अभी एक विपत्ति से गुजर रहा हूं।"

"विपत्ति?"

"हां, मेरा एकाकी पुत्र तीन वर्ष पूर्व जहाजों में माल लादकर परदेस गया था। उसने परदेसी माल भरकर एक जहाज यहां भेजा था। परन्तु कर्म के संयोग से वह वाहन भटक गया और अन्यत्र किसी के यहां पहुंच गया। दूसरी ओर एक दूसरा जहाज मेरे नाम से यहां आ गया। उसमें जो माल निकला वह व्यर्थ था। उसमें दस बोरे राख तथा अनेक बोरों में ऐसी वनस्पति भरी थी, जिसकी हमें कोई

पहचान नहीं है। मेरा भाग्य फूट गया। उस माल को लेकर आया। भारी नुकसान उठाया और पूर्व की स्थिति लड़खड़ा गयी।"

बिंबिसार ने पूछा—"राख के बोरे ?"

"हां, मैंने उन्हें सावचेती से सम्भालकर रखा है।

धनदत्त मकान के पास पहुंचा और पुकारा—"नंदा ! एक अतिथि आए हैं···शीघ्रता करना।"

"जी।" एक मीठा स्वर सुनाई दिया।

बिंबिसार ने पूछा—"सेठजी ! आपके पुत्र के आने के कोई···"

"कोई समाचार नहीं है···उसकी पत्नी भी साथ गयी है···इस विशाल भवन में मैं, मेरी पत्नी और पुत्री नंदा के सिवाय और कोई नहीं है। मकान की शोभा तो मनुष्यों से होती है।"

हाथ-पैर धोकर दोनों भोजन करने बैठ गए। धनदत्त ने पुकारा—"बेटा···"

"आई पिताजी !" कहती हुई नंदा भोजन का थाल लेकर तत्काल आ गयी।

नंदा को देखकर बिंबिसार चौंका। अरे, यह तो वही तरुणी है।

आकस्मिक योग कैसा बना ! जिसको देखने के लिए मन तरस रहा था, स्वयं वह तपस्या कर रहा था। उसी के भवन में·····

नंदा भी अतिथि को देखकर चौंकी। आज प्रातः ही इस सुन्दर युवक को पल भर के लिए देखा था। कल भी यही व्यक्ति मन्दिर के बहार खड़ा था।

५२. तेजंतुरी

नंदा को देखते ही बिंबिसार के प्राणों में हर्ष उमड़ आया।

पिता के बाजोट पर भोजन का दूसरा थाल रखने नन्दा पुनः आयी। बिंबिसार ने देखा कि नंदा भी उसको तिरछी दृष्टि से देख रही है। ओह ! इस दृष्टि में कितना तेज है।

धनदत्त बोला—"जयकीर्ति ! अब···आप···।"

"हां, सेठजी ! परन्तु मेरे पर आप एक कृपा करें।"

"कहें।"

"मैं आपके पुत्र के समान हूं···अवस्था में बहुत छोटा हूं···इसलिए आप मुझे 'आप' कहकर न पुकारें···"

"अच्छा···अच्छा भाई ! अच्छा। तुम्हें देखकर मेरे मन में एक तादात्म्य उभर रहा है। तुम यहां कहां ठहरे हो ?"

बिंबिसार ने पांथशाला का नाम बताया।

"जयकीर्ति ! पांथशाला में रहना उचित नहीं है। भोजन की क्या व्यवस्था है ?"

पांथशाला के पास एक सार्वजनिक भोजनालय है···" बिंबिसार ने कहा।

"भोजनालय में अब नहीं चल सकेगा। यहीं भोजन करना है। यहीं रहना है और काम करना है। मेरा भवन बहुत बड़ा है। मुझे भी बड़ा आराम मिलेगा···पुत्र के वियोग में तड़पते हृदय को कुछ आश्वासन मिलेगा।"

यह तो ऐसी बात थी कि रोगी ने जैसा चाहा वैद्य ने वैसा ही कह दिया। नयनों में बसने वाली सुन्दरी के सहवास में रहने का, उसके हाथ के भोजन का और उसकी मदभरी दृष्टि के सत्कार का ऐसा सुयोग कहां से मिलेगा? वह बोला—"सेठजी! आपने मेरे पर कृपा की, यही बहुत है। मेरा पुण्योदय है। मैं आपके यहां काम करूंगा, किन्तु पांथशाला में रहने में मुझे कोई अड़चन नहीं है।"

"नहीं, जयकीर्ति! पांथशाला में तो दो-चार दिन रहा जा सकता है। वहां जीवनभर नहीं रहा जाता। मैं अभी अपने सेवक को भेजता हूं। तुम अपना सारा सामान लेकर यहीं आ जाओ।"

सेठ ने भोजन सम्पन्न कर हाथ धोए।

इतने में ही नंदा आकर बोली—"बापू! कितनी उतावल की। अभी सूर्यास्त कहां हुआ है? आपकी उतावल के कारण···"

सेठ ने हंसते हुए कहा—"नहीं, बेटी! अब जयकीर्ति अपने घर का अतिथि नहीं है। वह तो अपने ही परिवार का एक सदस्य है।"

नंदा ने जयकीर्ति की ओर देखा। जयकीर्ति की दृष्टि नीची थी। उसने भी भोजन कर लिया था।

कुछ समय वहां रुककर सेठ और जयकीर्ति दोनों दुकान पर आए।

जयकीर्ति ने कहा—"सेठजी! कल प्रातः पांथशाला से मैं यहां आ जाऊंगा। मेरे साथ एक अश्व भी है।"

"अश्व है तो क्या? मेरे भवन में सारी सुविधाएं हैं।" धनदत्त ने कहा।

कुछ समय बाद बिंबिसार वहां से चला और पांथशाला में पहुंचकर दामोदर से बोला—"दामू! कल प्रातः मुझे अन्यत्र कहीं जाना पड़ सकता है···"

"किन्तु श्रीमन्! कल तो आप कहीं नहीं आ-जा सकेंगे।"

"क्यों?"

"अभी-अभी देवी कामप्रभा की दासी आयी थी और कल सायं वह आपको लेने स्वयं आएगी, ऐसा कहकर गयी है।"

बिंबिसार बोला—"दामू! मैं कल रुक सकूं, ऐसी सम्भावना नहीं है··· परन्तु तू घबराना मत। तुझे यहीं रहना है और जब धनंजय आए उसे रोके रखना है। मैं यदा-कदा यहां आता रहूंगा···तुझे अपना वेतन मिलता रहेगा।"

दामोदर स्थिर होकर बिंबिसार को देखता रहा।

रात्रि में बिंबिसार ने देवी आम्रपाली के नाम एक पत्र लिखा। उसमें नंदा से

सम्बन्धित कोई बात नहीं लिखी, परन्तु स्वयं एक स्थान पर स्थिर हो जाने के पश्चात् प्रियतमा को बुला लेगा, यह बात बार-बार लिखी। साथ-ही-साथ प्रेम-मिलन और महाबिंब वीणा की बात भी लिखी।

दूसरे दिन प्रातः वह दामोदर के साथ सिप्रा के तट पर गया। स्नान आदि से शीघ्र ही निवृत्त होकर पांथशाला में आया, सारा सामान एकत्रित कर दामोदर को संदेशवाहक को बुलाने भेजा।

बिंबिसार का हृदय आज आनन्द से उछल रहा था। जिस तरुणी को देखने के लिए वह अपनी परिस्थिति को गौण कर तप तप रहा था, उसी तरुणी के भवन में रहने का सुयोग उसे सहज प्राप्त हुआ···कितना आनन्द !

बिंबिसार को प्रियतमा आम्रपाली का स्मरण होता रहता। वह अपने-आपको भाग्यशाली भी मानता था कि पूर्व भारत का सर्वश्रेष्ठ नारी-रत्न प्राप्त हुआ है। इतना होने पर भी, नंदा को देखने के पश्चात् उसके मन में अचानक बदलाव आ गया था।

पुरुष जाति में रहे हुए स्वाभाविक दोष से कौन मुक्त रह सकता है ? पुरुष की आंखों में विष है या अमृत, यह आज तक अव्यक्त रहा है। परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि रूप और यौवन की मदभरी प्रतिभा को देखने के पश्चात् मनुष्य का मनमोर नाच उठता है और यह नृत्य मन को या तो मस्त बना डालता है या पागल !

पुरुष की पलकों में जो चित्र पहले अंकित होता है वह कुम्हलाए हुए फूल की पंखुड़ी की भांति बिखर जाता है और उसके स्थान पर दूसरा ही चित्र अंकित हो जाता है।

नंदा को देखने के पश्चात् बिंबिसार को यही अनुभव होने लगा कि संसार में इससे अधिक रूपवती और कोई नारी नहीं है।

वाह रे पामर पुरुष !

वास्तव में पुरुष अत्यन्त अस्थिर और पामर होता है। पुरुष अपने दोषों को ढकने के लिए नारी को ही चंचल, अस्थिर और अल्प बुद्धि वाली बताता है। इतना कहते हुए, भयंकर आरोपों के मध्य नारी को रखते हुए भी पुरुष की पामरता छिप नहीं सकती और नारी का समर्पण भी कभी मुरझा नहीं सकता।

नारी समर्पण की प्रतिमूर्ति है। इस समर्पण में विनिमय नहीं होता। वह अपने प्रिय के प्रति तन-मन और भावनाओं का सम्पूर्ण समर्पण करती है और बदले में केवल चाहती है प्रिय का सन्तोष। वाह रे महान् नारी !

दो घटिका के पश्चात् दामोदर संदेशवाहक को लेकर आ गया। बिंबिसार ने उसके हाथ में पत्रवाली नलिका देकर कल तक वैशाली जाने के लिए कहा।

संदेशवाहक बहुत प्रसन्न हुआ।

बिंबिसार बोला—"देवी आम्रपाली को यह पत्र हाथोंहाथ देना है और वे जो उत्तर लिखकर दें, उसे यहां लाना है। वहां पांथशाला में दामोदर रहेगा, तू उसे पत्र दे देना।"

संदेशवाहक पत्र लेकर चल पड़ा।

दामोदर बोला—"श्रीमन्! यदि आपके विषय में कोई पूछे तो क्या जवाब दूं।"

"व्यवसाय के लिए अन्यत्र गए हैं, ऐसा कहना। परन्तु प्रत्येक सोमवार को मैं यहां आता रहूंगा।"

दामोदर कुछ भी समझ नहीं सका। अन्यत्र जाना और फिर प्रत्येक सोमवार को यहां आना, कैसे सम्भव हो सकता है?

धनदत्त सेठ जयकीर्ति की प्रतीक्षा कर रहा था। नंदा भी आज पूजा-पाठ से शीघ्र निवृत्त होकर जयकीर्ति के आगमन की राह देख रही थी।

जयकीर्ति अपने सामान के साथ वहां पहुंच गया।

धनदत्त सेठ ने उसकी सारी सुविधाओं को ध्यान में रखकर अपने पास वाले खंड को तैयार कर रखा था।

धनदत्त ने उस खंड को दिखाते हुए जयकीर्ति से पूछा—"क्या यह कक्ष तुमको पसन्द है?"

जयकीर्ति ने देखा, खंड अत्यन्त भव्य, स्वच्छ और सुन्दर था। उसने कहा—"सेठजी! मुझे केवल आपके वात्सल्य की भूख है···मुझे सब पसन्द है।"

एक सप्ताह बीत गया।

जयकीर्ति के आगमन से धनदत्त सेठ का व्यापार चमक उठा। बिंबिसार को व्यापार विषयक कोई अनुभव नहीं था। वह तो वीणावादक था···धनुर्धर था···अश्वचालक था···राजनीति का अभ्यासी था···परन्तु परिस्थिति सब कुछ सिखा देती है।

धनदत्त की दुकान प्रसिद्ध हो गयी।

सोमवार के दिन जयकिर्ति दामोदर से मिलने पांथशाला में गया। दामोदर ने कहा—"श्रीमन्! इस सप्ताह में कामप्रभा की दासी बारह बार आपसे मिलने आ गयी। मैंने उसको, आपने जो कहा, वही बताया।"

"अब आए तब कह देना कि जयकीर्ति कब आएंगे कुछ कहा नहीं जा सकता। यहां आएंगे तब देवी से अवश्य मिलेंगे।" बिंबिसार ने कहा और दामोदर को पचास रौप्य मुद्राएं दीं।

धनदत्त सेठ के यहां रहते बिंबिसार को कुछ समय बीत चुका था। बिंबिसार का

मन नंदा के प्रति विशेष आकर्षित हो रहा था। वह जैसे-जैसे नंदा के सम्पर्क में जाता, वैसे-वैसे उसके मन की भावना प्रबल बनती कि यदि नंदा जैसी रूपवती, पवित्र और धार्मिक नारी जीवन-संगिनी मिल जाए तो जीवन धन्य हो जाए।

नंदा भी इस नूतन अतिथि के प्रति आकर्षित थी। वह अपने मनोभाव को अव्यक्त रखने में कुशल थी। वह सदा इस बात का ध्यान रखती थी कि किसी को यह संदेह भी न हो पाए कि वह इस नये अतिथि के प्रति इतनी आकृष्ट है। फिर भी जब वह सोती तब मधुर स्वप्नों में ही रात बीत जाती।

नंदा के अनेक सखियां थीं। परन्तु किसी ने भी इसकी तड़फ को नहीं पकड़ा। स्त्रियां कितनी ही चतुर क्यों न हों, वे अपने हृदय की बात अपनी प्रिय सखियों को कहे बिना नहीं रहतीं। परन्तु नंदा इसका अपवाद थी।

दिन में चार बार नंदा और बिंबिसार मिलते। दोनों के बीच कुछ बातें भी होतीं। इतना होने पर भी बिंबिसार नंदा के मनोभावों को पकड़ नहीं सका।

पुरुष जब किसी भी नारी के प्रति आकृष्ट होता है तब वह उसके मन की थाह लेने जितना धैर्य रख नहीं सकता और वह अपनी पत्नी के सहवास में वर्षों तक रह जाने पर भी पत्नी के हृदय की धड़कनों की भाषा समझ नहीं सकता।

पुरुषों का यह दोष स्वभावगत है, जन्मजात है। बिंबिसार यदि नंदा के मन को नहीं पढ़ सका तो कोई बात नहीं है। परन्तु स्वयं का मन अति स्पष्ट हो गया था। उसे वह प्रतीत होने लगा कि यदि जीवन में नंदा का साहचर्य नहीं मिल पाया तो वह जीवन व्यर्थ चला जाएगा और उसमें जीवन-माधुरी कभी नहीं आ सकेगी।

परन्तु यह बात नंदा के समक्ष कैसे रखी जाए? यह प्रश्न—बिंबिसार को सदा उलझाता रहता था। नंदा से कैसे बातचीत की जाए, इस विषय में उसके मन में अनेक कल्पनाएं आतीं, परन्तु जब नंदा सामने आती तब वह कुछ भी नहीं कह पाता। बहुत बार नारी का व्यक्तित्व पुरुष के लिए छाया बन जाता है। बहुत बार पुरुष का व्यक्तित्व नारी के लिए आश्रय बन जाता है। परन्तु नंदा का प्रभाव अपूर्व था। बिंबिसार अपने मन के वेग को व्यक्त नहीं कर पाता था।

इसलिए देवी आम्रपाली से भी अधिक प्रेम नंदा के प्रति उसके प्राणों में संचित हो रहा था।

सोमवार को सूर्यास्त से पूर्व सेठ धनदत्त ने बिंबिसार से कहा—"जयकीर्ति! मुझे आज गोदाम में जाना है···तुम भी साथ चलो।"

दोनों गोदाम में गये।

सेठ ने कहा—"जयकीर्ति! एक दिन वह था जब यहां माल समाता नहीं था, और आज यह खाली पड़ा है।"

"सेठजी! यह कर्मों की लीला है। लक्ष्मी चंचल है। फिर भी हमें पुरुषार्थ

पर विश्वास रखना चाहिए। आपने एक बार कहा था कि अनजानी वनस्पति के कुछ बोरे एक वाहन पर आ गए थे। वे कहां हैं?" बिंबिसार ने कहा।

"हां आए थे। उनमें से कुछ तो बिक गये और कुछ बाहर फेंक डाले।"

"और वह राख!"

धनदत्त सेठ हंस पड़े। उन्होंने हंसते-हंसते कहा—"देख, सामने के कोने में दस बोरे भरे पड़े हैं। दूसरा कोई माल है नहीं, इसलिए इन्हें रख छोड़ा है, अन्यथा मैं इनको भी सिप्रा में प्रवाहित कर देता।"

जयकीर्ति ने उस संकेतित कोने की ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा! सेठ ने कहा—"तुझे देखना हो तो देख ले। मैं एक-दूसरे पदार्थ की खोज कर लूं।"

दूसरे कोने में कुछेक मिट्टी की कोठियां और घड़ों की बडेर पड़ी थी। धनदत्त उनकी ओर गया और बिंबिसार दस बोरे वाले कोने की ओर बढ़ा।

दस बोरों में से नौ सीलबंद थे। एक का मुंह खुला था। बिंबिसार ने उसमें हाथ डाला। उसके हाथ में वजनदार पदार्थ आया। वह चौंका। राख कभी भारी होती नहीं। सेठ ने इस दृष्टि से क्या इसकी परीक्षा नहीं की?

बिंबिसार ने बार-बार उस राख की परीक्षा की और उसका चेहरा अचानक खिल उठा। उसने समझ लिया कि यह राख नहीं है, तेजंतुरी है। यह करोड़ों के मूल्य की वस्तु है। उसे याद आया, उसने ऐसी तेजंतुरी राजगृह में देखी थी। उसने सोचा, सेठ को जानकारी देनी चाहिए, किंतु दूसरे ही क्षण उसने सोचा, नहीं शुभ समाचार भी कभी-कभी प्राणलेवा बन जाता है। इस विषय की चर्चा एकान्त में तथा धीरे-धीरे करनी है।

यह सोचकर वह, जहां सेठ खड़े थे, वहां आया। धनदत्त सेठ घड़ों में भरे माल को देख रहे थे। बिंबिसार को देखते ही सेठ ने पूछा—"क्या राख को देख लिया?"

"हां, परन्तु सेठजी! भाग्य की लीला अपरम्पार है। आज जो गोदाम रिक्त लग रहा है, वह कल भर जाएगा।"

"तुम्हारी बात ठीक है। कोई पाप कर्म का उदय है, इसलिए यह विपन्नता देखनी पड़ रही है।" कहकर सेठ ने एक घड़े को उतारा। उसमें पारद था। उन्होंने कहा—"दुकान में पारद बिक चुका था। इसलिए गोदाम में पारा है था नहीं, यह देखने यहां आया था। ज्यादा तो नहीं, परन्तु पांच सेर जितना पारद अवश्य है।"

बिंबिसार ने कहा—"क्या पारद का यह घट ले चलूं?"

"नहीं, कल यहीं आकर कूपिका भर कर ले जाएंगे।" सेठ ने कहा।

बिंबिसार बोला—"क्या कल राजसभा में जाना है?"

"नहीं भाई, नहीं। वहां जाकर क्या करना है? महाराजा तो यहां हैं नहीं।

मंत्री सोना खरीदना चाहते हैं। हम उन्हें सोना दे सकें, उस स्थिति में नहीं हैं। इसलिए वहां जाकर क्या करना है?"

"नहीं, सेठजी! निमंत्रण मिला है तो जाना अवश्य है।"

सेठ ने हंसकर कहा—"तो तुम ही चले जाना···।"

"मैं जाऊंगा, पर आपका प्रतिनिधि बनकर। आप मुझे प्रतिनिधि-पत्र अवश्य लिखकर दे दें।" बिंबिसार बोला।

"अच्छा।" सेठ ने कहा।

और दोनों गोदाम से बाहर निकले।

५३. स्वर्ण का सौदा

दिन का प्रथम प्रहर बीत गया था। राजभवन के विशाल खंड में नगरी के विशिष्ट व्यापारी, सार्थवाह और जौहरी विविध रंगों की पोशाकों में उपस्थित थे। सभी के वस्त्र उत्तम और सभी विविध प्रकार के रत्नजटित अलंकारों को धारण किए हुए थे।

बिंबिसार भी धनदत्त सेठ का प्रतिनिधि बनकर, मालवीय पोशाक धारण कर वहां आया था। उस खंड के द्वार पर खड़े एक राजपुरुष ने उसके परिचय पत्र को देखा और उसे अंदर प्रविष्टि दी। वह सभी व्यापारियों के साथ जाकर बैठ गया।

बिंबिसार का चेहरा अत्यन्त भव्य था। उसके नयन तेजस्वी थे और काया आकर्षक थी। उसके सिर पर पीले रंग की मालवीय पगडी उसके व्यक्तित्व को उभार रही थी।

अन्य श्रीमन्त व्यापारियों की भांति उसके गले में बहुमूल्य मालाएं नहीं थीं फिर भी उसका व्यक्तित्व आकर्षक लग रहा था। अनेक व्यापारी उसका परिचय पूछते। वह कहता—"मैं धनदत्त सेठ का मुनीम हूं। मेरा नाम जयकीर्ति है।"

राजा का कोषाध्यक्ष और दो मंत्री आ गये थे। सभी निमंत्रित व्यापारी पहुंच गए थे। सभी मुख्यमंत्री की प्रतीक्षा कर रहे थे।

कुछ काल पूर्व तक धनदत्त सेठ का राज्य-संबंध बहुत अच्छा था। राजा को जो भी माल आवश्यक होता, सेठ धनदत्त उसकी पूर्ति करता था। परन्तु कुछेक महीनों से परिस्थिति बदली और सेठ धनदत्त विपन्न अवस्था में चला गया। फिर भी राज्य में मुख्य व्यापारियों के नामों में धनदत्त का नाम सबसे अग्र था। और इसलिए उन्हें निमंत्रण मिल जाया करता था। इसके सिवाय मुख्यमंत्री सेठ के परम मित्र भी थे।

महामंत्री के आगमन की सूचना मिली।

सभी व्यापारी खड़े हो गये।

स्थिर, गंभीर और भव्य आकृति वाले महामंत्री खंड में प्रविष्ट हुए। उन्होंने सभी व्यापारियों से कुशल-क्षेम पूछा। व्यापारियों ने उनका मानभरा अभिवादन किया। और सभी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये।

कुछ क्षणों पश्चात् महामंत्री की आज्ञा लेकर कोषाध्यक्ष ने सभा को संबोधित कर कहा—"महानुभावो! आप सबको यहां एक विशेष प्रयोजन से आमंत्रित किया है। आप सब जानते हैं कि राजेश्वर महाराजाधिराज सिंधु-सौवीर देश में विराजते हैं। वे लगभग दो मास बाद यहां पधारेंगे। वहां से उन्होंने एक महत्त्व-पूर्ण खरीदी के लिए यहां आदेश भेजा है। उनकी आज्ञा के अनुसार राज्य-कोष में सौ 'वाह'[1] सोना खरीदना है। स्वर्ण शुद्ध होना चाहिए और इतना स्वर्ण तीन महीने के भीतर-भीतर राजभवन में पहुंचाना होगा। जिस महानुभाव की 'दर' न्यून होगी, उसी को यह सौदा दिया जाएगा।"

स्वर्ण का इतना बड़ा सौदा? सभी व्यापारी स्तब्ध रह गये। सभी ने मन ही मन सोचा, इतना स्वर्ण तो बाहर से ही लाना पड़ेगा और अभी वर्षाकाल है। तीन महीनों के भीतर इतना स्वर्ण कैसे पहुंचाया जाए?

एक व्यापारी ने खड़े होकर कहा—"मंत्रीश्वर! इतना स्वर्ण एकत्रित किया जा सकता है, परन्तु अभी वर्षाकाल है इसलिए, समय की अवधि अधिक होगी। आप समय की अवधि को बढ़ाएं···।"

बीच में ही महामंत्री ने कहा—"वर्षाकाल का मुझे ध्यान है और इसीलिए तीन महीनों का समय दिया है। परन्तु यदि कोई व्यापारी दो महीने के भीतर, इतना स्वर्ण पहुंचा देगा, उसे प्रति तोला दस कपर्दक अधिक दिए जाएंगे।"

व्यापारी परस्पर चर्चा करने लगे। स्वर्ण का चालू भाव नौ रुपये और नियासी कपर्दक प्रति तोला था। परन्तु इतने स्वर्ण की खरीदी में भाव बढ़ने की आशंका तो थी ही।

यह सारा गणित कर पांच बड़े व्यापारियों ने मिलकर सौदा लेने का निर्णय किया और दस रुपया अस्सी कपर्दक प्रति तोला भाव घोषित किया।

महामंत्री ने अन्य व्यापारियों की ओर देखा···सौदे की बोली लग रही थी। और अंतिम भाव एक तोले का दस रुपया और पचास कपर्दक घोषित हुआ।

धनदत्त सेठ का मुनीम जयकीर्ति शांत बैठा था। वह खड़ा होकर बोला—"मंत्रीश्वर! मैं धनदत्त सेठ का मुनीम हूं और उनका प्रतिनिधि बनकर आया हूं। मेरे सेठ दो महीने में 'सौ वाह' स्वर्ण उपलब्ध करा देंगे और प्रति तोले स्वर्ण का हमारा मूल्य होगा दस रुपया।"

---

१. एक 'वाह' पच्चीस मन और चौबीस सेर का होता है। अस्सी तोले का एक सेर और चालीस सेर का एक मन।

सभी व्यापारी स्तब्ध रह गये। मानो बिजली कड़क कर गिर पड़ी हो, ऐसी स्तब्धता छा गई।

सभी लोग उस नये व्यापारी की ओर देखने लगे।

महामंत्री ने स्वयं खड़े होकर कहा—"महानुभावो! श्रीमान् धनदत्त सेठ के मुनीम ने प्रति तोले की जो 'दर' कही है, तथा दो मास के भीतर स्वर्ण का सौदा संपन्न करने का वादा किया है, उससे कम 'दर' में यदि कोई अन्य व्यापारी इस सौदे को लेना चाहे, तो ले सकता है।"

सभी व्यापारी एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। सभी को यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि जिस धनदत्त सेठ की वर्तमान स्थिति दो सौ तोला स्वर्ण खरीदने जितनी भी नहीं है, वह धनदत्त सेठ इतना स्वर्ण लाएगा कहां से? संभव है उसका पुत्र परदेस से आ रहा होगा? वह भी कहां से आएगा? वर्षाकाल में उसके जहाज आ नहीं सकेंगे।

कोषाध्यक्ष ने खड़े होकर, धनदत्त सेठ के मुनीम की बात पांच बार दोहराई!

कोई अन्य व्यापारी इससे कम 'दर' में स्वर्ण देने के लिए तैयार नहीं हुआ।

फिर कोषाध्यक्ष ने बिंबिसार की ओर देखकर पूछा—"क्या श्रीमान् सेठ धनदत्त दो महीने के भीतर 'सौ वाह' सोना दे सकेंगे?"

"हां, महाराज···!"

"यदि नहीं दे सके तो?"

"आप जो दंड देंगे, वह स्वीकार्य होगा।"

कोषाध्यक्ष ने कहा—"राज्य सेठ धनदत्त का सौदा स्वीकार करता है। यदि निर्धारित अवधि में वे अपना वादा पूरा नहीं करेंगे तो उनकी सारी संपति जप्त कर ली जाएगी।"

बिंबिसार बोला—"यह मंजूर है।"

महामंत्री ने पूछा—"मुनीमजी! आपका शुभ नाम?"

"जयकीर्ति···।"

"आप अभी नये आए लगते हैं। आपने हमारे राज्य के महान् व्यापारियों के बीच जो साहस दिखाया है, उससे मेरे दिल में आपके प्रति विशेष आदरभाव उत्पन्न हुआ है। आप मेरी ओर से सेठश्री को कुशल पूछें।" महामंत्री ने कहा।

बिंबिसार ने मस्तक नमाया।

और सभा विसर्जित हुई। सभी व्यापारी आश्चर्यचकित होते हुए महामंत्री को नमस्कार कर अपने-अपने वाहन की ओर चल पड़े।

सभी व्यापारी अपने-अपने वाहन पर आए थे। बिंबिसार अश्व पर चढ़कर आया था।

सभी व्यापारी परस्पर कहने लगे—"यह छोटी वय का लड़का बड़ा तेजस्वी है···परंतु धनदत्त दो महीने में इतना स्वर्ण एकत्रित नहीं कर पाएगा···। एक ओर वर्षाकाल है तो दूसरी ओर इतना स्वर्ण खरीदने के लिए धनदत्त के पास धन कहां है ?"

दूसरा व्यापारी बोला—"कल संध्या से पूर्व ही यह सौदा छूट जाएगा। प्रतीत होता है कि नये मुनीम ने आवेश में यह सौदा स्वीकार किया है।"

इस प्रकार विविध विचार व्यक्त करते हुए तथा नये मुनीम के साहस पर व्यंग्य कसते हुए सभी व्यापारी अपने-अपने वाहनों में बैठकर विदा हुए।

दिवस का दूसरा प्रहर बीत चुका था। धनदत्त जयकीर्ति की प्रतीक्षा कर रहा था।

बिंबिसार सेठ धनदत्त के भवन पर पहुंचा।

वह अश्व से नीचे उतरा और अश्व को एक सेवक पीछे बाड़े में ले गया।

नंदा ने देख लिया था, इसलिए वह बोली—"बापू ! जयकीर्ति आ गए हैं।"

धनदत्त तत्काल उठा और बाहर आया। जयकीर्ति वहां पहुंच चुका था।

धनदत्त ने पूछा—"देखा राजसभा का कक्ष ?"

"हां, सेठजी···।"

"कितने व्यापारी आये थे ?"

"लगभग साठ व्यापारी होंगे।"

"अच्छा, अच्छा···अब हाथ-पैर धो लो···फिर भोजना पर बैठे-बैठे बातचीत करेंगे।" सेठ ने कहा।

जयकीर्ति अपने कक्ष में गया। कपड़े बदले। हाथ-पैर धोकर वह सेठ के पास आकर भोजन करने बैठा।

सेठ ने पूछा—"राजा को क्या खरीदना था ?"

"स्वर्ण।" जयकीर्ति ने शांतभाव से कहा।

"स्वर्ण ? तब तो राजशेखर सेठ ने यह सौदा स्वीकार किया होगा ? कितना स्वर्ण खरीदना था ?"

"सौ वाह···।"

"अहो, इतना स्वर्ण कौन दे सकता है ? सेठ राजेश्वर की भी इतनी हिम्मत नहीं होगी।"

जयकीर्ति और धनदत्त सेठ यह चर्चा कर रहे थे और उसी समय नंदा और उसकी मौसी की लड़की भोजन के दो थाल लेकर वहां आ पहुंचीं।

जयकीर्ति ने कहा—"सेठजी ! मैंने यह सौदा आपके नाम से स्वीकार कर लिया है।"

यह सुनते ही सेठ के पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई। वे आश्चर्य से जयकीर्ति की ओर देखने लगे।

नंदा भी वहीं खड़ी रह गयी।

जयकीर्ति बोला—"सेठजी ! मैंने यह सौदा दो महीनों में पूरा कर देने का वादा किया है। दस रुपया प्रति तोले का भाव निश्चित किया है और इस अवधि में पूरा करने के उपलक्ष में प्रति तोले के दस कपर्दक अधिक मिलेंगे।"

"अरे जयकीर्ति ! यह तो गजब का साहस किया तुमने ! हम दो सौ तोला स्वर्ण खरीद सकें, इस स्थिति में भी नहीं हैं। सौदा है 'सौ वाह' अर्थात् तीन हजार मन सोने का···वाह। मैं अभी महामंत्री से मिलकर सौदे को···।'

नंदा और उसकी सखी ने दोनों थाल बाजोट पर रखे और वहीं खड़ी रहीं।

बिंबिसार बोला—"सेठजी ! मैंने यह सौदा सोच-समझकर स्वीकार किया है। आपको ज्ञात नहीं है। हमारे पास दस हजार मन स्वर्ण प्राप्त कर सकें उतनी शक्ति है !"

"जयकीर्ति ! क्या आज भांग तो नहीं पी है ?"

"नहीं सेठजी ! मैं पूर्ण स्वस्थ हूं और यथार्थ कह रहा हूं—अभी पहले हम भोजन कर लें। फिर मैं आपकी शक्ति का भान कराऊंगा।"

धनदत्त सेठ विचारमग्न हो गया।

दोनों भोजन करने लगे। जयकीर्ति ने पूर्ण प्रसन्न मन से भोजन किया। आज उसको भूख भी तीव्र रूप से लगी थी···परन्तु चिंतातुर सेठ विशेष खा नहीं सका।

चिंता क्षुधा की शत्रु होती है।

भोजन से निवृत्त होकर दोनों एक कमरे में गये। जयकीर्ति ने कहा—"सेठजी ! कल आपने राख के बोरे बताये थे न ?"

"हां, परन्तु उससे क्या ? जयकीर्ति तुमने मेरे विशाल भवन को देखकर यदि कल्पना की हो कि मैं करोड़पति हूं, तो तुम्हारी यह कल्पना व्यर्थ है। दो महीने में तो क्या बारह वर्ष तक भी मैं इतना स्वर्ण एकत्रित नहीं कर सकता··· तुमने नादानी की है।"

"सेठजी ! आप मेरी बात सुनें···वे बोरे राख के भरे हुए नहीं हैं किंतु स्वर्ण-सर्जक तेजंतुरी से भरे हैं।"

सेठ जयकीर्ति को फटी आंखों से देखने लगा।

जयकीर्ति बोला—"हम प्रतिदिन सौ मन स्वर्ण बनाएंगे···इतना शीशा और पारद तो बाजार से ही मिल जाएगा। तांबा और लोहा भी प्राप्त हो जाएगा।

आप पूर्ण निश्चित रहें। स्वर्ण बनाने की सारी जिम्मेवारी मेरी है। आप मात्र शांति से देखते रहें।"

धनदत्त बोला—"अरे भाई ! वह राख तेजंतुरी है, इसका प्रमाण ?"

"सेठजी ! मैंने तेजंतुरी देखी है। मैं उसका प्रयोग भी जानता हूं। यदि मुझे निश्चय नहीं होता तो मैं यह सौदा कभी स्वीकार नहीं करता।"

धनदत्त सेठ निश्चित हो गया। उसकी उदासी चली गई। उसने जयकीर्ति की पीठ थपथपाई।

कक्ष के बाहर नंदा खड़ी ही थी। वह मुखवास लेकर भीतर आई।

धनदत्त सेठ ने कहा—"नंदा ! जयकीर्ति अपने परिवार का त्राण है।"

जयकीर्त्ति की ओर देखती हुई नंदा वहां से चली गई।

जयकीर्ति ने फिर दामोदर को अपने पास बुला लिया। एक सप्ताह पर्यन्त उसने तीन-तीन हजार मन ताम्र, लोहा, पारद और शीशा खरीद लिया। उसने अज्ञात रूप से प्रयोग प्रारंभ कर दिया।

इस प्रयोग में दामोदर अत्यन्त सहायक बना। बिंबिसार प्रतिदिन सौ, डेढ़ सौ मन स्वर्ण तैयार करने लगा। इस कार्य में नंदा भी सहायक बनी। उसका जयकीर्ति के साथ सतत संपर्क बना रहा।

दोनों के हृदय में प्रेम के अंकुर फूट रहे थे। सतत संपर्क से वे अंकुर अंकुरित होने लगे।

एक महीने में तीन हजार मन से भी अधिक स्वर्ण का निर्माण हो गया।

धनदत्त में नये प्राणों का संचार हुआ। जयकीर्त्ति के प्रति उनकी ममता प्रबल हुई। और पन्द्रह दिन पश्चात् सेठ धनदत्त और जयकीर्ति—दोनों महामंत्री से मिले और 'सौ वाह' स्वर्ण तैयार होने की बात बतायी ! महामंत्री आश्चर्य मुग्ध बन गये। और सारा स्वर्ण राज्य भंडार में पहुंचा दिया गया···राज्य-भंडार से पूरा मूल्य चुका दिया गया।

धनदत्त सेठ का सितारा चमक उठा।

ऐश्वर्य और सम्पत्ति की झिलमिल पूर्ववत् हो गई।

और उज्जयिनी के अन्यान्य बड़े-बड़े व्यापारी धनदत्त सेठ की इस स्थिति से आश्चर्यचकित हुए।

चारों ओर से धनदत्त सेठ को बधाइयां आने लगीं।

आम्रपाली का उत्तर आ चुका था। किंतु बिंबिसार को समय ही नहीं मिल रहा था उसका प्रत्युत्तर देने का।

और सेठ धनदत्त ने अपनी पुत्री की मंगनी जयकीर्ति के साथ कर दी।

जयकीर्ति धन्य हो गया और नंदा भी प्रसन्न हो गयी।

वहां के ज्योतिषी ने आश्विन मास में विवाह का मुहूर्त निकाला।

जो केवल कल्पना-सी लगती थी, वह आज साकार सत्य बन रही थी।

मंगनी हो जाने के पश्चात् जयकीर्ति चाहता था कि वह अपना मूल परिचय धनदत्त सेठ को दे दे···।

५४. हर्ष भी, वेदना भी

विवाह की तिथि निश्चित हो गई। केवल पांच दिन शेष थे। बिंबिसार ने धनदत्त सेठ से कहा—"सेठजी ! आपको एक बात कहनी है, परन्तु संकोचवश कह नहीं सकता।"

"जयकीर्ति ! तू तो मेरे पुत्र से भी अधिक है। संकोच कैसा ! एकादशी को विवाह है। जो कुछ कहना हो, निर्भय होकर कह। परन्तु मैं तेरी एक बात कभी स्वीकार नहीं करूंगा।" सेठ ने कहा।

"कौन-सी बात ?"

"विवाह के पश्चात् तू कहीं अन्यत्र जाकर रहना चाहेगा तो मैं कभी स्वीकार नहीं करुंगा। तुझे तो इसी भवन में रहना होगा।"

"ऐसी बात नहीं है। परन्तु मैंने आपको अपना सही परिचय नहीं दिया है।"

हंसते हुए सेठ ने कहा—"तेरा सही परिचय तो मुझे कभी का मिल चुका है। स्वर्ण का सौदा तेरे भव्य जीवन का महान परिचय है।"

"यह तो आपकी कृपा का ही परिणाम है। मैंने आपको अपना झूठा परिचय दिया था। मैं मगध का वणिक् नहीं हूं।"

"तब ?"

"मैं मगधेश्वर प्रसेनजित का पुत्र युवराज श्रेणिक हूं। किन्तु सभी मुझे बिंबिसार के नाम से जानते हैं। मुझे राजाज्ञा के कारण देश-निष्कासन को भोगना पड़ा है।" बिंबिसार ने कहा।

सेठजी की आंखों में आनन्द उभर आया। वे हर्ष भरे स्वरों में बोले—"युवराज श्रेणिक ! ओह, मेरी नन्दा कितनी भाग्यशालिनी है ! स्वर्ण में सुगंध···!"

"सेठजी ! मेरी एक प्रार्थना भी है।"

"बोल।"

"मेरा यह परिचय सर्वथा गुप्त रहना चाहिए, क्योंकि अभी मैं देश-निष्काशन भोग रहा हूं।"

दो पल मौन रहकर सेठ बोले—"जैसी तेरी इच्छा। मेरे लिए तो तू जयकीर्ति ही बना रहेगा।"

बिंबिसार को परम संतोष हुआ।

बड़े ठाट-बाट के साथ विवाह संपन्न हुआ।

महाराज चंद्रप्रद्योत सिंधु-सौवीर से अभी यहां आए नहीं थे। दस-बारह दिनों में आने की बात थी। परन्तु राज्य के महामंत्री ने धनदत्त सेठ को राज्य की ओर से जो चाहा वह दिया। सभी राज्याधिकारी विवाह में सम्मिलित हुए।

अपनी एकमात्र कन्या के विवाह में सेठ धनदत्त ने बहुत उत्साह दर्शाया। उसने अपनी पुत्री को तथा बिंबिसार को अपार धन-संपत्ति दी।

रात्रि के दूसरे प्रहर की दो घटिकाएं बीत चुकी थीं।

बिंबिसार शयनगृह में गया। आज उसके अन्तर्मन की एक अभिलाषा पूर्ण हुई थी। जिस तरुणी के लिए वह लालायित था, वह उसे अर्धांगिनी के रूप में प्राप्त हो गई थी और आज की रात···।

नंदा अभी शयनगृह में आई नहीं थी। वह अपनी सखियों से घिरी हुई बैठी थी। उनसे कब छुटकारा मिले, यह कहना कठिन था—और अन्तर् में पिउमिलन की आशा उभर रही थी।

पिउमिलन की आशा भी एक मीठी अकुलाहट है।

आशा के गीत हृदय में उठते रहते हैं, परन्तु प्रियतमा के प्रथम दर्शन के समय ये सारे गीत विस्मृत हो जाते हैं।

बिंबिसार शयनगृह में एक सुन्दर विरामासन पर बैठा था। उसने चारों ओर देखा। दीपमालिकाएं जल रही थीं। विशाल पलंग पर फूलों की चादर बिछी हुई थी। एक त्रिपदी पर स्वर्ण का थाल पड़ा था। उसमें पुष्पमालाएं थीं और उन पर गुलाबी रंग का वस्त्र ढका हुआ था।

नंदा के रूप यौवन में बिंबिसार यह भी भूल गया था कि इससे भी भव्य मधु-यामिनी उसने सप्तभूमि प्रासाद में संगीत की मधुर स्वर लहरियों के बीच देवी आम्रपाली के साथ मनाई थी।

परन्तु आज नंदा उसके हृदय पर कब्जा कर बैठी थी। देवी आम्रपाली का पत्र बहुत समय पूर्व ही आ गया था, परन्तु प्रत्युत्तर नहीं दिया जा सका। दो महीने तो स्वर्ण के सौदे में बीत गये और नंदा की स्मृति में मानो समय अत्यंत संक्षिप्त हो गया था।

बिंबिसार बार-बार द्वार की ओर देख रहा था। नंदा को वहां देखने उसकी आंखें प्रतीक्षारत थीं।

जहां अधैर्य होता है वहां समय बहुत दीर्घ बन जाता है।

और उसने देखा, लज्जा के भार से मानो नत हो गई हो, ऐसी नंदा को खींचकर उसके सखियां उसको शयनकक्ष में दाखिल कर गईं और जाते-जाते एक सखी बोली—"श्रीमन्! नारी और फूल दोनों समान होते हैं।"

बिंबिसार ने मुसकराते हुए कहा—"आपकी बात सही है। फूल को कुम्हलाने न देना ही माली की करामात है।"

नंदा वहीं की वहीं खड़ी रह गई। उसकी दृष्टि स्वर्ण-थाल में पड़ी पुष्प-मालाओं पर पड़ी। उसने एक माला उठाकर प्रियतम के गले में डाल दी। बिंबिसार ने भी एक माला नंदा के गले में पहना दी।

इधर बिंबिसार मधुयामिनी मना रहा था और उधर वैशाली के सप्तभूमि प्रासाद में देवी आम्रपाली प्रसूति शय्या में विश्राम कर रही थी। उसके पास ग्यारह दिन की कमल जैसी कोमल कन्या सो रही थी।

आम्रपाली ने आश्विन कृष्ण प्रतिपदा को कन्या को जन्म दिया था। प्रसव सुखपूर्वक हो गया था। परन्तु आम्रपाली का चित्त अत्यन्त खिन्न और व्यथित था, क्योंकि तीन महीनों के इस दीर्घ अन्तराल में स्वामी का कोई संदेश प्राप्त नहीं हुआ था। अपने पत्र का उत्तर भी नहीं मिला था। इसलिए उसके मन में तीव्र अकुलाहट हो रही थी। अनेक विचार आ रहे थे। वे कहां होंगे? उनका स्वास्थ्य तो नहीं बिगड़ गया होगा? आदि-आदि।

आम्रपाली को यह कल्पना थी ही नहीं कि बिंबिसार उसको भूल जाएंगे और अन्य किसी नारी के बंधन में बंध जाएंगे।

आम्रपाली ने अपनी परिचारिका माध्विका को कहा था कि कन्या-जन्म के समाचार स्वामी को आज ही भेज देना है।

माध्विका ने एक संदेशवाहक को तैयार कर दिया। देवी आम्रपाली ने शय्या में बैठे-बैठे ही एक पत्र लिखा और संदेशवाहक को शीघ्र उज्जयिनी जाने के लिए कह दिया।

संदेशवाहक पत्र लेकर वहां से चल पड़ा।

आम्रपाली को यह याद था कि प्रसव के बाद वह पत्र अवश्य पढ़ लेना है जो ज्योतिषी ने लिखकर दिया था। परन्तु माध्विका ने कहा कि प्रसूतिकाल के बीस दिन पूरे होने के पश्चात् ही वह पत्र पढ़ना है, ऐसा ज्योतिषी का मत था।

काल अपनी गति से चलता रहता है। बीस दिन पूरे हो गये।

देवी आम्रपाली ने माध्विका से वह पत्र मंगाया। माध्विका ज्योतिषी का सीलबंद पत्र ले आई।

अत्यन्त आतुरता से आम्रपाली ने सील तोड़ी और उसमें रखे ताड़पत्र को निकाल कर पढ़ना प्रारंभ किया।

ज्यों-ज्यों वह पत्र पढ़ती गई, त्यों-त्यों उसका उषा जैसा चेहरा गंभीर और चिन्ताग्रस्त बनता गया। दूसरी बार पुनः उसने पत्र पढ़ा।

वैशाली के प्रसिद्ध ज्योतिषी ने लिखा था—"महादेवी आम्रपाली दीर्घायु

हों। मैंने आपसे पहले ही कहा था कि कन्या-रत्न की प्राप्ति होगी। यह पत्र पढ़ते समय आपको इसकी सत्यता प्रत्यक्ष हो गई होगी। कन्या अत्यन्त रूपवती, सुन्दर और गुणवती होगी किन्तु इस कन्या का ग्रहयोग इतना विचित्र है कि नब्बे दिन के पश्चात् एकानवें दिन यदि आप अपनी कन्या को देखेंगी तो अंधी हो जाएंगी। यह एक निश्चित बात है। इसलिए सावचेत रहना।

युवराज बिंबिसार उज्जयिनी जाएंगे, इसमें कोई संशय नहीं है और आपकी कन्या के जन्म के दस दिन बाद वे एक सुन्दर तरुणी से विवाह करेंगे। उस विवाह के बाद वे सुखी होंगे। इतना ही नहीं, छह महीने बाद अकस्मात् उनका भाग्य बदलेगा। उनका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है···किन्तु आपको अपने स्वामी का वियोग दीर्घकाल तक सहना पड़ेगा। यह बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती। मैंने गणित के आधार पर आपके सभी प्रश्नों का उत्तर लिखा है।"

पत्र के नीचे ज्योतिषी के हस्ताक्षर और आशीर्वाद भी था।

माध्विका ने देखा, पत्र पढ़ते-पढ़ते देवी अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो गई हैं।

पत्र को पुनः पेटिका में रखकर आम्रपाली ने कहा—"इसको संभाल कर रख दे।"

माध्विका पेटिका लेकर चली गई। जाते-जाते उसने देखा कि आम्रपाली के नयनों के तट पर मोती जैसे आंसू चमक रहे थे।

परन्तु दूसरे ही क्षण आम्रपाली ने स्वस्थ होकर अपने पास सो रही बालिका को उठाकर छाती से लगा लिया।

उसने मन ही मन सोचा, भले ही मुझे अंधी होना पड़े···नष्ट होना पड़े··· परन्तु भाग्य से प्राप्त ऐसे सुन्दर रत्न का त्याग कैसे किया जा सकता है?

आम्रपाली ने पुनः कन्या को छाती से चिपका लिया।

५५. विषमुक्ति और पद्मसुन्दरी का त्याग

आचार्य गोपालस्वामी ने कादंबिनी को विषमुक्त करने के लिए अनेक प्रयोग किए और वे प्रयोग सफल हो गए।

आश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन कादंबिनी पूर्णरूप से विषमुक्त हो गई थी और आचार्य ने हरिण, शशक, हंस, सारस आदि विविध प्राणियों पर उसके चुंबन, दशन आदि से अपने प्रयोगों की प्रामाणिकता भी जान ली थी।

विषमुक्ति के प्रयोगों से कादंबिनी अत्यन्त निर्बल और क्षीण हो गई थी।

उसको देखकर लगता था कि वह असमय ही वृद्धत्व का भोग बन गई है। परन्तु कुछ भी क्यों न हो, कादंबिनी अपने संकल्प में दृढ़ थी। वह चाहती थी कि वह विषमुक्त हो और उसका अभिशप्त जीवन किसी का प्राणलेवा न रहे। यह

व्यथा उसके प्राणों को मथ रही थी। परन्तु आश्विन पूर्णिमा को उस व्यथा का सदा-सदा के लिए अन्त हो गया।

इस प्रयोगकरण में कादंबिनी को अनेक विध कठोर, कठोरतम प्रयोगों से गुजरना पड़ा था···बीस दिन तक केवल 'श्रुतिशीत' जल पर रहना पड़ा था··· अनेक दिनों तक वनस्पतियों के योग से सिद्ध किए गए दूध और मूंग के यूष पर रहना पड़ा था। इस काल में कादंबिनी ने कभी भी अन्यमनस्कता नहीं दिखाई थी। वह जानती थी कि शरीर के रोम-रोम में व्याप्त विष को नष्ट करना सहज-सरल नहीं है।

कादंबिनी को विषमुक्त करने के पश्चात् गोपालस्वामी ने कादंबिनी को एक मास तक आश्रम में ही रहने के लिए कहा, क्योंकि उसमें नये रक्त का संचार करना था, कुम्हलाए यौवन को जीवंत करना था और प्रयोग काल में प्राप्त निर्बलता को मिटाना था।

आचार्य ने कादंबिनी पर बृंहण क्रिया प्रारम्भ की। कादंबिनी ने आचार्य के चरणों में मस्तक नमाकर कहा—"गुरुदेव ! मैं आपका उपकार···।"

बीच में ही आचार्य बोले—"पुत्रि ! उपकार तो तूने किया है···यदि तू यहां नहीं आती तो विषमुक्ति का प्रयोग करने का अवसर नहीं मिलता। विषकन्या का निर्माण करने वाले महान् प्रयोगकार यही मानते हैं कि इस प्रयोग का कोई निवारण नहीं है। परन्तु मैं इस मान्यता का सदा विरोधी रहा हूं। सर्जन होता है तो उसका विसर्जन भी हो सकता है। मेरी इस दृढ़ मान्यता को तेरे से बल मिला है और मेरा विज्ञान सफल हुआ है।

"पुत्रि ! तुझे विषमुक्त करते समय मुझे यह विश्वास था कि तेरा सर्जन किसी परिवार की कुलवधू होने के लिए ही हुआ है। मेरे मन में एक विचार भी आया है। यदि तेरी इच्छा होगी तो मैं तेरा पिता बनकर कर्त्तव्य पूरा करूंगा।"

कादंबिनी कुछ समझी नहीं। वह प्रश्नभरी दृष्टि से आचार्य की ओर देखती रही।

आचार्य ने कहा—"कादंबिनी ! तूने आर्य सुमंत को देखा है ?"

"हां···।"

"आर्य सुमंत एक स्वस्थ तरुण है···सफल वैद्य है···दक्षिणापथ का निवासी है···मेरा मन है कि तू उसकी धर्मपत्नी होने योग्य है।"

कादंबिनी सलज्ज नयनों से नीचे देखती रही।

"छह माह बाद वह अपने देश जाएगा। मुझे उसके प्रति पूर्ण श्रद्धा है। मेरा विश्वास है कि वह एक निष्ठावान् वैद्य बनेगा और दक्षिणापथ में उसको यश और कीर्ति—दोनों प्राप्त होंगे।"

"परन्तु···" अटकते-अटकते कादंबिनी बोली। परन्तु वह और अधिक कुछ भी कह नहीं सकी।

आचार्य बोले—"यदि तेरी इच्छा न हो तो मेरा कोई दबाव नहीं है।"

"बापू! आर्य सुमन्त जैसे श्रेष्ठ पुरुष की सहधर्मिणी होना कोई छोटी बात नहीं है···परन्तु मैं कुल-जाति हीन···।"

आचार्य ने हंसते हुए कहा—"पुत्रि! वैद्य नाड़ी का परीक्षण कर निदान करता है···जाति देखकर निदान नहीं करता। जाति अवास्तविक है। संस्कार ही सर्वश्रेष्ठ होता है। आर्य सुमंत एक पवित्र ब्राह्मण है। उसके मन में जाति-भेद जैसा कुछ नहीं है।"

कादंबिनी ने सहमति सूचक भाव से आचार्य के चरण पकड़ लिये।

आचार्य ने आशीर्वाद दिया। प्रयोग चल ही रहा था। मात्र पन्द्रह दिनों में कादंबिनी का मुरझाया हुआ यौवन खिल उठा···काया पर लालिमा नाचने लगी···।

प्रयोगकाल का एक महीना पूरा हुआ। कादंबिनी नूतन यौवन, नूतन आरोग्य, नूतन चेतना और नूतन भावधारा की स्वामिनी बन गई।

मृगसिर मास के प्रथम सप्ताह में ही आचार्य ने आर्य सुमंत और कादंबिनी का विवाह सम्पन्न करा दिया।

कादंबिनी के हृदय में कुलवधू बनने की जो तमन्ना थी, वह आज साकार हो गई। जीवन में यमराज की छाया के समान आया हुआ अभिशाप शीतल वल्ली के समान आशीर्वाद बन गया।

मगध की राजधानी राजगृही में कादंबिनी की खोज महीनों से चल रही थी···परन्तु उसका कोई पता नहीं लग रहा था।

मगध के महामन्त्री यह चाहते ही थे कि लोग यह बात जान जाएं कि कादंबिनी एक विषकन्या है।

कादंबिनी की खोज में महामन्त्री ने अनेक गुप्तचरों को वैशाली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में भेजा। सभी गुप्तचर निराश होकर लौटे। महामन्त्री और मगधेश्वर को बहुत आश्चर्य हुआ। अन्त में उन्होंने यही माना कि वैशाली के सीमा-रक्षकों ने उसे पकड़ लिया होगा। या तो कादंबिनी ने आत्महत्या कर ली होगी या रक्षकों ने उसका वध कर डाला होगा।

धनंजय राजगृही में आ गया था। एकाध महीना रहकर वह पुनः उज्जयिनी की ओर जाने वाला था।

परन्तु महामन्त्री ने उस पर एक कड़ी जिम्मेवारी डाल दी और उज्जयिनी की ओर किसी दूसरे को भेजने का प्रबन्ध किया।

इसलिए धनंजय को तत्काल तक्षशिला जाने की तैयारी करनी पड़ी।

तक्षशिला विश्वविद्यालय में 'वर्षाकार' और कुमार जीवक का शिक्षा-अभ्यास पूरा हो गया था। उनको यहां ससम्मान लाना था। इसलिए मगधेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में धनंजय को भेजने की बात सोची गई थी।

धनंजय ने युवराज बिंबिसार को जो समाचार कहे थे, उन सभी समाचारों को सुनकर महामन्त्री और मगधेश्वर बहुत सन्तुष्ट हुए थे।

मगधेश्वर ने महामन्त्री से कहा—"अब अवसर है, हमें युवराज को यहां बुला लेना चाहिए। चौदह-पन्द्रह मास बीत गए हैं। अब यहां का कोई भय नहीं है।"

महामन्त्री बोले—"महाराज ! अभी तक यह कल्पना नहीं की जा सकती कि भय निर्मूल हो गया है। सुना है कि त्रैलोक्य सुन्दरी कामरूप देश के एक वैद्य का प्रयोग कर रही है। यदि यह प्रयोग सफल हुआ और महारानी सगर्भा होगी तो युवराज पर मौत की छाया वैसे ही मंडराती रहेगी। कुछ समय और बिताना चाहिए।

मगधेश्वर ने कहा—"आपकी बात सही है। परन्तु महादेवी को सन्तान हो, यह सम्भव नहीं है।"

महामन्त्री ने हंसते हुए कहा—"कृपावतार ! लालसा सबसे बुरी वस्तु है। आपने तो सुना ही होगा कि चालाक स्त्रियांसगर्भा न होने पर भी पुत्र का जन्मोत्सव मना डालती हैं।"

"मैं समझा नहीं।"

"चालाक स्त्रियां गर्भवती होने की बात प्रसारित करती हैं। वास्तव में होता कुछ भी नहीं, किन्तु नौ मास दस दिन तक वैसा ही प्रदर्शन करती हैं और उसके बाद उनके पुत्र ही उत्पन्न होता है।" महामन्त्री ने कहा।

मगधेश्वर तत्काल हंस पड़े और वे हंसते-हंसते ही बोले—"मन्त्रीश्वर ! मुझे प्रतीत होता है कि आप कोई स्वप्न की बात कर रहे हैं। सगर्भा स्त्री का पट कभी छुपा नहीं रह सकता।"

"आपकी बात सही है। गर्भवती स्त्री का पेट कभी छुपा नहीं रहता। परन्तु चालाक स्त्री का पेट छुपा रह जाता है क्योंकि वह अपने पेट पर कुछ भी बांधकर उसे उभरा हुआ बना सकती है।"

यह सुनकर मगधेश्वर आश्चर्य में रह गए। उन्होंने कहा—"आपकी बात ठीक है। श्रेणिक को अभी यहां बुलाना उचित नहीं। किन्तु कामरूप देश के वैद्य ने मुझे स्पष्ट कहा है कि देवी अब गर्भ धारण नहीं कर सकती। यह तो केवल महादेवी के आत्मतोष के लिए मेरे प्रोत्साहन से औषधि प्रयोग कर रहे हैं।"

"यह ठीक है। कोई भी सच्चा वैद्य झूठा आश्वासन नहीं दे सकता। मुझे

भय यह है कि प्रयोग सफल हुआ है, इस बहाने कुछ हो जाए। आप का स्वास्थ्य कैसे है ?" मन्त्रीश्वर ने पूछा।

"जब आप नाग सन्निवेश की ओर गए थे, तब मैं बीमार पड़ा था। अब कुछ ठीक हूं।"

"राजवैद्य क्या कहते हैं ?"

"वे इसे अवस्थाजन्य निर्बलता बताते हैं। मुझे लगता है कि जब जीवक यहां आ जाएगा तब उससे चिकित्सा करानी है। मैंने सुना है कि जीवक ने कायाकल्प का विज्ञान सीखा है और शल्य-चिकित्सा में वह निपुण बना है।"

"हां, महाराज ! मैंने भी जीवक की बहुत प्रशंसा सुनी है। आचार्य आत्रेय को अपने शिष्य जीवक पर गर्व है। वास्तव में जीवक मगध का महान् पुरुष बनेगा। वर्षाकार भी कूटनीति और राजनीति में बेजोड़ बना है।" महामन्त्री ने कहा।

इस चर्चा के एक सप्ताह बाद धनंजय तक्षशिला की ओर रवाना हुआ। वह अपने साथ दो रथ और दस अश्वारोही ले गया था।

परन्तु तक्षशिला की ओर प्रस्थान करने से पूर्व उसने सूरसेन नामक एक विश्वस्त रक्षक को उज्जयिनी की ओर रवाना कर दिया था। सूरसेन के साथ उसने बिंबिसार की पांथशाला का नाम-पता तथा एक पत्र भी लिखकर भेजा था।

इस प्रकार वह कुछ निश्चित होकर तक्षशिला की ओर चल पड़ा था।

इधर आम्रपाली का संदेशवाहक उज्जयिनी में चार दिन रुककर लौट आया था। क्योंकि पांथशाला में अब दामोदर भी नहीं था। और बिंबिसार तो नववधू के प्रेम में इतना खो गया था कि उसे अन्य किसी की स्मृति नहीं होती थी। वह अपनी दुनिया को केवल नंदा में ही देखता था।

संदेशवाहक ने पांथशाला के संचालक से बात-चीत की। पांथशाला के संचालक ने कहा—"जयकीर्ति सेठ कहीं बाहर गए हैं। उनका एक व्यक्ति यहां रहता था, वह भी उन्हीं के साथ गया है। वे किस गांव में गए हैं, यह पता नहीं है।"

इतना होने पर भी संदेशवाहक वहां चार दिन रुका। नगरी बड़ी थी। बेचारा कहां जाए और किससे पूछे ? वह निराश होकर लौट गया।

देवी आम्रपाली के मन में कुछ सन्तोष भी हुआ कि स्वामी का संदेश न मिलने का अन्य कोई कारण नहीं है। केवल एक ही कारण है कि वे कहीं प्रवास में गए हैं।

परन्तु ज्योतिषी की भविष्यवाणी ?

तो फिर युवराज ने अन्य विवाह कर लिया होगा। नहीं, नहीं, यह कभी

नहीं हो सकता। वे ऐसे तो हैं नहीं। तो फिर उनका संदेश क्यों नहीं मिला ? क्या वे कहीं स्थिर होकर गौरवपूर्ण तरीके से मुझे ले जाएंगे ?

ओह ! ज्योतिषी तो बहुत स्पष्ट बताते हैं कि वियोग-काल बहुत दीर्घ होगा। उनके द्वारा कथित भविष्यफल का पूर्वार्द्ध यदि सही निकला है तो उसका उत्तरार्द्ध सही क्यों नहीं होगा ?

इस प्रकार एकाध सप्ताह के बाद उसने एक पत्र लिखा और अपने एक सैनिक के साथ उसे उज्जयिनी रवाना किया।

प्रसूतिकाल के सत्तर दिवस बीत चुके थे। आम्रपाली पूर्ण स्वस्थ थी। उसका आरोग्य इतना सुन्दर और अपूर्व था कि देखने वाले को नहीं लगता था कि आम्रपाली ने किसी सन्तान का प्रसव किया है। ऐसा ही लगता था कि यह पुरुष से सर्वथा असंपृक्त रही है। यह नवोढ़ा है, खिलते यौवन की बहार है।

आम्रपाली ने अपनी सुन्दर कन्या का नाम पद्मसुन्दरी रखा था।

छोटी कन्या कमल जैसी कोमल और सुन्दर थी। वह नयन-मनोहर थी। धायमाता बार-बार कहती—"देवि ! यह कन्या जब षोडशी होगी तब आपसे भी बढ़कर होगी।"

सत्तर दिन बीतने के बाद माध्विका ने देवी से कहा—"महादेवी ! अब मात्र बीस दिन ही रहे हैं। यदि आप नहीं समझेंगी तो परिणाम बुरा होगा। जिस प्रिय कन्या को देखने के लिए अन्तर में प्रेम उमड़ रहा है उस कन्या को आप जीवन भर नहीं देख पाएंगी। इसलिए आप दुराग्रह को छोड़कर ज्योतिषी के कथन के प्रति श्रद्धा रखें।

"माधु ! मैं सब समझती हूं। परन्तु यह केवल मेरी ही सम्पत्ति नहीं है, यह स्वामी की एक मीठी स्मृति भी है।"

"यह सब कुछ है। पर विवेक से काम लेना है। आप कल्पना तो करें···अंधी बन जाने के बाद आप क्या देख पाएंगी ? अपने स्वामी को भी कैसे देख सकेंगी ?"

"तो अब क्या करना चाहिए ?"

"इस प्रसंग में मैंने आपसे कह दिया है। तारिका उत्तम और वफादार है। आप स्वयं उसी के हाथों में बड़ी हुई हैं। कन्या को उसे सौंपकर उसे अन्यत्र भेज दें। तारिका इस कन्या को अपने प्राणों से अधिक समझेगी। आप उसे पर्याप्त धन भी दें, जिससे कि कन्या का लालन-पालन उचित ढंग से हो सके।"

आम्रपाली सोचने लगी।

चार-छह दिन बाद।

आम्रपाली ने स्वयं तारिका को बुला भेजा और उसको अपनी प्रिय कन्या पद्मसुन्दरी के साथ अन्यत्र विदा कर दिया।

तारिका पद्मसुन्दरी को लेकर चंपा नगरी की ओर रवाना हो गई। आम्रपाली का भांडागारिक तारिका के साथ चंपा नगरी गया। वहां एक सुन्दर भवन खरीदा और उसमें जीवनोपयोगी सारी सामग्री की व्यवस्था कर तारिका को सौंप दिया। आते-आते उसने तारिका को देवी आम्रपाली ने कन्या के लिए जो-जो कहा था, वह भी बता दिया।

पुत्री के प्यार में आम्रपाली पति की स्मृति भी नहीं कर पाती थी···परन्तु अब दोनों की स्मृति उसके हृदय को व्यथित करने लगी।

५६. प्रत्युत्तर

जब हृदय व्यथित होता है तब समय भी शत्रु-सा बन जाता है। जब अन्तर में इच्छित सुख का आनन्द होता है तब समय कैसे बीत जाता है उसकी खबर भी नहीं पड़ती।

आम्रपाली के अन्तःकरण को दो व्यथाएं मथ रही थीं—एक तो फूल-सी सुकुमारी कन्या के वियोग से उत्पन्न व्यथा और दूसरी स्वामी के विरह से उत्पन्न व्यथा। समय को बिताना कठिन हो रहा था।

माध्विका देवी को सतत प्रसन्न रखने के लिए प्रयत्नशील थी। संगीतकार भी देवी के कलामय प्राणों को जागृत करने के लिए विविध प्रकार की राग-रागनियां प्रस्तुत कर रहे थे। दुःख को भूलने के लिए मनुष्य को कुछ तो करना ही पड़ता है। देवी आम्रपाली ने उत्तम मैरेय का पान प्रारम्भ किया!

इधर उज्जयिनी में नंदा और बिंबिसार के दिन सुख में बीत रहे थे। दिन के उदय और अस्त का उन्हें पता भी नहीं लगता था। पता लगे भी कैसे? दोनों एक-दूसरे में समाने के लिए उद्यत थे। समय बीतता गया।

कामसेना का मन जयकीर्ति के लिए तड़फ रहा था। इधर उज्जयिनी का तरुण राजा चंद्रप्रद्योत सिंधु-सौवीर की यात्रा सम्पन्न कर उज्जयिनी आ गया था···। कामसेना को राजभवन में जाना पड़ा था।

धनदत्त सेठ का व्यवसाय विस्तृत हो गया था। जहां धन होता है वहां व्यवसाय स्वतः बढता है। उसका ठाट-बाट पूर्ववत् हो गया। वे ही मुनीम··· वही प्रतिष्ठा और वे ही व्यापारी।

व्यापारी धन से भी अधिक प्रतिष्ठा चाहता है। धनदत्त सेठ ने अपने जीवन में कभी अनीति का आश्रय नहीं लिया था। धन आया, गया, पर सेठ ने कभी प्रामाणिकता नहीं छोड़ी। वे मानते थे कि जहां नीतिमत्ता है वहां बरकत है।

बिंबिसार का अपना व्यक्ति दामोदर भी उसी दुकान में काम करने लगा था।

और उसी दिन···।

पांथशाला में आम्रपाली का संदेशवाहक आ पहुंचा। जब बिंबिसार वहां नहीं मिले, तब उसने वहां पूछताछ की पांथशाला के संचालक ने उसको कहा—"जयकीर्ति नाम के एक तरुण सेठ यहां कुछ दिन रुके थे। फिर वे अचानक बाहर गांव चले गए। उनका सेवक दामोदर भी यहीं रहता था। वह भी आजकल नहीं आ रहा है। तुम धनदत्त सेठ की दुकान पर जाओ, दामोदर वहीं काम करता है। उससे मिलने पर सम्भवतः तुमको जयकीर्ति सेठ का अता-पता लग सकेगा।"

उस संदेशवाहक ने धनदत्त सेठ की दुकान पर आकर दामोदर के विषय में पूछा।

दामोदर से मुलाकात होने पर उसने सेठ जयकीर्ति कहां रहते हैं? वे यहां हैं या नहीं, आदि प्रश्न पूछे।

दामोदर बोला—"सेठ जयकीर्ति यहीं हैं। आपको क्या काम है?"

"मुझे एक पत्र देना है और उसका उत्तर भी ले जाना है।" संदेशवाहक ने कहा।

"पत्र साथ में लाए हैं?"

"हां"—यह कहकर संदेशवाहक ने स्वर्ण की नलिका निकाली।

इतने में ही जयकीर्ति भवन से दुकान पर आए। दामोदर ने कहा—"देखो, ये जो आ रहे हैं, वे ही सेठ जयकीर्ति हैं। लाओ, मैं पत्र उनको दे दूं।"

संदेशवाहक ने स्वर्ण की नलिका दामोदर को दे दी।

दामोदर जयकीर्ति के पास जाकर बोला—"वैशाली से एक पत्र लेकर संदेशवाहक आया है। यह रहा पत्र।"

वैशाली का नाम सुनते ही जयकीर्ति चौंका। मानसपटल से स्खलित आम्रपाली की स्मृति हो आई। उसी क्षण स्वस्थ होकर उन्होंने पत्र ले लिया और दामोदर से कहा—"ये दस स्वर्ण मुद्राएं उस संदेशवाहक को दे और उसे पांथशाला में रुकने के लिए भी कह। संध्या तक इस पत्र का उत्तर मिल जाएगा।"

संदेशवाहक दस स्वर्णमुद्राएं लेकर चला गया।

जयकीर्ति ने स्वर्ण की नलिका से पत्र निकाला और पढ़ना प्रारम्भ किया। दुबारा उसे पढ़ा, फिर उसने उसे फाड़ डाला, क्योंकि अभी तक उसने यह किसी से नहीं कहा था कि वह पहले ही आम्रपाली से विवाह कर चुका है। वह इस तथ्य को अज्ञात ही रखना चाहता था। नंदा भी इसको न जान पाए, यही उसकी इच्छा थी।

मध्याह्न में वह एकान्त में बैठ पत्र लिखने लगा। उसने लिखा—

'प्रिये! सबसे पहले मैं क्षमा मांग लेता हूं कि मैंने इन दिनों कोई समाचार

नहीं भेजे। मनुष्य के मन में अनेक तरंगें उठती हैं, किन्तु परिस्थितिवश लाचार होकर उसे उन तरंगों का शमन करना पड़ता है। यहां आने के बाद जैसे तुम मुझे एक क्षण के लिए भी नहीं भूल पायी, वैसे ही मैं भी तुम्हें क्षणभर के लिए विस्मृत नहीं कर सका। जीवन में जो बन्धन दृढ़ होता है, वह कभी टूटता नहीं।

तुम्हारे सारे समाचार ज्ञात हुए। मन प्रसन्न हुआ। कन्या का नाम भी आकर्षक रखा है···पद्मसुन्दरी! ज्योतिषी के कथनानुसार उसका तुम्हें त्याग करना पड़ेगा, यह जानकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ है। मेरी ओर से तुम उसको विशेष प्यार करना।

प्रिये! मैं तुम्हें गौरव से लाने के लिए अनेक प्रयत्न कर रहा हूं। उन प्रयत्नों में अकस्मात् मैं यहां के उदारमना सेठ धनदत्त के सम्पर्क में आया और मुझे उनकी एकाकी कन्या नंदा के साथ, इसी आश्विनी मास में, विवाह करना पड़ा। क्योंकि स्थायी रहने और गौरवपूर्ण स्थिति बनाने के लिए यह आवश्यक था। नंदा स्वभाव से मृदु और विनम्र है। वह तुम्हारी छोटी बहन बनकर साथ में रह सके, इतनी धैर्यशालिनी है। इस समाचार से तुम्हें प्रसन्नता होगी।

प्रिये! मैं तुम्हारी मनोवेदना को जानता हूं। तुम मेरी प्राणाधिक प्रियतमा हो, यह बात मैंने अभी तक नंदा से कहीं नहीं है। पर अब मैं उसे बता दूंगा।

प्रिये! तुम स्वस्थ रहना···आनन्द में रहना···वियोग की वेदना को उभरने मत देना। पद्मसुन्दरी को मेरा विशेष प्यार···मैं यहां के हाथीदांत के प्रसिद्ध कुछ खिलौने भेज रहा हूं। उन्हें तुम बेटी को देना और···।

क्या लिखूं? तुम्हारे पत्र की पंक्तियों में तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब देखता हुआ मैं···बिंबिसार।"

बिंबिसार ने पत्र को पुनः पढ़ा और उसी स्वर्ण नालिका में डालकर स्वयं खिलौने खरीदने बाजार में गया।

खिलौने खरीदकर उन्हें एक करंडक में डाल दामू को कहा—"तू पांथशाला में जा···यह पत्र और करंडक उस संदेशवाहक को दे आ···"

"जी" कहकर दामोदर पांथशाला में गया।

बिंबिसार को यह कल्पना भी नहीं थी कि जिसके लिए इतने सुन्दर खिलौने भेजे हैं, उस कन्या का आम्रपाली ने त्याग कर दिया है।

बिंबिसार को धनंजय की स्मृति हो आई। उसने सोचा, धनंजय तो केवल दो महीने तक ही राजगृह में रुकने वाला था। समय बहुत बीत गया। वह अभी तक क्यों नहीं लौटा? क्या हुआ होगा?

यह विचार करते-करते बिंबिसार दुकान की ओर मुड़ा। उसने देखा, सामने से आठ हृष्ट-पुष्ट स्त्रियां एक पालकी को उठाए आ रही हैं। वह पालकी कामसेना की ही थी। पालकी की जालीदार खिड़की से कामसेना ने जयकीर्ति को

देख लिया। उसने तत्काल अपनी मुख्य परिचारिका, जो साथ-साथ चल रही थी, से कहा—"देख वह रहा कलाकार जयकीर्ति ! तू उसे लेकर भवन पर आना।"

परिचारिका जयकीर्ति के पीछे चली। कुछ दूर जाने पर, बिंबिसार के कानों पर ये मृदु-कोमल स्वर टकराए—"सेठजी ! जयकीर्तिजी !"

जयकीर्ति चौंका। सोचा, कौन है ? नंदा की कोई सखी तो नहीं है ? जयकीर्ति ने मुड़कर देखा। प्रीतिमती तेजी से आ रही थी। निकट आकर वह बोली—"आपको ढूंढ़ने के लिए हमें बहुत परेशान होना पड़ा है। मैं प्रतिदिन पांथशाला में जाती थी। सद्भाग्य से आज आप यहां मिल गए।"

"देवी तो कुशल हैं न ?"

"हां, वे आपको बार-बार याद करती हैं। अभी तो वे महाराजधिराज के प्रासाद में थीं। दो दिन के लिए अपने भवन पर जा रही हैं। आप मेरे साथ चलें।"

"प्रीतिमती ! मेरी ओर से तू देवी से क्षमा मांग लेना। उनसे मिलने की बहुत भावना है पर नौकरी कुछ ऐसी है कि मैं आ-जा नहीं सकता। कुछ दिनों बाद अवश्य मिलूंगा।" बिंबिसार ने बात बनाते हुए कहा।

प्रीतिमती बहुत देर तक अनुरोध करती रही, परंतु बिंबिसार बहाने बनाता रहा। अन्त में निराश होकर प्रीतिमती चली गई और बिंबिसार भी मुक्ति का श्वास ले अपनी दुकान की ओर चल पड़ा।

धनंजय मगध के दो रत्न पुरुषों को लेकर तक्षशिला से लौट रहा था। उसके साथ एक था भारतवर्ष का भावी राजनीतिज्ञ तरुण वर्षकार और दूसरा था, मगधेश्वर का दासी-पुत्र जीवक। इसने आयुर्वेद के सभी अंगों का पारायण कर डाला था। इसकी कीर्ति सर्वत्र फैल चुकी थी। इसकी प्रतीक्षा मगधेश्वर कर रहे थे।

इन दो महान् व्यक्तियों को साथ ले धनंजय साकेत नगरी तक आ गया।

५७. बसन्त की बहार

मनुष्य के मन को प्रसन्न-मुग्ध करने की जितनी शक्ति ऋतुराज बसन्त में है उतनी शक्ति अन्य कोई ऋतु में नहीं है।

पिउमिलन के लिए तरसने वाले हृदय बसंत की रंगभरी छटा में अनेक स्वप्न संजोते हैं।

जिनमें वियोग नहीं, ऐसे नर-नारी की आन्तरिक ऊर्मियां भी रंगीली बन जाती हैं।

जो लोग ढलती अवस्था के तट पर खड़े हैं वे भी बसंतऋतु में क्रीड़ित अपनी क्रीड़ाओं की याद कर आत्म-विभोर हो उठते हैं।

पशु-पक्षी और मानव हृदय को नचाने वाला ऋतुराज पृथ्वी को प्रेरणा दे

रहा था। फाल्गुन की शोभा समस्त पूर्व भारत को अपनी गोद में लिये क्रीड़ा कर रही थी।

वैशाली का जीवन रंगीला ही था। वहां के लिच्छवी युवक मौज-मस्ती मनाने में अग्रसर थे। उससे भी फाल्गुन की मदभरी वायु की तरंगें वैशाली की मस्ती को और उग्र बना रही थीं।

सप्तभूमिप्रासाद में पुनः नृत्य, गीत और यौवन की माधुरी थिरक उठी थी।

जनपदकल्याणी के चित्त पर बिंबिसार के वियोग का अति आघात लगा था। उस आघात को हल्का करने के लिए नृत्यरानी आम्रपाली सप्ताह में दो दिन नृत्य का आयोजन कर लोगों को मत्त-विभोर बना रही थी।

बिंबिसार का प्रत्युत्तर पाकर आम्रपाली अत्यधिक व्यथित हो गई। उसका आघात और गहरा हो गया। मनुष्य का प्रेम जब घायल होता है तब वह या तो टूट जाता है या पागल बन जाता है···।

ज्योतिषी की भविष्यवाणी सही न हो ऐसी श्रद्धा रखने वाली आम्रपाली को जब प्रियतम के प्रत्युत्तर से भी इसका साक्षात् दर्शन हुआ तब उसका मन आहत होकर छटपटाने लगा।

एक सप्ताह तक वह अपने खंड से बाहर नहीं निकली। माध्विका ने देवी को प्रसन्न रखने के अनेक प्रयत्न किए, परन्तु आम्रपाली का चित्त व्यथित ही बना रहा।

आठवें दिन माध्विका ने कहा—"देवि! इस प्रकार निराशा के अंधकार में रहने से आपका आरोग्य जोखिम में पड़ जाएगा।"

"माधु! जिसकी सारी आशाएं जोखिम में पड़ चुकी हैं, उसके आरोग्य की क्या चिंता?"

"देवि! क्षमा करें तो एक बात कहूं।"

"बोल, अब मेरे में रोष की चिनगारी भी शेष नहीं रही है।"

"युवराज श्री ने जो विवाह किया है, उसका कोई महत्त्वपूर्ण प्रयोजन होना चाहिए।"

"माधु! युवराज एक नहीं दस विवाह करें तो भी मुझे कोई रंज नहीं होता···स्वस्थ और सुदृढ़ पुरुष के लिए एक से अधिक पत्नियां गौरवरूप होती हैं। परन्तु विवाह के तत्काल बाद उन्होंने मुझे समाचार नहीं भेजे, मानो मैं कुछ थी ही नहीं। यदि मुझे वे बताते तो मैं और अधिक प्रसन्न होती, न बताने से तो मेरे समर्पण का मूल्य ही नष्ट हो गया···मुझे इसी बात का दुःख है।"

"देवि! समर्पण का मूल्य कभी भी नष्ट नहीं होता। आपके अन्तर में जो प्रेम है वह आपके ही समर्पण का स्वरूप है। चिंता और व्यथा से उस स्वरूप को क्यों विकृत किया जाए?"

"माधु ! पुरुष नारी के समर्पण की भाषा को नहीं समझता। वह उस समर्पण को औपचारिक मात्र मानता है। उसे क्या पता, नारी समर्पण की प्रतिमूर्ति होती है। उसके समर्पण में विनिमय नहीं होता। उसमें माया नहीं होती। उसमें होता है स्वच्छ हृदय का प्रतिबिम्ब। स्वयं के हृदय से उद्भूत होकर उसमें विलीन हो जाता है, जहां उसके विलय का मान होता है। परन्तु पुरुष उसे नहीं पहचानता। वह स्वयं छली होता है और सर्वत्र छल ही देखता है। वाह रे पुरुष··· पामर पुरुष···मायावी पुरुष···!"

"देवि ! यह यथार्थ है। पर कहीं इसका अपवाद भी होता है। युवराजश्री इसके अपवाद हैं। उन्होंने समर्पण के मूल्य को आंका है और आज भी वे इसी समर्पण की स्मृति में जी रहे हैं।"

आम्रपाली ने हंसते-हंसते कहा—"सखि ! जिसको समर्पण के अवमूल्यन से उत्पन्न व्यथा का अनुभव नहीं, उसको कल्पना कहां से आये···कोई बात नहीं, मेरे में व्यथा को पी जाने का साहस भी है।"

"यह साहस तो रखना ही होगा। अगले सप्ताह से ही नृत्य को आरंभ करना होगा। अनेक आगंतुकों से मिलना-भिटना होगा। गणनायक की प्रार्थना तो आपने सुनी ही होगी ?

"हां, जनपदकल्याणी को अपना कार्य करना ही होगा। आम्रपाली मर जाएगी, परन्तु जनपदकल्याणी जीवित ही रहेगी।" आम्रपाली ने कहा।

और दूसरे ही सप्ताह उसके चरण नृत्यभूमि पर थिरकने लगे।

लोग तो देखकर अवाक् रह गए थे। वही यौवन, वही छटा और वही रूप ! वही तेज रेखा और वही मस्ती !

अनेक लोगों को तो यही प्रतीत हुआ कि देवी आम्रपाली माता बनी ही नहीं। यदि वह माता बनी होती तो शरीर का यह सौष्ठव कदापि नहीं रहता।

बिंबिसार का प्रत्युत्तर प्राप्त हुए एकाध महीना बीत गया, किन्तु आम्रपाली ने पुनः पत्र-लेखन का साहस नहीं किया। उसके मन में बार-बार इच्छा उभरती, परन्तु नारी-सुलभ अभिमान की विजय होती और उसकी वह भावना दब जाती।

आम्रपाली ने मैरेय पीना प्रारंभ किया था। वह केवल रात्रि में ही मैरेय पीती, क्योंकि मैरेय के नशे में प्रियतम के वियोग तथा अन्य कारणों से उत्पन्न व्यथा विस्मृत हो जाती।

परन्तु मैरेय का नशा व्यथा को बढ़ाता है। जिन सुखद स्मरणों से वह दूर रहना चाहती थी, वे सारे स्मरण उस सुखद अवस्था में उभरते और वह आत्मविभोर होकर निद्राधीन बन जाती।

माध्विका को यह भय था कि देवी युवराजश्री को भूलकर किसी अन्य पुरुष को अपना यौवन समर्पित न कर दें ? यह भय स्वाभाविक भी था। परन्तु

आम्रपाली असावधान नहीं थी। अपने समर्पण को कहीं दाग लगे, ऐसा वह कभी नहीं चाहती थी। वह समझती थी कि जो नारी भोग की ज्वालाओं में झंझापात करती है, वह नष्ट हो जाती है। नारी एक ऐसा फूल है जिसे कुम्हलाते समय नहीं लगता। नारी का गौरव उसके सतीत्व में ही है।

यह तथ्य देवी आम्रपाली के हृदय का गुप्त धन था।

इतना होने पर भी उसने जीवन में बहुत परिवर्तन कर दिया था।

नृत्य, रंग, आनन्द, मैरेय, हास्य, परिहास, मस्ती—इन सभी उदात्त तत्त्वों से वह भरी-पूरी थी।

परन्तु माध्विका को यह कल्पना भी नहीं होती थी कि नारी के हृदय में स्थित अभिमान इस प्रकार जागृत हो उठता है।

मात्र एक सप्ताह की व्यथा भोगकर वह आम्रपाली मदभरी अलबेली बन गई थी।

लोगों की दृष्टि पंगु और स्मृति बहुत चंचल होती है। लोगों को यह याद भी नहीं रहा कि मगध का एक युवराज देवी के साथ रहा था। वह आम्रपाली के रूप-यौवन का स्वामी बनकर वैशाली की प्रतिष्ठा को कलंकित कर गया था।

धनंजय बहुत पहले ही राजगृही पहुंच जाता किन्तु जीवक को साकेत नगरी में एक महीने तक रुकना पड़ा। वर्षाकार भी साकेत में रचपच गया। जीवक ने अनेक प्रयोगों के पश्चात् एक अंतर्दर्शक पाषाण की खोज की थी। वह आत्रेय की कृपा से दो अन्तर्दर्शक पाषाण प्राप्त कर सका था। एक पत्थर विशाल था और दूसरा मात्र एक वितस्ती परिमाण का था। बड़ा पाषाण उसने तक्षशिला की प्रयोगशाला में रखा था और छोटा पाषाण अपने साथ रखा था।

वे सब साकेत की एक पांथशाला में ठहरे थे। पांथशाला के रक्षक की पचास वर्ष की पत्नी के गर्भाशय में अर्बुद की भयंकर पीड़ा रहती थी। रक्षक गरीब था, फिर भी पत्नी को मौत से बचाने के लिए वह भरसक प्रयत्न कर रहा था। परन्तु वह पीड़ा शांत नहीं हो रही थी। वह रक्षक अपनी पत्नी की असह्य पीड़ा को न देख सकने के कारण विक्षिप्त-सा हो गया था। जीवन-साथी इस प्रकार बिछुड़ जाए तो फिर जीवित कैसे रहा जा सकता है? यह प्रश्न उसके हृदय को मथ रहा था।

जिस रात्रि में पांथशाला के एक कक्ष में जीवक और वर्षाकार आराम की नींद सो रहे थे, उसी रात्रि में उस रक्षक की पत्नी की वेदनाभरी चीखें सारे वातावरण को प्रकंपित करने लगी थीं। कुमार जीवक इन चीखों से जाग उठा और उसने दूसरे कक्ष में सो रहे धनंजय को जगाकर पूछा कि ये चीखें कहां से आ रही हैं, इसकी खोज की जाए। दोनों नीचे गए और रक्षक की कोठरी में पहुंचे। रक्षक की प्रौढ़ पत्नी की चीखों से जीवक को रोग की कल्पना हो गई। उसने

उसका नाड़ी-परीक्षण किया। उसकी कल्पना सही निकली। उसने तत्काल उस स्त्री को निद्रा लाने वाली एक पुड़िया दे दी।

दूसरे दिन प्रातः जीवक अपने अन्तर्दर्शक पाषाण के द्वारा रुग्ण स्त्री के अर्बुद की परिस्थिति देखी और रक्षक से कहा—"भाई! तेरी पत्नी बच जाएगी परंतु इसकी उपचार-विधि अत्यन्त कठिन है। इस नगरी में कोई शल्य-चिकित्सक हो तो बुला ला, मैं उसको सब कुछ समझा दूंगा।"

रक्षक रो पड़ा। नगरी में ऐसा कोई चिकित्सक नहीं है, यह कहते हुए वह बोला—"भगवन्! प्रभु ने आपको मेरी पत्नी के कल्याण के लिए भेजा है। आप ही कुछ उपाय करें। मैं तो अत्यन्त निर्धन हूं।"

वैद्य के रक्त में करुणा, दया और ममता सहजरूप से होती ही है। जिस वैद्य में इनका अभाव होता है, वह वैद्य किसी का कल्याण नहीं कर सकता। जीवक के हृदय की करुणा जाग उठी और वह वहीं रुक गया। अग्निकर्म के प्रयोगों से रुग्णा के अर्बुद को मिटाने में एक मास लगा। इसलिए सभी को साकेत में एक मास रहना पड़ा।

रुग्णा बच गई। अर्बुद नष्ट हुआ और गरीब का सथवाड़ा आधी यात्रा में टूट जाने से बच गया।

धनंजय दोनों रत्नों को लेकर फाल्गुन के प्रथम सप्ताह में राजगृही पहुंचा।

परन्तु राजगृही में तो गहरी उदासी छा रही थी। मगधेश्वर प्रसेनजित पन्द्रह दिनों से शय्याधीन बन गए थे। राजवैद्य तथा अन्यान्य वैद्य रोग का निवारण नहीं कर पा रहे थे।

रानी त्रैलोक्यसुन्दरी भी घबरा गई थी। संतान-प्राप्ति की उसकी तीव्र लालसा अधूरी ही रह गई थी। उसकी प्रिय सखी श्यामांगी की सलाह भी क्रियान्वित नहीं हो सकी थी। उसने कृत्रिम रूप से सगर्भा बनने की सलाह दी थी और अंतिम उपाय के रूप में इस पर अमल करने का निश्चिय भी किया था। परन्तु महाराजा बीमार हो गये। त्रैलोक्यसुन्दरी के लिए अब एक ही उपाय शेष रहा था। किसी भी प्रयत्न से महाराज बीमारी से मुक्त हों और येन-केन-प्रकारेण एक ही बार उसके साथ सहवास करें और फिर सगर्भा होने की बात प्रचारित कर दी जाए।

इसलिए रानी त्रैलोक्यसुन्दरी महाराज को रोगमुक्त करने के लिए आकाश-पाताल को एक कर रही थी और उसी समय जीवक वहां आ पहुंचा।

महामंत्री ने दोनों रत्नों के स्वागत की बहुत तैयारियां की थीं। परन्तु जीवक को ज्ञात होते ही वह स्वागत के कार्यक्रम से खिसक कर अपने पिता से मिलने निकल पड़ा।

एक दासी द्वारा उत्पन्न अपने पुत्र को आते देख मगधेश्वर की आंखों में आशा की किरण उभर आई।

जीवक मगधेश्वर के चरणों में नत हो गया···मगधेश्वर ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कुशलक्षेम पूछा।

फिर जीवक ने पिताश्री के शरीर का परीक्षण किया। रोग का निर्णय उसने मन में कर लिया था, और वह विचारमग्न होकर स्थिर-दृष्टि से पिताश्री की काया को देखने लगा।

पास में बैठी रानी त्रैलोक्यसुन्दरी ने कहा—"बेटा! मगधेश्वर तेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। तुझे क्या लगता है?"

जीवक माता को नमस्कार करना भूल गया था। वह तत्काल खड़ा होकर विनयभरे स्वरों में बोला—"महादेवि! क्षमा करें। आप यहां हैं, यह मेरे ख्याल में नहीं रहा। मेरा प्रणाम स्वीकार हो।"

रानी ने जीवक के मस्तक पर हाथ रखकर पूछा—"जीवक! महाराज को···।"

बीच में ही जीवक बोला—"महादेवि! आप निश्चिन्त रहें। भय का कोई कारण नहीं है। वृद्ध अवस्था में रोग तीव्र होता है। एकाध महीने में मगधेश्वर ठीक हो जाएंगे।"

ऐसे आश्वासन से रानी बहुत प्रसन्न हुई।

जीवक को एक विशेष खंड में ठहराया था। वह स्नान आदि से निवृत्त होकर भोजन करने बैठा। उसके मन से मगधेश्वर की बीमारी का विचार निकल नहीं रहा था।

भोजन से निवृत्त होकर वह विश्राम करने बैठा। इतने में ही एक दास ने आकर कहा—"कुमार श्री! महामंत्री आए हैं।"

"कहां हैं?"

"नीचे के कक्ष में।"

"चल, मैं वहीं आ रहा हूं।" कहकर जीवक नीचे के खण्ड में गया।

जीवक को देखकर महामंत्री खड़े हो गए। जीवक ने उनके चरणों में प्रणाम किया। कुशल इच्छा के बाद महामंत्री ने पूछा—"कुमार! मगधेश्वर की कैसी हालत है?"

"मेरा अभिप्राय बहुत दुःखद है।" जीवक ने कहा।

"मतलब!"

"मगधेश्वर की यह अंतिम बीमारी है। यह उनकी अंतिम शय्या है।"

"कुमार! आप यह क्या कहते हैं? राजवैद्य तो कहते थे कि मगधेश्वर एकाध महीने में स्वस्थ हो जाएंगे।"

"राजवैद्य ने मगधेश्वर का परीक्षण किया है, वृद्ध पुरुष का नहीं। मैंने अपने पिता या मगधेश्वर का परीक्षण नहीं किया है, एक वृद्ध पुरुष का परीक्षण किया है।" जीवक ने कहा।

"रोग क्या है ?"

"बुढ़ापे का स्वभाव और जीवनीशक्ति का अभाव। और कोई रोग नहीं है। रोग अवश्य दूर हो सकता है, परन्तु कामाभिमुख मनुष्य जब जरा से आक्रान्त होता है तब रोग स्वाभाविक बन जाता है। उसका प्रतिकार नहीं हो सकता।"

महामंत्री ने दो क्षण मौन रहकर कहा—"मैंने सुना है कि आप कायाकल्प के विज्ञान में निष्णात बने हैं।"

"कायाकल्प का प्रयोग वहीं सफल होता है जहां ब्रह्मचर्य और सदाचार का जीवन होता है। मगधेश्वर में इसका अभाव है। परन्तु···।"

"क्या ?"

"इन पर कोई औषधि असर नहीं करेगी।"

"कुमार ! चार-छह महीनों तक कोई बाधा न आए ऐसा···।"

बीच में ही कुमार ने कहा—"कल से मैं इन पर एक प्रयोग करूंगा। उससे एक वर्ष तक शय्या में स्वस्थ रह सकेंगे।"

"इतना हो जाए तो भी अच्छा। मुझे आज ही श्रेणिक को बुलाने धनंजय को भेजना पड़ेगा।" कहकर मंत्रीश्वर विचार में मग्न हो गए।

५८. राजगृही का निमन्त्रण

कुमार जीवक की बात सुनकर महामंत्री ने श्रेणिक को बुला लेने का मन-ही-मन निर्णय कर डाला और वे इस विषय की चर्चा करने तत्काल मगधेश्वर के पास गए। मगधेश्वर के पास रानी त्रैलोक्यसुन्दरी आठों प्रहर बैठी ही रहती थी। परन्तु महामंत्री की प्रार्थना पर उसे खंड से बाहर जाना पड़ा। खंड के बाहर जाने के पश्चात् रानी के मन में संशय तो जागा कि महामंत्री मेरे से गुप्त ऐसी क्या बात करना चाहते हैं ? रानी के मन में एक श्रद्धा तो थी कि मगधेश्वर से सारी बात जानी जा सकेगी।

महामंत्री ने शान्त भाव से मगधेश्वर से कहा—"कृपावतार ! अब युवराज श्रेणिक को बुला लेना ही उचित लगता है। आपका रोग कब क्या परिणाम लाये, कुछ कहा नहीं जा सकता। जीवक समर्थ वैद्य हैं, पर वे भी अवस्था के प्रभाव को दूर कर पाएंगे या नहीं, यह संशय है। आप आज्ञा करें तो मैं युवराज को बुला लूं।"

"मुझे भी यह विचार बार-बार आता रहा है। श्रेणिक को शीघ्र बुला लो।

और पत्र मेरे नाम से ही लिखना। वह शीघ्र आ जाएगा। उसके पास रहने से मुझे अधिक धैर्य रहेगा।"

महामंत्री ने महाराजा का मन जान लिया और वे तत्काल वहां से चल पड़े।

दूसरे दिन महामंत्री ने धनंजय को उज्जयिनी की ओर रवाना कर दिया। उसके साथ दो रथ, दस-बारह रक्षक, दास-दासी थे।

उज्जयिनी में रहते-रहते बिंबिसार अपने पूर्व जीवन को प्रायः भूल चुका था। नंदा का प्रेम ही जीवन का सर्वस्व है, ऐसा मानकर वह चल रहा था। नंदा बिंबिसार को बहुत प्रेम करती और क्षण भर के लिए भी अलग करना नहीं चाहती थी। दो महीनों से वह गर्भवती भी हो गई थी। सगर्भावस्था के प्राथमिक लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे थे। रोज प्रातःकाल उसे एक बार वमन होता··· सिर भी भारी रहता।

माता-पिता को जब यह ज्ञात हुआ कि नंदा सगर्भा है तो उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई और नगरी के उत्तम वैद्य से विचार-विमर्श भी किया।

नंदा का चित्त भी मातृत्व की आशा से पुलकित बन गया···बिंबिसार भी हर्षित हुआ।

मनुष्य का मन चंचल है या स्वार्थी, यह समझना कठिन होता है। उज्जयिनी में आने के बाद बिंबिसार के मन में एक आशा उभरी थी···कुछ पुरुषार्थ कर आराम से रहने योग्य एक स्थान प्राप्त करना और आम्रपाली को बुलाकर उसके साथ जीवन की माधुरी का रसास्वादन करना।

स्थान प्राप्त होने से पूर्व ही बिंबिसार का मन और हृदय दोनों परवश हो गए। नंदा की मूर्ति ने आशा को खंड-खंड कर डाला और नंदा के साथ विवाह कर लेने पर बिंबिसार को मगध के सिंहासन की भी स्मृति नहीं रही। वृद्ध पिता क्या करते होंगे ? धनंजय लौट कर क्यों नहीं आया ? आदि-आदि प्रश्न भूतकाल की परतों के नीचे दब गए थे।

जीवन की पृष्ठभूमि पर अंकित होने वाली पहली प्रीत कभी मिटती नहीं। कभी वह दबती है और कभी वह हृदय को मथकर उभर आती है।

बिंबिसार के हृदय पर अंकित होने वाली पहली प्रीत मिटी नहीं थी। मिट भी नहीं सकती। फिर भी आज वह आम्रपाली के साथ बिताए आनन्दमयी दिनों को विस्मृत कर गया था। उसे यह भी याद नहीं रहा कि उस रात्रि में आकाश मेघाच्छन्न था। आम्रपाली और वह दोनों सप्तभूमि प्रासाद की गवाक्ष में बैठे थे।

अंधेरी रात थी। बिंबिसार वीणा बजा रहा था। आम्रपाली पुलकित नयनों से स्वामी को निहार रही थी। वीणा की तरंगें उल्लास बिखेर रही थीं।

माध्विका दूर बैठी थी। गीत पूरा हुआ। वीणा पर क्रीड़ा करने वाली बिंबिसार की अंगुलियों ने विराम लिया और पति में तन्मय बनी हुई आम्रपाली स्वामी से लिपट गई थी। माध्विका ने मुंह मोड़ लिया था। आम्रपाली ने प्रश्न किया था—"प्रिय! मेरी आशाओं के आप ही आश्रय हैं। कभी-कभी मन में विचार आता है कि यदि कभी आश्रय दूर हो जाएगा तो मेरा क्या होगा?"

बिंबिसार ने माध्विका बैठी है, ऐसा संकेत करते हुए कहा था—"पाली! क्षत्रिय का पुत्र हूं। कुछ पुरुषार्थ करने के लिए जाना पड़े तो वियुक्त भी होना पड़ेगा। परन्तु तुम्हारी ये मधुर स्मृतियां मेरे स्मृति-पटल से कभी विचलित नहीं होंगी। तुम्हारा आश्रय सदा तुम्हारा ही रहेगा। जो यह बन्धन जन्म-जन्मान्तर का है तो अगले जन्म में भी हम विलग नहीं होंगे···।"

इस कथन पर अभी काल के विशेष बादल नहीं छाए थे। केवल एक चातुर्मास ही बीता था और बिंबिसार सब कुछ भूलकर नंदा को सर्वस्व दे बैठा था।

बहुत बार स्मृतियां दब जाती हैं तो बहुत बार मन पलट जाता है।

विगत एकाध महीने से बिंबिसार अवशिष्ट तेजंतुरी से स्वर्ण के निर्माण में लग गया था। धनदत्त सेठ नहीं चाहते थे, परन्तु बिंबिसार का आग्रह था कि स्वर्ण होगा तो काम ही आएगा।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी। धनंजय उज्जयिनी आ पहुंचा और उसी पांथशाला में गया जहां उसने युवराजश्री को छोड़ा था।

पूछताछ करने पर उसे ज्ञात हुआ कि जयकीर्ति को यहां से गए बहुत समय बीत गया है और दामोदर धनदत्त सेठ के यहां नौकरी करता है। जयकीर्ति के विषय में वह अधिक जानता है।

धनदत्त सेठ की दुकान बहुत प्रसिद्ध हो चुकी थी और स्वर्ण के सौदे के पश्चात् सेठ का ठाट-बाट पूर्ववत् हो गया था। धनंजय सरलता से वहां पहुंच गया और गद्दी पर बैठे वृद्ध सेठ को नमस्कार कर बोला—"धनदत्त सेठ की दुकान···।"

"मेरा नाम है धनदत्त···आओ···क्या काम है?"

"आपके यहां दामोदर नाम का एक व्यक्ति रहता है?"

"हां, दामू से ही काम है।"

"हां, आप कृपा कर उसे···।"

तत्काल सेठ ने दूसरे सेवक से कहा—"जा, दामू को बुला ला।"

बिंबिसार और दामोदर—दोनों भवन के अन्तरगृह में स्वर्ण का निर्माण कर रहे थे।

अर्धघटिका के बाद दामोदर आया। धनंजय ने उसको तत्काल पहचान लिया। दामोदर निकट आया। धनंजय ने पूछा—"मुझे पहचाना नहीं?"

"अरे, आपको कहीं देखा तो है, पर पूरा पहचान नहीं सका।"

"भोले भाई ! जयकीर्ति सेठ के साथ मैंने ही तुझे रखा था।"

"ओह ! क्षमा करें। आप कब आए ?"

"आज ही। जयकीर्ति सेठ कहां हैं ?"

"यहीं हैं, और इस धनदत्त सेठ के दामाद हैं।"

"दामाद ?" धनंजय के आश्चर्य का पार नहीं रहा।

"हां, अभी आश्विन मास में सेठ की एकाकी पुत्री के साथ विवाह हुआ है। क्या आप कुछ नहीं जानते ?"

"मुझे कैसे पता चले ? मैं तो बहुत दूर प्रवास पर निकल गया था। अब वे कहां हैं ?"

"यहीं हैं। मेरे साथ चलें, अभी मिला देता हूं।"

धनंजय दामोदर के साथ चला गया। एक बड़े कमरे में स्वर्ण निर्माण की क्रिया चल रही थी। जयकीर्ति खड़े-खड़े ध्यान रख रहे थे। इतने में दामोदर भीतर आकर बोला—"श्रीमन् ! पाटलिपुत्र से आपके मित्र धनंजय आए हैं ?"

"धनंजय ? कहां है ?"

"बाहर खड़े हैं।"

"अच्छा, तू यहीं रह। मैं लौट आता हूं।" कहकर बिंबिसार अपने प्रिय मित्र से मिलने तत्काल बाहर आया।

बिंबिसार को देखते ही धनंजय निकट आया और युवराज के चरणों में नत हो गया। बिंबिसार ने धनंजय को खड़ा करते हुए कहा—"अरे मित्र ! यह क्या ? तुम तो दो महीने के भीतर-भीतर आने वाले थे। इतना विलम्ब···?"

"मुझे आर्य वर्षाकार और कुमार जीवक को लाने तक्षशिला जाना पड़ा था।"

"ओह ! दोनों कुशल तो हैं न ?"

"हां, महाराज ! परन्तु एक विपत्ति खड़ी हो गई है, इसलिए मैं···"

"विपत्ति ?"

"हां, परन्तु यह बात हम एकान्त में करेंगे। मगधेश्वर का पत्र भी है और मुझे भी कुछ कहना है। आप कहें तो पांथशाला में···?" धनंजय ने कहा।

"चल, मैं अभी पहुंचता हूं, पांथशाला में···पिताजी का सन्देश···?"

"पांथशाला में ही है। मैं तो केवल आपको ढूंढने यहां आ गया था।"

बिंबिसार ने पांथशाला में जाने के लिए रथ तैयार करवाया। धनंजय और बिंबिसार—दोनों रथ में बैठकर पांथशाला में आए। दोनों एक खंड में गए। धनंजय ने महामंत्री का सीलबंद पत्र बिंबिसार को देते हुए कहा—"महाराज ! मगधेश्वर बहुत बीमार हैं। महामंत्री ने मुझे एक गुप्त बात कहने के लिए कहा है।"

"बोल।"

"पहले आप पत्र पढ़ लें।" धनंजय ने कहा।

बिंबिसार ने स्वर्ण की नलिका की सील तोड़ कर पत्र निकाला और पूर्ण स्वस्थ चित्त से उसे पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते बिंबिसार के चेहरे पर भावों का उतार-चढ़ाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था। धनंजय यह सब देख रहा था।

पत्र महामंत्री ने मगधेश्वर की ओर से लिखा था। उसमें मगधेश्वर की बीमारी का विवरण था और साथ ही साथ त्वरा से राजगृही आने की बात थी। महामंत्री ने यह भी लिखा था कि मगधेश्वर की बीमारी कब कैसा रूप धारण कर ले, कुछ नहीं कहा जा सकता। साथ-ही-साथ यह भी लिखा—"आपके देश-निष्कासन की पृष्ठभूमि में मगधेश्वर का क्या आशय था, यह धनंजय से आप जान लें। पत्र के प्राप्त होते ही, एक दिन का भी विलम्ब किए बिना आप राजगृही आ जाएं। मगध राज्य की बागडोर आप संभालें, ऐसी मगधेश्वर की इच्छा है।"

बिंबिसार ने पत्र को दो-चार बार पढ़ा और विचारमग्न हो गया। धनंजय बोला—"महाराज! आपके देश-निष्कासन के पीछे आपकी रक्षा का हेतु ही मुख्य था और यह बात आज तक आपसे अज्ञात रखी गई थी।"

"रक्षा का हेतु?"

"हां, महाराज! आपको तो याद ही होगा कि जब वीणा-वादन का अभ्यास पूरा कर लौटे थे तब आपका महल अचानक जल उठा था?"

"हां, इसीलिए तो मुझे मगध का त्याग करना पड़ा।"

"महल जलाने के पीछे रानी त्रैलोक्यसुन्दरी का षड्यंत्र था। वे अपने एकाकी पुत्र को मगधेश्वर बनाना चाहती थीं। परन्तु वह अभी अल्प वयस्क था, इसलिए रानी अन्यान्य सभी हकदारों का सफाया कराने लगीं। आपको भी इसी प्रकार नष्ट करने वाली थीं। परन्तु आपके प्रति मगधेश्वर की अटूट ममता थी। वे आपको ही अपना उत्तराधिकार देना चाहते थे। वे महारानी के षड्यंत्र से आपको बचाने के लिए आपको इस बहाने निर्वासित किया।

ऐसा करने से ही आप महादेवी के षड्यंत्र के शिकार नहीं हुए। आपकी सुरक्षा के लिए मगधेश्वर ने मुझको आपके साथ भेजा था।"

बिंबिसार अवाक् बनकर धनंजय की ओर देख रहा था। उसके मन में अनेक प्रश्न उभर रहे थे। परन्तु धनंजय ने वहां की सारी बातें बतायीं। उसने दुर्दम की मृत्यु-कथा अथ से इति तक सुनाई और बताया कि महामंत्री ने महादेवी की आशा को कैसे तोड़ डाला तथा वैशाली में जो मौतें हुई थीं, वह सारा परिणाम भी महामंत्री के तन्त्र का ही था, आदि वृत्तान्त सुनाया।

"धनंजय! देश-निष्कासन का कारण क्या तुझे पहले से ही ज्ञात था?"

"हां, महाराज !"

"फिर भी तूने मुझे इसका संकेत नहीं दिया, क्यों ?"

"महाराज ! मगध के कल्याण के लिए ही मुझे यह सब गुप्त रखना पड़ा। मैं जानता हूं कि समय के परिपाक के पहले कहा हुआ रहस्य अनर्थ घटित कर सकता है। मुख्य जो हेतु था वह केवल मगधेश्वर, महामंत्री और मैं—ये तीन व्यक्ति ही जानते थे।"

बिंबिसार ने खड़े होकर धनंजय के कंधों पर हाथ रखकर कहा—"धनंजय ! तेरी यह वफादारी मुझे सदा याद रहेगी। परन्तु···?"

"क्या महाराज ?"

"यहां से प्रस्थान करना बहुत कठिन है। धनदत्त सेठ सम्भव है आज्ञा दे दें, परन्तु···"

बीच में ही धनंजय बोल उठा—"स्वामी ! मार्ग में आपने मुझे कहा था कि देवी नंदा अपूर्व बुद्धिमती है, और वह अवश्य प्रस्थान के लिए सहमति दे देगी। परन्तु यदि वे प्रेमवश आज्ञा न दें तो भी आपको अपना कर्त्तव्य नहीं भूलना चाहिए। वहां रानी त्रैलोक्यसुन्दरी एक दूसरा षड्यंत्र भी कर रही हैं।"

"मैं समझा नहीं।"

"महारानी गर्भवती होने के लिए औषधोपचार कर रही हैं। वह अपने को गर्भवती घोषित करें, उससे पूर्व ही मगधेश्वर शय्या-परवश हो गए और रानी की आशा वैसी की वैसी रह गई।"

"अच्छा", कहकर बिंबिसार ने पत्र पुनः स्वर्ण नलिका में रखा और कहा, "धनंजय ! तू यहीं रह। हम कल या परसों यहां से प्रस्थान कर सकेंगे। मुझे सेठजी को समझाना पड़ेगा। नंदा तो अवश्य ही समझ जाएगी।"

बिंबिसार कुछ देर वहां रुककर रथ में बैठ भवन की ओर चला गया। उसके प्राणों में पिता के प्रति भक्ति थी···ऐसी अवस्था में पिता की सेवा करना परम कर्त्तव्य है, ऐसा वह मानता था।

५९. प्रेम और कर्तव्य

भवन में आने के बाद बिंबिसार पत्नी से मिलने न जाकर सीधा दुकान पर गया और धनदत्त सेठ से बोला—"सेठजी आपसे कुछ काम है।"

धनदत्त सेठ को आश्चर्य हुआ। इतने दिनों में बिंबिसार ने कभी भी इस प्रकार गम्भीर बनकर बात नहीं की थी।

सेठ ने पूछा—"क्या स्वर्ण-निर्माण में कोई कठिनाई आयी है ?"

"नहीं। परन्तु आज राजगृही से मेरे नाम पर एक विशेष सन्देश आया है। मेरे पिताश्री बहुत बीमार हैं और मुझे तत्काल जाना पड़े, ऐसा प्रतीत होता है।

आप यह पढ़ें, कहकर बिंबिसार ने नलिका से पत्र निकाल कर सेठ को दिया। सेठ ने मगध के महामंत्री का पत्र पढ़ा। उन्हें भी ऐसा ही लगा कि बिंबिसार को जाना ही चाहिए।"

उन्होंने कहा—"ठीक है। ऐसे प्रसंग पर जाना कर्त्तव्य है। विपत्तिकाल में यदि सन्तान माता-पिता का सहयोगी न बने तो वह नपुंसकता है। परन्तु आप पुनः कब लौटेंगे?"

"यह तो वहां की परिस्थिति पर निर्भर करता है। पिताजी का जब स्वास्थ्य सुधरने लगेगा तब शीघ्र ही लौट आऊंगा।" बिंबिसार ने कहा।

"ठीक है। परन्तु नंदा को आपके साथ भेजना थोड़ा···।"

"मैं स्वयं समझता हूं। इस अवस्था में उसका लम्बे प्रवास पर जाना उचित नहीं है। इसलिए आपका कथन सही है। आपकी पुत्री यहीं रहे, यही उचित है।" बिंबिसार ने कहा।

"जाने का कब निश्चय किया है?" धनदत्त सेठ ने पूछा।

"आप आज्ञा दें तो कल ही चला जाऊं।"

दो क्षण सोचकर धनदत्त सेठ ने कहा—"कल का दिन शुभ नहीं है, परसों आप प्रस्थान कर सकते हैं।"

"अच्छा···।"

"कल प्रवास की व्यवस्था भी हो जाएगी।"

"और कोई व्यवस्था अपेक्षित नहीं है। राजगृही से दो रथ आए ही हैं। और मुझे यहां लौटकर आना ही है। केवल पाथेय अपेक्षित होगा, और कुछ नहीं।" बिंबिसार बोला।

सेठ दुकान की ओर चले गए।

बिंबिसार ने स्वर्ण-निर्माण की प्रक्रिया बन्द कर दी और अवशिष्ट तेजंतुरी को सावधानीपूर्वक एक ओर रखवा दिया।

तत्पश्चात् भोजन आदि से निवृत होकर बिंबिसार अपने खंड में गए।

नंदा को स्वामी के प्रस्थान की जानकारी नहीं थी।

नंदा की माता को भी इसका आभास नहीं मिला था। वह सदा व्रत, नियम, सामयिक, प्रतिक्रमण तथा उपासना में ही व्यस्त रहती थी। उसके मन में एक ही चिन्ता व्याप्त थी···एकाकी पुत्र परदेस गया था···उसकी पत्नी भी साथ ही थी। दोनों का क्या हुआ, कोई समाचार नहीं आया। परदेस में वे कोई विपत्ति में फंस गए या सामुद्रिक तूफान में फंस गए या व्यापार में उलझ गए? कोई समाचार न आने के कारण माता के हृदय की व्यथा राख से दबी अग्नि की भांति थी।

नंदा भी भोजन कर अपने शयन-कक्ष में गई।

उस कक्ष में बिंबिसार को विचारमग्न बैठे देख वह चौंकी। किसी भी दिन स्वामी इस खंड में नहीं आते और यदि आते हैं तो इतने गम्भीर नहीं होते। वह स्वामी के समक्ष जाकर खड़ी हो गई और मृदु-मंजुल स्वर में बोली—"क्यों, क्या अस्वस्थता है?"

"नहीं प्रिये! मैं तेरा ही इन्तजार कर रहा था।"

"क्या आज्ञा है?"

"पहले इस पत्र को पढ़ ले।" कहकर बिंबिसार ने नंदा के हाथ में महामंत्री का पत्र रखा।

नंदा ने पूरा पत्र पढ़ लिया। पत्र पढ़कर वह क्षण भर के लिए अन्यमनस्क हो गई। बिंबिसार ने सदा प्रसन्न नंदा के चेहरे पर चिन्ता की रेखाओं को उभरते देखा।

नंदा ने पूछा—"आपने क्या निर्णय लिया है?"

"तेरा विचार जाने बिना मैं क्या निर्णय लूं?"

"ऐसे तो यह कर्तव्य की पुकार है। प्रश्न यह है कि आपको देश-निष्कासन···।"

"हां, इसका प्रयोजन शुभ था।" कहकर धनंजय ने जो बात बतायी, थी वह बात सारी की सारी नंदा को कह सुनाई।

नंदा बोली—"ऐसे प्रेमार्द्र पिता की सेवा करने आपको जाना ही चाहिए। चाहे पिता प्रेमार्द्र हो या न हो, सन्तान का कर्तव्य है कि वह पिता की सेवा अवश्य करे। परन्तु···।"

"परन्तु क्या?"

नंदा कुछ नहीं बोली। उसके मन में पति-वियोग की व्यथा उभर आई। परन्तु कर्तव्य-मार्ग में अवरोध बनना भी वह नहीं चाहती थी।

बिंबिसार ने विचारमग्न प्रियतमा का एक हाथ पकड़कर कहा—"प्रिये! मेरी भावना थी कि मैं तुझे भी साथ ले जाऊं। किन्तु तेरी जो परिस्थिति है उसके समक्ष मुझे अपनी ऊर्मियों को दबाना पड़ रहा है। पिताजी भी नहीं चाहते कि इस परिस्थिति में तू इतना लम्बा प्रवास करे।"

"क्या आपने पिताजी से बात की थी?"

"हां, उन्होंने मुझे जाने की अनुमति दे दी है। उनके कथन के अनुसार मैं परसों प्रस्थान करूंगा, ऐसा विचार है।"

नंदा के तेजस्वी नयन स्वामी में स्थिर हो गए। दो क्षण स्थिर दृष्टि से देखने के पश्चात् उसने पूछा—"आप कब तक लौट आएंगे?"

"प्रिये! इसका कोई अनुमान नहीं बताया जा सकता। पिताश्री वयोवृद्ध हैं···कब उनके काल की ठोकर लग जाए, कहा नहीं जा सकता। मैं तो चाहता

हूं कि वे शतायु हों, किन्तु बीमारी का क्या परिणाम आए और मुझे कितने समय तक रुकना पड़े, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। पिताजी यदि औषधि-प्रयोग से स्वस्थ हो जाएंगे तो तत्काल लौट आऊंगा और···।"

"क्या ?"

"यदि वे स्वर्गगामी हो गए तो नहीं कह सकता, मैं कब लौटूंगा ?"

"आपके अन्य भाई ?"

"अनेक हैं। मेरे से बड़े भी हैं। किन्तु पिताजी को किसी पर विश्वास नहीं है। पिताजी की इच्छा को मैं जानता हूं। वे मुझे ही मगध का सिंहासन सौंपना चाहते हैं। यदि ऐसा कुछ हुआ तो तुझे मगध की साम्राज्ञी के रूप में आना पड़ेगा···

"स्वामी···।"

"मैं सत्य कहता हूं। यदि तू पुत्र का प्रसव करेगी तो वह मगध का प्रथम युवराज होगा।"

"प्रियतम ! साम्राज्ञी के रूप में आने से तो आपकी दासी बनकर आना श्रेयस्कर होगा। परन्तु जैसा आप कह रहे हैं यदि वैसा होगा तो आप लौटकर कैसे आ पाएंगे ?"

"हां, प्रिये ! यदि ऐसा होगा तो मैं तुझे मगध की महादेवी के उपयुक्त गौरव से बुला लूंगा।"

"यदि आप भूल जाएंगे तो ?"

"क्या मेरा हृदय तेरे से अज्ञात रहा है ?"

"स्वामिन् ! संसार के नर-नारी एक-दूसरे के हृदय को पढ़ नहीं सकते। पढ़ना अशक्य है।"

"श्रद्धा, विश्वास, वचन···इनका···?"

"मैं आप पर आक्षेप नहीं करती···कर भी नहीं सकती, क्योंकि आप मेरे सर्वस्व हैं। अपने सर्वस्व पर अश्रद्धा या अविश्वास कैसे हो ? मैंने तो एक सहज बात कही है। हृदय पर केवल आत्मा का आधिपत्य नहीं होता···।"

बिंबिसार ने हंसते-हंसते पूछा—"तो ?"

"मन का भी आधिपत्य होता है। हृदय के आसन पर जब मन बैठता है तब जीवन के निश्चित बने हुए सत्य बिखर जाते हैं।"

"प्रिये ! तेरी बात सही है। परन्तु मेरे हृदय पर न आत्मा का आधिपत्य है और न मन का। वहां तो केवल तेरा ही आधिपत्य है। तू ही मेरे मन की, जीवन की और कामनाओं की स्वामिनी है। इससे और अधिक···?"

नंदा बोली—"मुझे विश्वास है। मैंने तो मन की चंचलतावश यह बात कह दी। आपको कर्तव्य मार्ग से रोकना मैं नहीं चाहती।"

"तेरे मन की पवित्रता और उदारता को क्या मैं नहीं जानता ?"

इस प्रकार पत्नी से अनुमति प्राप्त कर बिंबिसार ने दामोदर को धनंजय के पास भेजा।

दूसरा दिन भी बीत गया।

तीसरे दिन प्रातः काल प्रस्थान करना था। धनदत्त सेठ ने विविध प्रकार की सामग्री तैयार करवाई थी, किन्तु बिंबिसार ने पाथेय के रूप में थोड़े पदार्थ ही साथ लेने की इच्छा व्यक्त की।

विदाई की वेला में बिंबिसार ने अपनी स्मृति रूप में पत्नी को राजमुद्रिका अर्पित करते हुए कहा—"प्रिये! मेरा यह स्मरण सावधानी से रखना। जब पिताजी कुछ स्वस्थ होंगे तब मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा···नहीं तो?"

बीच में ही नंदा बोली—"आप निश्चिन्त रहें। पत्नी के लिए पिताजी की सेवा में तनिक भी कमी न आने पाए। आपका यह स्मृति-चिह्न मैं सावधानी से रखूंगी···किन्तु सही स्मृति तो मेरे उदर में पोषित हो रही है।"

बिंबिसार ने उत्तर में प्रिया के दोनों हाथ पकड़े और एक मधुर चुम्बन ले वहां से प्रस्थान कर दिया।

बिंबिसार के जाने के पश्चात् नंदा के नयन सजल हो गए।

धनदत्त सेठ और उनकी पत्नी बिंबिसार के साथ नगरी की सीमा तक गए और वहां के समाचार भेजते रहने की प्रार्थना की।

सरल हृदय वाले धनदत्त सेठ और नंदा की माता के चरणों में नमन कर, आशीर्वाद प्राप्त कर सजल नयनों से बिंबिसार ने विदा ली।

बिंबिसार को पहुंचाने के लिए दामोदर तथा दुकान के अन्यान्य व्यक्ति भी गांव के बाहर तक आए थे। कल ही बिंबिसार ने दामोदर तथा अन्य अनेक व्यक्तियों को पुरस्कार के रूप में स्वर्ण-मुद्राएं दी थीं। छोटे सेठ की उदारता पर सबको गर्व हो रहा था। उनके प्रस्थान पर सबको दुःख होना स्वाभाविक था।

जब बिंबिसार का रथ दृष्टि से ओझल हो गया तब सभी सजल नयनों से अपने-अपने स्थान पर आ गए।

बिंबिसार और धनंजय एक रथ में बैठे थे। संरक्षक सिपाही तथा दास अपने-अपने अश्वों पर आरूढ़ थे और दूसरे रथ में दासियां तथा अन्यान्य सामान भरा था।

बिंबिसार उज्जयिनी नगरी की ओर स्थिर दृष्टि से देख रहा था। क्षण-क्षण में उज्जयिनी की दूरी बढ़ती जा रही थी और नंदा···।

"ओह! अभी वह कितनी व्यथित होगी? उसके चित्त को कौन प्रसन्न करेगा और उसके आंसू···।"

ये सारे विचार बिंबिसार के हृदय को व्यथित कर रहे थे।

और धनंजय ने पूछा—"महाराज! क्या हम वैशाली होकर चलें।"

"धनंजय ! वैशाली का मार्ग लम्बा है। चार दिन अधिक लगेंगे और आम्रपाली से मिलने के पश्चात् वहां कितना रुकना पड़े, यह कहा नहीं जा सकता। कर्त्तव्य को प्रथम स्थान देना अपना काम है।"

"तो···"

"हम एक सैनिक को वैशाली भेजेंगे···मैं एक पत्र भी लिखूंगा और उसमें राजगृही के समाचार ज्ञात करा दूंगा।"

धनंजय तत्काल बोल उठा—"यह विचार उचित है। देवी अपना प्रत्युत्तर राजगृही भेज सकेंगी।"

लगभग बीस कोस चलने पर वे एक मध्यम ग्राम की पांथशाला में रात बिताने ठहरे।

वहां से पांच कोस की दूरी पर ही वैशाली की ओर जाने वाला एक मार्ग था और दूसरा मार्ग बहुत दूरी पर था। यह मार्ग निरापद नहीं था और पहला मार्ग राजमार्ग होने के कारण निरापद माना जाता था। उज्जयिनी और वैशाली का सारा व्यवहार इसी मार्ग से होता था। इसीलिए बिंबिसार ने एक संदेश तैयार किया। उसने लिखा—

"प्राणाधिक पाली !

अनेक दिन बीत गए। तेरी ओर से कोई समाचार नहीं मिले। अपनी पद्मरानी अत्यन्त स्वस्थ और मनोहर होगी। मेरी ओर से उसे प्यार···प्यार और प्यार।

प्रिये ! आज मैं उज्जयिनी से राजगृही जा रहा हूं। मगधेश्वर शय्यापरवश हो गए हैं और मुझे तत्काल बुला भेजा है। राजगृही में मेरा रहना कितने दिन का होगा, मैं कह नहीं सकता···परन्तु जब तक मेरा दूसरा सन्देश न मिले तब तक तुम राजगृही को ही सन्देश भेजना।

मैंने पूर्व पत्र में विस्तार से सारी बात बताई थी। परन्तु तेरी ओर से उसका कोई उत्तर नहीं मिला। जैसे चातक आशा के गीत के सहारे आतुर होकर मेघ की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही मैं निरन्तर प्रतीक्षा करता रहा हूं।

मेरा हृदय तेरे ही पास है। ऐसे तो मैं उज्जयिनी से सीधा तेरे पास आ जाता और फिर राजगृही जाता, परन्तु मुझे वहां शीघ्र पहुंचना है इसलिए अन्तर की भावना को कर्तव्य की सांकल से जकड़ कर रखना पड़ा है।

प्रिये ! तेरे मुखचन्द्र से छलकता तेज, अमृत और सौन्दर्य को मैं क्षण भर के लिए भी नहीं भुला पाता। जीवनभर मैं इसे नहीं भूल पाऊंगा। मानव का प्रथम प्रेम वज्र की रेखा के समान होता है।

मेरा सन्देशवाहक यह पत्र तुमको देगा। उसी के साथ तुम प्रत्युत्तर भेज

देना। प्रिये ! मिलन से भी अधिक श्रेष्ठ होता है विरह। क्योंकि विरह की अग्नि से ही स्वर्ण की परीक्षा होती है।

लिखने के लिए इतने विचार उमड़ रहे हैं कि जीवनभर लिखता चलूं तो भी पूरे विचार नहीं लिख पाऊंगा। मैं एक पांथशाला में हूं। मध्य रात्रि का समय है। तेरी ही कल्पना किए उड़ता चला जा रहा हूं।

राजगृही जाने के बाद मगधेश्वर को कुछ ठीक होगा तो मैं तुझसे मिलने अवश्य आऊंगा।"

इस प्रकार पत्र लिखकर एक नलिका में रख बिंबिसार सो गया।

दूसरे दिन एक सैनिक को पत्र देकर वैशाली की ओर रवाना किया। धनंजय ने उस सैनिक को सारी सूचना दे दी।

फिर प्रवास त्वरा से होने लगा।

बिंबिसार चौदहवें दिन राजगृही पहुंच गया।

महामंत्री ने बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में स्वागत किया। बिंबिसार का बाल साथी वर्षाकार उसके गले लिपट गया।

युवराज बिंबिसार वस्त्र बदलकर सीधा मगधेश्वर के खंड की ओर गया।

६०. प्रश्नतीर

मगध के महामंत्री ने धनंजय को एकान्त में बुलाकर एक बात कही—"धनंजय ! एक क्षण के लिए भी युवराज श्रेणिक को अपनी दृष्टि से ओझल मत रखना। विशेष रूप से महादेवी की ओर से पूर्ण सावधानी रखना।"

जब बिंबिसार वस्त्र बदल कर मगधेश्वर के पास गया तब धनंजय भी उसकी परछाई की भांति पीछे-पीछे गया। बिंबिसार ने कहा—"धनंजय ! तू अपने घर जा···अपने परिवार के लोगों से मिलकर आना···अभी यहां तेरा कोई विशेष काम नहीं है।"

धनंजय ने हंसकर कहा—"महाराज ! आप निश्चिन्त रहें···आपने मुझे मित्र जो कहा है, इसलिए···"

"ओह !" कहकर श्रेणिक ने उसके कंधे पर हाथ रखा।

दोनों राजभवन में गये।

महाराज शय्या पर पड़े थे। उनकी प्रचंड काया शीर्ण हो गई थी। शय्या के पास ही एक आसन पर महादेवी बैठी थी। रानी त्रैलोक्यसुन्दरी को अभी तक ज्ञात नहीं था कि बिंबिसार आने वाला है या आ गया है।

कक्ष में पहुंचते ही बिंबिसार सीधा पिताजी की शैय्या के पास गया और पिता के चरणों में शीश झुकाकर बोला—"महाराज !"

"ओह श्रेणिक···आ बेटा आ···तू कब आया ?"

"अभी आ ही रहा हूं।"

मगधेश्वर ने पुत्र की ओर क्षणभर देखकर कहा—"श्रेणिक! तू इतना दुबला कैसे हो गया? एक निर्दय पिता के कारण···?"

बीच में ही पिता के दोनों हाथ पकड़कर श्रेणिक बोला—"बापू! ऐसा न कहें···आपकी ममता, आपका वात्सल्य, आपका प्रेम यही तो मेरे जीवन की संपत्ति है···अब आपका स्वास्थ्य कैसा है?"

"पुत्र! मैंने शय्या पकड़ी है···मुझे लगता है मनुष्य कितना ही महान् क्यों न हो, उसके साथ साढ़े तीन हाथ धरती भी नहीं चलती···मैं तेरी इस ममता के बल पर जी रहा हूं।" कहकर मगधेश्वर ने रानी की ओर देखा।

बिंबिसार ने महादेवी की ओर देखा और तत्काल उठकर उनके चरणों में शीश नमाते हुए कहा—"मां! मुझे क्षमा करें···मुझे ध्यान नहीं रहा। आप कुशल तो हैं न?"

रानी ने बिंबिसार का मस्तक चूमा, सूंघा और कहा—"वत्स! तू आ गया इसलिए मेरा मन निश्चिन्त हो गया। तेरे बिना सारा राजभवन सूना-सूना-सा लग रहा था।"

"महादेवी···"

बीच में ही त्रैलोक्यसुन्दरी ने कहा—"बेटा! तू मुझे 'मां' कहकर ही पुकारा कर। महादेवी तो कभी की मर चुकी हैं।"

"मां···"

"श्रेणिक! मेरे हृदय में दावानल सुलग रहा है···कल तक वह पाप का दावानल था···आज वह पश्चात्ताप का दावानल है। बेटा! मेरे पुत्र दुर्दम को राजगद्दी मिले, इस दुष्ट हेतु से मैंने क्या-क्या अनर्थ नहीं किया? और मैंने अपना पुत्र गंवाया।" कहते-कहते रानी त्रैलोक्यसुन्दरी का स्वर गद्गद हो गया, आंखें सजल हो गयीं।

श्रेणिक ने विनम्र स्वरों में कहा—"मां! जब मुझे दुर्दम के मृत्यु का समाचार मिला तब मन बहुत व्यथित हुआ···किन्तु कर्म के प्रभाव को कौन बदल सकता है? आप अब धैर्य रखें। मैं पराया नहीं हूं, आपका ही पुत्र हूं।"

मगधेश्वर शांति से सुन रहे थे। अपनी प्रिया की आंखों का परदा हट गया है, यह जानकर उनका मन प्रसन्न हो गया। किन्तु वे कुछ नहीं बोले।

महादेवी ने श्रेणिक के दोनों हाथ अपने हाथों में थाम लिये। वह बोली—"बेटा श्रेणिक! मेरे पाप के कारण ही तुझे बनवास मिला···अब मैं तुझे कहीं नहीं जाने दूंगी।"

"मां! अब मैं आपके चरणों में ही रहूंगा।" बिंबिसार ने कहा।

फिर श्रेणिक स्नान आदि से निवृत्त होने के लिए बाहर निकला। उसी रात

को वह जीवक से मिला और मगधेश्वर के स्वास्थ्य की चर्चा की। जीवक ने कहा—"मगधेश्वर की यह अंतिम शय्या है। औषधियां यदि काम करेंगी तो एक वर्ष तक कुछ नहीं बिगड़ेगा। अन्यथा तीन-चार मास से अधिक जीवन नहीं चल सकेगा।"

"भाई! मैंने तो सुना है कि आयुर्वेद विज्ञान ने ऐसी औषधियां खोजी हैं जिससे बुढ़ापा यौवन में बदल जाता है।"

"आपकी बात सही है। ऐसी औषधियां प्राप्य भी हैं, किन्तु विपत्ति कुछ दूसरी है। ये औषधियां जितेन्द्रिय पुरुषों के ही लिए कारगर होती हैं। मगधेश्वर का जीवन···।"

"मैं समझ गया···इनका रोग क्या है?"

"इनके कोई रोग नहीं है···केवल शारीरिक शक्तियों का स्वाभाविक ह्रास है।"

"क्या इस ह्रास को रोका जा सकता है?"

"रोका नहीं जा सकता। कोई रोक भी नहीं सकता। प्रकृति के गुणधर्म का परिवर्तन कभी नहीं हो सकता।" महावैद्य जीवक ने कहा।

बिंबिसार कुछ निराश हो गया।

इस प्रकार एक सप्ताह बीत गया। मगधेश्वर की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ···कुमार जीवक की औषधि का प्रभाव इतना ही हो रहा था कि महाराजा का चित्त प्रसन्न रहता और वे कुछ बातचीत कर सकते और शय्या पर बैठे रह सकते थे।

महादेवी त्रैलोक्यसुन्दरी को इस परिवर्तन में आशा दीख रही थी, परन्तु कुमार जीवक को कुछ भी आशा नहीं थी।

पथ्यापथ्य बहुत कठोर था, फिर भी उसका विधिवत् पालन होता था। मात्र रानी के मन में यह विचार आता कि पौष्टिक आहार दिया जाए तो शक्ति अवश्य उतर सकती है। परन्तु जीवक कहता—"सादा आहार जितना बलदायक होगा उतना बल पौष्टिक आहार नहीं दे सकेगा। गरिष्ठ या शक्तिशाली आहार पचा पाने की शक्ति मगधेश्वर की आंतों में अब नहीं है। इस स्थिति में शक्ति-वर्धक आहार विषरूप ही होता है।"

जीवक के इन विचारों का राजवैद्य ने भी समर्थन किया था। इसलिए देवी त्रैलोक्यसुन्दरी अपनी इच्छानुसार पथ्य में परिवर्तन नहीं कर पा रही थी।

पिता की सेवा-परिचर्या का भार श्रेणिक ने संभाल रखा था और वह प्रातः काल से रात्रि के प्रथम प्रहर तक पिताजी के पास ही बैठा रहता था। मगधेश्वर के अन्य पुत्र यदा-कदा आकर कुशल क्षेम-पूछ जाते थे। बिंबिसार पिता की परिचर्या में इतना व्यस्त हो गया था कि उज्जयिनी में नंदा को संदेश तक नहीं भेज

सका। नंदा प्रतिपल पलकें बिछाए संदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। पर संदेश प्राप्त नहीं हुआ। बिंबिसार के मन में नंदा की स्मृति यदा-कदा होती, पर व्यस्तता के कारण वह संदेश भेज नहीं सका।

उज्जयिनी से प्रस्थान करने के बाद बिंबिसार ने आम्रपाली को एक संदेश भेजा था। वह संदेशवाहक भी वैशाली से लौट आया था।

रात के दूसरे प्रहर में श्रेणिक ने उसे बुलाकर पूछा—"देवी कुशल तो है न?"

"हां, महाराज!"

"देवी ने कोई संदेश दिया हो तो वह···।"

महाराज देवी ने कोई संदेश नहीं दिया। उनकी मुख्य दासी ने मुझसे कहा—"अभी देवी बहुत व्यस्त हैं, वे बाद में किसी अपने व्यक्ति के हाथ संदेश भेज देंगी।"

"अच्छा!" कहकर बिंबिसार कुछ सोचने लग गया।

पन्द्रह दिन और बीत गये। आम्रपाली का कोई संदेश नहीं आया। स्वयं ने भी आम्रपाली या नंदा को कोई संदेश नहीं भेजा।

क्योंकि महामंत्री ने मगधेश्वर से विचार-विमर्श कर बिंबिसार श्रेणिक को राज्य के कार्यों में व्याप्त करने की बात निश्चित कर ली थी। और पिताजी की आज्ञा प्राप्त कर श्रेणिक अब राज्य-कार्य में व्यस्त रहने लगा। राजदरबार में जाना, न्याय के प्रश्न सोचना, मंत्रियों के साथ मंत्रणा करना, सीमाओं की कूट-नीति समझना, लोगों की शिकायतें सुनना, उनका निराकरण करना शत्रुराजाओं के प्रश्नों की विचारणा करना आदि-आदि कार्यों की अधिकता के कारण बिंबिसार न आम्रपाली की ही स्मृति कर पाता था, और न ही नंदा याद आती थी। वह अपनी जीवनसंगिनी वीणा को भी नहीं बजा पा रहा था।

और दो मास बीत गए।

महामंत्री बीमार हो गए। उनकी ही प्रेरणा से कुछ समय के लिए वर्षाकार को महामंत्री के कार्यों में व्याप्त कर डाला। वर्षाकार युवक था, बुद्धि में तेज था और श्रेणिक का बाल साथी भी था। दोनों में मेल-जोल बहुत था।

एक रात्रि में दोनों मित्र मगध के भविष्य के बारे में चर्चा कर रहे थे। उस समय वर्षाकार ने कहा—"युवराजश्री! मगध की शक्ति अपार है। किन्तु उस शक्ति का कुशलतापूर्वक उपयोग नहीं हो रहा है। साथ ही शक्ति को रौंद देने वाली शक्ति भी मुझे दीख रही है।"

"कौन-सी शक्ति?"

"वैशाली का गणतंत्र! मगधेश्वर वैशाली को नष्ट-भ्रष्ट करने का स्वप्न

बहुत समय से देख रहे थे, परन्तु वे कुछ भी नहीं कर सके। वैशाली उत्तरोत्तर ब्राह्मण-द्रोही बन रहा है। वेद और संहिताओं के प्रति वहां घृणा खड़ी की जा रही है। लोग अधिक से अधिक अधार्मिक बन रहे हैं। आज तक वहां श्रमण संस्कृति की आराधना चल रही थी। निर्ग्रन्थ प्रवचन का बोलबाला था। अब गौतम बुद्ध की हवा तीव्र हो रही है। जैनों की श्रमण-संस्कृति एक अपेक्षा से उत्तम थी। परन्तु वह बौद्ध संस्कृति तो वर्णाश्रम धर्म को नष्ट कर देगी···परन्तु क्या हो? मगधेश्वर का स्वप्न साकार हो, उससे पूर्व ही वे शय्या परवश हो गए।"

वर्षाकार के मन में, वैशाली के प्रति रही हुई वैर भावना को देखकर पल भर के लिए श्रेणिक कांप उठा। उसके लिए वैशाली प्रथम प्रणय की क्रीड़ा स्थली है। वैशाली में प्रियतमा आम्रपाली रहती है। जब कभी भी आम्रपाली को इस राजभवन में लाना ही है। यदि वैशाली के प्रति ऐसी ही भावना पुष्ट होती रही तो आम्रपाली कभी यहां पैर नहीं रखेगी।

इन विचारों में बिंबिसार का मन खो गया। वह मौन रहा। वर्षाकार को आश्चर्य हुआ कि वैशाली का नाम सुनते ही बिंबिसार विचारमग्न कैसे हो गए? वह पुनः बोला—"महाराज! क्षमा करें। मेरे मन में वैशाली के प्रति कोई द्वेष भाव नहीं है। परन्तु यदि भारतीय संस्कृति को जीवित रखना है तो वैशाली को सबसे पहले नष्ट करना ही होगा। मगध की जनता में राजा के प्रति जो श्रद्धा है, उसे बचाना हो तो वैशाली ही नहीं, पूर्व भारत के सभी गणतंत्रों को नष्ट करना होगा।"

"मित्र! तुमने तक्षशिला में रहकर मगध-मण्डल की ही आराधना की हो, ऐसा प्रतीत होता है।"

"मगध-मण्डल की आराधना तो रक्त के कण-कण में है···परन्तु मैं समस्त भारत के कल्याण की आराधना चाहता हूं। भारतवर्ष में आज कोई एक शक्तिशाली नहीं है। परिणामस्वरूप इसके अनेक टुकड़े हो गए हैं। टुकड़ों में विभाजित देश की स्वाधीनता खतरे में पड़ जाती है। भारतवर्ष का कल्याण कोई एक समर्थ और शक्तिशाली चक्रवर्ती ही कर सकता है और ऐसी शक्ति का दर्शन मुझे आपमें हो रहा है।"

"मित्र! तेरी स्वप्न भूमि बहुत विराट और चित्ताकर्षक है। संसार में सभी व्यक्ति अपनों को महान् मानते हैं। मेरे में महान् शक्ति का दर्शन तेरे प्रेम का प्रतीक है। किन्तु मेरी परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। मैंने कभी मगध का शासक बनने का स्वप्न नहीं संजोया···मैं तो सदा अपनी वीणा में मस्त था···वह मस्ती आज अदृश्य-सी हो रही है। तुझे मैंने नहीं बताया। जब मैं मगध से निष्कासित हुआ तब वैशाली में रहा और वैशाली की महान् कीर्ति देवी आम्रपाली···।"

बीच में ही वर्षाकार ने पूछा—"क्या आप जनपदकल्याणी के परिचय में

आए थे ?"

"मात्र परिचय में नहीं। हम दोनों गंधर्व-विवाह में बंधे भी थे।" यह कहकर बिंबिसार ने आम्रपाली के साथ रहे सम्बन्धों को विस्तार से बताया।

वर्षाकार के चित्त में एक आशा चमक उठी। देवी आम्रपाली को प्राप्त करने के लिए वैशाली को नष्ट करना ही होगा।

इधर जब बिंबिसार अपने बाल साथी वर्षाकार के साथ वैशाली और आम्रपाली की बात कर रहा था, तब वैशाली में आम्रपाली की यशोगाथा इतनी फैल गयी थी कि उसके दर्शनार्थ लोग दूर-दूर से आते और आम्रपाली का नृत्य देखने स्वर्ण को पानी ज्यों बहाते।

कुछ ही समय पूर्व सिन्धु-सौवीर से आए हुए चंडप्रद्योत ने देवी आम्रपाली को अपने यहां आने का निमंत्रण दिया था। देवी ने इतना मात्र जवाब दिया, जनपदकल्याणी अपने प्रासाद का त्याग कर आ नहीं सकती। आप स्वयं यहां आ सकते हैं। परन्तु जिस दिन बिंबिसार और वर्षाकार ये बातें कर रहे थे, उसी दिन वैशाली गणतन्त्र के एक महानायक महाराज नंदीवर्धन के लघुभ्राता महाराज सिद्धार्थ के पुत्र वर्धमानकुमार का विवाह था। उसमें भाग लेने जनपदकल्याणी आम्रपाली को क्षत्रिय कुंडग्राम जाना पड़ा।

जिसके वदन पर परम शान्ति, अपूर्व स्थिरता, हृदय को भेदने वाली गंभीरता और तेजस्विता स्वाभाविक रूप से विकसित थी, उस तरुण वर्धमान-कुमार का आज विवाह था। राजसभा जुड़ी हुई थी। और उसमें आम्रपाली अपने नृत्य से सबको मुग्ध कर रही थी।

वह वर्धमानकुमार को देखते ही चौंक पड़ी। उसने आज तक ऐसा रूप और तेज किसी पुरुष में नहीं देखा था।

वर्धमानकुमार यदि उसकी ओर एक बार भी दृष्टिपात कर ले तो वह धन्य हो जाए, ऐसा आम्रपाली को लग रहा था। और इसलिए उसने अपनी नृत्य छटा को अनेकविध कलाओं से समृद्ध और सुरभित किया था। किन्तु जो जन्म से ही विशिष्ट ज्ञानी हैं, वे कुमार वर्धमान अपने आप में थे। उन्होंने संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा।

वे शांत और स्थिर बैठे थे। किसी को वे अप्रसन्न नहीं दीख रहे थे।

पश्चिम रात्रि के अन्त में आम्रपाली सप्तभूमि प्रासाद में जाने के लिए प्रस्थित हुई। उसके मन में एक दर्द उभर रहा था···जो पुरुष रूप-यौवन और मस्ती को देखते पागल से बन जाते हैं, उस रूप-यौवन पर इस उगते नवजवान ने दृष्टि भी नहीं डाली। ओह ! यह कैसे संभव हो सका ?

देवी आम्रपाली बिंबिसार को विस्मृत करने के लिए अपनी कला और रूप की मस्ती में अत्यन्त निमग्न हो गयी थी।

किन्तु आज···

उसके मन पर एक डंक लगा···मैं वर्धमानकुमार को आकृष्ट क्यों न कर सकी ? क्या मेरे रूप-यौवन में कोई कमी है ?

नहीं···नहीं···नहीं ।

देवी आम्रपाली शय्या में पड़ी ।

परन्तु यह प्रश्नतीर उसके प्राणों को प्रकंपित कर रहा था ।

६१. अभिमान की ज्योति

स्वामी को प्रस्थित हुए छह महीने बीत गए । प्रसूतिकाल निकट आ गया । परन्तु राजगृही से कोई संदेश नहीं मिला । धनदत्त सेठ ने दामोदर को राजगृही भेजने का निर्णय किया, किन्तु नंदा ने इस प्रकार किसी को भेजने की मनाही की । उसने पिताजी से कहा—"बापू ! या तो वे कार्य में बहुत व्यस्त होंगे अथवा राज्य-कार्य के लिए अन्यत्र गए होंगे···हमें यहां से किसी को भेजने की आवश्यकता नहीं है ।"

पिता ने नंदा को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु नंदा ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा । उसने प्रतीक्षा करने की बात कही ।

धनदत्त सेठ निरुपाय हो गए । एक और पुत्र की चिन्ता उनके हृदय को व्यथित कर रही थी, वहां दामाद की नयी चिन्ता और उभर गई ।

परन्तु केवल गिनती के दिनों में ही इस चिन्ता पर एक हर्ष की पचरंगी बदली छा गई ।

नंदा ने सुन्दर, स्वस्थ और तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया ।

समस्त भवन में आनन्द ही आनन्द छा गया । धनदत्त सेठ ने उज्जयिनी के तीन हजार वणिक् घरों में मिठाई भेजी और गरीबों को धन बांटा ।

और इस परम खुशी में एक नयी खुशी और जुड़ गयी । पुत्र जन्म के तीसरे ही दिन यवद्वीप से ये समाचार आ गए कि सेठ के सुपुत्र और पुत्रवधू सभी सुरक्षित और कुशल हैं और भारत में आने के लिए प्रस्थित हो गए हैं ।

सभी के मन पर पहला प्रभाव यह पड़ा कि नंदा के पुत्र के चरण टिकते ही ये शुभ समाचार मिले हैं···नंदा का पुत्र वास्तव में कोई उच्च कोटि का जीव है ।

पुत्र का सुन्दर मुख देखकर नंदा अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो गई । प्रसूतिकाल की समग्र पीड़ा को वह भूल गई और अन्तर में पलने वाले मातृत्व की मंगलमय प्रेरणा उछलने लगी ।

नंदा के आरोग्य पर कोई असर नहीं हुआ ।

जब उत्तम जीव जन्म लेते हैं, तब माता को वे पीड़ा रूप नहीं बनते ।

नंदा को पुत्र जन्म की बधाई देने अनेक-अनेक लोग आने लगे ।

महाराजा चंडप्रद्योत ने भी धनदत्त सेठ के यहां बधाई के रूप में एक स्वर्ण की माला और मखमल का वस्त्र भेजा।

धात्री की सलाह से भोजन की व्यवस्था की गई। प्रतिदिन शतपाक तेल का मर्दन माता और शिशु को होता था। आरण्य उपलों का परिषेक व्यवस्थित रूप में होता था। गर्भाशय में कोई दोष उत्पन्न न हो, इसलिए विविध द्रव्यों से बनी औषधि का धुआं संध्या समय में दिया जाता था।

धनदत्त सेठ ने पुत्र-जन्म का समाचार बिंबिसार को देना चाहा था। परन्तु नंदा ने इनकार कर दिया था। नारी-सुलभ अभिमान इसके अन्तःकरण में जाग उठा था···इतना समय बीत जाने पर भी सकुशल पहुंचने के समाचार अपनी पत्नी को देने जितना समय भी नहीं मिला ?

नारी भूल नहीं सकती। उसकी स्मृति प्रखर होती है।

पुरुष का चंचल मन बड़ी बातों को भी भूल जाता है।

सवा महीना बीता। नंदा ने प्रसूतिगृह का त्याग कर दिया।

उज्जयिनी के प्रख्यात ज्योतिषी को बुला धनदत्त सेठ ने अपने दौहित्र के नामकरण तथा जन्माक्षर करने की प्रार्थना की।

ज्योतिषी ने मुहूर्त्त देखा। दो दिन बाद नामकरण का मुहूर्त्त था। नंदा के पुत्र का नाम अजभकुमार रखा गया।

ज्योतिषी ने अभयकुमार के ग्रह-योग आदि का भविष्य एक ताडपत्र पर अंकित कर धनदत्त सेठ को सौंपा। उसने कहा—"सेठजी ! यह बालक सामान्य नहीं है। यह कोई भव्य आत्मा है। इसके ग्रह अत्यन्त तेजस्वी, उत्तम और अचंचल हैं। यह बालक भविष्य में बुद्धि का सम्राट होगा। इसके ग्रहों की ऐसी युति है कि यह महापुरुष बनेगा। या तो यह राजराजेश्वर चक्रवर्ती होगा अथवा उससे भी महान् सन्त बनेगा।

पुत्र के भविष्य की बात सुनती हुई नंदा ने प्रश्न किया—"पूज्यश्री ! अभय अपने पिता से कब मिलेगा ?"

ज्योतिषी ने गणित कर बताया—"पुत्रि ! पिता का मिलन अवश्य होगा पर अभी नहीं···सोलह वर्ष बाद।"

यह सुनकर मानों नंदा का हृदय दग्ध हो गया, फिर भी वह प्रसन्न भाव में रही। वह समझ गयी कि जब पुत्र का मिलन सोलह वर्ष बाद होगा तो पत्नी का मिलन उससे पूर्व संभावित नहीं है।

परन्तु जिसके मन में जैनत्व के संस्कार हैं, वह ऐसे प्रसंगों पर बहुत दुःखी नहीं होता। वह धैर्य रखता है और कर्मफल को शांतभाव से भोगता है।

राजगृही पहुंचने के बाद बिंबिसार अपने प्रीति पात्रों को भी याद नहीं कर सका। कारण पिताजी की बीमारी·· राजकार्य की व्यस्तता···महामंत्री का

अवसान···वर्षाकार को महामंत्री पद पर प्रतिष्ठित करना। मगधेश्वर की स्थिति वैसी की वैसी रही। जीवक मानता था कि औषधि अव्यवस्था दूर कर सकती है···प्रकृति के परिणामों को नहीं बदल सकती।

महर्षि आत्रेय तक्षशिला के आचार्य थे। उनकी देख-रेख में एक लाख विद्यार्थी आयुर्विज्ञान का अभ्यास कर रहे थे। उन आत्रेय गुरुदेव का आवश्यक संदेश आ जाने के कारण कुमार जीवक को तत्काल तक्षशिला जाना पड़ा। उस समय वहां मिस्र, पारस आदि देशों के अनेक वैज्ञानिक तक्षशिला में आने वाले थे। आत्रेय उनके सामने कुमार जीवक को एक महान् शल्यचिकित्सक के रूप में प्रस्तुत कर यह दिखाना चाहते थे कि आयुर्विज्ञान की प्रगति कहां तक हुई है। इतना ही नहीं वे सभी वैज्ञानिकों के समक्ष शस्त्रकर्म के प्रयोग भी प्रस्तुत करने वाले थे। महान् वैद्य जीवक ने अभ्यंतर अर्बुद आदि को अग्नि कर्म से नष्ट करने की एक महान् शोध की थी। साथ ही साथ मस्तिष्क को खोलकर उसमें विद्यमान ग्रन्थि को शस्त्रक्रिया से निकाल कर रोगी को मौत के मुंह से बचा लेने की शल्यक्रिया भी सिद्ध कर दी थी। इसमें प्रयुक्त होने वाले छोटे-बड़े शस्त्र उसने अपने ही हाथों बनाए थे। इन सबको उन वैज्ञानिकों के समक्ष प्रत्यक्ष दिखाने के लिए जीवक को बुला भेजा था। और वह मगधेश्वर की आज्ञा प्राप्त कर वायुवेगी अश्वयान में तक्षशिला की ओर प्रस्थित हुआ था।

इससे भी बिंबिसार का दायित्व बढ़ गया था।

परन्तु इस कार्य को रानी त्रैलोक्यसुन्दरी ने बहुत सरलता से निपटा दिया था। चारों युवराजों को उसने इच्छित धनराशि देकर प्रसन्न कर डाला। चारों युवराज समग्र मगध की जवाबदारी लेना नहीं चाहते थे। जो राज्य का भार अपने पर लेता है, उसके भाग्य में सुख भोग नहीं होता, ऐसा वे चारों मानते थे। इसलिए यह कार्य सरलता से निपट गया। इस कार्य में तरुण महामंत्री वर्षाकार की युक्ति बहुत सहायक बनी थी।

मगधेश्वर प्रसेनजित चाहते थे कि वे बिंबिसार को अपने हाथों मगध के सिंहासन पर बिठाएं। परन्तु बिंबिसार इसके लिए तैयार नहीं हुआ। वह यही कहता—"पिता की मृत्यु की कल्पना कर राज्य सिंहासन पर बैठना शोभास्पद नहीं होता। पिता के स्वास्थ्य को सुधारने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए, यही मेरा धर्म है।"

परन्तु इस धर्म की आराधना वह कर नहीं सका।

जीवक के प्रस्थान के तीन महीने बाद मगधेश्वर का देहावसान हो गया। समस्त राजपरिवार, सामंत और मंत्रियों ने बिंबिसार को मगध के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

कल का वीणा-वादक आज मगध जैसे विराट् देश का स्वामी बन गया।

कल तक जो धनदत्त सेठ के यहां स्वर्ण निर्माण कर उसी के भवन से रहता था, वही श्रेणिक पूर्व भारत के एक विशाल साम्राज्य का भाग्य-विधाता बन गया।

श्रेणिक के प्रति जनता के मन में ममता और आदर-भावना थी। जनता अत्यन्त हर्षित इसलिए थी कि उसे मनोवांछित मगध का अधिपति प्राप्त हुआ था।

श्रेणिक को मगधेश्वर के रूप में विधिवत् प्रतिष्ठित करने का शुभ मुहूर्त्त तीन महीने बाद था। इसके निमित्त विविध राज्यों में निमंत्रण भी भेजे जा चुके थे। और पूर्व तैयारियां भी प्रारम्भ कर दी गयी थीं।

वहां की परम्परागत विधि यह थी कि सिंहासन पर प्रतिष्ठित होते समय मगधेश्वर साम्राज्ञी सहित प्रतिष्ठित होते हैं। इसलिए बिंबिसार के विवाह आदि के विषय में चर्चाएं होने लगीं। राजमाता त्रैलोक्यसुन्दरी ने यह बात बिंबिसार को कही, तब वह चौंका और उस समय उसे आम्रपाली और नंदा—दोनों की स्मृति हो आयी। यह बात उसने किसी से नहीं कही थी। केवल वर्षाकार को आम्रपाली के विषय में अवश्य बताया था।

परन्तु वैशाली की जनपदकल्यानी मगध की साम्राज्ञी बने, यह शोभास्पद नहीं है। ऐसा वर्षाकार मानता था। और राजपरिवार का यह अभिप्राय था कि साम्राज्ञी के पद पर कोई उत्तम, कुलीन राजकन्या ही प्रतिष्ठित होनी चाहिए।

बिंबिसार को अपनी कन्या देने के लिए अंग-बंग, कलिंग, काशी, गांधार, कौशल आदि जनपदों के राजाओं ने कहलाया था। और रानी त्रैलोक्यसुन्दरी ने कौशल देश के महाप्रतापी राजा प्रसेनजित की कन्या को पसन्द किया था···और ऐसे भी कौशल और मगध दोनों देश पारिवारिक सम्बन्धों से भी बंधे हुए थे।

वर्षाकार भी यही चाहता था। उसका स्वप्न था कि समग्र भारत में एक चक्र साम्राज्य स्थापित कर आर्य संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली शक्तियों को नेस्तनाबूद कर आर्य संस्कारों की पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिए। कौशल नरेश की कन्या यदि साम्राज्ञी बनती है तो यह स्वप्न सहज सिद्ध हो जाता है। उसने बिंबिसार से इस प्रसंग में बातचीत की। बिंबिसार ने कहा—"महामंत्री ! मेरी भावना है कि देवी आम्रपाली को इस पद पर लाना चाहिए।"

"कृपावतार ! देवी आम्रपाली का पद-गौरव क्या है ? आप तो जानते ही हैं कि जनपदकल्याणी का अर्थ क्या होता है ? वह जीवन-सखी बन सकी है पर वह मगध की साम्राज्ञी नहीं बन सकती। और उसके एक पुत्री भी है। यदि आप अपना यह भाव किसी के समक्ष प्रकट करेंगे तो कड़ा विरोध होगा और मगध साम्राज्य के विषय में हमारी जो कल्पना है, वह मात्र स्वप्न-तरंग बनकर रह जाएगी।"

बिंबिसार ने बहुत चर्चा की। उसे वर्षाकार की बात माननी ही पड़ी।

कौशल की राजकन्या के साथ बिंबिसार का विवाह हो गया।

यह बात समग्र पूर्व भारत में हवा की तरह फैल गई।

उज्जयिनी का नरेश चंडप्रद्योत कौशल नरेश की कन्या को अपनी अंकशायिनी बनाना चाहता है, क्योंकि कौशलनंदिनी रूप और तेज में बेजोड़ थी। जब उसने बिंबिसार के साथ उसके विवाह हो जाने की बात सुनी तब वह बहुत खिन्न हुआ।

नंदा और धनदत्त सेठ के कानों तक भी यह बात पहुंची। नंदा ने यह बात सुनते ही एक निःश्वास छोड़ा और उसे इस सत्य का साक्षात्कार हो गया कि पुरुष सदा अपने वादे से मुकर जाता है।

धनदत्त सेठ का पुत्र, पुत्रवधू और छोटा पौत्र जो यवद्वीप में जन्मा था, सब सकुशल घर लौट आए।

सभी के मन में नंदा के प्रति बहुत आदरभाव था और वे तेजस्वी भानेज अभयकुमार को क्षणभर के लिए भी दृष्टि से ओझल नहीं करते थे।

नंदा का स्वामी बिंबिसार मगध का सम्राट बनेगा, यह बात परिवार के सभी लोग जानने लगे थे। किन्तु नंदा ने स्पष्ट कहा था कि इस प्रसंग में कुछ भी प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है।···मैं माता-पिता, भाई-भाभी के बीच सुख पूर्वक हूं···कल अभय बड़ा हो जाएगा···मेरा धर्म है कि मैं अपने पुत्र के व्यक्तित्व का निर्माण करूं और उसे महामानव बनाऊं···मैं प्रतीक्षा कर सकती हूं परन्तु अधिकार की याचना कभी नहीं करूंगी।

पुत्री के इन निश्चयात्मक विचारों को सुनकर धनदत्त सेठ कुछ नहीं बोले। उसका भाई श्रीदत्त भी अपनी बहन के विचारों से सहमत था।

बिंबिसार मगधपति बन गए हैं और उन्होंने कौशलनंदिनी के साथ विवाह कर लिया है···यह बात वैशाली में वायुवेग से प्रसृत हो गयी।

देवी आम्रपाली ने जब यह बात सुनी, तब वह जोर से हंस पड़ी। ऐसी हंसी देखकर माध्विका आश्चर्य में पड़ गई···जिसका हृदय प्रतिक्षण बिंबिसार के लिए तड़फ रहा था, उस हृदय में इतना हास्य कैसे? वह बोली—"देवि! आप हंस रही हैं?"

"माधु! हंसने की बात पर तो हंसी ही आएगी। महाराज मगधेश्वर बने, यह क्या कम आनन्द की बात है? उन्होंने कौशलेश्वर की सुन्दर कन्या से साथ विवाह किया, क्या यह अयोग्य बात है? और कभी जिसको प्राणेश्वरी कहते थे, जिसके बिना क्षण बिताना भी भारी होता था, उस जनपदकल्याणी को भूल जाना क्या छोटी बात है? माधु! तूने समझा होगा कि इन समाचारों से मुझे दुःख होगा! परन्तु अब दुःख की परछाई भी मेरे जीवन से चली गई है। मैं हूं वैशाली की जनपदकल्याणी! अतीत को भूल जाना मेरी कला है। मेरा आनन्द अतीत में

नहीं, वर्तमान में हैं···मुझे जितना आनन्द चाहिए उससे भी अधिक आनन्द मिल रहा है।" आम्रपाली ने प्रसन्न मुद्रा में कहा।

माध्विका यह समझ नहीं सकी कि इस प्रसन्न मुद्रा के पीछे और इस हास्य तथा आनन्द की अभिव्यक्ति की पृष्ठिभूमि में नारी के अभिमान की ज्योति रेखा तो नहीं जल रही है ?

६२. प्रिया की याद

और दो वर्ष बीत गए।

इन दो वर्षों में श्रेणिक का जय-जयकर पूर्व भारत में प्रसृत हो गया। मागधी सेना को भव्य और अधिक सम्पन्न बनाया गया। मगध का कोषागार बहुत संपन्न था। उसमें अपार स्वर्ण पड़ा था। श्रेणिक ने उसका सदुपयोग मगध की सेना को अजेय बनाने में किया।

छोटे-बड़े अनेक युद्धों को जीतकर उसने मगध की सीमाओं को विस्तृत किया। अंग-बंग, गौड देशों के साथ मैत्री सम्बन्ध दृढ़ हुए। बिंबिसार ने अनेक कन्याओं के साथ विवाह किया।

इन दो वर्षों के अन्तराल में बिंबिसार ने कभी अपनी वीणा को याद नहीं किया। धनुष-बाण को ही याद रखा···राक्षस राज शंबुक ने जो धनुर्विद्या सिखाई थी, उसका और अधिक विकास किया। बिंबिसार ने दुर्गम और अजेय माने जाने वाले पर्वतीय प्रदेश पर्वतपुर के खूंखार महाराजा को मात्र एक महीने के युद्ध में परास्त कर, पार्वत्य प्रदेश तक मगध की विजय-ध्वजा फहराई। यह जानकर वैशाली धूज उठी। वैशाली गणराज्य इस भय से ग्रस्त हो गया कि आज नहीं तो कल बिंबिसार वैशाली को अवश्य नष्ट कर देगा।

परन्तु वैशाली गणतन्त्र के संचालकों को यह ज्ञात नहीं था कि जब तक देवी आम्रपाली वैशाली में है तब तक बिंबिसार वैशाली गणतन्त्र का कुछ कर सके, ऐसी बात नहीं है। इस बात को केवल वर्षाकार ही समझ सका था। जब वह वैशाली पर विजय पाने की चर्चा करता, तब बिंबिसार हंसकर उसे टाल देता और कहता—"महामंत्री ! वैशाली में मेरी प्रिया है···मैं उसे कभी नष्ट नहीं करूंगा।"

"महाराज ! राजनीति और प्रियजनों से सम्बन्ध दोनों परस्पर विरोधी तत्त्व हैं। सम्बन्धों की ममता को पैरों तले कुचलने वाले ही अपने ध्येय में सफल होते हैं। आज वैशाली मगध के लिए भयस्थान बन गया है। वह आर्य संस्कृति पर करारी चोट करने पर तुला हुआ है। वहां के लोगों की कामुकता और स्वेच्छचारिता का वेग मगध की जनता को भी आकृष्ट कर लेगा। महाराज ! जनता उत्तम की प्रशंसा करती है और कनिष्ठ का अनुकरण करती है।"

बिंबिसार ने हंसते-हंसते कहा—"वर्षाकार ! तू मेरा बाल साथी है। मैं तेरी भावनाओं को समझता हूं। किन्तु हमारी संस्कृति इतनी कमजोर नहीं है कि वह सामान्य आघातों से कांप उठे। तू भय मत रख। अभी मुझे सत्ता में आए दो वर्ष ही हुए हैं। तूने स्वयं देखा होगा कि मैंने इन दो वर्षों में वीणा को छुआ भी नहीं है। कभी किसी नर्तकी के नखरों की ओर देखा तक नहीं। अन्तःपुर के भवनों में निरन्तर प्रतीक्षारत नवयौवना पत्नियों के साथ चार-छह रातें बिताई नहीं। मित्र ! तेरे हृदय में जो भावना है उसे मैं जानता हूं···तेरी भावना को साकार करने के लिए मैं प्राणों को भी न्यौछावर कर दूंगा···किन्तु हमें समय और संयोगों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

तीक्ष्ण बुद्धिवाला वर्षाकार बिंबिसार के मन में वैशाली के प्रति जो ममता थी, उसे पंगु बनाना चाहता था। इसलिए वह विविध उपायों से वैशाली के प्रति घृणा पैदा करने का प्रयास कर रहा था।

एक बार बिंबिसार ने वैशाली जाने का विचार किया, किन्तु वह जानता था कि वर्षाकार इस बात से सहमत नहीं होगा। इसलिए उसने अपने अंगरक्षक के रूप में नियुक्त धनंजय से कहा—"धनंजय ! हम दोनों गुप्त वेश में कुछ दिनों तक बाहर निकलें, ऐसी इच्छा है।"

"गुप्त वेश में ?"

"हां, यहां किसी को पता नहीं लगना चाहिए।"

"उज्जयिनी जाना है ?"

"नहीं, वहां नहीं जाया जा सकता। कौशलनंदिनी के प्रति चंडप्रद्योत के हृदय में आग धधक रही है। और उज्जयिनी इतनी दूर है कि हम इतने दिन···।"

"तो···?"

"वैशाली जाना है। चौंकता क्यों है ? मेरी दोनों प्रियतमाएं वहां हैं···" बिंबिसार ने कहा।

"नंदा देवी भी वहीं हैं ?"

"नहीं···। उसके तो कोई समाचार ही नहीं मिले। प्रसूति का परिणाम क्या आया, पुत्र हुआ या पुत्री, यह भी किसी ने ज्ञात नहीं कराया। संभव है प्रसूति काल में कुछ अघटित घटना हुई है। माता और बालक दोनों की मौत हो गई हो। इस प्रसंग में ही कभी खोज कराऊंगा। वैशाली में देवी आम्रपाली और मेरी प्रिय महाबिंब वीणा है। ये दोनों मेरी प्रियतमाएं हैं। आम्रपाली के भवन का त्याग किए तीन वर्ष बीत चुके हैं। मेरे संदेशों का कोई उत्तर नहीं मिल रहा है। संभव है देवी को कुछ पीड़ा हुई हो। मुझे उससे मिलकर उसका मन जानना चाहिए। और···"

"और क्या महाराज ?"

"मेरी इच्छा है कि मैं देवी आम्रपाली को साथ में ही ले आऊं।"

"क्या वे आएंगी ?" धनंजय ने पूछा।

"वहां जाने के बाद ही पता लग सकेगा।"

"परन्तु···?"

"क्या ?"

"वैशाली जाने-आने में तथा वहां कुछ दिन रुकने में एक महीना तो लग ही जाएगा।"

"हां, इस प्रसंग में कोई योजना बनाऊंगा।"

"परन्तु···"

"धनंजय ! परन्तु शब्द निर्भीक व्यक्तियों को शोभा नहीं देता।"

"महाराज ! मेरा आशय वहां की परिस्थिति से है। पर्वतपुर की विजय के पश्चात् वैशाली गणतन्त्र चौंका है और जब कभी आप वैशाली को ध्वंस कर देंगे, ऐसी हवा वहां चल रही है। ऐसी स्थिति में वहां गुप्त वेश में जाना, यह···"

"धनंजय ! मगध के सम्राट का भय वैशाली की जनता को भले हो, किन्तु आम्रपाली के प्रियतम का भय रखने का कोई कारण नहीं है। फिर भी मैं असावधान रहना नहीं चाहता। पहले तू अकेला वैशाली जाना, मेरा संदेश देवी को देना और पुनः उसका प्रत्युत्तर अपने साथ ही ले आना।"

दो क्षण सोचकर धनंजय बोला—"यदि देवी आम्रपाली वहां न हों तो ?"

"वह कहीं अन्यत्र जाएं, ऐसी सम्भावना नहीं है। फिर भी तू खोजकर वापस आ जाना। तुझे एक सप्ताह के अन्दर यहां लौट आना है।"

"जी !" धनंजय ने कहा।

"तो तू कल ही प्रस्थान कर जा। मैं कल अपना सन्देश भी दे दूंगा।" बिंबिसार ने कहा। धनंजय मस्तक झुकाकर चला गया। उसी रात्रि में बिंबिसार अपने कक्ष में बैठकर एक ताडपत्र पर अपने हृदय के भाव अंकित किये और उस ताडपत्र को दो-तीन बार पढ़कर एक नलिका में डाला। उसने लिखा—

"प्राणप्रिये ! बहुत समय बीत जाने पर भी तेरी ओर से कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ, इससे मेरा मन अत्यधिक व्याकुल बन गया है। तू तो यह जानती ही है कि मगध का सिंहासन मुझे मिला है। राजधर्म में इतना व्यस्त हो गया हूं कि मैं अपने जीवन सौरभ को भी भूल गया।

दो वर्ष पूर्व तूने कहलाया था कि संदेश भेजूंगी···परन्तु आज तक कोई संदेश नहीं मिला। उसके बाद भी मैंने दो-तीन बार संदेश भेजे थे, किसी का उत्तर नहीं मिला। मुझे एक बात का पूर्ण विश्वास है कि तेरे हृदय ने मेरी स्मृति को कभी देश-निष्कासन नहीं दिया होगा और इसी विश्वास के आधार पर मैं आज बताना चाहता हूं कि मैं तुझे लेने आ रहा हूं। धनंजय को मैंने इसलिए भेजा है

कि वह तेरे समाचार मुझे बताए और मैं तत्काल गुप्त वेश में तेरा जयकीर्त बनकर वहां आऊं।

मुझे एक विस्मय होता ही है। पुरुष अन्य उपाधि के कारण अपनी प्रिय वस्तु को सम्भव है भूल जाए, किन्तु समर्पण और त्याग की मूर्ति के समान तेरी ममता, अपनी प्रिय वस्तु को कभी नहीं भूल सकना। प्रिये! मैंने तुझे कभी विस्मृत नहीं किया है। कल तक मैं एक सामान्य युवराज था, आज मगध का अधिपति हूं। परन्तु तेरे समक्ष तो मैं वही हूं तेरा प्रियतम। आश्चर्य तो यह है कि तू मुझे कैसे भूल गयी! मेरे में यदि कोई अपराध दीखता हो तो मुझे क्षमा करने की तुझमें उदारता तो है ही। तुझमें विष की घूंट पीने की भी शक्ति है। फिर भी यह क्यों और कैसे?

मुझे यदा-कदा समाचार मिलते हैं कि तू नृत्य, गीत और मस्ती में अलबेली बनी है। तेरी प्रशंसा चारों ओर रजनीगंधा के पुष्प की सौरभ की भांति विस्तृत हुई है। दूर-दूर के लोग तेरी कला का दर्शन करने आते रहते हैं।

ऐसे तू कला की उपासना में अपनी समग्र वृत्तियों को नियंत्रित किए हुए है। फिर भी हम दोनों की प्रीति के बंधन इतने कच्चे नहीं हैं कि वे टूट जाएं, छूट जाएं या बिखर जाएं।

धनंजय मेरा विश्वासपात्र व्यक्ति है, यह तू जानती भी है। इसके साथ संदेश भेजना। तुम से मिलने के लिए मैं इतना आतुर हो गया हूं कि पल-भर भी मेरा मन यहां नहीं लगता।

कदाचित् तेरा संदेश नहीं भी मिलेगा तो भी मैं तुझसे मिलने एक बार आऊंगा और मगध की महादेवी के आसन पर बिठाने हेतु तुझे ले आऊंगा।

मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि तूने अपने कन्यारत्न को कहीं अन्यत्र भेज दिया है। उस ज्योतिषी की बात याद आती है। उसको देखने की उत्कट भावना है। परन्तु वह कैसे पूरी हो? पद्मसुन्दरी कहां है, बताना। तेरे मधुर संस्मरण मेरे हृदय में संचित हैं। कुछ ही समय पश्चात् मैं मिलने के लिए आने ही वाला हूं। तुम्हारा—जयकीर्ति।"

और दूसरे दिन यह पत्र धनंजय को देकर उसे वैशाली की ओर रवाना किया।

किन्तु बिंबिसार के सामने एक प्रश्न यह था कि यहां से कैसे जाया जाए? वैशाली में अकेले जाना, किसी को जचेगा नहीं। मन्त्रीगण जाने ही नहीं देंगे और बिना किसी को कहे, जाना भी नहीं हो सकता।

दूसरे दिन धनंजय के जाने के पश्चात् बिंबिसार ने वर्षाकार के साथ इधर-उधर की बातें करते हुए कहा—"मित्र! मेरा विचार है कि कुछ दिनों के लिए मैं गुप्त वेश में मगध का पर्यटन करूं।"

"गुप्त वेश में ?"

"हां मित्र ! यदि प्रजा के हृदय को जानना है तो मुझे उसके बीच एक सामान्य व्यक्ति के रूप में रहना होगा।"

"आपके विचार उत्तम हैं, परन्तु···"

"उत्तम विचारों का क्रियान्वयन करने में क्या बाधा है ?"

"मगध की जनता के हृदय में आपका स्थान बेजोड़ है। जनता आपको देव की भांति पूजती है।"

"ऐसा सभी कहते हैं, परन्तु जनता की वेदना को जानने का यही उपाय है।"

वर्षाकार विचार करने लगा। दोनों कुछ समय तक मौन रहे। फिर मौन भंग कर वर्षाकार बोला—"महाराज ! उत्तम विचार सदा आदरणीय होते हैं। परन्तु इस कार्य के लिए अभी समय का परिपाक नहीं हुआ है। अभी तक मगध साम्राज्य का ध्वज दूर-दूर तक नहीं फहराया है।"

इस प्रकार श्रेणिक और वर्षाकार के बीच परस्पर अनेक विचार आए। कुछ समय पश्चात् वर्षाकार चला गया।

ठीक सातवें दिन धनंजय आ गया।

बिंबिसार ने धनंजय को अपने व्यक्तिगत कक्ष में बिठाकर पूछा—"देवी तो कुशल हैं न ?"

"देवी आम्रपाली गणतन्त्र के किसी कार्यवश एक महीने से बाहर गयी हुई हैं।"

"गणतन्त्र के कार्य के लिए ?"

"हां, माध्विका ने ही मुझे बताया था।"

"किस ओर गयी हैं ? कब आएंगी ?"

"यह जानने के लिए मैंने बहुत प्रयत्न किए, पर कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका। मात्र इतना ही ज्ञात हो सका कि कौशल के युवराज के लिए किसी प्रयोजन को लेकर वे गयी हैं। हां, माध्विका बता रही थी कि एकाध सप्ताह में आ जाएंगी।"

"अच्छा, धनंजय ! हमें दो-चार दिनों में प्रस्थान करना है। मैंने महामन्त्री को समझा दिया है।"

"कैसे ?"

"गुप्तवेश में मगध की जनता के मन को जानने के लिए···"

बीच में ही धनंजय बोला—"युक्ति तो उत्तम है ··परन्तु वैशाली में लिच्छवी बहुत सावचेत हो गए हैं।"

"किस बात में ?"

"वे मानते हैं कि आप वैशाली को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते हैं, इसलिए वे सजग बन गए हैं। प्रत्येक मागध को वे शंका की दृष्टि से देखते हैं।"

'अच्छा' कहकर बिंबिसार आसन से उठा और कक्ष में एक चक्कर लगाकर बोला—"दो दिन बाद हमें प्रस्थान करना है···किसी को गंध तक न आने पाए कि हम वैशाली जा रहे हैं।"

"ऐसा ही होगा।" धनंजय कहकर खड़ा हो गया।

६३. अधीर हृदय

जनता के हृदय में राज्य के प्रति क्या भावना है और जनता के प्राणों में क्या दर्द है, यह जानने के बहाने बिंबिसार और धनंजय—दोनों गुप्त वेश में वहां से निकल पड़े। दोनों के पास दो अश्व और सामान्य सामान था। विशेष अस्त्र-शस्त्र साथ में नहीं लिये थे। दोनों ने तलवारें साथ में ली थीं।

दोनों ब्राह्मण वेश धारण कर निकले थे, क्योंकि इस वेश के सिवाय दूसरा वेश बिंबिसार के लिए उपयुक्त नहीं था। उसके कपाल के तेज से उसकी पहचान स्वतः सम्भव थी। उसकी आंखों की चमक प्रत्येक को आश्चर्य में डालने वाली थी और उसका गौर-वर्ण भी उसके आभिजात्य कुल का परिचायक था। इसलिए दोनों ने ब्राह्मण वेश धारण किया था।

वर्षाकार तथा अन्य मन्त्री बिंबिसार को इस वेश में देखकर मुग्ध हो गए थे। सबको यही लग रहा था कि महाराज को इस वेश में कोई भी नहीं पहचान पाएगा।

राजमाता ने अत्यन्त अनमनस्कता से आज्ञा दी थी।

कौशलनंदिनी तथा अन्य रानियों ने इस प्रवास का विरोध किया, किन्तु बिंबिसार ने सबको प्रेम से समझा-बुझाकर शांत किया। अन्त में कौशलनंदिनी ने पुरुष वेश में साथ रहने का निश्चय किया, किन्तु बिंबिसार ने कहा—"प्रिये! तेरा चन्द्रबदन और कामनगारे नयन किसी से छिपने वाले नहीं हैं और विशेषतः तेरी केशराशि, जो पांवों पक पहुंचती है, उसको कैसे छुपाया जाएगा? पथगत बाधाएं भी कम नहीं होंगी। तेरा मेरे साथ आना दोनों के लिए बाधा उपस्थित करने वाला होगा।"

इस प्रकार कौशलनंदिनी को समझाकर, बिंबिसार वहां से चल पड़े।

प्रवास का यह बहाना बहानामात्र न रहे, यह सोचकर प्रवास के प्रथम तीन दिन तक वे मगध की जनता का दिल पढ़ते रहे। उन्होंने जाना कि जनता प्रसन्न-चित्त है। उन्हें किसी प्रकार की शिकायत नहीं है।

यह जानकर मगधपति को बहुत संतोष हुआ और वे चलते-चलते धनंजय के साथ वैशाली पहुंच गए।

कहीं उन्हें बाधा नहीं आई। वे सीधे सप्तभूमि प्रासाद में न पहुंचकर, एक पांथशाला में ठहरे।

स्नान, भोजन आदि से निवृत्त होकर धनंजय सप्तभूमि की हलचल देखने के लिए अकेला गया। श्रेणिक उस छोटी-सी पांथशाला में विश्राम करने लगा।

जिसके चरणों तले मगध का साम्राज्य है, जिसके खजाने में अपार सम्पत्ति पड़ी है, जिसके भवन में सुख-सुविधाओं के सारे साधन उपलब्ध हैं, जिसके चरण-स्पर्श के लिए कौशलनंदिनी जैसी रूपवती और कमनीय रमणी अपने आपको धन्य मानती है, जिसकी पाकशाला में प्रतिदिन हजारों-हजारों व्यक्ति भोजन करते हैं, जिसके प्रत्येक वचन को पालने के लिए हजारों सेवक तत्पर रहते हैं, वह मगधेश्वर श्रेणिक आज अकेला एक छोटी-सी पांथशाला की छोटी कुटीर में सो रहा है।

क्यों?

जीवन के प्रथम प्रणय की विजेता रमणी के लिए ही तो!

एक स्त्री के लिए पुरुष को अपने गौरव को कितनी सीमा तक त्यागना पड़ता है! किन्तु बिंबिसार के मन में ऐसे विचार आते ही नहीं थे। उसके मन में केवल एक ही बात आ रही थी—"आम्रपाली बाहर से लौट आई होगी या नहीं? प्रियतमा के हृदय में मेरा स्थान वही होगा या नहीं? मधुर मिलन की कविता पुनः गूंजेगी या नहीं? इन प्रश्नों से वह स्वयं आत्म-विभोर हो रहा था। वह भूल गया था कि वह एक सामान्य श्रेणिक नहीं, मगध का अधिपति बिंबिसार श्रेणिक है।

आम्रपाली की स्मृति के साथ-साथ उसके मन में नंदा की स्मृति भी उभर आई थी···परन्तु वहां का कोई समाचार आज तक प्राप्त नहीं हुआ था। स्वयं ने भी तो समाचार प्राप्ति का कोई प्रयास नहीं किया था। उसके मन में यह संशय भी था कि प्रसूति में मां और बालक दोनों मृत्यु के ग्रास बन गए होंगे···किन्तु यदि ऐसा होता तो सामाचार अवश्य आता···आदि-आदि।

इस प्रकार अनेक विचारों, चिन्ताओं और प्रश्नों के मध्य मगधेश्वर अपना भान भूल जाता था।

इतने में धनंजय वहां आ पहुंचा। उसने आते ही कहा—"महाराज! यह क्या? बिना बिछाए ही···?"

"अच्छा, तू आ गया!" यह कहकर श्रेणिक उठ बैठे और कहा—"एक ब्राह्मण पथिक को धरती ही शय्या रूप होती है···तूने क्या किया?"

"देवी आम्रपाली को लौटे चार दिन हुए हैं। आपके आगमन के समाचार सुनकर माध्विका बहुत प्रसन्न हुई है।" धनंजय ने कहा।

"देवी···?"

"मैं केवल माध्विका से ही मिला था···माध्विका ने आपका पत्र देवी को दे दिया था···पढ़कर वे चिंतित हो गयीं। परन्तु···।"

"क्या···?"

माध्विका ने कहा कि देवी के हृदय में अपने प्रियतम के प्रति वही प्रेम है। किन्तु नारी के हृदय में छुपे अभिमान के कारण उन्होंने आपको कभी संदेश नहीं भेजा। वे मन-ही-मन जलती हैं। मन की वेदना को शांत करने के लिए ही देवी नृत्य, संगीत में रस ले रही हैं···राजकार्य में भी सक्रिय भाग लेती हैं और···"

"बोल, बोल···"

"क्या कहूं महाराज!···माध्विका कह रही थी कि देवी आपको भूलने के अथक प्रयास कर रही हैं और इसलिए मैरेय का पान भी करती हैं।"

बिंबिसार ने मन-ही-मन कहा—'अभिमानिनी प्रिया!' फिर पूछा—"धनंजय! माध्विका ने और क्या कहा?"

"आज सायं देवी ऋतुस्नाता होंगी···आज किसी से नहीं मिलेंगी···किन्तु कल आप विदेह देश के ज्योतिषी बनकर आएं···माध्विका भेंट करा देगी।"

"नहीं, हमें सायंकाल ही जाना है···यहां आने के बाद मैं उससे मिलने की प्रतीक्षा में एक क्षण भी विलम्ब करना नहीं चाहता।" कहकर बिंबिसार खड़ा हुआ।

"महाराज! माध्विका ने कल आने के लिए ही विशेष बल दिया है···देवी आज किसी से नहीं मिलेंगी···मिलने के लिए आने वालों से भी वह चार दिनों से नहीं मिल रही हैं।"

"अरे! हम अपना असली परिचय देकर जाएं तो! आज ही माध्विका जाकर देवी से कहेगी कि आपके जयकीर्ति आए हैं।"

"जैसी आपकी इच्छा।" अन्यमनस्कता से धनंजय बोला।

सायंकाल दोनों सप्तभूमि प्रासाद में गए···प्रवेश में कोई कठिनाई नहीं आई···किन्तु निचले भाग के मुख्य प्रबन्धक ने इतना-सा कहा—"महाराज! देवी को आशीर्वाद देने का समय प्रातःकाल होता है···आपको दान-दक्षिणा भी प्रातःकाल ही मिलेगी।"

धनंजय बोला—"देवी की आज्ञा से ही हम अभी आए हैं। आप माध्विका बहन को बुलाएं। वे हमें पहचानती हैं।"

"ओह! आज मध्याह्न में भी आप ही आए थे। क्यों?"

"हां, और हमें अभी आने के लिए कहा था।" धनंजय ने कहा।

प्रबंधक ने एक दासी को भेजकर माध्विका को बुलाया। एकाध घटिका के पश्चात् माध्विका दो परिचारिकाओं के साथ वहां आ पहुंची। दोनों ब्राह्मण वेशधारियों का स्वागत किया, पुष्पहार पहनाए और बोली—"महात्मन्! आप मेरे साथ चलें, देवी स्नानगृह में हैं···आपसे मिलने के लिए आतुर हैं।"

प्रबन्धक आश्चर्य से देखने लगा। माध्विका दोनों को सप्तभूमि प्रासाद की छठी मंजिल पर ले गयी और देवी के विशेष कक्ष में बिठाकर धनंजय से बोली—"मैंने देवी से आपके आगमन की बात कही, तब पहले तो देवी प्रसन्न हुईं, फिर उनमें अभिमान की रेखा उभरी, पर अन्त में देवी ने स्वतः कहा—'वे कहां हैं?' मैंने कहा—'किसी पांथशाला में···' तत्काल देवी ने मुझे उपालम्भ दिया। आप अभी आ गए अच्छा ही हुआ।"

बिंबिसार ने पूछा—"माधु! देवी कुशल तो हैं न?"

"प्रतिदिन से आज विशेष प्रफुल्लित हैं, परन्तु···।"

"क्या?"

"आप दोनों यह वेष दूर कर दें···मैं दूसरे उत्तम वस्त्र ले आती हूं। यहां कोई भय नहीं है।"

लगभग एकाध घटिका के बाद बिंबिसार उत्तम वस्त्र धारण कर तैयार हो गया। उसने अपनी राजमुद्रिका धारण की। माध्विका अनेक अलंकार भी ले आयी। उन्हें बिंबिसार ने धारण किया। घटिका पहले का ब्राह्मण अपने तेजस्वी रूप में आ गया।

"नीले रंग की किनारी वाली श्वेत धोती···हरित रंग का उत्तरीय··· चमकीले कौशेय की शोभा और बिंबिसार के बदन पर सदा का तेज!

माध्विका मुग्ध नेत्रों से महाराज को देखती रही। बिंबिसार ने कहा—"देवी स्नानगृह से कब निकलेंगी?"

"आप तो जानते ही हैं कि उनको स्नान में बहुत समय लगता है। फिर अभी आपके आगमन की बात भी मैंने उनसे कही नहीं है।"

"तो उन्हें बता तो दे···"

"नहीं, मैं चाहती हूं कि आप अकस्मात् उनके सामने प्रकट हों, तभी विशेष विस्मयजनक होगा।"

"तो मेरी प्रिय वीणा···।"

"मैं ले आती हूं···देवी ने उसे अपने शयनकक्ष में ही रखा है···कभी-कभी बजाती भी हैं।"

बिंबिसार का मन ये शब्द सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह बोला—"मैं ही तेरे साथ देवी के शयनगृह में आता हूं।"

बिंबिसार और माध्विका देवी के शयनगृह में आए।

बिंबिसार ने देखा, वही शयनकक्ष, वही रौनक, वही माधुरी, दीपमालिकाओं का सुगन्धित प्रकाश, दीपदान में से निकलती दशांग धूप की सुगन्ध···दीवार के चित्र। हां, इनमें कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ था। देवी के अनेक तात्कालिक चित्र वहां टंगे थे। बिंबिसार ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई···अरे! पद्मरानी का चित्र कहां है? उसने माध्विका से पूछा—"माधु! पद्मरानी···?"

"महाराज! आपकी वह कन्या अति सुन्दर थी···मां से भी ज्यादा सुन्दर! किन्तु अत्यन्त व्यथित हृदय से उसका त्याग करना पड़ा है···उसकी कोई भी स्मृति यहां नहीं रखी है···क्योंकि यदि देवी अपनी स्मृति को न रोक सकें और उसे देखने निकल पड़ें तो आपत्ति आ जाए, यही ज्योतिषी का कथन था।" माध्विका ने कहा।

"ओह! परन्तु अब वह कहां है, यह तो तू जानती ही होगी?"

"हां, महाराज! परन्तु आपको भी मैं बता सकूं, यह स्थिति नहीं है। विपत्ति आपको भी भोगनी पड़े···इसलिए।"

"ओह! नियति का कैसा विचित्र विधान! माता-पिता अपनी सन्तान को देख नहीं सकते···खिला नहीं सकते···अपने हृदय के प्रेम से उसे भिगो नहीं सकते। क्या इससे भी बड़ा कोई अभिशाप माता-पिता को हो सकता है?" बिंबिसार ने वेदना भरे स्वरों से कहा।

माध्विका ने बिंबिसार को एक आसन पर बिठाते हुए कहा—"महाराज! अब देवी स्नानगृह से निकलेंगी···आप यहीं बैठे रहें···मैं उनके वस्त्र रखकर आती हूं।"

"अच्छा! पर तू मेरी वीणा तो यहीं रखकर जा।"

"जैसी आज्ञा।" कहकर माध्विका ने महाबिंब वीणा लाकर बिंबिसार के पास रख दी और स्वयं नमन कर चली गयी।

बिंबिसार ने देखा, वीणा का कोई तार टूटा हुआ नहीं था। वीणा स्वच्छ थी···कोई रजकण उस पर नहीं था···प्रियतम की स्मृति को कितनी सजगता से सम्भालकर रखा है!

बिंबिसार ने वीणा पर स्वर-संधान प्रारम्भ किया।

देवी आम्रपाली स्नानगृह से निकलकर पास वाले वस्त्रगृह में गयी। उसके केश खुले थे और एक दासी उसको उठाए पीछे-पीछे चल रही थी। उसके नयनों में वही चमक-दमक थी, उसकी काया में वही यौवन का उभार था और उसके रूप में वही तेज था।

उस समय वह समस्त चिन्ताओं से मुक्त किसी दिव्य योगिनी-सी दिख रही थी। माध्विका ने वस्त्र अलंकारों के थाल व्यवस्थित कर रखे थे। देवी आम्रपाली एक विशाल दर्पण के सामने पड़े आसन पर बैठ गयी।

वसंतिका और रोहिणी देवी का केश मार्जन करने लगीं और अकस्मात् पास वाले कक्ष से वीणा का अति हृदयवेधक स्वर आम्रपाली के कानों से टकराया।

वह चौंकी···माध्विका की ओर देखकर बोली—"वीणा कौन बजा रहा है ?"

"सम्भव है, आचार्य पद्मनाभ आए हों ?"

"किन्तु आज तो मैं किसी से मिलने की स्थिति में नहीं हूं···"

"कदाचित् आचार्य को ध्यान न रहा हो···"

"ओह !" कहकर आम्रपाली ने दर्पण में देखा।

अचानक उसका हृदय आंदोलित हो उठा।

एक परिचारिका पैरों के किनारे आलक्तक लगा रही थी और दूसरी परिचारिका कंचुकीबन्ध बांध रही थी। आम्रपाली ने चौंककर कहा—"माधु···"

"क्यों, दवि !"

"महाराज की वीणा कौन बजा रहा है ? आचार्य पद्मनाभ ? नहीं, नहीं···। आचार्य की अंगुलियों में वीणा के तार पर इस प्रकार नृत्य करने की शक्ति नहीं है।"

वीणा पर दो स्वरों की माधुरी खिल उठी।

आम्रपाली अचानक उठ खड़ी हुई और बोली—"माधु···"

"जी।"

"महाराज आए हैं ?"

"यह तो···।"

"जा देख···महाबिंब वीणा को कौन बजा रहा है ?"

"जी।" कहकर माध्विका आगे बढ़े, इतने में ही आम्रपाली बोल पड़ी—"खड़ी रह···मेरा कमरपट्टक ला···शीघ्रता से अलंकार पहना। रोहिणी ! केशमार्जन रहने दे···जैसा है वैसा केश-कलाप लेकर···।"

इतने में ही महाबिंब वीणा पर तीन ग्राम का स्वर आंदोलन होने लगा। आम्रपाली का हृदय असह्य हो उठा। उसकी जिज्ञासा तीव्र हुई···

उसका मन बोल उठा—नहीं-नहीं···आचार्य पद्मनाभ नहीं···यह मेरे प्राणप्रिय स्वामी की कला प्रतीत होती है। वह अत्यन्त अधीर हो गयी। आज तक किसी को भूलने का अभिनय करने वाली नारी, आज स्वयं के अभिनय की अकुलाहट अनुभव करने लगी।

हृदय अधीर था···मन अधीर था।

इस अधीरता में ही अलबेली का रूप सौ गुना अधिक खिल उठा···दर्पण के सामने वह मुग्ध नेत्रों से देखती रही।

६४. प्रिया और प्रियतमा

अनेक दिनों के बाद बिंबिसार आज वीणावादन की मस्ती में समय और स्थान को भी भूल बैठे थे।

तीन ग्रामों पर छिड़ने वाला वीणा का कल्लोल सप्तभूमि प्रासाद की छठी मंजिल पर ही नहीं, सारे भवन को अपने अधिकार में ले रहा था।

दास-दासी अवाक् बन गए थे···कुतूहलवश भी कोई छठी मंजिल पर जाने का साहस नहीं कर पा रहा था।

राग में अन्तर् की अदृष्ट वेदना मूर्त्त हो रही थी···मानो विरहाग्नि में जलती हुई वीणा लाख-लाख आंसू बहाकर अन्तर् की अग्नि की आंच को मंद करने का प्रयत्न कर रही थी।

आम्रपाली का अधीर मन वस्त्र-सज्जा की ओर अपना ध्यान नहीं दे पाया। आम्रपाली अपने शयनकक्ष में जाने के लिए आकुल-व्याकुल हो रही थी।

वसंतिका आम्रपाली का उत्तरीय ठीक कर रही थी, परन्तु आम्रपाली ने उत्तरीय को ऐसे ही धारण कर लिया।

शिशिरा वज्र के बाहुबंध बांधने का उपक्रम कर रही थी, परन्तु आम्रपाली ऐसे ही चल पड़ी।

रोहिणी बोल उठी—"देवि! अभी अंजन शेष है···अलंकार···"

बीच में ही आम्रपाली ने कहा—"रहने दे। क्षुद्र पदार्थ नारी को आकृष्ट नहीं करते।"

इतना कहकर आम्रपाली वस्त्रखंड से बाहर निकली। माध्विका उसके पीछे-पीछे चल रही थी। शयनगृह के द्वार के निकट आते ही आम्रपाली बोली—"माधु! गुलाबी शीतकाल का प्रारम्भ हो गया है। ऊष्मा और प्रेरणा का अमृत मैरेय ले आना।"

"जी, परन्तु···"

माध्विका का वाक्य पूरा नहीं हुआ। आम्रपाली खंड में प्रविष्ट हो चुकी थी। वह माध्विका को कुछ कहे, उससे पूर्व ही उसकी दृष्टि वीणा-वादन में मस्त बने हुए प्रियतम की ओर चली गयी। तीन वर्षों का वियोग! उस दिन यह प्रियतम जयकीर्ति था···और आज मगधेश्वर।

उसके चरण कुछ आगे बढ़े, पर वे रुक गए। मन में अधीरता उभर रही थी और त्वरित गति से प्रियतम से मिलने के लिए हृदय प्रकम्पित हो रहा था··· परन्तु न जाने कहां से विराट् संकोच दोनों चरणों के लिए बेड़ी बनकर आ गया था।

वीणा के तीन ग्रामों पर थिरकती रागिनी आम्रपाली के हृदय को मथ रही थी।

इस महान् साधक के बाहुबंधन में बंध जाने की लालसा उभर-उभरकर हृदय को प्रकम्पित कर रही थी।

परन्तु यह संकोच कैसा ? जब मिलन के मधुर क्षण निकट आते हैं, क्या तभी तीन-तीन वर्षों तक पुष्ट होने वाला अभिमान अपनी समग्र शक्ति से जागृत हो जाता है।

मगधेश्वर की पलकें मुंदी हुई थीं। क्योंकि वे विरह की रागिनी में तन्मय हो गये थे।

संकोच का विराट् भार होने पर भी, मन में अभिमान का आदेश गुंजित रहने पर भी, देवी आम्रपाली मानो स्वयं को कोई खबर ही न हो, इस प्रकार प्रियतम की ओर धीरे-धीरे चलने लगी। उसके नयन प्रियतम की सौम्य, सुन्दर और भव्य मुद्रा पर स्थिर थे। ओह ! आज रक्षराज स्वयं चलकर सामने आया है, फिर यह संकोच क्यों ?

राग में मस्त बने हुए श्रेणिक के नयन खुले···खुलते ही उसकी दृष्टि थोड़ी दूरी पर अवाक्, स्थिर और गम्भीर भाव से खड़ी प्रियतमा पर पड़ी।

उसी क्षण उसने वीणा को एक ओर रख दिया—नयन दीप्त हो गए···वह अचानक खड़ा हो गया। वह तेजी से कदम उठा सामने गया। आम्रपाली की दृष्टि स्वतः ही नीचे झुक गयी और किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी खड़ी रही। वह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि उसे वहां से चले जाना चाहिए या उल्लास व्यक्त करने के लिए प्रियतम से लिपट जाना चाहिए।

जब व्यक्ति आशा और अभिमान के बीच फंस जाता है तब मन की स्थिति विचित्र बन जाती है। आम्रपाली कुछ भी निर्णय करे, उससे पूर्व ही बिंबिसार आगे आया और प्रियतमा को मुग्ध नजरों से देखता रहा। आम्रपाली नजरों में समा गयी। माध्विका अभी भी द्वार के पास ही खड़ी थी। वह तत्काल चली गयी। द्वार पर पड़ा सोनेरी परदा हंस रहा था।

बिंबिसार ने पूछा—"प्रिये ! मुझसे कोई अपराध हुआ है ?"

आम्रपाली ने बाहुपाश से मुक्त होने का प्रयत्न नहीं किया। उसने अपनी मुंदी आंखें भी नहीं खोलीं। कम्पित अधर शांत हो गए थे। आज तीन-तीन वर्षों के दीर्घ अन्तराल के बाद···। हृदय की धड़कन बढ़ गयी थी।

"पाली ! अनजान में यदि कोई अपराध हुआ हो तो तू अपने जयकीर्ति को क्षमा कर दे। बोल, तूने मेरे चार-चार संदेशों का कोई उत्तर नहीं दिया···मेरा हृदय कितनी पीड़ा का अनुभव कर रहा था। कर्त्तव्य के पालन में प्रिय से प्रिय वस्तु का भी त्याग करना होता है।"

आम्रपाली मौन रही। उसके दोनों हाथ प्रियतम की गरदन की माला बने हुए थे और वे कुछ आकांक्षा लिये हुए थे। नारी की अव्यक्त आकांक्षा···।

इतने में ही द्वार के परदे के पीछे से माध्विका का मंजुल स्वर सुनाई दिया—"महादेवि !"

आम्रपाली तत्काल प्रियतम का हाथ पकड़कर शय्या की ओर जाती हुई बोली—"अन्दर आ-जा माधु !"

माध्विका ने परदा हटाकर कक्ष में प्रवेश किया। उसके पीछे-पीछे दो परिचारिकाएं आ रही थीं···एक के हाथ में मैरेय का स्वर्ण कुम्भ था···दूसरी के हाथ में मैरेयपान के पात्र और पुष्पमालाएं थीं।

माध्विका ने सारी सामग्री एक त्रिपदी पर रखवा दी।

बिंबिसार को लेकर आम्रपाली एक गद्दी पर बैठी थी। वीणा कुछ दूर पड़ी थी···माध्विका ने निकट आकर झुककर कहा—"देवि ! मैरेय···।"

"भोजन के थाल तैयार कर पास वाले खंड में ले आना।"

'जी' कहकर माध्विका चली गयी। दोनों परिचारिकाएं भी खंड से बाहर निकल गयीं। द्वार पर सुन्दर और कलात्मक सुनेरी परदा लटक रहा था।

बिंबिसार ने आम्रपाली का एक हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर कहा—"प्रिये ! जब तक तू मेरे अपराध को नहीं बताएगी अथवा अपने रोष का कारण नहीं कहेगी, तब तक मन अशांत ही रहेगा।"

आम्रपाली ने कहा—"नंदा के साथ विवाह करके भी आपने मुझे नहीं बताया···क्या आपको यह संदेह था कि मैं इसमें बाधक बनूंगी ?"

बिंबिसार जोर से हंस पड़ा। उसने हंसते-हंसते कहा—"प्रिये ! जीवन में ऐसा समय भी आता है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती और ऐसे-ऐसे अकस्मात् भी सृष्ट हो जाते हैं कि जिनका स्वप्न भी नहीं लिया जा सकता··· कहां उज्जयिनी···कहां मगध···कहां वैशाली···कहां नंदा···कहां तू और कहां मैं···? परन्तु यहां से वहां जाने के पश्चात्···" बिंबिसार ने उज्जयिनी में घटित सारी घटना संक्षेप में बताई।

"नंदा का क्या हुआ ?"

"उसके कोई समाचार नहीं हैं, परन्तु मुझे लगता है कि प्रसूति के समय कुछ अनिष्ट घटित हुआ है···अन्यथा पिता तुल्य धनपत सेठ संदेश भेजे बिना नहीं रह सकते।"

"क्या राजगृही पहुंचने के पश्चात् आपने कोई सन्देश भेजा था ?"

"नहीं, प्रिये ! मैं ऐसे झंझट में फंस गया था कि···"

बीच में ही आम्रपाली बोल पड़ी—"मेरे रोष का कारण पुरुष के इसी

स्वभाव में छुपा हुआ है। आपने मुझे याद नहीं किया, नंदा को भूल गये··· और···?"

बीच में ही बिंबिसार ने कहा—"प्रिये ! मैं किसी को भी भूला नहीं। यदि तुझे भूलता तो यहाँ क्यों आता ? परन्तु यदि मैं सारी बात बताऊंगा तो तुझे आश्चर्य होगा। इन दो वर्षों में मैं केवल शस्त्रों से ही परिचित रहा···भवन में नवयौवन में झूलती पत्नियों से भी मिलने नहीं गया। कर्त्तव्य का मार्ग इतना कठोर होता है कि मनुष्य अपने सुख को भी भूल जाता है।"

आम्रपाली कुछ कहे, उससे पूर्व ही बाहर से माध्विका की आवाज आयी। आम्रपाली ने कहा—"अन्दर आ जा।"

माध्विका ने अन्दर आकर भोजन के थाल की बात बतायी।

दोनों खड़े हुए और माध्विका के साथ-साथ गए। भोजन से निवृत्त होकर दोनों पुनः शयनकक्ष में आकर बैठ गए।

माध्विका मैरेय के पात्र, मुखवास का थाल आदि रखकर चली गयी।

आम्रपाली ने मैरेय के दो पात्र भरे और एक मगधेश्वर के सामने रखा।

बिंबिसार बोला—"तू तो जानती ही है कि मुझे कृत्रिम नशा प्रिय नहीं है। किन्तु मैं आज तेरा अपमान नहीं करूंगा।" कहकर उसने मैरेय का पात्र हाथ में ले लिया···दूसरा पात्र आम्रपाली ने लिया···तत्काल बिंबिसार बोल उठा—"यह क्या ? तुझे तो ऐसे पीने के प्रति नफरत थी···।"

"हां, अभी भी नफरत है···फिर भी नियमित रूप से मैरेयपान करती हूं।"

"यह उचित नहीं है।"

"आपकी दृष्टि में यह उचित नहीं है। परन्तु बिना नशे का जीवन मुरझाया हुआ-सा लगता है। मनुष्य को जब वास्तविक नशा प्राप्त नहीं होता तब वह कृत्रिम नशे की शरण में जाता है।" कहकर आम्रपाली ने एक ही श्वास में मैरेय का पात्र खाली कर डाला।

बिंबिसार ने केवल एक घूंट पीकर मैरेय का पात्र रख दिया।

तत्काल आम्रपाली बोली—"क्यों ? बिना नशे का जीवन आपको···।"

"प्रिये ! मेरा नशा मेरे भीतर की स्मृतियों में भरा पड़ा है। ऐसे कृत्रिम नशे की आवश्यकता नहीं रहती।"

"स्मृतियों का नशा।" उपेक्षा भरे हास्य से आम्रपाली बोल पड़ी।

"तूने समझा नहीं।"

"समझ गयी···" स्मृतियों का नशा पुरुषों के लिए कैसा होता है, मैं नहीं समझ सकती···किन्तु स्त्रियों के लिए स्मृतियों का नशा आग जैसा बन जाता है।"

"प्रिये ! मेरे प्रति जो तेरे मन में संशय है, उसे तू दूर करेगी तो तू समझ सकेगी कि स्मृति आग नहीं है, अमृत है।"

"जाने भी दो···मिलन के क्षणों में विवाद शोभा नहीं देता···अच्छा, आपका स्वास्थ्य कैसा है ?"

"तेरी स्मृतियों ने मुझे बचाए रखा है। मुझे विशेष बनाया है।"

"आप···।"

"अरे, कहते-कहते रुक क्यों गयी ?"

"मैंने सुना है कि आप वैशाली को नष्ट करना चाहते हैं ?"

"हां, मगधेश्वर की इच्छा ऐसी है। परन्तु आम्रपाली के जयकीर्ति की ऐसी कोई इच्छा नहीं है। मैं यहां वैशाली की जानकारी लेने नहीं आया हूं। मैं तुझे साथ ले जाने आया हूं।"

"कहां ?" जानते हुए भी आम्रपाली ने पूछा।

"प्रिये ! तुझे याद नहीं ? तूने मुझे एक बार अपने माता-पिता की बात कही थी।"

"स्वप्न किसी के भी न साकार हुए हैं और न होंगे।" कहकर आम्रपाली मैरेय का पात्र भरने लगी।

बिंबिसार ने कहा—"प्रिये ! मैं इस विषय से मुक्त रहना चाहता हूं।"

"कौशलनंदिनी नहीं पीती ?"

"पीती है···मेरी सभी रानियां पीती हैं···परन्तु तू पीए, यह मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"तो हम दोनों पीएं।"

बिंबिसार ने कहा—"तू जी भरकर पी ले। मैं इतना कठोर नहीं हूं कि तुझे पीते न देख सकूं। अच्छा, कल आऊंगा।"

"प्रियतम !" कहकर आम्रपाली ने मैरेय का पात्र फेंकते हुए कहा—"मगधेश्वर का रोष मैं सहन नहीं कर सकती। मैं आज से आपके सामने मैरेयपान नहीं करूंगी।"

"इसका अर्थ है···मुझे सदा तेरे सामने ही रहना पड़ेगा ?"

"इसमें कोई दोष है ?"

"नहीं। इसलिए मैं तुझे लेने आया हूं। स्त्रियां वेदना व्यक्त कर सकती हैं। पुरुष वेदना को पी जाता है। मैं सत्य कहता हूं, मैं तुझे कभी नहीं भूल सकता। तेरे बिना मुझे अपना जीवन रसहीन और अपूर्ण लगता है।"

"आम्रपाली आपकी छाया बन सकती है। जनपदकल्याणी कहीं जा नहीं सकती।"

"प्रिये ! लिच्छवियों ने तेरी भावना को पीस डाला है। उन्होंने तेरे पर

असह्य अत्याचार किया है। लिच्छवियों के अन्याय का यही एक प्रतिकार है। तू मगध की महारानी बनकर रह। एक नारी को मनोरंजन का खिलौना बनाकर रखने वाले लिच्छवियों के प्रति मेरे प्राणों में भयंकर नफरत है। यदि तू वैशाली में नहीं होती तो···।"

"तो क्या ?"

"एक आदर्श नारी के इस भयंकर अपमान का बदला मैं अपनी तलवार से लेता···तू इस नरक से बाहर निकल जा। तेरी शोभा यहां नहीं, मेरे हृदय सिंहासन पर है।" कहकर बिंबिसार ने आम्रपाली को हृदय से लगा लिया।

आम्रपाली कुछ भी नहीं बोली। वह अपने प्रियतम के आश्लेष से उत्पन्न आनन्द की ऊर्मियों में खो गई। दो क्षण मौन रहकर वह बोली—"प्रियतम ! आप घटिका तक यहां बैठें, मुखवास लें। मैं वस्त्रगृह में जाकर आती हूं।"

बिंबिसार के बाहुपाश से मुक्त होकर आम्रपाली कक्ष के बाहर निकल गई।

बिंबिसार पुनः शय्या पर बैठ गया। उसने सोचा, यदि आम्रपाली साथ में चलेगी तो कल ही यहां से राजगृही चला जाना है।

लगभग दो घटिका के बाद आम्रपाली सोलह शृंगार कर शयनकक्ष में आई। उसे उस समय देखकर बिंबिसार अवाक् बन गया।

और···

रात्रि कब पूरी हुई, दोनों को कोई भान नहीं रहा। किन्तु इस मिलन की पृष्ठभूमि में नृत्य करने वाला प्रकृति का संकेत कुछ अनोखा था। तीन वर्ष के पश्चात् होने वाले इस मिलन की मधु रजनी मातृत्व का वरदान देने वाली होगी, ऐसी कल्पना दोनों में से किसी को नहीं थी। आम्रपाली ऋतुस्नाता थी।

इस प्रकार आनन्द ही आनन्द में दस दिन बीत गए। जो आम्रपाली अनेक मुलाकातियों से मिलती थी, वह आज अपने शृंगार भवन से बाहर ही नहीं निकलती।

प्रियतम और प्रिया का विश्व केवल सप्तभूमि प्रासाद की छठी मंजिल में समा गया था।

बारहवें दिन प्रातःकाल ही आम्रपाली को वमन हुआ···बार-बार जी मिचलाने लगा···वह समझ गई···उसने मगधेश्वर के समक्ष अपना संशय प्रकट किया। बिंबिसार बहुत प्रसन्न होकर बोला—"प्रिये ! यदि तेरा संशय ठीक होगा तो वह मगध का युवराज बनेगा···मगध का भावी सम्राट होगा। अब हमें शीघ्र ही राजगृही की ओर प्रस्थान कर देना चाहिए।"

"महाराज ! यह मेरे लिए शक्य नहीं है।"

"तेरे लिए अशक्य क्यों ? पति के घर जाना अनुचित नहीं होता। अन्याय नहीं होता।" बिंबिसार ने कहा।

"प्रियतम ! मैं आपको कैसे समझाऊं ? मैंने वैशाली के पवित्र जल का स्पर्श कर प्रतिज्ञा ली है···यदि लिच्छवी जान लेंगे तो वे आपको सुखपूर्वक राज नहीं करने देंगे।"

"प्रिये ! लिच्छवियों का मुझे तनिक भी भय नहीं है। तू यदि आज्ञा दे तो मैं दो महीनों में वैशाली को बरबाद कर दूं और तुझे प्रतिज्ञा की चिन्ता क्यों है ? आवेश या बलात् थोपे हुए नियमों का पालन करना उचित नहीं है।"

आम्रपाली समझी नहीं।

बिंबिसार ने तीन दिन तक उसे समझाने का प्रयास किया। किन्तु आम्रपाली वैशाली का त्याग करने के लिए तैयार नहीं हुई। उसके मन में एक ही भय था कि यदि मैं वैशाली का त्याग कर राजगृही चली जाऊंगी तो मगधेश्वर की मागधी सेना वैशाली को नष्ट-भ्रष्ट कर देगी। मैं वैशाली की कन्या हूं। केवल अपने स्वार्थ के लिए मैं अपनी जन्मभूमि को बरबाद कैसे होने दूं।

परन्तु यह भय उसने बिंबिसार के समक्ष प्रकट नहीं किया।

दो दिन और बीत गए।

धनंजय बहुत शीघ्रता कर रहा था। बिंबिसार भी समझता था कि कर्त्तव्य की अवगणना नहीं की जा सकती। उसने प्रिया से विदाई लेते हुए कहा—"प्रिये ! बहुत प्रयास करने पर भी तू समझ नहीं सकी, इसका मुझे दुःख है। फिर भी मुझे अपने उत्तरदायित्व के कारण जाना पड़ रहा है।"

आम्रपाली भी जानती थी कि मगधेश्वर रुक नहीं सकते। वह बोली—"अब आपके दर्शन···?"

"मैं अभी बिना निमन्त्रण तेरे पास आया हूं···अब तुझे भी बिना निमन्त्रण राजगृही आना है। यदि तू पुत्र का प्रसव करेगी तो वह मगध का भावी सम्राट होगा। मेरे इस वचन को तू भूल मत जाना।" बिंबिसार ने कहा।

संध्या के पश्चात् बिंबिसार और धनंजय ने वैशाली का त्याग कर दिया।

वहां से प्रस्थान करते समय बिंबिसार का चित्त आम्रपाली के नकारने से व्यथित हो रहा था और उसने यह निश्चय कर लिया था कि अब आम्रपाली से तभी मिलना है जब वह स्वयं चलकर राजगृही आए।

६५. काल की क्रीड़ा

काल का कहीं किनारा नहीं। वह अनन्त है। काल के विराट् प्रांगण में मानव केवल एक क्षुद्र जन्तु के समान है। मानव का परिवार भी निरी आंखों से दिखाई नहीं देता। मानव का इतिहास भी क्षुद्र लगता है।

मानव काल की महागति को रोकने का प्रयास करता रहा है। परन्तु काल

उससे कभी नहीं रुका। कारण यह है कि काल समझता है कि मेरा एक ही अट्टहास होगा कि काल को रोकने का प्रयास करने वाले चक्रवर्ती भी मनुज द्वारा सर्जित क्षुद्र इतिहास की परतों के नीचे दब जाते हैं। सागरोपम की आयुष्य वाले व्यक्ति भी काल की एक फूंक के समक्ष क्षुद्र जन्तुओं की भांति धरती के एक कोने में पड़े रह जाएंगे।

काल को कोई रोक नहीं सकता···काल का कोई अंकन नहीं कर सकता··· काल के साथ कोई हेराफेरी नहीं कर सकता।

देवी आम्रपाली और मगधेश्वर के तीन वर्ष पश्चात् मिलन के समय बीते तीन वर्ष बहुत कठोर थे···परन्तु उसके बाद जो बारह वर्ष बीते वे मानो नेत्र पल्लव के बारह बार के फटकार के समान अतिशीघ्र बीत गए।

बिंबिसार का निश्चय अटल था। उसने किसी भी स्थिति में वैशाली जाकर प्रिया से मिलने का मन ही नहीं किया···आम्रपाली को क्षणिक दुःख हुआ भी पर वह पुत्र-जन्म के योग से दुःख को भूल गई।

उसने पुत्र-जन्म की बधाई देने के लिए मगधेश्वर के पास दो दासियों को भेजा था। मगधेश्वर ने यह समाचार सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की और दोनों दासियों को रत्नों से मंडित कर लौटा दिया।

आम्रपाली ने कहलवाया था कि आप जैसे ही सुन्दर, स्वस्थ और तेजस्वी बालक को आशीर्वाद देने आप अवश्य ही एक बार वैशाली आएं।

इसके उत्तर में बिंबिसार ने बताया—"प्रिये! माता और पुत्र का स्वागत मैं यहीं करूंगा। एक पिता चोर की तरह आकर आशीर्वाद दे जाए इससे तो अच्छा यह है कि वह हजारों मनुष्यों के मध्य अपनी पत्नी और पुत्र को हृदय से लगाए।"

इस संदेश से आम्रपाली को सन्तोष नहीं हुआ···उसके भीतर का अभिमान जाग उठा और उसने पुनः वैशाली के कल्याण के लिए अपने सुख और गौरव को भूलने के लिए मन को मोड़ दिया।

फिर तो ज्यों-ज्यों काल बीतता गया, अनेक प्रसंग बनते गए। बिंबिसार संग्रामों में व्यस्त हो गया और मगध साम्राज्य को समृद्ध बनाने में लग गया।

कौशलनंदिनी के प्रति प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर उज्जयिनी का अधिपति चंद्रप्रद्योत राजगृही को जीतने अग्रसर हुआ। परन्तु चतुर वर्षाकार की युक्ति के समक्ष उसे भारी पराजय का सामना करना पड़ा। मगध की सीमा पर ही मालवीय सेना से मुठभेड़ हुई और चंद्रप्रद्योत को खाली हाथ लौटना पड़ा।

बिंबिसार के किरीट पर एक-एक कर अनेक विजय-किलंगियां लगने लगीं।

मगध के आस-पास के दो-तीन छोटे गणतन्त्र क्रुवतः नष्ट हो गए और मगध की छत्रछाया में आ गए।

परन्तु वर्षाकार को सन्तोष नहीं हो रहा था। वह वैशाली गणतन्त्र को नष्ट करना चाहता था, परन्तु बिंबिसार वैशाली की ओर नजर भी नहीं करता था।

वर्षाकार की एक भावना यह भी थी कि शंबुक वन-प्रदेश में रहने वाले राक्षसों को नष्ट कर उस प्रदेश को मगध में मिला देना। यदि ऐसा होता है तो मगध को स्वर्ण आदि की विशाल खानें प्राप्त हो जाएंगी और साथ ही साथ सांग्रामिक व्यूह की दृष्टि से समग्र गंगातट निर्भय बन जाएगा।

परन्तु बिंबिसार ने इस भावना को तनिक भी महत्त्व नहीं दिया। एक बार जो मित्र बन चुका है···जिसने आश्रय दिया है और मगध के लिए सर्वथा निरुपद्रवी है, उसको नष्ट करने का कोई प्रयोजन नहीं।

काल की गति के साथ युद्ध के नगारे गरज रहे थे···साथ ही साथ एक महापुरुष भी समग्र पूर्व भारत को अपनी शांति की पांखों में समेट रहा था।

तथागत गौतम बुद्ध का प्रभाव चारों दिशाओं में सूर्य की प्रखर किरणों के समान व्याप्त हो चुका था।

एक ओर राजाओं के युद्ध चलते और दूसरी ओर अनेक श्रेष्ठ और श्रीमन्त व्यक्ति अपनी समस्त सम्पत्ति भगवान् बुद्ध के चरण-कमलों में न्योछावर कर उपसम्पदा प्राप्त कर रहे थे।

एक ओर युद्ध की चिनगारियां उछल रही थीं।

दूसरी ओर ज्ञान की मशाल द्वारा अज्ञानरूपी अन्धकार को छिन्न-भिन्न किया जा रहा था।

पूर्व भारत के छोटे-बड़े राजपरिवारों में 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का जयघोष गूंज रहा था।

भगवान् पार्श्वनाथ प्रभु के सम्प्रदाय के अन्तिम अवशेषों की प्रकृति से उत्पन्न भगवान् बुद्ध का पंथ, प्रेम और त्याग के मार्ग को प्रशस्त करता हुआ, सभी वर्गों में आदर पा रहा था।

भगवान् बुद्ध अपनी शिष्य-सम्पदा के साथ जहां-जहां विहरण करते, वहां हजारों नर-नारी इस तेजपुंज को नमन करने आते और जाते समय भगवान् बुद्ध के आराधक बनकर जाते।

वैशाली में भी तथागत के पंथ ने बहुत क्रांति कर रखी थी।

श्री पार्श्वनाथ प्रभु के शासन की परम्परा के अनेक अनुयायी तथागत के अनुयायी बन रहे थे।

सिंहनायक जैसे समर्थ जैन व्यक्ति भी भगवान् बुद्ध के मार्ग की ओर आकृष्ट हुए।

जनपदकल्याणी आम्रपाली परम्परा से जैन मतावलम्बी थी, पर वह किसी धर्म-मार्ग में रस नहीं लेती थी···बिंबिसार के जाने के पश्चात् और पुत्र की आशा

से आशान्वित वह पुनः मैरेय, नृत्य और मस्ती में अपनी मनोवृत्ति को स्थापित कर रही थी।

उसने अपने पुत्र के लालन-पालन के लिए दो प्रौढ़ परिचारिकाओं को नियुक्त कर रखा था। और ये दोनों परिचारिकाएं पुत्र अभयजित को प्राणों की तरह संजोए रखती थीं। ये दोनों परिचारिकाएं तथागत के तेजोमय वलय में आ चुकी थीं और जब-जब तथागत वैशाली में आते तब-तब ये दोनों परिचारिकाएं अभयजित को साथ ले दर्शनार्थ जाती थीं। अभयजित के बालमानस पर भगवान् बुद्ध के उपदेशों की छाप पड़ गई थी।

इसके अतिरिक्त अभयजित की शिक्षा के लिए दो आचार्य नियुक्त थे। वे भी बौद्ध धर्मावलम्बी थे, इसलिए शिक्षण में भी बौद्ध संस्कार ही दिए जा रहे थे।

माता को धर्म की ओर देखने का अवसर नहीं था···वह अपनी मनोवेदना को भूल जाने के लिए रंगराग और मस्ती में ही डूबी रहती थी···उसको यह कल्पना भी नहीं थी कि धर्म का आश्रय ही समस्त दुःखों के शमन का उपाय है। आनन्द और मस्ती की शरण तो अस्थायी है।

आम्रपाली ने अपने देह-सौष्ठव को बनाए रखा था। वह बत्तीस वर्ष की होने पर भी देखने वालों को नवयौवना ही प्रतीत होती थी। परन्तु काया की कितनी ही सार-सम्भाल क्यों न की जाए, एक दिन वह टूट ही जाती है। एक आघात, एक आशाभंग या एक चिन्ता का तूफान मनुष्य की काया को जबरदस्त धक्का देता है और वह धक्का कभी विस्मृत नहीं होता।

ऐसा ही एक मर्मवेधी आघात अलबेली आम्रपाली को लगा और वह तिलमिला उठी।

अभयजित ने दसवें वर्ष में प्रवेश किया। आम्रपाली ने सोचा—मैं अपने स्नेह के लिए पुत्र के भविष्य को क्यों नष्ट करूं? पुत्र यदि अपने पिता के पास रहेगा तो मगध का भावी कर्णधार हो सकेगा···पुत्र की कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उसने बिंबिसार के पास एक संदेश भेजा—"अभयजित दस वर्ष का हो गया है। आप आएं और अपने अधिकार को ले जाएं।"

अनेक वर्षों के पश्चात् आम्रपाली का यह संदेश प्राप्त हुआ था। इस संदेश को पाकर बिंबिसार की मुरझाई आशाओं में प्राणों का नव संचार हो गया। परन्तु वह किसी भी स्थिति में वैशाली जा सके, ऐसा अवसर नहीं था। उसने तत्काल प्रत्युत्तर दिया—'प्रिये! पुरुष धैर्य नहीं रख सकता, मैं इस बात को असत्य प्रमाणित करना चाहता हूं। मगध के भावी कर्णधार को लेकर तू स्वयं शीघ्र ही यहां पहुंच जा। यहां आने के बाद यदि तुझे राजगृही में रहना अच्छा

नहीं लगे तो मैं वचन देता हूं कि मैं तुझे रोकूंगा नहीं···तू खुशी से वैशाली लौट जाना।"

यह संदेश पाकर आम्रपाली राजगृही जाने के लिए उतावली हो गई··· परन्तु दूसरे ही क्षण उसने सोचा, यदि वहां जाने पर स्वामी यहां न आने दें··· मैं भी न अड़ सकूं···और यदि ऐसा हो तो वैशाली नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा···नहीं, नहीं···जिस धरती ने मुझे जन्म दिया है, गौरव और सम्मान दिया है, उस धरती के हित के लिए मुझे अपने स्वार्थों को विस्मृत कर देना चाहिए।

ऐसा विचार कर आम्रपाली ने एक दिन शुभ मुहूर्त्त में अभयजित को राजगृही की ओर प्रस्थान करा दिया। उसके साथ दास-दासी भी नियोजित थे।

परन्तु वैशाली और राजगृही के बीच मार्ग में ही मगध देश का भावी कर्णधार अभयजित आत्मा का कर्णधार बन गया।

एक दिन अभयजित ने अपने सभी कर्मकरों के साथ एक स्थान पर रात बिताने के लिए पड़ाव डाला। मस्त अभयजित बालसुलभ स्वभाव के कारण खेलता-खेलता पड़ाव से दूर निकल गया। किसी को इसका ध्यान नहीं रहा··· और वह चलते-चलते एकाध कोस की दूरी पर स्थित एक बौद्ध विहार में जा पहुंचा।

उस समय भगवान् तथागत केवल दो दिन के लिए उस विहार में आए थे। कल वे यहां से विहार करने वाले थे; और यह सुन्दर बालक अपरिचित व्यक्ति की भांति विहार के चारों ओर चक्कर काटने लगा।

एक शिष्य ने उसे देखा। निकट आकर प्रेम भरे स्वर में उसको सम्बोधित कर आनन्द के पास ले गया। उस समय भगवान् तथागत और आनन्द एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठे थे और धर्म-जागरण कर रहे थे।

और इस सुन्दर बालक की ओर देखकर आनन्द ने प्रश्न किया—"भद्र बालक! तू किसको ढूंढ़ रहा है? तेरे माता-पिता कहां हैं?"

अभयजित ने अतिमधुर बोली में कहा—"मैं अपने माता-पिता को नहीं ढूंढ़ रहा हूं···।"

आनन्द ने बालक के मस्तक पर हाथ रखकर प्रसन्नचित्त से कहा—"तब तो क्या तू भटक गया है?"

"जी, मैं बोधिसत्त्व को ढूंढ़ने निकला हूं और निर्वाणरूपी माता के पास जाना चाहता हूं।"

दस वर्ष के बालक के मन में ऐसे उत्तम विचार?

आनन्द आश्चर्य से भर गया। शांत भाव में स्थित गौतम बुद्ध ने कहा— "आनन्द! माता का अपार वैभव इसे प्रिय नहीं है। पिता के साम्राज्य की इसे

चाह नहीं है। यह स्वयं ज्ञानी है। इसकी भावना का सत्कार करना तेरा कर्त्तव्य है।"

"भगवन्! इस बालक के माता-पिता···?"

"वैशाली की जनपदकल्याणी आम्रपाली इसकी माता है···मगध के सम्राट श्रेणिक इसके पिता हैं।" भगवान् ने कहा और बालक को निर्मल दृष्टि से देखा।

अभयजित भगवान् बुद्ध के चरण-कमलों में लेट गया और भगवान् ने अपना हाथ उसके मस्तक पर रख दिया।

और उस समय कुछ दूर खड़े भिक्षु बोल उठे—

"धम्मं शरणं गच्छामि।"

"संघं शरणं गच्छामि।"

सूर्योदय होते-होते अभयजित के साथ वाले सभी व्यक्ति उसको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसी विहार में आ पहुंचे।

और उन सबने देखा···अभय के शरीर पर कोई अलंकार नहीं है···केवल पीले रंग की एक संघाटी शरीर पर शोभित हो रही है।

और भगवान् बुद्ध वहां से विहार करें, उससे पूर्व ही अभयजित के साथ आने वाले सभी नर-नारी भगवान् के समक्ष आए और प्रव्रज्या की याचना करते हुए भगवान् के चरणों में गिर पड़े। केवल वृद्ध भांडागारिक ऋषभदास इस अनोखे दृश्य को देखता हुआ एक ओर खड़ा रहा।

सभी को प्रव्रज्या देकर आनन्द ने ऋषभदास से कहा—"भद्र! देवी आम्रपाली को यह शुभ संदेश पहुंचाना, कहना कि जो करना था, वह बालज्ञानी अभयजित ने कर डाला है···जो लेने योग्य था उसे लिया है···जो त्यागने योग्य था उसे त्यागा है।"

यह समाचार जब ऋषभदास ने आम्रपाली को कहा तब उसके हृदय पर सघन आघात लगा था।

इस आघात का प्रतिकार?

ओह! आम्रपाली को इस वेदना का प्रतिकार धर्म में नहीं दिखा···दिखा केवल मैरेय और वैभव की मस्ती में···भगवान् बुद्ध के प्रति उसके मन में एक रोष उत्पन्न हुआ···उसका मन हुआ कि तथागत को रूप की ज्वाला में जलाकर खाक कर देना चाहिए।

परन्तु आम्रपाली ने अभी तक तथागत को देखा नहीं था। यदि उसने एक बार भी तथागत की दृष्टि से अविकल रूप से प्रवाहित अमृत का पान किया होता तो वह उनके चरणों में सर्वस्व समर्पित कर कल्याण का सही मार्ग अपना लेती···जिस मार्ग में न वेदना है, न विलास है, न अतृप्ति है, न राग है, न मोह है—जहां केवल ज्ञान है, शांति है और आत्म-कर्त्तव्य है।

देवी आम्रपाली ने यह समाचार मगधेश्वर के पास भेजा···दूत जब वहां पहुंचा तब मधेश्वर प्रवास के लिए निकल पड़े थे और तब वर्षाकार ने वह समाचार स्वीकार किया था।

दूत को यथोचित पारितोषिक दे विदा किया और देवी से कहलाया कि मगधेश्वर प्रवास पर हैं। जब ये लौटेंगे तब उन्हें यह दुःखद समाचार दे दिया जाएगा।

किन्तु वर्षाकार का चित्त इस समाचार से बहुत प्रसन्न हुआ। किसी भी दिन मगधेश्वर के विशाल राजपरिवार में उत्तराधिकार के प्रश्न पर महान् संघर्ष खड़ा होता और अब आम्रपाली के बालक की प्रव्रज्या से वह विस्फोट होगा नहीं।

बारह वर्ष के अन्तराल में देखते-देखते अनेक घटनाएं घटिक हो गईं।

समय रुका नहीं।

समय को कोई रोक भी नहीं सकता।

समय की इच्छा को कोई कुचल नहीं सकता।

हाय! समय के इस धमधमाहट में एक सुन्दर फूल अपनी समस्त कलाओं से खिल उठा। इसकी खबर न देवी आम्रपाली को थी और न बिंबिसार को थी।

पद्मसुन्दरी का लालन-पालन चंपा नगरी में हो रहा था। जब वह तीन मास की थी तब वहां आई थी और आज वह पन्द्रह वर्ष की हो गई थी।

उसके अंग-प्रत्यंग से यौवन फूट रहा था। अपनी माता आम्रपाली से भी वह अधिक सुन्दर थी।

किन्तु उसकी पालक-माता शय्या-परवश थी। पद्मसुदरी इसे ही अपनी माता मानती थी।

और पन्द्रवें वर्ष में ही सुदास नामक एक धनकुबेर तरुण के साथ पद्मसुन्दरी का विवाह हो गया।

पालक-माता ने अश्रुभरी आंखों से पद्मसुन्दरी को ससुराल के लिए विदाई दी।

काल की क्रीड़ा के समक्ष मनुष्य की क्रीड़ा का कोई प्रयोजन नहीं होता।

६६. निमन्त्रण

वैशाली से मात्र तीन कोस की दूरी पर क्षत्रियकुंड नामक उपनगर है। वहां आर्य श्रीदाम अपने परिवार के साथ रहता था। वह पूर्व भारत का साहसिक सार्थवाह था। उसके पास अपार धन-संपत्ति थी। वह धनकुबेर था। उसके भवन में प्रचुर स्वर्ण था। वह जैन धर्म का उपासक था। परन्तु धन की उपासना में ही उसका जीवन बीत रहा था।

उसके एक पुत्र था। उसका नाम था सुदास। परन्तु श्रीमंत माता-पिता के

एकाकी पुत्र का जिस प्रकार लालन-पालन या संस्कार-दान होना चाहिए वैसा नहीं हो रहा था।

सामान्य शिक्षा के पश्चात् जब वह सोलह वर्ष का हुआ तब उसे ऐसे ही रंगीले मित्र मिल गए। वह द्यूतक्रीड़ा, मौज-मस्ती, संगीत आदि में धन का व्यय बहुत करता। पिता को यह जंचता नहीं था। वे चाहते थे कि मेरा एकाकी पुत्र मेरी इज्जत और सम्मान को बनाए रखे और पूर्व भारत का महान् सार्थवाह बने···परन्तु प्रत्येक पुत्र अपने पिता की इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकता।

सुदास जब दस वर्ष का था तब माता का स्वर्गवास हो गया और जब वह अठारह वर्ष का हुआ तब पिता भी चल बसा।

अब सुदास प्रचुर सम्पत्ति का मालिक बन गया। उसे स्वर्ण और रत्नों से छलकता हुआ भण्डार प्राप्त हो गया।

वयोवृद्ध मुनीम ने व्यवसाय के विकास के लिए बार-बार प्रार्थना की किन्तु सुदास ने हंसकर एक ही उत्तर दिया—"चाचा! आप मेरे लिए पूज्य हैं··· आपकी बात को मैं सिर पर चढ़ाता हूं···किन्तु आप तो जानते ही हैं कि पिताजी ने इतनी सम्पत्ति मेरे लिए छोड़ी है कि मुझे अब अपने लोभ का संवरण करना चाहिए। जो है, यदि उसका शतांश भाग भी मेरे उपभोग में आए तो भी बहुत है। आप और भांडागारिक मेरे बुजुर्ग हैं···आप दोनों आनन्दपूर्वक रहें और मेरे दोष की ओर अवश्य इंगित करें।"

सुदास की वाणी में मिठास था। पुनः एक बार मुनीम ने कहा—"भाई! अब तुझे विवाह कर लेना चाहिए। स्त्री ही घर है, स्त्री ही शोभा है। और जब तक जीवन बंधता नहीं, तब तक वह चंचल बना रहता है।"

सुदास ने हंसकर कहा—"अभी तो मुझे अठारहवां वर्ष चल रहा है··· पिताजी की मृत्यु अभी-अभी हुई है···मैं विवाह से इनकार नहीं करता, किन्तु इस भवन का दायित्व जिस नारी को देना है, वह सामान्य नहीं होनी चाहिए।"

दो वर्ष और बीत गए।

सुदास यदा-कदा देवी आम्रपाली का नृत्य देखने जाता और आम्रपाली को देखने के पश्चात् उसके मन में यह लालसा जागृत हो गई कि इस श्रेष्ठ सुन्दरी को न भोगा जाए तो जीवन निरर्थक है···घर में पड़ा स्वर्ण और रत्न का ढेर मिट्टी के समान है।

परन्तु आम्रपाली के समक्ष उसने कुछ भी भेंट नहीं किया था और मन की भावना भी वह व्यक्त नहीं कर पाया था, क्योंकि आम्रपाली के तेज के समक्ष मन की भावना व्यक्त करने का साहस ही नहीं जुटा पा रहा था।

सुदास का बहुकीमती माल चंपानगरी के गोदामों में भरा पड़ा था। वृद्ध

मुनीम उसे बार-बार चंपानगरी जाने के लिए कहता परन्तु सुदास भवन से बाहर निकलता ही नहीं था। अन्त में वह मुनीम को साथ ले अपने पांच-चार मित्रों के साथ चंपानगरी गया।

अंगदेश की राजधानी चंपानगरी बहुत रंगीली थी। दूसरे शब्दों में कहें तो वह उपवन की नगरी थी। चंपानगरी के सैकड़ों उपवन पूर्व भारत के लिए आकर्षणरूप थे। चंपानगरी का निर्माणकार्य ही ऐसा था कि प्रत्येक भवन का अपना छोटा-सा उपवन अवश्य हो, प्रत्येक मोहल्ले में बड़ा उपवन हो और नगरी के बाह्य भाग में उपवनों की कतारें थीं, इसलिए चंपानगरी उपवनों की नगरी कहलाती थी।

चंपानगरी में नर्तकियों, गणिकाओं और गायिकाओं की भी काफी प्रसिद्धि थी। विशेषत: वहां कामशास्त्र की शिक्षा देने वाले गणिकागृह भी अनेक थे। दूर-दूर के प्रवासी लोग यहां कामशास्त्र का अध्ययन करने के लिए आते थे।

सुदास को चंपानगरी पसन्द आ गई। व्यवसाय सम्बन्धी सारा कार्य मुनीम को सौंपकर स्वयं वह अपने मित्रों के साथ चंपानगरी भ्रमण करने निकल पड़ा।

और एक दिन वह एक छोटे उपवन में एक सुन्दर कन्या को देख चौंक पड़ा। वह पद्मरानी थी। उसकी आंखें चमक उठीं। उसने पद्मरानी के विषय में बहुत कुछ जानकारी भी एकत्रित कर ली।

मनुष्य जब किसी बात को जानने के लिए प्राणपण से चेष्टा करता है तब सब कुछ जानकर ही सांस लेता है।

सुदास को ज्ञात हुआ कि यह रूपसी कन्या एक विधवा की पुत्री है और इस रूपसी को पत्नी बनाने की भावना उसमें जागृत हुई।

परन्तु बात कैसे की जाए ? यह जानने के लिए उसने वृद्ध मुनीम का सहारा लेना ही पसन्द किया। वृद्ध मुनीम इस बात से प्रसन्न हुआ। वह मानता था कि किसी भी उपाय से यदि सेठ बन्धन में बंध जाता है तो यौवन के दूषणों का अंत आ सकता है और सुदास किसी व्यवसाय में व्यस्त हो सकता है। वृद्ध मुनीम ने परमसुन्दरी की पालक-माता से ज्यों-त्यों सम्पर्क साधा।

और इस सम्पर्क से सुदास का विवाह पद्मसुन्दरी के साथ हो गया।

इस प्रकार पद्मसुन्दरी की परिचारिका तारिका एक बड़ी चिन्ता से मुक्त हो गई। उसको इस बात का सन्तोष था कि क्षत्रिय कुंडग्राम के एक धनकुबेर के साथ कन्या का विवाह होनें से कन्या का जीवन सुखी बनेगा।

अन्यान्य समस्याओं के समाधान के साथ-साथ जीवन की समस्या का भी समाधान हो गया।

पन्द्रह दिनों तक सुदास पद्मरानी के घर पर ही रहा। सुदास की वाणी में बहुत मिठास था, इसलिए तारिका को बहुत सन्तोष था।

जिस दिन सुदास अपनी सुन्दर पत्नी को साथ ले, एक रथ में बैठ, क्षत्रिय कुंडग्राम की ओर विदा हुआ, उस दिन तारिका की आंखों से आंसू बहते ही रहे··· और माता के आश्रय को छोड़ते समय पद्मरानी को भी अत्यन्त दुःख हुआ।

देवी आम्रपाली का यह आदेश था कि कन्या के विषय में कोई समाचार न दिया जाए, क्योंकि कन्या कैसी है, क्या करती है आदि समाचारों से ममता का बांध छलक उठे और कभी कन्या के पास जाना पड़ जाए···।

पद्मरानी के सोलह वर्ष बीत जाने पर किसी प्रकार की बाधा नहीं थी, पर उसके विवाह के समाचार तारिका भेज नहीं सकी। उसने सोचा था, एक वर्ष बाद यह सुखद समाचार देवी को कहलाना है और देवी के पास जाकर आनन्दप्रद बात कहनी है कि कन्या एक धनकुबेर की कुलवधू बनी है।

किन्तु मनुष्य के मनोरथ कभी पूरे नहीं होते। मनुष्य जब मन में एक चित्र उकेरता है तब वह समय को भूल जाता है।

एक जन्मदात्री माता से भी अतिप्रेम भरे भावों से पद्मरानी का लालन-पालन कर मातृत्व का आनन्द लूटने वाली तारिका पुत्री को ससुराल भेजने के तीन महीने बाद मर गई।

मौत आती है तब किसी से कहकर नहीं आती···मांगने से वह मिलती नहीं··· सभी इच्छाओं के तृप्त हो जाने पर ही वह आए, ऐसी बात भी नहीं है। यह तो अचानक आती है···मुहूर्त्त देखे बिना आती है···दिन, रात या ऋतु से निर्बंध होकर आती है। मौत का यही सत्य है कि वह आती है···अवश्य आती है। तारिका के मन की भावना मन में ही रह गई और मौत के अंधकार में वह सदा के लिए अदृश्य हो गई।

आम्रपाली को समाचार कौन दे?

और आम्रपाली पुत्र-वियोग की वेदना को विस्मृत करने के लिए मैरेय और प्रमोद का सहारा ले रही थी।

उसके नृत्य अब अधिक उद्दाम और उत्तेजक होने लगे।

वैशाली के तरुण प्रौढ़ और वृद्ध आम्रपाली के नृत्य को देखने के लिए अत्यधिक उत्कंठित और परवश हो गए।

सभी को यही प्रतीत होने लगा कि नवयौवन की प्रेरणा अलबेली जनपद-कल्याणी से ही प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नहीं।

आम्रपाली के जीवन की बहार भी नूतन रंगों से खिल रही थी। इस बहार में फिर बसन्त का गुंजन था···रति की मादकता थी···मदोन्मत्तता का कल्लोल था।

आम्रपाली को देखने के लिए दूर देशान्तरों से लोग आते थे। आम्रपाली को चित्रांकित करने के लिए विविध राज्य के कलाकार भी आते थे···।

और वह अपने प्रियतम, पुत्री और पुत्र तथा जीवनगत संस्मरणों को भूलने के लिए अस्थिर तत्त्वों का सहारा ले रही थी।

उसका मन दृढ़ था, इसलिए अपने रूप और यौवन को बनाये रखने में सफल हुई थी।

कभी-कभी वह रथ में बैठकर उपवन की ओर जाती और मार्ग में बौद्ध भिक्षु को देखते ही उसे अभयजित की स्मृति हो आती, और अभयजित के स्मरण के साथ गौतम बुद्ध को रूप की ज्वाला में भस्मसात् करने का मनोवेग भी आ जाता···।

और उसने यह निश्चय किया कि अब कभी गौतम बुद्ध वैशाली में आएंगे तो मैं उनसे चर्चा करूंगी और उनके समक्ष रूप यौवन और अभिनय का जाल बिछाकर उनके मन को जीत लूंगी।

कभी किसी रात में वीणा के स्वर उसके कानों से टकराते तब उसे प्रियतम की स्मृति झकझोर जाती···कभी-कभी सूनी शय्या अंगारों के समान लगती।

फिर भी हृदय में दबे पड़े संस्मरणों को वह सदा के लिए नष्ट नहीं कर सकती थी, केवल वह भूलने का प्रयत्न करती थी।

परन्तु उसे यह ज्ञात नहीं था कि जिसके प्रति प्रेमभाव अधिक होता है, उसे भुलाए जाने पर भी भूला नहीं जाता। ऐसा पुरुषार्थ करने वालों को तो संसार से सर्वथा विमुक्त होना पड़ता है। मन को नियंत्रित करना होता है। यह कार्य क्षुद्र मैरेय तथा विलास के उपकरणों से सम्पन्न नहीं होता। विलास के उपकरण संमूर्च्छनी नाम की निद्रादायी गुटिका के समान होते हैं। मनुष्य मात्र मूर्च्छा में पड़ा रहता है। सुषुप्ति की गोद में क्रीड़ा करता रहता है और जब मूर्च्छा टूटती है, वह जागता है तब वही वेदना उसके प्राणों को कुरेदती है।

सुदास अपने आपको धन्य और पुण्यवान मानकर क्षत्रिय कुंडग्राम में आया। उसने अपने विवाह के उपलक्ष में दास-दासियों को बहुत धनमाल दिया और पत्नी के साथ रंगरेली करने वह नगरी से एक कोश दूर अपने रंगभवन में रहने चला गया।

परन्तु एकाध महीने के सहवास से वह जानने लगा कि पद्मरानी सुन्दर है, परन्तु उर्मिल नहीं है। इसमें ऊष्मा और उत्तेजना का अभाव है। पति की आज्ञा को शिरोधार्य करने के अतिरिक्त इसमें कोई शक्ति नहीं है। पति को इशारों से नचाने की योग्यता पद्मरानी में नहीं है। पुरुष यदि सुन्दर पत्नी के इशारों पर न नाचे, उसका गुलाम न बने तो तृप्ति अधूरी रह जाती है। पद्मरानी स्वभाव से ही शांत थी। तारिका ने उसके प्राणों में धर्म के संस्कार प्रवाहित किए थे।

उसने सदाचार और विवेक को अमृत से सींचा था। तारिका स्वयं जैन मत की उपासिका थी और पद्मरानी में भी ये ही जैन-संस्कार कूट-कूट कर भरे थे। इसलिए पद्मरानी के मन में स्थिरता, गांभीर्य और उदारता के गुण सहज थे। परन्तु उसमें पुरुषों को प्रसन्न करने वाले उपचार या अभिनय नहीं थे।

इसलिए सुदास को ऐसा लगता कि उसने किसी निर्जीव अथवा ऊष्मा-विहीन किसी कांच की पुतली से विवाह किया है। पुष्प सुन्दर है, पर उसमें सौरभ नहीं है।

सौरभ की कल्पना मनुष्य के मन के साथ जुड़ी हुई है। सुदास ने नर्तकियों और गणिकाओं को देखा था···किसी कुलवधू की धन्य छवि से वह परिचित नहीं था। वह चाहता था पत्नी में नर्तकी अथवा गणिका जैसी ऊष्मा।

इससे उसका मन अतृप्त रहने लगा। वह पत्नी के प्रताप के आगे कुछ कह नहीं सकता था। परन्तु मन में असंतोष था और इस असंतोष की आग को बुझाने के लिए उसका चित्त पुनः आम्रपाली के नृत्यों को देखने के लिए आतुर बना।

देवी आम्रपाली अब सप्ताह में एक ही बार नृत्य करती थी···किंतु मिलने के लिए आने वालों का वह सदा सत्कार करती थी। सुदास प्रतिदिन संध्या के समय आम्रपाली से मिलने जाने लगा। वह जाते समय अपने साथ छोटी-बड़ी भेंट भी ले जाने लगा। लगभग बीस दिन तक यह क्रम चलता रहा। देवी आम्रपाली को आश्चर्य हुआ। एक दिन उसने आर्य सुदास से पूछा—"प्रिय! आप जैसा मौन आराधक मुझे आज तक नहीं मिला।"

"मैं धन्य हुआ, देवि!"

"देवी नहीं, मैं आपको प्रिये कहने का अधिकार देती हूं···किसी भी प्रकार की इच्छा व्यक्त किए बिना ऐसा अपूर्व समर्पण पुरुष जाति में नहीं होता। आपका शुभ नाम?"

"आर्य सुदास।"

आम्रपाली ने मैरेय का एक पात्र सुदास के हाथ में दिया।

सुदास बोला—"प्रिये! मेरे भवन पर एक बार आपके चरण···"

बीच में ही आम्रपाली बोली—"आपका भवन कहां है?"

"क्षत्रियकुंड और वैशाली के मध्य।"

"क्षत्रियकुंड! महाराज नंदीवर्धन के एक नौजवान भाई···"

"जी हां, वर्धमानकुमार ने जहां सर्वत्याग किया था···वह।"

"ओह! तब तो वहां के त्याग की विषैली हवा में मेरे प्राण सूख जाएंगे।" आम्रपाली ने हंसते-हंसते कहा।

"नहीं देवि! मेरा भवन निराला है। आपका सत्कार मैं बहुत···"

"मैं धन्य बनी। पर जनपदकल्याणी कभी किसी की अतिथि नहीं बनती··· बनती है तब···"

"आपकी सारी इच्छाएं पूरी करूंगा।"

"सवा लाख स्वर्णमुद्राएं···"

"नहीं प्रिये! आपकी साधना का मूल्य तो इससे बहुत अधिक है। मुझे प्रतिदान की भी इच्छा नहीं है।"

"प्रतिदान नहीं···प्रतिदान तो मुझे देना ही पड़ेगा।" कहकर आम्रपाली ने हंसते-हंसते सुदास के कंधों पर हाथ रखा और कहा—"आपका निमंत्रण मुझे याद रहेगा···आपको मैं अपना अनुकूल दिन बता दूंगी।"

सुदास परम प्रसन्न हो गया।

परन्तु वैभव और मस्ती में विभोर बनी अलबेली आम्रपाली को यह ख्याल नहीं था कि सुदास और कोई नहीं, वह अपनी प्रिय पुत्री पद्मरानी का स्वामी है।

६७. तथागत बुद्ध

रात्रि के दूसरे प्रहर का प्रारंभ हो गया था। सुदास अभी तक भवन पर पहुंचा नहीं था। दास-दासी प्रतीक्षा कर रहे थे और देवकन्या सदृश पद्मरानी अपने खंड में एकाकिनी बैठी-बैठी किसी धर्मसूत्र की मन-ही-मन आवृत्ति कर रही थी।

सुदास की मुख्य परिचारिका विगत तीन महीनों से यह प्रयत्न कर रही थी कि सेठानी रंगभरी बातों में रस ले। परन्तु पद्मरानी का चित्त कभी भी विलास-प्रिय बातों में रस नहीं लेता था। आज तो उसने मुख्य परिचारिका से स्पष्ट कह सुनाया था—"मनोरमा! विलास का जीवन जीवन नहीं होता। यह जीवन के विविध साधनों में एक क्षुद्र साधक है। मुझे ऐसी बातों में तनिक भी रस नहीं है। तुझे मेरी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।"

मनोरमा को सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और वह कुछ रुष्ट होकर एक ओर खड़ी हो गई।

पद्मरानी जानती थी कि मनोरमा सेठजी की प्रिय दासी है और उसकी आवाज सेठ तक पहुंचती है। परन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि दासी को गृहस्वामिनी की मर्यादा का ध्यान नहीं रखना चाहिए।

मनोरमा सुदास की मुख्य दासी थी, क्योंकि वह रूपवती न होने पर भी कभी-कभी सुदास की तृप्ति का साधन बनती···इसमें यौवन की उन्मत्तता थी, चंचलता और ऊष्मा भी थी। इसीलिए यह सुदास को प्रिय थी। जैसा यह कहती, अनेक बार सुदास वैसा ही करता। सुदास ने ही पद्मरानी के मन में

विलास के प्रति उत्साह जागे, इसीलिए मनोरमा को नियुक्त किया था और मनोरमा तीन-तीन महीनों के सघन प्रयास के बावजूद निष्फल हो रही थी।

सुदास संध्या से पहले ही भवन पर पहुंच जाने वाला था, क्योंकि वह प्रातः भोजन कर वैशाली गया था, अभी तक घर न आने का कारण मनोरमा जान नहीं सकी। वह आज 'पद्मरानी में ऊष्मा का अभाव है' यह कहना चाहती थी और इसलिए आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी।

चंपा नगरी से आने के पश्चात् तथा स्वामी के मन को समझने के बाद पद्मरानी का मन प्रसन्न नहीं रहता था। सुदास गणिका जैसा प्रेमोपचार चाहता था, नर्तकी जैसे नखरे चाहता था और नयनों को पागल बना देने वाली वेशभूषा में पद्मरानी को देखना चाहता था और पद्मरानी को यह सब प्रिय नहीं था। वह समझती थी कि रूप और यौवन तो एक वरदान है, शुभ कर्म का फल है··· शुभ कर्म के वरदान को न बेचा जा सकता है और न अन्यथा किया जा सकता है।

वह यह भी मानती थी कि नर-नारी का सहवास केवल संतान उत्पत्ति के लिए होना चाहिए, वासना की तृप्ति के लिए नहीं। यदि गृहिणी वासना-तृप्ति का साधना बनती है तो उसका मातृत्व निर्बल बन जाता है और स्वत्व भी नष्ट होने लगता है···नारी केवल भोग्य वस्तु बन जाती है। यदि ऐसा होता है तो नारी के मन की एषणाएं, भावनाएं और आशाएं जीवनभर पुरुष के पैरों तले रौंदी जाती हैं।

इतने में ही भवन का नीरव और शांत वातावरण भंग हुआ। भवन के उपवन में रथ की घर्-घर् ध्वनि मनोरमा के कानों में पड़ी। वह बाहर आई। प्रांगण में सुदास का रथ खड़ा था और वह रथ से नीचे उतर रहा था।

मनोरमा गर्वीली चाल से रथ के पास गई। सुदास ने मनोरमा को देखते ही कहा—"मनोरमा! तेरी सेठानी क्या कर रही है?"

"वे अपने खंड में हैं और मन-ही-मन कुछ गुनगुना रही हैं।" मनोरमा ने कहा।

"मनोरमा! आज तक जो कार्य किसी ने नहीं किया, वह मैंने आज किया है···"

मनोरमा अवाक् बनकर सुदास की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखने लगी। सुदास भवन की ओर जाते-जाते बोला—"तू मेरी भोजन की व्यवस्था कर···मैं तेरी सेठानी से मिल लेता हूं।"

"किंतु आपका महान् कार्य···?"

"ओह!" कहकर पास में चल रही मनोरमा के कंधे पर हाथ रखकर सुदास

बोला—"परसों संध्या से पूर्व देवी आम्रपाली इस भवन में अतिथि के रूप में आएंगी।"

"देवी आम्रपाली ?"

"हां···और रात भर यहीं रुकेंगी।"

"सेठजी ! यह तो असंभव है।"

"स्वर्ण असंभव को भी संभव बना देता है।" इतना कहकर सुदास ऊपर जाने की सोपान श्रेणी पर चढ़ने लगा और शीघ्रता से पत्नी के खंड में पहुंच गया।

पद्मरानी एक आसन पर बैठी-बैठी कुछ आराधना कर रही थी···।

स्वामी को खण्ड में प्रविष्ट होते देखकर वह खड़ी हो गई।

दीपमालिकाओं के प्रकाश में पद्मरानी का रूप निखर रहा था। सुदास ने निकट आकर कहा—"क्यों प्रिये ! चित्त तो प्रसन्न है न ?"

"हां।" पद्मरानी ने संक्षेप में उत्तर दिया।

"पद्म ! तू इतनी नीरस क्यों है ?"

"स्वामिन् ! इसकी कल्पना प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न होती है।"

"मैं समझा नहीं।"

"नगरनारी के विलास में जिसको रस-दर्शन होता है, उसे गृहिणी के अंग में नीरसता ही लगती है।···"

सुदास ये शब्द सुन आहत-सा हुआ। दूसरे ही क्षण वह बोला—"रस एक शास्त्र है और गणिकाएं उसमें पारंगत होती हैं।"

"क्योंकि गणिकाओं का जीवन उस शास्त्र को बेचने में रहता है।"

"तेरे जैसी नीरस स्त्रियों के पतियों को ही गणिकाओं के पास रस पाने जाना पड़ता है।" सुदास बोला।

"स्वामिन् ! स्त्रियों पर यह भयंकर और आधारहीन आक्षेप है···पुरुष अपने दोषों को छुपाने के लिए स्त्रियों पर ऐसा दोषारोपण करते हैं। किंतु ऐसी वृत्ति के पीछे मनुष्यों की लालसा, अतृप्ति और क्षुद्र दृष्टि ही काम करती है।"

सुदास खड़खड़ाकर हंस पड़ा और हंसते-हंसते बोला—"पद्म ! तू मुझे कभी नहीं समझ पाएगी···परन्तु तुझे समझाने का एक मार्ग मैंने ढूंढ़ निकाला है।"

पद्मरानी मौन रही।

सुदास बोला—'परसों पूर्व भारत की श्रेष्ठ सुन्दरी और वैशाली गणतंत्र की जनपदकल्याणी देवी आम्रपाली इस भवन का आतिथ्य ग्रहण करने यहां आएंगी।"

पद्मरानी ने कोई आश्चर्य नहीं दिखाया।

सुदास बोला—"परसों यहां संसार का सर्वश्रेष्ठ नारीरत्न आएगा, मैं उसके चरणों में पांच लाख स्वर्ण मुद्राएं बिछाऊंगा।

"फिर···?" व्यंग्य में नहीं, स्थिर भाव से पद्मरानी ने पूछा।

"देवी आम्रपाली रातभर यहीं रहेंगी।"

पद्मरानी ने हंसते-हंसते कहा—"पांच लाख स्वर्ण मुद्राओं के बदले आपको मिलेगा क्या?"

"वास्तव में तेरे में समझ की कमी है···पगली। मुझे जो मिलेगा वह किसी सम्राट को भी प्राप्त नहीं है। एक चुम्बन···एक आलिंगन···"

"तब तो आप धन्य हो जाएंगे?"

"अब कुछ समझी है।"

"किंतु मुझे समझाने जैसा मार्ग तो···"

"तू आम्रपाली को देखना···उसकी वय कितनी है, यह तू कल्पना भी नहीं कर सकेगी···उसकी पलकों में कविता है···उसके अधरों पर अमृत छलकता है···उसे देखकर तुझे अपने पति को प्रसन्न करने की कला सीखनी है।"

"पति को प्रसन्न करने की कला इन सबमें कहां है?"

"तब?"

"यह तो पुरुषों को पागल बनाने का मार्ग है। मुझे किसी को पागल नहीं बनाना है···मैं आर्य सुदास की पत्नी हूं···"

"तू मुझे भी पागल नहीं बनाएगी?"

"क्यों बनाऊं?"

"मेरे चित्त की प्रसन्नता के लिए···"

पद्मरानी हंस पड़ी। वह गंभीर होकर बोली—"स्वामिन्! क्षमा करें। आपको पागल बनाने का पाप मैं कैसे कर सकती हूं? मैं तो आपको सत्त्वशील देखना चाहती हूं···एक पत्नी का इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा कर्त्तव्य हो नहीं सकता।"

"कर्त्तव्य! कर्त्तव्य!! कर्त्तव्य!!! रानी! नारी का सही कर्त्तव्य है पति के अनुकूल रहना।"

"आपकी बात सही है···नीति, धर्म और संस्कार के मार्ग में···ऐसे विलास और प्रमोद के मार्ग में नहीं।" पद्मरानी ने अपनी भावना और अधिक स्पष्ट कर दी।

"तो तेरे कथन का यही अर्थ है कि मेरी बात तेरे हृदय का स्पर्श नहीं कर पाती?"

"आश्चर्य है कि आप जीवन के विशुद्ध सत्य को क्यों नहीं समझते?"

"आप एक उच्च कुल और खानदान में एकाकी पुत्र हैं। आपके रक्त में जैनत्व का तेज भरा है। आप संपत्तिशाली हैं। संपत्तिशाली व्यक्ति कभी छलकते नहीं···जो छलकता है उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। फिर भी आपने केवल देवी आम्रपाली के स्पर्श के लिए पांच लाख स्वर्ण मुद्राओं को अर्पण करने का सौदा किया है। स्पर्श में कौन-सा आनन्द है? कौन-सी तृप्ति है? पांच लाख स्वर्ण मुद्राओं से तो एक लाख परिवारों के आंसू पोंछे जा सकते हैं···उनको सन्मार्ग पर लाने का कर्त्तव्य पूरा किया जा सकता है···"

बीच में ही व्यंग्य भरे हास्य के साथ सुदास बोला—"ओह! ईर्ष्या की अग्नि में जलते हुए तेरे हृदय का आज परिचय हो गया। इन सारे उपदेश-वाक्यों के पीछे देवी आम्रपाली का आगमन ही दीख रहा है···परन्तु रानी! यदि तू मेरी इच्छाओं के अनुकूल नहीं रहेगी तो इस भवन में प्रतिदिन एक आम्रपाली का आगमन होता रहेगा।"

ऐसा कहकर सुदास रोष से पैरों को पटकता हुआ खण्ड से बाहर निकल गया।

खंड के बाहर मनोरमा खड़ी थी। उसने धीरे से कहा—"सेठजी! भोजन तैयार है।"

"मेरे शयनखंड में भोजन का थाल लेकर आ।" मनोरमा वहां से चली।

इतने में सुदास बोला—"अरे, तूने भोजन कर लिया?"

"नहीं···"

"तू भी मेरे साथ ही भोजन कर लेना।"

"जी···"

"मैरेय लेती आना।"

"जी" कहकर मनोरमा भोजनगृह की ओर गई···सुदास अपने शयनकक्ष में गया।

पद्मरानी गंभीर विचार में मग्न बैठी रही···। उस समय मगधेश्वर बिंबिसार और धनंजय वैशाली से तीस कोस की दूरी पर एक सामान्य गांव में रात्रि-विश्राम के लिए रुके थे। वे गुप्तवेश में भगवान् गौतम बुद्ध और अपने पुत्र अभयजित को देखने निकले थे।

बिंबिसार की यह भावना थी कि गौतम बुद्ध के पास से अभयजित को प्राप्त कर लेना और उसे राजगृही में रखना। यदि ऐसा होता है तभी आम्रपाली राजगृही आ सकती है।

किंतु जब वे इस छोटे से गांव में पहुंचे तभी उन्हें यह ज्ञात हुआ कि तथागत दो दिन पूर्व ही वैशाली की ओर विहार कर गए हैं।

"अब क्या किया जाए ?" धनंजय बोला—"कृपावतार ! यदि हम वैशाली की ओर जाएं तो···?"

बीच में ही बिंबिसार बोला—"परन्तु हम जिस प्रयोजन से निकले हैं उसे तो पूरा करना ही होगा। वैशाली में हमें आम्रपाली से मिलने के लिए तो जाना ही नहीं है···केवल तथागत से मिलकर और अभयजित को प्राप्त कर लौट आना है।"

"महाराज ! जब आप वैशाली के वृक्ष देख लेंगे तब आम्रपाली के अतिथि अवश्य बनेंगे।" हंसते हुए धनंजय ने कहा।

"क्या तुम मेरे मन को इतना दुर्बल मानते हो ? नहीं, धनंजय ! ऐसी मिलने की कोई भावना नहीं है। परन्तु···"

"क्या महाराज !"

एक प्रयत्न करने का मन हो रहा है। किसी भी प्रयास से देवी को राजगृही ले जाना है।" बिंबिसार के हृदय में देवी आम्रपाली से मिलने की एक आशा जागृत हुई।

"देवी न आएं तो ?"

"मेरा मन भी यही कह रहा है। यदि वे इनकार करेंगी तो हम वहां रुके बिना तत्काल लौट आएंगे।"

"यदि आपका निश्चय मजबूत हो तो कोई आपत्ति नहीं है···परन्तु यदि आप वहां रुक गए तो कलिंग की सीमा पर पहुंची हुई हमारी सेना में अत्यधिक अकुलाहट फैल जाएगी।" धनंजय ने कहा।

"आर्य वर्षाकार चतुर है। जयभद्र भी कुशल सेनानायक है। कोई बाधा नहीं आएगी···और मैं भी सजग हूं···मैं अधिक कहीं नहीं ठहरूंगा।" बिंबिसार बोला।

दूसरे दिन प्रातः दोनों ने वैशाली की ओर प्रस्थान किया।

जिस दिन ये दोनों वैशाली की ओर प्रस्थित हुए उसी दिन उग्र विहार करते हुए तथागत वैशाली पहुंच गए और वैशाली की जनता ने उनका भारी स्वागत किया। हजारों लोगों ने अपने हृदय के आनंद को बिछाकर तथागत का वर्धापन किया। गणतंत्र के मुख्य व्यक्ति, गणक, लिच्छवी नेता तथा पुरवासियों ने भव्य शोभायात्रा निकाली।

नगरी की दक्षिण दिशा में सेठ आर्यजित प्रभु का विशाल आम्रवन था। वहां तथागत चार दिन रुकने वाले थे।

तथागत की वाणी को सुनने के लिए दूर-दूर से हजारों लोग आए थे।

नगरी के राजमार्ग से गुजरती हुई शोभायात्रा मध्याह्न के समय सप्तभूमि प्रासाद के पास वाले राजमार्ग से निकली।

उस समय देवी आम्रपाली अपने कक्ष में विश्राम करने सो रही थी। परन्तु शोभायात्रा में "बुद्धं शरणं गच्छामि" के घोष के साथ-साथ तथागत के जयघोष से चारों दिशाएं गूंज रही थीं।

सप्तभूमि प्रासाद की सैकड़ों दास-दासियां तथागत के दर्शन करने भवन से निकल मार्ग पर आ गई थीं।

छठी मंजिल पर विश्राम कर रही देवी आम्रपाली के कानों से कोलाहल के शब्द टकराए···वह शय्या से उठे, उससे पूर्व ही माधिवका ने भीतर आकर कहा—"देवि ! भगवान् तथागत आए हैं।"

"सप्तभूमि प्रासाद में ?"

"नहीं, अपने मार्ग से आगे बढ़ रहे हैं। आप दर्शन करने पधारें···शोभायात्रा बहुत विशाल है।"

"दुधमुंहे बच्चों को मूंडने वाले तथागत के दर्शन करने की मेरी इच्छा नहीं है।"

"परन्तु देवि ! तथागत तो सर्वज्ञ हैं···तीनों काल उनकी मुट्ठी में है··· आप एक बार देखें तो सही···।" माधिवका ने आग्रहपूर्वक कहा।

"अभयजित साथ है ?"

"यह कैसे पता लगे ? संभव है साथ हों···।"

"अच्छा।" कहकर देवी शय्या से नीचे उतरी और उन्हीं वस्त्रों में छठी मंजिल के झरोखे में आ बैठी।

लोग बोल रहे थे—भगवान् तथागत की जय !

लोग गाते थे—**बुद्धं शरणं गच्छामि।**

संघं शरणं गच्छामि।

धम्मं शरणं गच्छामि।

तथागत के जयघोष से चारों दिशाएं मुखरित हो रही थीं।

छठी मंजिल से राजमार्ग स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

भगवान् बुद्ध अपने शिष्य परिवार के साथ आगे बढ़ते हुए अनेक बार दीख पड़े।

आम्रपाली सौम्यमूर्ति तथागत की ओर देख रही थी।

परन्तु अभयजित कहां है ?

वह बोल उठी—"माधु ! कहीं अभयजित दिखाई दिया ?"

"देवि ! सैकड़ों भिक्षुओं में वह कैसे दिखाई दे ? परन्तु क्या आपने भगवान् के दर्शन कर लिये ?"

"हां, तेरे तथागत को देखकर मेरे मन में एक बिजली चमक उठी है···कल मैं तेरे तथागत से मिलने जाऊंगी।"

"परन्तु कल तो आप आर्य सुदास के यहां जाने वाली हैं।"

"ओह ! तो आज ही रात्रि में···तेरे तथागत को मैं समझाने वाली हूं···मेरी अन्तर वेदना···अनन्त वेदना···अपार वेदना।

६८. आशा के मोती

रात्रि का प्रथम प्रहर अभी पूरा नहीं हुआ था।

सप्तभूमि प्रासाद में सैकड़ों दीपमालिकाओं का प्रकाश फैल चुका था। प्रतिदिन की भांति आज भी सप्तभूमि प्रासाद का विशाल उद्यान दीपमालिकाओं से जगमगा रहा था।

प्रासाद के प्रांगण में एक रत्नजटित रथ खड़ा था। देवी आम्रपाली से मिलने के लिए आने वाले सैकड़ों पुरुष एक निःश्वास डालकर लौटे जा रहे थे। क्योंकि बासंती, सबसे कहती—"देवी आज किसी से मुलाकात नहीं करेंगी···देवी तथागत के दर्शन करने जाएंगी।"

केवल रूप-दर्शन से मन को तृप्त करने वाले अनेक पुरुष इस उत्तर से निराश होकर विदा हो रहे थे।

रत्नाभरण तथा कौशेय धारण कर देवी आम्रपाली माध्विका के साथ भवन से बाहर निकली। वह माध्विका के साथ रथ में बैठ गई।

रथ के आगे-पीछे बीस-बीस अंगरक्षक नंगी तलवारें साथ ले, घोड़ों पर आरूढ़ हो रथ के साथ चले।

माध्विका ने रथिक से कहा—"आम्रकानन की ओर···।"

"जी।" कहकर रथिक ने रथ को आगे बढ़ाया।

भवन के प्रांगण में खड़ी कुछेक परिचारिकाओं ने जयनाद के साथ शंखध्वनि की और उद्यान में खड़े सिपाहियों ने जनपदकल्याणी का जयनाद किया।

अश्वारोही संरक्षकों सहित देवी आम्रपाली का भव्य स्वर्ण-रथ राजमार्ग पर आ गया और मध्यम गति से आगे बढ़ने लगा।

निकट के ही किसी एक भवन से प्रथम प्रहर के पूर्ण होने की आवाज आई।

माध्विका ने आम्रपाली के तेजस्वी नयनों की ओर देखकर कहा—"देवि ! मैं अभी भी नहीं जान सकी हूं कि आप भगवान् तथागत के समक्ष क्या कहेंगी ?"

आम्रपाली हंस पड़ी। उसने हंसते-हंसते कहा—"माधु ! तुझे मेरे ये अलंकार, सुख, प्रमोद आदि देखकर लगता होगा कि जनपदकल्याणी जैसा सुख इन्द्र की गणिका भी नहीं भोगती होगी। किंतु यह सब मन को ठगने का एक उपक्रम है। माधु ! केवल छल ही छल है। इस वैभव और उज्ज्वल काया के पीछे निरंतर अग्नि जैसी एक अन्तर वेदना मेरे चित्त को किस प्रकार जला रही है, यह तू क्या

समझे ? सुन्दर और मनोहर कन्या मिली और उसे त्यागना पड़ा···उसका क्या हुआ, यह भी आज तक ज्ञात नहीं हुआ है···चार दिन पूर्व ही मैंने ऋषभदत्त चाचा को चंपानगरी भेजा था। पद्मा का विवाह हो चुका है···तारिका मर चुकी है। सोलह वर्षों के बाद पुत्री से मिलने की आशा रखने वाली माता के हृदय में इससे कितनी व्यथा होती होगी ? ऐसा ही एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ। पुत्र के भावी सुख के लिए मैंने उसे राजगृही भेजा और वह मार्ग में ही तेरे तथागत के खप्पर में समा गया। ऐसे धूर्त्त तथागत के समक्ष एक चिरदुःखिनी माता क्या नहीं कर सकती ? संसार में किसी भी नारी को प्राप्त न होने जैसे स्वामी मुझे मिले। परन्तु वह दर्द तो मैं पी गई हूं···नारी बहुत कुछ पचा सकती है···संतान की इच्छा को वह नहीं पचा सकती। तू जिसे भगवान् कहती है, मैं आज गौतम बुद्ध को एक माता का हृदय खोलकर, बताने वाली हूं···मैं अपने पुत्र को वहां से ले आने वाली हूं।" इतना कहकर आम्रपाली ने एक निःश्वास छोड़ा।

माध्विका स्थिर दृष्टि से आम्रपाली की ओर देख रही थी। आम्रपाली ने रथ के परदे में लगी जाली की ओर देखा। रथ अभी नगरी में ही चल रहा था। कुछ क्षण मौन रहकर वह बोली—"माधु ! मैं समझती हूं कि तुझे आश्चर्य होता होगा कि असंख्य पुरुष जिसको महापुरुष मानते हैं, उसको मैं तनिक भी महत्त्व नहीं देती···परन्तु वास्तव में मुझे गौतम बुद्ध में कोई विशेषता प्रतीत नहीं हुई।"

"देवि ! आपको तथागत का पूरा परिचय नहीं है। उन्होंने अपनी नवयौवना पत्नी यशोधरा और बालक राहुल को, जैसे सांप केंचुली उतार फेंकता है वैसे ही, त्याग कर संन्यास ग्रहण किया है।"

आम्रपाली ने हंसकर कहा—"यह बात मैं जानती हूं और इसीलिए तथागत के प्रति मेरे मन में कोई श्रद्धा नहीं है। परस्पर विश्वास से निर्मित ऐसे बंधनों को एक चोर की भांति तोड़ देना यह केवल कायरता ही नहीं, विश्वासघात भी है। गौतम यदि अपनी सुन्दर पत्नी को समझाते और फिर उसका त्याग करते तो वह पुरुषार्थ गिना जाता। प्रियतम के स्वप्न कल्लोल में सोयी हुई प्रियतमा को रात की चादर धारण करा कर छोड़ देना, क्या इसमें कोई महत्ता है ?"

माध्विका का हृदय कांप उठा।

रथ नगरी के दक्षिण द्वार से बाहर निकला। माध्विका बोली—"देवि ! कुछेक पूर्वाग्रह मन को···।"

बीच में ही आम्रपाली ने कहा—"माधु ! मैं तेरी श्रद्धा को विचलित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहती। मेरे में कोई पूर्वाग्रह नहीं है···तूने तथागत का जो चित्र प्रस्तुत किया था उसी के प्रत्युत्तर में मैंने यह कहा है।"

"देवि ! क्षमा करें । तथागत त्रिकालविद् भी हैं ।"

"मैं इसे अस्वीकार नहीं करती । अनेक ज्योतिषी और नैमित्तिक भी त्रिकालज्ञानी होते हैं। अनेक ऐन्द्रजालिक मन की बात जान लेते हैं और लोगों को आश्चर्यान्वित करने वाले चमत्कार भी दिखाते हैं···इतने मात्र से वे पूजनीय नहीं हो जाते···।"

माध्विका ने मन-ही-मन में सोचा···देवी के मन में तथागत के प्रति श्रद्धा के अंकुर अंकुरित नहीं किए जा सकते । वह मौन रही ।

और रथ आम्रकानन के पास पहुंच गया ।

जितप्रभ सेठ का यह आम्रकानन अति भव्य और सुंदर माना जाता था । उद्यान के चारों ओर थूहर की मजबूत बाड़ थी । उद्यान में प्रवेश करने के लिए एक मजबूत काष्ठ-निर्मित द्वार था । उद्यान में सैकड़ों आम्रवृक्ष थे । उसमें पुष्पगुल्ल भी थे । लता-मंडपों की रचना भी थी । उद्यान के मध्य एक सुंदर भवन था । जितप्रभ सेठ ग्रीष्म ऋतु में अपने परिवार के साथ इसी उद्यान में रहते थे ।

द्वार के पास रथ और अश्वारोही खड़े रह गए, क्योंकि चार बौद्ध भिक्षु द्वार बंद कर वहां खड़े थे । उनके साथ जितप्रभ सेठ के चार रक्षक भी खड़े थे ।

सारथी ने कहा—"महाशय ! द्वार खोलो···देवी आम्रपाली आई हैं ।"

एक भिक्षु बोला—"भगवान् अभी किसी से नहीं मिलेंगे ।"

देवी आम्रपाली और माध्विका—दोनों रथ से नीचे उतरीं । माध्विका ने कहा—"महात्मन् ! देवी आम्रपाली भगवान् तथागत से मिलने आई हैं ।"

"भद्रे ! सूर्यास्त के पश्चात् स्त्रियों का भीतर आना निषिद्ध है । देवी को यदि दर्शन करने हों तो वे कल सूर्योदय के बाद आयें ।" दूसरे भिक्षु ने शांत भाव से कहा ।

"मुझे अभी मिलना है···अभी क्यों नहीं मिला जा सकता ?" आम्रपाली ने कहा ।

"आप स्त्री हैं···।"

"तुम्हारे तथागत क्या स्त्री और पुरुष को समान नहीं मानते ?" बौद्ध भिक्षु कुछ चौंका । वह बोला—"आर्ये ! साधक के लिए स्त्री भयरूप होती है ।"

"यह अभिप्राय किसका है ? अपनी प्रियतमा और कोमल फूल जैसे बालक को अर्धरात्रि में विश्वासघात कर चोर की तरह चले जाने वाले गौतम बुद्ध का है या आपका ?"

"भद्रे ! प्रेम, करुणा और शान्ति की प्रतिमूर्ति हैं तथागत । आपने उनको कभी देखा नहीं है । यदि आपने उनको देखा होता तो ऐसा कभी नहीं कहतीं ।"

"भिक्षु ! मेरे प्रश्न का यह उत्तर नहीं है । तुम द्वार खोलो,···मैं इसी समय

भगवान् गौतम से मिलना चाहती हूं···एक नारी से डरकर छुपकर घूमने वाले कायर साधक से मैं अभी अपने प्रश्न का उत्तर चाहती हूं।"

"देवि ! कृपाकर आप प्रातःकाल आना। आज्ञा का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है।" एक रक्षक बोला।

"मुझे दिन में अवकाश नहीं मिलता। मैं अभी मिलना चाहती हूं···कल भी मैं यदि आऊंगी तो इसी समय आ पाऊंगी। इसलिए तुम जाकर मेरे आगमन की बात तथागत से कहो और आज्ञा ले आओ। मैं यहीं खड़ी हूं।"

एक भिक्षु बोला—"भद्रे ! आपको प्रतीक्षा करते खड़ा रखना शोभा नहीं देता, कारण यह है कि नियम में परिवर्तन अशक्य है।"

आम्रपाली जोर से हंस पड़ी और माध्विका के सामने देखकर बोली—"तेरे तथागत का दंभ देखा ? जो व्यक्ति एक नारी से डरकर भागता फिरता है, वह दूसरे का कल्याण क्या कर पाएगा ? नारी से डरने वाले और नारी को तुच्छ मानने वाले जिस दिन भगवान् कहलायेंगे, उस दिन भगवान को लज्जित होकर छुप जाना पड़ेगा···चल लौट चलें।"

उसी समय अति शांत, अति मधुर और अति प्रभावशाली आवाज सुनाई दी—"भाग्यवती ! चित्त को शांत कर···तू अपने प्रिय और ज्ञानमूर्ति अभयजित को लेने आई है···परन्तु सौभाग्यशालिनी ! धैर्य सबसे उत्तम रत्न है···तेरा पुत्र तुझे मिलेगा···तू अपने पुत्र से मिलेगी।" तथागत ने प्रसन्न और गंभीर स्वर में कहा।

उस अंधकार में भी उनकी तेजोमय काया चंद्र के समान शोभित हो रही थी।

भगवान् तथागत घूमते-घूमते थोड़ी दूर एक आम्रवृक्ष के नीचे आये थे। और परस्पर होने वाले संवाद को सुनकर इधर आ गए···चारों भिक्षु और रक्षक सिर झुकाकर एक ओर चले गये।

आम्रपाली गौतम बुद्ध के तेजोमय बदन की ओर देखने लगी। माध्विका ने सिर झुकाया।

भगवान् बोले—"आम्रपाली ! जहां ज्ञान निर्मल है वहां नर और नारी के भेद को अवकाश नहीं है। परन्तु यह ज्ञान सबको प्राप्त नहीं होता। और जब तक विशुद्ध ज्ञान प्राप्त न हो तब तक परम्परा के कल्याण के लिए विधि-निषेध आवश्यक होता है। प्रियदर्शिनी ! भावी पीढ़ी के लिए पंथ को स्वच्छ रखना, कोई दोष नहीं है, कोई कायरता नहीं है। तेरे अपने विचार कुछ भी हों, परन्तु एक सत्य को तू याद रख कि बंधनों को बांधना सहज है···बंधनों को तोड़ना दुष्कर है···मन में विद्यमान मोह को नियंत्रित किए बिना त्याग कभी सहज नहीं बन सकता।"

देवि आम्रपाली कुछ भी नहीं बोल सकी···भगवान् तथागत की अमृतमय वाणी में वह इतनी मग्न हो गई थी कि भगवान् से विवाद करने का प्रश्न ही नहीं उभरा।

काष्ठ का द्वार बंद था···आम्रकानन का स्पर्श कर प्रवाहित होने वाला पवन अत्यंत सुखद था।

भगवान् तथागत उसी प्रसन्न मुद्रा में बोले—"कल्याणि ! यदि चित्त का संशय दूर न हुआ हो तो तू अंदर आ सकती है। अभयजित की माता सभी को निर्भय करने की शक्ति से सम्पन्न है।"

आम्रपाली ने हाथ जोड़कर कहा—"भगवन् ! मैं परसों आऊंगी···मेरे चित्त में अनेक प्रश्न उभर रहे हैं। उनका समाधान पाकर मैं कृतार्थ हो जाऊंगी··· विधि-निषेध का हेतु मेरी समझ में आ गया है।"

आम्रपाली ने मस्तक नमाया।

भगवान् बुद्ध ने मृदु-मधुर स्वर में कहा—"धर्म सदा तेरी रक्षा करे !"

इतना कहकर वे तत्काल मुड़ गए।

भावमग्न आम्रपाली ने जब मस्तक उठाकर द्वार की ओर देखा तब तक प्रकाशपुंज चला गया था। उसने माध्विका से कहा—"चल···।"

दोनों रथ में बैठ गईं। रथ नगरी की ओर चल पड़ा। थोड़ी दूर जाने पर माध्विका ने कहा—"देवि ! भगवान् के नयनों में अमृत के अतिरिक्त कुछ नहीं होता।"

आम्रपाली विचारमग्न थी। उसने कुछ सुना ही नहीं। माधु ने फिर कहा—"देवि ! भगवान् के दर्शन से आपको संतोष तो हुआ ही होगा ?"

"संतोष हुआ, यह मैं कैसे कह सकती हूं। परन्तु गौतम बुद्ध का चेहरा तो कभी विस्मृत न करने जैसा है।"

"आपके मन की बात भगवान् ने···।"

"नहीं माधु ! ऐसा कुछ मुझे नहीं लगा···परन्तु इतना अवश्य समझ में आया है कि मेरा अभयजित मुझे वापस मिल जाएगा। उनके शब्दों का आशय लगभग यही था।" आम्रपाली ने कहा।

"हां, देवि···आपकी वेदना उनको छू गई लगती है।"

"संभव है···ऐसा भी हो सकता है कि···।" कहती हुई आम्रपाली विचार-मग्न हो गई।

"क्या देवि !"

"अभयजित माता के बिना रह न सकता हो···बालक को संभालना सरल नहीं है।" आम्रपाली ने कहा।

माध्विका कुछ नहीं बोली।

रथ नगरी में पहुंच गया था।

कुछ ही समय पश्चात् रथ सप्तभूमि प्रासाद के पास आ पहुंचा। द्वार पर खड़े रक्षकों ने देवी का जयनाद किया।

रथ प्रांगण में खड़ा रहा। देवी आम्रपाली माध्विका के पीछे-पीछे रथ से नीचे उतरी।

पुत्र को प्राप्त करने का प्रयत्न जैसे देवी आम्रपाली कर रही थी वैसे ही मगधेश्वर बिंबिसार भी इस प्रयोजन के लिए ही वैशाली की यात्रा कर रहे थे।

वे अभी वैशाली से दस कोस की दूरी पर एक गांव में रात बिता रहे थे। उनके मन में पुत्र को प्राप्त करने की भावना थी। इसी प्रकार प्रियतमा आम्रपाली को भी साथ में ले चलने की आशा भी थी।

आशा ही मन का जागरण है।

ऐसी ही आशा सुदास के मन में भी थी। कल संध्या की वेला में देवी आम्रपाली का रूप भवन को और जीवन को उज्ज्वल करेगा।

पांच लाख स्वर्ण मुद्राओं के तुच्छ उपहार से मिलेगा संसार की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी का मदभरा आलिंगन···आनंददायी चुंबन···।

आशा के मोती सबके मन में उभर रहे थे···उछल रहे थे।

आशा किसकी फलेगी? वास्तव में आशा प्रकाश नहीं, अंधकार ही है। अनेक बार आशा में उछल-कूद करने वाला मनुष्य अंधकार में ही भटकता रहता है।

६९. एक झटका

सुदास आज प्रातःकाल से ही अपने भवन को सजाने में व्यस्त था।

आज संध्या के समय विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी भवन में आने वाली थी··· रूप, यौवन और ऊष्मा का थाल लिये आने वाली थी।

सुदास के हृदय में आशा की झल्लरी खनखना उठी थी। कल रातभर उसे नींद नहीं आई, जबकि पास की शय्या में फूल जैसी सुकोमल पद्मरानी गहरी नींद ले रही थी।

मध्यरात्रि के पश्चात् पत्नी की ऐसी गहरी नींद को देखकर सुदास ने निःश्वास छोड़ा। उसने मन-ही-मन सोचा, केवल रूप को देखकर मैंने बहुत बड़ा धोखा खाया है। मैंने रूप देखा, पर रूप के साथ आवश्यक ऊष्मा का विचार ही नहीं किया और एक रूपवान् पत्थर मेरे भाग्य में आ गया, मेरे अस्तित्व के साथ जुड़ गया।

कल मेरे सद्भाग्य की फूल जैसी अलबेली आने वाली है, परन्तु इसके चित्त में कुछ भी हलचल नहीं है। कितनी निश्चिन्त है···पद्मा के शरीर में हृदय है

या नहीं ! प्रेम, तमन्ना, ऊर्मि और ऊष्मा जैसी अपूर्व सम्पत्ति का यह अभाव क्या अलबेली को देखने के पश्चात् दूर नहीं होगा ?

नहीं···नहीं···नहीं । पत्थर कितना ही सुन्दर क्यों न हो वह अन्ततः पत्थर ही होता है । उसमें चेतना का कोई स्पंदन नहीं होता ।

सुदास ने सोचा, पद्मरानी को जगाऊं और इस विषय की चर्चा करूं··· परन्तु तत्काल उसके अन्तर मन ने विरोध किया···कल मैंने पद्मा को बहुत कुछ कहा, किंतु उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ···व्यर्थ ही क्यों परेशानी उत्पन्न करूं ।

यह सोचकर सुदास पुनः सो गया ।

जब मनुष्य की आंखों में अज्ञान उभरता है तब सत्य दिख नहीं पाता । वह न हित को देख पाता है और न यथार्थ को जान पाता है ।

सुदास को पत्नी की काया में अणु-अणु में व्याप्त पवित्रता के दर्शन नहीं हुए । जैसा वह चाहता था वैसी उन्मत्तता पद्मरानी दिखा नहीं पा रही थी और यही सुदास के मन की बड़ी-से-बड़ी जलन थी ।

परन्तु पद्मरानी के भीतर कोई शिकायत नहीं थी···वह तन से, मन से और हृदय से वैसी की वैसी स्वस्थ थी । वह समझती थी कि किसी भी सुख की प्राप्ति में पूर्वकृत कर्मों का ही योग होता है । यदि मेरी इच्छा सफल नहीं होती है तो मुझे व्यर्थ ही क्यों दुःखी होना चाहिए ?

इसी निश्चिन्तता से वह गहरी नींद सो रही थी । कल एक रूपवती नारी के आलिंगन के लिए पांच लाख स्वर्ण मुद्राओं का पानी हो जाएगा । इस बात का उसको इतना ही दुःख था कि जिस प्रयोजन से धन का व्यय होना चाहिए, उस प्रयोजन के लिए धन का व्यय नहीं हो रहा है, उसका अपव्यय हो रहा है । यदि लक्ष्मी का उपयोग शुभ कार्य में होता तो उसका सदुपयोग होता । परन्तु क्या हो ? कायासक्त पति का हृदय इतना जड़ हो गया है कि हितकारी बात भी उसके हृदय का स्पर्श नहीं कर पाती । जैसा भाग्य ।

प्रातःकाल सुदास शय्या त्याग कर उठा । उसने देखा कि पद्मरानी नीचे धरती पर एक आसन पर बैठकर सामायिक की आराधना कर रही है ।

सुदास का मन बोल उठा—"भगतिनी ! हृदयविहीन ! पत्थर की प्रतिमा !

वह तत्काल बाहर चला गया ।

और उसने देवी आम्रपाली के स्वागत की तैयारी प्रारंभ कर दी । मध्याह्न के बाद वह भोजन करने आया··· पद्मरानी प्रतीक्षा कर रही थी । सुदास ने पत्नी को देखकर कहा—"पद्मा ! तू तो मेहमान जैसी बन गई है ।"

"कैसे ?"

"मेरे कार्य में कुछ भी सहयोग नहीं करती···परन्तु तू सहयोग न करे, इससे पांच लाख स्वर्ण मुद्राएं बच नहीं सकतीं।" सुदास ने कहा।

पद्मरानी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह सुदास को भोजन परोसने लगी। मनोरमा बाहर खड़ी थी और पद्मरानी को पता न लगे इस प्रकार दोनों की बातें सुन रही थी। पद्मरानी ने कुछ नहीं कहा। इससे मनोरमा के मन को बहुत व्यथा हुई। उसने सोचा, यह नारी पत्थर जैसी है। कुछ भी नहीं समझती।

भोजन का प्रथम ग्रास लेते हुए सुदास बोला—"मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला···।"

"उत्तर देने जैसा प्रश्न ही कहां है? पत्नी को शोभे, वैसा कार्य आपने मुझे दिया ही नहीं। फिर सहयोग का प्रश्न ही क्या है।"

"ओह! मैं सोच ही रहा था कि तेरा सहयोग नहीं मिलेगा।"

"पुरुष सदा स्त्री में दोष निकालता है। परन्तु यदि यथार्थ में देखा जाए तो पुरुष के दोषों को पचाने के लिए ही स्त्री को जीवन भर व्यथित होना पड़ता है" पद्मरानी ने थाल में मिष्टान्न रखते हुए कहा।

"तो तू मेरा एक काम करेगी?"

"कहें···।"

"देवी आम्रपाली जब यहां आएं तब तुझे उत्तमोत्तम वस्त्रालंकारों से सजधज कर उसके स्वागत के लिए तैयार रहना है।"

"अरे! आप थाली की ओर देखें। बात ही बात में खाना भूल गए तो···।"

"मेरी बात का···।"

"किसी भी अतिथि का आदरभाव से सत्कार करना गृहिणी का कर्त्तव्य होता है···आप निश्चिन्त रहें···मैं आपके गौरव को आंच भी नहीं आने दूंगी।"

"आश्वासन मिला प्रिये!" कहकर सुदास भोजन करने लगा।

बाहर खड़ी मनोरमा को यह वार्तालाप पसन्द नहीं आया। वह चाहती थी कि दोनों के बीच विस्फोट हो जाए तो अच्छा। यदि ऐसा होता है तो सुदास के अन्तर में पद्मा के प्रति जो गुप्त आकर्षण है, वह नष्ट हो सकता है, अन्यथा नहीं। पद्मरानी बड़ी विचित्र है। बाहर जितनी छोटी है, उतनी ही जमीन में समाई हुई लगती है।

वहां सप्तभूमि प्रासाद में देवी आम्रपाली ने भोजन के बाद कुछ विश्राम कर तत्काल माध्विका से कहा—"माधु! क्षत्रियकुंड ग्राम जाने की तैयारी कर।"

"परन्तु अभी बहुत समय है। आपको तो सन्ध्या के समय आर्य सुदास के यहां पहुंचना है।"

"मुझे पता है, परन्तु मेरा मन अभयजित के विचारों से निवृत्त होता ही नहीं। इसलिए हम यहां से जल्दी निकल पड़ें···।"

"जैसी आज्ञा।" कहकर माध्विका तैयारी करने चली गई।

मध्याह्न के बाद एकाध घटिका बीती होगी कि जनपदकल्याणी ने स्वर्ण निर्मित चन्द्र रथ में माधु और प्रज्ञा को साथ ले प्रस्थान कर दिया।

अश्व तेजस्वी थे···चार कोस मात्र जाना था···कोई भी रक्षक साथ में नहीं था। चित्त को शान्त करने तथा उसे अन्यत्र नियोजित करने के एकमात्र आशय से आम्रपाली ने बहुत जल्दी प्रस्थान कर दिया था।

उसके मन में यह भी आशा थी कि सुदास के यहां केवल सायं भोजन कर लौट आना है, क्योंकि प्रातःकाल ही उसे आम्रकानन में तथागत के पास जाना है।

दूसरी ओर, भगवान् तथागत अपने शिष्यों सहित क्षत्रिय कुंडग्राम से मात्र एक कोश दूर स्थित देवपल्ली में गए थे। देवपल्ली का सेठ कार्तिकचन्द्र भगवान तथागत का परमभक्त था। उसकी भक्ति भावना को साकार करने के लिए ही तथागत दिवस के प्रथम प्रहर में ही वहां पहुंच गए थे और वे संध्या से पूर्व ही वहां से लौट जाने वाले थे।

क्षत्रिय कुंडग्राम और आसपास के अन्य अनेक गांवों पर जैन धर्म का प्रचुर प्रभाव था। क्षत्रिय कुंडग्राम में तो एक भी बुद्ध-भक्त मिलना कठिन था। मात्र देवपल्ली का सेठ व्यवसाय के लिए वैशाली में रहता था और अपने भवन को पवित्र करने के लिए तथागत को ले आया था।

देवी आम्रपाली का रथ पवन-वेग से आगे बढ़ रहा था। देवी ने आज सप्त-रंगी कौशेय का कमर पदक, पीतवर्ण के चमकीले कौशेय का कंचुकीबंध और इन्द्रधनुषी रंगों वाला उत्तरीय धारण किया था। मस्तक के केश कमलाकार गूंथे हुए थे और नवरत्नों से सुशोभित दामिनी अपना तेज विकीर्ण कर रही थी।

इसी प्रकार कटिमेखला भी नवरत्न जड़ित थी और ऐसा लग रहा था मानो वह उभरते यौवन की संरक्षिका हो।

गले में नवरत्न मंडित हार शोभित हो रहा था। उससे नौ रंगों की किरणें विकीर्ण हो रही थीं। इस प्रकार जनपदकल्याणी के धारण किए हुए सारे अलंकार नवरत्नों से मंडित थे। कपाल पर धारण किया हुआ चन्द्रक भी उगते सूर्य की नवरंगी किरणें बिछा रहा हो, ऐसा लग रहा था।

देवी आम्रपाली ने ऐसा विश्वमोहक रूप पिछले कितने ही वर्षों से धारण नहीं किया था। देखने वाले को यही लगता जैसे कोई नवोढ़ा अलबेली नारी समस्त संसार पर राज्य करने निकली हो।

देवी के आज के रूप को देखकर माध्विका के मन में अनेक प्रश्न उभर रहे

थे। पर किसी भी प्रश्न का समाधान नहीं हो रहा था। उसने सोचा, देवी आज तक इस रूप में किसी भी पुरुष से मिलने नहीं गई···आज क्या हो गया है? जिसका मन अपने स्वामी की स्मृतियों से विलग नहीं बना, वह आज किस आशा से इतने शृंगार कर उन्मत्त हो रहा है?

वास्तव में माध्विका मन-ही-मन व्यथित हो रही थी। रथ गतिमान् था। वह क्षत्रियकुंड ग्राम की ओर वेगगति से बढ़ रहा था।

आम्रपाली बन्द रथ की जाली से मार्गगत वृक्षों को देख रही थी। बाहर के वृक्षों को देखने की किस कल्पना ने आम्रपाली के चित्त को तन्मय बना डाला था, यह माध्विका समझ नहीं पा रही थी।

लगभग आधा मार्ग तय हो चुका था। माध्विका को इस प्रकार का मौन असह्य हो गया। उसने मृदु स्वर में कहा—"देवि! आपके निकट वर्षों से रहने पर भी···"

"मैं वृद्ध नहीं लगती, यही तो।" आम्रपाली ने मुसकराते हुए प्रश्न किया।

"नहीं, अवस्था का प्रश्न नहीं है। मुझे तो यही आश्चर्य हो रहा है कि इतने दीर्घ परिचय के बाद भी मैं आपके मन को पहचान नहीं सकी।"

"माधु! जब स्वयं के मन को पहचानना भी कठिन होता है तो फिर दूसरे के मन को कौन पहचान सकता है? किन्तु अभी यह प्रश्न तेरे मन में क्यों उभर रहा है? क्या तुझे मेरे मन में अल्पनीय वस्तु दीख रही है?"

"हां, कुछ ऐसा ही।"

"संकोच क्यों? मैंने तो तुझे सखी माना है, बोल।"

"आप कभी भी किसी भी पुरुष से मिलने नहीं गईं, फिर आज···?"

बीच में ही आम्रपाली दूसरे के हृदय में हलचल पैदा कर दे, ऐसी हंसी हंसती हुई बोली—"माधु! मैं किसी पुरुष से मिलने तो जाती ही नहीं।"

"तो अब हम कहां जा रही हैं?" माध्विका ने पूछा।

"मैं एक रूप के प्यासे व्यक्ति को रूप का दर्शन कराने जा रही हूं। सुदास रोज मुझसे मिलने आता और मुझे देखकर मौन भाव से चला जाता। सबकी तरह वह भी उपहार रख जाता। मुझे उसके मौन भाव के प्रति हमदर्दी हुई, इसीलिए मैंने उसका निमन्त्रण स्वीकार किया। वह क्या चाहता है, तू जानती है?"

"नहीं, परन्तु वहां एक रात आप···"

"पगली कहीं की···। युवराज जयकीर्ति के साथ जो रातें मैंने बिताई हैं, उन्हें भूल जाने वाली योगिनी नहीं हूं···फिर मैंने इसे कहा था—एक रात रहने आऊंगी···सुदास ने केवल एक आलिंगन ही चाहा है···एक चुम्बन ही चाहा है···।"

"आलिंगन ? चुम्बन···?"

"हां, आलिंगन और चुम्बन तो दो मित्रों के बीच भी होता है, माता और पुत्र के बीच भी होता है, भाई-बहन के बीच भी होता है और बापू और बिटिया के बीच भी होता है।"

माध्विका अवाक् बनकर आम्रपाली की ओर देखने लगी। रथ नक्षत्रवेग से जा रहा था। प्रज्ञा एक ओर कोने में बैठी थी।

परन्तु देवी आम्रपाली को यह पता नहीं था कि उस समय अपने सर्वस्व का स्वामी मगधेश्वर सप्तभूमि प्रासाद में गुप्त वेश में आ गया है। यदि उसको यह सहज ज्ञात हो जाता तो वह सुदास के आज के उत्साह को निरस्त कर देती।

बिंबिसार और धनंजय दिन के प्रथम प्रहर के बाद ही वैशाली में आए थे। बिंबिसार सीधा सप्तभूमि प्रासाद पर जाना चाहता था। परन्तु धनंजय चाहता था कि पहले पांथशाला में स्नान आदि से निवृत्त होकर कुछ विश्राम कर फिर देवी से मिलने जाया जाए।

इसलिए दोनों एक पांथशाला में ठहरे। स्नान, भोजन आदि से निवृत्त होकर दोनों ने विश्राम किया। धनंजय ने पांथशाला के एक दास को बुला दोनों अश्वों को घुमाकर लाने के लिए भेज दिया। फिर दोनों गुप्त वेश में सप्तभूमि प्रासाद में गए।

प्रासाद के द्वारपालों ने उन्हें द्वार पर रोका तब धनंजय ने माध्विका या बसंतिका को बुलाने के लिए कहा।

कुछ ही समय में बसंतिका आ गई। धनंजय ने उसे एक ओर बुलाकर अपना परिचय दिया। बसंतिका अत्यन्त आदरभाव से दोनों को अन्दर ले गई।

एक कक्ष में जाने के बाद मगधेश्वर ने पूछा—"देवी क्या कर रही है ?"

"वे तो कुछ ही समय पूर्व बाहर गई हैं।"

"बाहर ?"

"हां, महाराज ! क्षत्रियकुंड ग्राम धनकुबेर सेठ सुदास के निमन्त्रण पर···"

"तो देवी क्षत्रियकुंड ग्राम की ओर गई हैं ?"

"हां, गांव से थोड़ी दूरी पर ही सुदास का भवन है।"

"देवी कब तक लौटेंगी ?"

"सम्भव है, कल प्रातःकाल···।" बसंतिका ने कहा।

"ओह ! तब तू एक काम कर···दो अश्व तैयार करा और एक दास को हमारे साथ भेज जिससे कि हम तत्काल सुदास के भवन पर जा सकें।" बिंबिसार ने कहा।

और एकाध घटिका के पश्चात् एक दास के साथ मगधेश्वर और धनंजय तेजस्वी अश्वों पर बैठकर आर्य सुदास के भवन की ओर चल पड़े।

उस समय देवी आम्रपाली का रथ आर्य सुदास के भवन में प्रविष्ट हो गया था। आर्य सुदास के दास-दासी बहुत घबरा गए, क्योंकि उस समय आर्य सुदास भवन में नहीं था और वह रत्नाहार लेने अपने पुराने घर गया था।

मनोरमा चतुर थी। जैसे ही आम्रपाली का रथ रुका, वह दौड़कर गई और देवी का भाव भरा स्वागत किया।

माध्विका ने पूछा—"आर्य सुदास···"

"महादेवी तो संध्या के समय आने वाली थीं, इसलिए उनके स्वागत के लिए कोई वस्तु लेने वे गांव में गए हैं···अभी आ जाएंगे···।" कहकर मनोरमा ने महादेवी की ओर देखकर कहा—"महादेवि ! आप भवन में पधारें।"

आम्रपाली, माध्विका और प्रज्ञा—तीनों रथ से नीचे उतरीं।

पद्मसुंदरी नीचे के खंड में ही बैठी थी···उसने अभी तक अलंकार धारण नहीं किए थे···केवल वस्त्रों का ही परिवर्तन किया था और उसे यह कल्पना भी नहीं थी कि देवी आम्रपाली इस प्रकार बहुत पहले आ जाएंगी ?

मनोरमा के साथ देवी आम्रपाली ने नीचे खंड में प्रवेश किया। इसी खंड में पद्मरानी एक आसन पर बैठी थी···आम्रपाली की दृष्टि पद्मरानी के स्वर्गीय रूप पर पड़ी और उसने मन्द स्वर में मनोरमा से पूछा—"कौन है ?"

"आर्य सुदास की पत्नी।" मनोरमा बोली।

आम्रपाली दो कदम पीछे हटी···क्या आर्य सुदास ऐसी सर्वश्रेष्ठ सुंदरी का स्वामी है ? क्या मुझे निमन्त्रित करने की पृष्ठभूमि में मेरे अपमान का ही तो प्रयोजन नहीं रहा है ? क्या सुदास यह बताना चाहता है कि जनपदकल्याणी को अपने जिस रूप पर गर्व है, वह रूप तो किसी गिनती में नहीं है···उस रूप से अनन्त गुना अधिक रूप मेरे भवन में है।

यह कल्पना मन में आते ही आम्रपाली कांप उठी और तत्काल वह वहां से मुड़ गई।

मनोरमा दौड़ती-दौड़ती पीछे गई और बोली—"देवि, आप विराजें···"

"सुदास को आने दें, तब तक मैं भवन के उपवन में रहूंगी।" देवी आम्रपाली ने कहा और वह खंड के बाहर निकल गई।

पद्मसुंदरी कुछ नहीं समझ सकी···वह अवाक् बनकर वैसे ही बैठी रही।

आम्रपाली के मन में यह रूप देखकर अनेक विचार ज्वालामुखी की तरह उछल रहे थे···वह प्रांगण में आई और उपवन की ओर जाने लगी।

उसी समय सुदास का रथ उपवन के मुख्य द्वार में प्रविष्ट हुआ।

७०. 'बुद्धं शरणं गच्छामि'

भवन की सोपान श्रेणी उतर कर जनपदकल्याणी उपवन की ओर मुड़ी। देवी

का मुंह देखकर माध्विका और प्रज्ञा को कुछ समझ नहीं पड़ा···मनोरमा तो अवाक् बनकर खड़ी ही थी। उसने सोचा, देवी का कोई अपमान हुआ है ? देवी को देखकर पद्मरानी खड़ी नहीं हुई या सत्कार में दो शब्द नहीं बोली। इससे तो देवी को दुःख नहीं हुआ है न ?

सुदास का रथ निकट आया और वह रथ से नीचे उतरा। उसकी दृष्टि उपवन की ओर जाती हुई सौन्दर्यमूर्ति आम्रपाली पर पड़ी। उसे बहुत आश्चर्य हुआ। देवी अकेली उपवन की ओर क्यों जा रही हैं ? इन्होंने संध्या के समय यहां आने के लिए कहा था, फिर इतने पहले क्यों आ गईं ?

माध्विका और प्रज्ञा दोनों देवी के पीछे-पीछे चल रही थीं।

मनोरमा और अन्यान्य दासियां दिग्मूढ़ होकर खड़ी थीं। सुदास ने मनोरमा से पूछा—"देवी आम्रपाली···।"

बीच में ही मनोरमा बोल पड़ी—"सेठजी ! मैंने उनका स्वागत किया था। खंड में आई थीं और अकस्मात् मुड़ गईं।"

"ओह !" कहकर सुदास शीघ्रता से उपवन की ओर चला।

आम्रपाली के मन में एक ही बात घर कर गई थी कि सुदास ने मुझे नीचा दिखाने के लिए ही निमन्त्रित किया है। जिसके भवन में ऐसी सुन्दर अर्धांगिनी हो वह किसी भी स्थिति में अन्य नारी के प्रति आसक्त नहीं हो सकता। मेरे रूप का, मेरे गौरव का और मेरी भावना का ऐसा अपमान आज तक किसी ने नहीं किया। चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर, सूर्य से भी अधिक तेजस्विनी, समुद्र से भी अधिक गम्भीर···नहीं, नहीं, मेरा अपमान करने के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है।

ऐसे विचारों के मध्य लगभग अपना भान भूली हुई जनपदकल्याणी एक कदम्ब वृक्ष के नीचे पहुंची···"

साथ ही साथ माध्विका और प्रज्ञा भी पहुंच गईं। माध्विका कुछ कहे, उससे पूर्व ही तेज गति से चलकर आने वाले सुदास का स्वर सुनाई पड़ा—"देवि ! मेरे जीवन की आशा···।"

आम्रपाली ने सुदास की ओर देखा।

सुदास ने निकट आकर कहा—"देवि ! क्षमा करें···मैं अभी अपने पुराने मकान पर गया था···आप भवन में पधारें।"

"सुदास ! तुमने मुझे निमन्त्रण क्यों दिया था ?"

जनपदकल्याणी के शब्द सुनकर सुदास कुछ न समझ पाया हो, इस भावना से आम्रपाली की ओर देखने लगा।

"अब तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार नहीं है···"

"परन्तु···मेरा अपराध ?" सुदास के हृदय पर मानो वज्र गिर पड़ा हो।

आम्रपाली बोली—"अपराध की चर्चा करने के लिए मेरे पास समय नहीं है।"

"तो आप भवन में पधारें···मैं आपका स्वागत करूं···आपकी···।"

"सुदास ! मैं तुम्हारे भवन में नहीं आ सकती।"

"देवि ! मैं तो बाहर गया था···मुझे कुछ भी खबर नहीं है···मेरी दासी मनोरमा ने···"

"किसी दासी ने मेरा अपमान नहीं किया।"

"तो मेरे पर कृपा करें···मेरे हृदय में प्रज्वलित आशा के दीपक को इस प्रकार···"

बीच में ही आम्रपाली बोली—"तुम चाहते क्या हो ?"

"आप मेरे भवन में पधारें···सत्कार करने की मेरी उमंग को पूरी करें···।"

आम्रपाली सोचने लगी। उसके मन में एक विचित्र प्रश्न उभरा और सुदास के किए हुए अपमान के पीछे कितनी वास्तविकता है, यह जानने के आशय से वह बोली—"एक शर्त पर मैं तुम्हारे आतिथ्य को स्वीकार कर सकती हूं।"

"आपकी किसी भी शर्त को मैं आज्ञा-रूप मानूंगा। आप चाहेंगी तो पांच लाख के बदले दस लाख स्वर्ण मुद्राएं मैं आपके चरणों में न्यौछावर कर दूंगा।" सुदास ने अत्यन्त विनम्रता से कहा।

"स्वर्ण मुद्राएं ! सुदास ! मेरे भंडार में कोटि-कोटि स्वर्ण मुद्राएं हैं। मुझे स्वर्णमुद्रा की आवश्यकता नहीं है।"

"तो फिर ?"

"तेरी पत्नी अत्यन्त रूपवती है, क्यों ?"

"किन्तु वह आपकी श्रेणी में नहीं आ सकती···फिर भी आप उसे देख सकेंगी।"

"मैंने उसे देखा है···उसको देखकर ही मैं मुड़ी थी।"

"उसने आपका कोई अपमान तो नहीं किया न ?"

"इस प्रश्न के साथ मेरी शर्त का कोई सम्बन्ध नहीं है···यदि तुम अपने भवन में मेरा सत्कार करना चाहते हो तो तुम्हें एक काम करना होगा···।"

"आज्ञा करें देवि !"

"तेरी पत्नी का मस्तक मेरे चरणों में झुकाना होगा।" आम्रपाली ने निश्चयात्मक स्वरों में कहा।

सुदास क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गया।

आम्रपाली ने हंसते हुए कहा—"सुदास ! तुम ऐसा नहीं कर सकोगे। कोई बात नहीं, मैं चलती हूं।"

तत्काल सुदास ममता भरे शब्दों में बोला—"आपकी शर्त मंजूर है···आप

भवन में चलें···मैं अपनी पत्नी का मस्तक आपके चरणों में चढ़ाकर आपका स्वागत करूंगा।"

"ऐसे नहीं ?"

"तो फिर कैसे ?"

"अभी तुम अपनी पत्नी को यहां लाओ। देखो तुम्हारे हाथ से ही तुम्हारी पत्नी का मस्तक धड़ से अलग होना चाहिए···फिर मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।"

"दूसरी कोई शर्त ?"

"यह शर्त अनुकूल नहीं लगी ?"

"यह शर्त तो मुझे स्वीकार्य है ही। इससे अधिक भी कोई शर्त हो तो···?"

"नहीं, प्रिय सुदास ! इसके सिवाय मेरी कोई दूसरी शर्त नहीं है।"

तत्काल सुदास भवन की ओर गया।

माध्विका और प्रज्ञा—दोनों मूक बनकर यह बात सुन रही थीं। माध्विका बोली—"देवि ! स्त्री-हत्या का ऐसा घोर पाप···।"

"तू नहीं समझती। माधु ! आज मेरे हृदय में ऐसी ज्वाला धधक रही है कि मैं उसे समझ ही नहीं पा रही हूं। जो नारी मेरे रूप को···मेरे गौरव को···और मेरे यौवन को न्यून करे, मैं उस नारी को सहने में अक्षम हूं।" आम्रपाली बोली।

माध्विका पुनः कुछ कहे, उससे पूर्व ही भगवान् तथागत सुदास के उपवन में आ गए। उनके साथ उनके पांच शिष्य थे। माध्विका की दृष्टि जब उस ओर गई तब वह क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गई। वह बोली—"देवि ! इस ओर देखें, भगवान् तथागत आ रहे हैं और उनके साथ हैं प्रिय अभयजित···।"

"अभयजित !" आम्रपाली के चेहरे पर हर्ष का आलोक उतर आया। उसने शांत भाव से इधर आ रहे तथागत की ओर देखा। उसका सिर स्वतः झुक गया। उसके दोनों हाथ बन्द कमल की भांति अंजलिबद्ध हो गए।

माध्विका और प्रज्ञा ने वहीं धरती पर झुककर प्रणाम किया।

भगवान् बुद्ध निकट आकर बोले—"धर्म तेरा रक्षण करे, जनपदकल्याणी ! भिक्षु अभयजित मेरे साथ ही है। परन्तु अब वह तुझे कैसे मिल सकता है ?"

"क्यों, भगवन् !"

"रूप, ऐश्वर्य और अज्ञान तथा गर्व के कारण आज तू जो कर रही है, क्या तू उसे जानती है ?"

आम्रपाली प्रश्नभरी दृष्टि से भगवान् बुद्ध की ओर देखने लगी।

भगवान् बुद्ध ने मृदु-मधुर स्वर में कहा—"कल्याणि ! तू जिसका मस्तक चाहती है, जानती है वह कौन है ? सोलह वर्ष पूर्व जब वह मात्र तीन महीने की थी, तब तेरे द्वारा त्यागी गई तेरे उदर से उत्पन्न तेरी प्रिय पुत्री है।···"

"मेरी पुत्री ?" प्रश्न के साथ ही आम्रपाली कांप उठी। उसने भवन की ओर देखा···सुदास एक हाथ में नंगी तलवार और दूसरे हाथ से पत्नी का हाथ पकड़कर इसी ओर आ रहा था।

आम्रपाली चिल्लाई—"सुदास ! तलवार फेंक दे···पद्मा···मेरी पद्मा··· माधु ! तू तत्काल सुदास के पास जा···पद्मा को यहां ले आ···ओह !···"

भगवान् तथागत तत्काल बोले—"भाग्यशालिनी ! संसार ऐसा ही है··· अज्ञान से अन्ध बने व्यक्ति कुछ देख नहीं पाते···यह तेरी पुत्री है···किन्तु तेरे हृदय में यह सत्य क्यों अंकुरित नहीं हुआ कि तू पद्मा की माता है।"

"भगवन् ! भन्ते ! मुझे प्रायश्चित्त दें···मुझे इस अज्ञान से बचाएं···मुझे···" कहते-कहते आम्रपाली का स्वर अवरुद्ध हो गया।

भगवान् ने प्रसन्नदृष्टि से आम्रपाली की ओर देखा···वहां आश्चर्य से अभिभूत और मूक बना हुआ सुदास पद्मरानी के साथ आ पहुंचा। भगवान् तथागत को वहां उपस्थित देख उसके सारे भाव शांत हो गए। वह हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

भगवान् ने सुदास से कहा—"सुदास ! यौवन, आवेश, लक्ष्मी और सत्ता ये अति चंचल होते हैं। तेरी पत्नी अन्य कोई नहीं, यह देवी आम्रपाली की पुत्री है। तारिका ने इसका पालन किया था। एक महान् अपराध से यह बच गई। तू भी बच गया···।"

आम्रपाली ने करुण स्वरों में कहा—"कृपावतार ! मुझे प्रायश्चित्त दें।"

"भाग्यवती ! तेरे आंसुओं में ही तेरा प्रायश्चित्त निहित है।"

"नहीं, प्रभु ! इस पापिनी का आप उद्धार करें। अज्ञान के कीचड़ से मुझे निकालें। भन्ते ! मुझे शरण दें।" कहकर आम्रपाली भगवान् के चरणों में लुढ़क गई। उसके केशों में जटित रक्तकमल का एक फूल केशों से विलग हो भगवान् के चरणों में जा गिरा।

पद्मसुन्दरी आश्चर्य के साथ अपनी महान् माता की ओर देख रही थी।

आम्रपाली ने पुनः करुण स्वरों में कहा—"भन्ते ! मुझे अभय प्रदान करें। आज मैं अपना सर्वस्व आपके चरणों में समर्पित करती हूं।"

"मुझे विश्वास था कि अभयजित की माता असाधारण है। भद्रे ! तेरा समर्पण संघ का गौरव होगा···तेरा प्रायश्चित्त संसार की प्रत्येक स्त्री के लिए विजयध्वज सदृश बनेगा···आज से अभयजित तुझे मिल गया। तू अभयजित को मिल गई···"

भगवान् बुद्ध के पांचों शिष्य बोल पड़े—

बुद्धं शरणं गच्छामि।

धम्मं शरणं गच्छामि।

संघं शरणं गच्छामि।

इस महागान में अभयजित का कोमल-मधुर स्वर, माता के हृदय में नयी चेतना का संचार कर रहा था। माता मानो अन्तर की गहराई में उतरकर वंसी की वंसी भूमि पर पड़ी थी···

और उसी समय एक दास के साथ मगधेश्वर और धनंजय वहां आ पहुंचे।

बिंबिसार ने प्रियतमा को धरती पर पड़ी देखकर जोर से पुकारा—"प्रिये! इधर देख···मैं तेरा प्रियतम जयकीर्ति तुझे लेने आया हूं।"

"आम्रपाली ने कुछ नहीं सुना।"

बिंबिसार निकट आया। तेजमूर्ति गौतम बुद्ध को देख नत हो गया।

भगवान् बोले—"राजन्! तेरा पुत्र अभयजित मुक्ति-मार्ग का पथिक बना है। तेरी प्रियतमा आम्रपाली ने भी त्यागमार्ग स्वीकार किया है। और तेरी यह पुत्री पद्मसुन्दरी अवाक् बनकर खड़ी है।"

बिंबिसार ने पुत्री की ओर देखा। उसको देखकर बिंबिसार का हृदय विचारों की तरंगों से तरंगित हो गया। पद्मसुन्दरी तत्काल पिता के चरणों में नत हो गई। धरती पर पड़ी आम्रपाली सहज स्वर में बोली—"भन्ते! भन्ते!"

"पाली! पश्चिम आकाश की ओर देख···सूर्य अस्त हो चुका है···तू अपने प्रासाद में जा···कल मैं तेरे भवन पर आऊंगा···तेरी भावना सफल होगी। तेरे आगमन से भिक्षुणी संघ समृद्ध बनेगा।" भगवान् तथागत ने अभय प्रदान किया।

"भगवन्! मैं धन्य बनी।" कहकर आम्रपाली धीरे-धीरे खड़ी हुई। उसका सिर नत था। उसके नयन तथागत के चरणों में स्थिर हो रहे थे।

भगवान् तथागत अपने शिष्यों के साथ वहां से लौट गए। भाव-तृप्ति और आनन्द की प्रतिमा आम्रपाली भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी।

आश्चर्य से मूक बने हुए अन्य सभी लोग उसके पीछे चल पड़े। उपवन के मुख्य द्वार पर सब खड़े रहे। भगवान् तथागत आम्र-कानन की ओर आगे बढ़े।

सुदास के हाथ से वह चमकती तलवार कभी की धरती पर गिर पड़ी थी। इस नये परिचय से उसके हृदय में भारी खलबली मच रही थी।

पद्मसुन्दरी करुणा की साक्षात् प्रतिमा अपनी माता आम्रपाली से लिपट गई। आम्रपाली अपनी पुत्री को साथ ले रथ में बैठ गई। बिंबिसार का स्वप्न टूट चुका था। आम्रपाली ने केवल एक बार ही मगधेश्वर की ओर देखा और उस दृष्टि को पढ़कर मगधेश्वर ने एक शब्द भी नहीं कहा।

रथ वहां से चल पड़ा।

धनंजय ने मगधेश्वर की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। बिंबिसार ने कहा—"धनंजय! अब हम यहीं से राजगृही की ओर प्रस्थान कर दें।

और ऐसा ही हुआ।

उपसंहार

जनपदकल्याणी देवी आम्रपाली ने अपनी सारी सम्पति श्री संघ को समर्पित कर दी और भगवान् तथागत की कृपा से वह भिक्षुणी संघ में प्रविष्ट हो ज्ञान की आराधक बन गई।

एकाध सप्ताह के बाद पद्मसुन्दरी अपने स्वामी सुदास के भवन पर न जाकर चंपा चली गई। देवी आम्रपाली ने अपना नीलपद्म प्रासाद पद्मसुन्दरी को दिया था, परन्तु पद्मसुन्दरी ने इसे स्वीकार नहीं किया और बोली—"मां! बंधन को छोड़े बिना मुक्ति नहीं मिलती। मेरा भी प्रव्रज्या पथ पर चलने का ही निश्चय है।" यह सुनकर भिक्षुणी आम्रपाली बहुत प्रसन्न हुई।

चंपा पहुंचकर पद्मसुन्दरी ने पार्श्वनाथ की परम्परा के प्रभावी आचार्य सुदर्शन मुनि के पास साध्वी दीक्षा स्वीकार कर ली। उसे साध्वी विजयश्री की निश्रा में रहने की आज्ञा दी।

आर्य सुदास के जीवन में भी बड़ा परिवर्तन हुआ···कुछेक झटके जीवन की शोभा बन जाते हैं। आर्य सुदास भी अपनी समग्र सम्पत्ति का दान कर आचार्य सुदर्शन के पास मुनि बन गया।

बिंबिसार के हृदय में संपोषित स्वप्न नष्ट हो, उससे पूर्व ही पुत्र की अभिलाषा को संतुष्ट करने के लिए नंदा उज्जयिनी से अभयकुमार को साथ ले वहां आ पहुंची। मगधेश्वर ने पत्नी और पुत्र का बहुत आदर-सत्कार किया।

समय का चक्र चलता रहता है। चलते-चलते वह अनेक स्मृतियों को पाताल में डुबाता जाता है, अनेक स्मृतियों को उभारता है और अनेक स्मृतियों को स्वीकारता जाता है। उसकी गति निर्बाध होती है। उसमें कोई अस्थिरता नहीं होती, उसमें कोई स्पंदन नहीं होता। काल की तरंगें महक उठी थीं।

एक ओर भगवान् तथागत लोक-जीवन में व्याप्त संकुचित भेद धारा को नष्ट कर धर्म के प्रशस्त मार्ग की रेखाएं अंकित कर रहे थे और दूसरी ओर ज्ञात पुत्र भगवान् महावीर शाश्वत सुख के मार्ग का प्रतिपादन करते हुए लोक-जीवन में अहिंसा, सर्वत्याग और समभाव का अमृत उडेल रहे थे। वे जन्म, जरा और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की शाश्वत सिद्धि लोकजीवन में व्याप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे।

समस्त पूर्व भारत में सत्य, अहिंसा और मुक्ति का गीत गूंज रहा था।

□□